CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लोहित के मानसपुत्र : शंकरदेव

(असम के भक्तिकालीन सन्तकवि की जीवनगाथा)

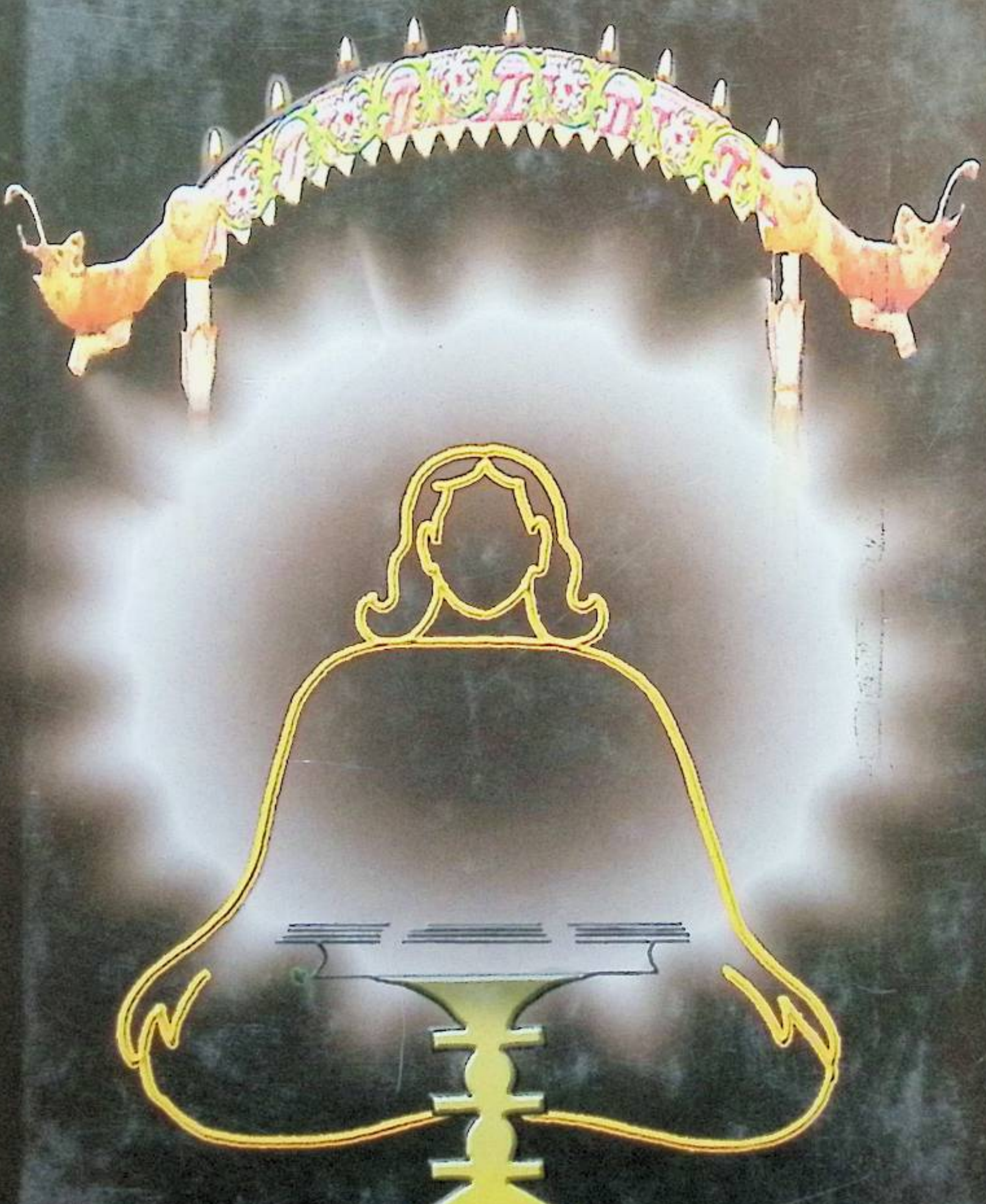

सांवरमल सांगानेरिया

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

CHHATRABANDHU
A1-B6, L... Dairy
A1 B... ...kpuri
New Delhi-110058

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लोहित के मानसपुत्र : शंकरदेव

(असम के भक्तिकालीन सन्तकवि की जीवनगाथा)

CHHATRA BANDHU
A1-B6, LSC ... Mother Dairy
A1 Block, Janakpuri
New Delhi-110058

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लोहित के मानसपुत्र : शंकरदेव

सांवरमल सांगानेरिया

हेरिटेज फाउण्डेशन
के.बी.रोड, पल्टन बाजार,
गुवाहाटी-781 008 (असम)

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इतिहास मनुष्य की तीसरी आँख है। ईश्वर ने मनुष्य को पीछे की ओर देख सकने वाला नेत्र दिया है और वह है उसका इतिहास बोध; इसे पलायन समझना आधुनिकता नहीं, आधुनिकता-विरोध है। आधुनिकता की तीन शर्तें हैं— एक, इतिहास-बोध; दूसरी, इहलोक में ही कल्याण होने की आस्था; और तीसरी, व्यक्तिगत कल्याण की जगह सामूहिक कल्याण की एषणा। मैं आग्रह पूर्वक यह कहना चाहता हूँ कि जो इतिहास को स्वीकार न करे वह आधुनिक नहीं और जो चैतन्य को न माने वह इतिहास नहीं।

—आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी

शंकरदेवो आमार, माधवदेवो आमार, दामोदरदेवो आमार, बंशीगोपालदेवो आमार, हरिदेवो आमार। आमार एऑँलोक बरेण्य, पूज्य, श्रेष्ठ, गरीष्ठ, 'महतोर्महीयान। एऑँलोकक लैयेइ आमि आजि धनी। एऑँलोकर कृपातेइ आमि धर्म्म, कर्म्म, नीति, सदाचार, मनुष्यत्त्व आरु आमार साहित्य पाइछौं। एतेके एऑँलोकर चरणत आमार लक्ष कोटि प्रणाम।

—श्री लक्ष्मीनाथ वेजवरुवा
(असमिया के साहित्यरथी)

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

PROF. INDIRA GOSWAMI M.A., Ph.D
(MAMONI RAISOM GOSWAMI)

'RAMANJALI'
House No. 23, Uma Kanta Goswami Enclave,
Gandhi Basti, North Sarania, Bylane-6, Guwahati -3
Ph :- 0361-2664266, 2668314 (R), 99547-11080 (M)

Dr. Goswami worked as Head of the department of Modern Indian Languages and Literacy studies in Delhi University. She has written several short stories and more than twenty novels. Her short stories and novels were translated into several Indian Languages including English. Her novels are prescribed as text books in several Indian Universities including Universities aboard. Dr. Goswami has won many National and International Awards, which includes, International Prince Claus Award in recognition of her exceptional achievement in the field of culture and development, Jynanpith Award, Sahitya Akademy Award, Bharat Nirman Award, K.K. Foundation National Award, International Tulsi Award, Bankim Chandra Gold Plague from Asiatic Society, Calcutta, Sati Jaymati Award from Ahom Corel, etc. She has awarded Ambassador for Peace Award from Inter Religious and International Federation for World Peace Korea, and she was also honoured by Bombay University. She was conferred D. Litt. Degree from Rabindra Bharati University of Calcutta, Indira Gandhi National University of Delhi and Rajiv Gandhi University of Arunachal. Now she runs an Institute founded by herself named as South East Asian Research Institute at Guwahati.

प्रस्तावना

श्रीमन्त शंकरदेव पर श्रीसांवरमल सांगानेरिया द्वारा लिखा यह ग्रन्थ पढ़कर मैं अति आनन्दित हुई। श्रीसांवरमल ने इसे लिखने के लिए बहुत गम्भीरता से श्रीशंकरदेव के जीवन और साहित्य का अध्ययन किया है।

असमिया संस्कृति को संवारने व उसे पराकाष्ठा पर ले जाने में श्रीमन्त शंकरदेव की सबसे बड़ी भूमिका रही है। वे मात्र वैष्णव सन्त ही नहीं, अपितु गीत, संगीत, गायन, वादन, नृत्य, नाटक, अभिनय, चित्रकारी, वयन आदि विभिन्न ललित कलाओं के अनुपम शिल्पी भी थे। उन्होंने पाखण्ड, कर्मकाण्ड, अन्धविश्वास, जातिभेद, बलिप्रथा और वामाचार में खोये असमवासियों में धर्म की वास्तविक शुचिता, सहजता, करुणा आदि मानवीय गुणों से नव चेतना विकसित करने का क्रान्तिकारी कार्य किया। संस्कृत के उद्भट विद्वान होने के उपरान्त भी उन्होंने अपनी आध्यात्मिक और सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का माध्यम असमिया को ही बनाकर इसमें विपुल वैष्णव साहित्य की रचना की।

श्रीशंकरदेव के सोच की व्यापकता ही तो थी जो आज से पाँच सौ वर्ष पहले उन्होंने भारत को जोड़ने के लिए एक सम्पर्क भाषा की आवश्यकता को न केवल समझा, अपितु असमिया, मैथिली आदि भाषाओं को मिश्रित कर एक नई 'ब्रजबुलि' या 'ब्रजावली' सृजित कर उसमें अनेक गीत और नाटक लिखे। उन्होंने सहज-सरल गीतों-नाटकों के माध्यम से जनसाधारण के समक्ष आध्यात्म के गूढ़ रहस्यों को उद्घाटित किया। यह भी सुना जाता है कि उनके गीत सुनकर हिमालय के कुछ भक्त असम आये थे। कारण वे गीत समूह ब्रजवुलि में रचे गये थे।

श्रीशंकरदेव द्वारा असमिया समाज में की गयी सामाजिक क्रान्ति के लिए उन्हें कई बार सामाजिक एवं राजकीय प्रताड़नाएँ भी सहनी पड़ीं। उनके जँवाई हरि की हत्या कर दी गई। उनके प्रिय शिष्य माधवदेव को अनेक मास कारागार में रहना पड़ा। वे स्वयं भी एक जगह स्थायी तौर पर नहीं रह पाये। फिर भी वे जीवन के

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्तिम क्षण तक लोककल्याण और रचनाकार्य में रत रहे।

यह सच है कि हिन्दी भाषा में श्रीमन्त शंकरदेव के विषय में विशेष लिखा न होने के कारण ये हिन्दी, बल्कि असमिया-इतरभाषी समाज में अपेक्षाकृत कम ज्ञात हैं। इस महापुरुष पर हिन्दी में विस्तृत पुस्तक उपलब्ध नहीं होने के कारण कबीरदास, नानकदेव, सूरदास, तुलसीदास, मीराबाई, चैतन्य महाप्रभु की तरह इनकी अखिल भारतीय प्रसिद्धि नहीं हो सकी।

मैं सन् 1970 में वृन्दावन में रामायण पर शोध कर रही थी। उस समय प्रख्यात पण्डित आर.जी. भण्डारकर के ग्रन्थ Vaisnavism, Saivism and Minor Religious System पढ़ने की बात याद आ रही है, जिसमें भारत के छोटे-बड़े अनेक धर्म प्रचारकों के बारे में भी विविध बातें लिखीं हुई हैं, किन्तु इसमें महापुरुष श्रीशंकरदेव का नाम तक न होने पर मुझे बहुत आघात लगा।

मेरी जानकारी में प्रथम बार फादर कामिल बुल्के साहब ने अपने प्रख्यात ग्रन्थ 'रामकथा' में श्रीशंकरदेव को हिन्दी साहित्य जगत से परिचित कराया। 'रामकथा' नामक इस अति महत्वपूर्ण ग्रन्थ में श्रीशंकरदेव के 'रामविजय' नाटक और 'उत्तराकाण्ड' रामायण के विषय में उल्लेख है। फादर कामिल बुल्के का यह ग्रन्थ प्रयाग विश्वविद्यालय से सन् 1962 में प्रकाशित हुआ था।

हिन्दी जगत में श्रीमन्त शंकरदेव को परिचित कराने में श्रीसांवरमल सांगानेरिया द्वारा लिखित उपन्यासोसम रोचक, विस्तृत सूचनाओं से समृद्ध यह ग्रन्थ 'लोहित के मानसपुत्र : शंकरदेव' महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करने में पूर्णतः सक्षम है। इसके पहले भी असम में ही पले-पढ़े श्रीसांगानेरिया डांगरिया (महोदय) ने पूर्वोत्तर पर साहित्य रचनाएँ कर हिन्दी साहित्य को समृद्ध करने के साथ-साथ अपनी जन्मभूमि असम की कीर्ति को भारतीय जनमानस तक पहुँचाने का स्तुत्य कार्य किया है। मैं श्रीसांवरमल डांगरिया का अभिनन्दन और धन्यवाद करती हूँ।

मामोनी रायसम गोस्वामी
(प्रो. इन्दिरा गोस्वामी)

वैशाख विहू, असमिया नूतन वर्ष 1417
15 अप्रैल 2010

प्रो. इन्दिरा गोस्वामी द्वारा असमीया में लिखी गयी प्रस्तावना का यह हिन्दी अनुवाद है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आत्मकथ्य

महात्मा गाँधी जब विलायत से बैरिस्ट्री कर भारत लौटे थे तब उनका एक आलेख 'हिन्द स्वराज' में छपा था। इसमें उन्होंने बिना जानकारी के लिख दिया कि असम के लोगों की अपनी कोई सांस्कृतिक परम्परा नहीं है। ये लोग भील हैं और पिण्डारियों की भाँति ठगी कर अपना जीवन व्यतीत करते हैं। गाँधीजी जब अगस्त, 1921 में पहली बार असम आये तो उनकी इस भूल धारणा को दूर करने के लिए असम के प्रबुद्धजन तरुणराम फूकन, हेमचन्द्र गोस्वामी, नवीनचन्द्र बरदलै, चन्द्रनाथ शर्मा, पण्डित कालिराम मेधी, बाणिकान्त काकोती आदि उनसे मिले और असम की सांस्कृतिक विरासत के बारे में उन्हें बताया। असम के अतीत के बारे में बताने के लिए उन्हें महापुरुष शंकरदेव रचित कीर्तन-घोषा, भागवत आदि ग्रन्थों के साथ माधवदेव कृत नामघोषा, माधव कन्दली रचित रामायण, राम सरस्वती की लिखी महाभारत, भट्टदेव की असमिया गीता आदि ग्रन्थ भेंट किये गये। असम के द्वारका और हस्तिनापुर के साथ रहे पौराणिक रक्त-सम्बन्धों के बारे में उन्हें बताया गया। यह सब जानकर गाँधीजी ने उक्त लेख में लिखी बातों को अपनी 'हिमालियन ब्लण्डर' बताया और आगे एक लेख लिखकर अपनी भूल को सुधारा।

कमोबेश यही मानसिकता देशवासियों के मन में असम या कहना चाहिये कि पूरे पूर्वोत्तर के बारे में, आज भी बनी हुई है। यहाँ आने से लोग झिझकते हैं। एक अज्ञात भय उनके मन में समाया है। असम की भौगोलिक विषमता और यहाँ के प्रति रही अज्ञानता ही इस भय का कारण है। स्वतन्त्रता के बाद यहाँ पनपे अलगाववाद के कारण भी लोग यहाँ आने से कतराते हैं। इससे यहाँ के बारे में लोगों के मन में भ्रम का अँधियारा छाया है।

ऐसी स्थिति में देशवासी असम के भक्तिकालीन सन्त शंकरदेव के बारे में कैसे जान पाते। पूरा देश इनके बारे में लगभग अनभिज्ञ है या बहुत थोड़ा जानता है। भारतवर्ष के आध्यात्मिक जगत में आदिशंकराचार्य के उपरान्त इतिहास के मध्यकाल में भक्ति आन्दोलन खड़ा हुआ। चौदहवीं-पन्द्रहवीं शताब्दी में देश के भिन्न-भिन्न हिस्सों में भक्ति की अलख जगानेवाले स्वामी रामानन्द, कबीर, रैदास, नामदेव, गुरु नानकदेव, नरसी मेहता,

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वल्लभाचार्य, सूरदास, तुलसी, मीरा, चैतन्य महाप्रभु आदि सन्तों के समकालीन ही पूर्वोत्तर दिशा में भी सूर्य की भाँति जाज्वल्यमान एक सन्त शिरोमणि ने जन्म लिया, जिनका नाम है– महापुरुष शंकरदेव।

महामहिम शंकरदेव को संस्कृति-पुरुष कहना ज्यादा समीचीन होगा। एक में अनेक गुणों के सामंजस्य का नाम श्रीमन्त शंकरदेव है। वे केवल धर्म-प्रतिष्ठापक सन्त ही नहीं थे और न ही उनकी आध्यात्मिकता केवल् धर्म मात्र से ही जुड़ी थी। वे चिन्तक, दार्शनिक, शास्त्र मर्मज्ञ, समाज-संस्कारक, मानवतावादी, कवि, संगीतज्ञ, नाट्यकार, नर्तक, चित्रकार, अभिनेता, गीतिकार, गायक-वादक, निर्देशक, मंच-व्यवस्थापक आदि के अतिरिक्त वयन-विशेषज्ञ भी थे। अपने में निहित बहुमुखी प्रतिभा को उन्होंने जन साधारण के कल्याणार्थ समर्पित कर दिया। तभी तो उनके पट शिष्य माधवदेव ने 'जय गुरु शंकर सर्वगुणाकर' कहकर उनके सम्मान में गुरु-भटिमा (स्तुति) लिखी।

शंकरदेव द्वारा परिकल्पित शास्त्रीय रीति से सत्रों में प्रचलित किया गया नृत्य आज 'सत्रिया नृत्य' के नाम से जाना जाता है। इस नृत्य विधा को 'राष्ट्रीय संगीत नाटक अकादेमी' ने शास्त्रीय नृत्य की मर्यादा प्रदान की है। इसी तरह उनके द्वारा वनवाया गया वृन्दावनी वस्त्र उनकी वयन कला का अनुपम उदाहरण है। इसका कुछ भाग आज भी लन्दन-म्यूजियम में देखा जा सकता है।

असम (तव का कामरूप) के तत्कालीन समाज को पुरोहित-पन्थी बाह्याचारों से मुक्ति दिलाने के लिए भारतीय दर्शन और अध्यात्म को शंकरदेव द्वारा लोकभाषा में प्रस्तुत किया जाना उनकी लोक संस्कार-वृत्ति का अंग ही तो था। उन्होंने सामाजिक संगठन का साधन अपनी श्रीकृष्ण-भक्ति को बनाया। उनके समय असम में शाक्तों में पशुवलि के साथ नरबलि का जोर था। मन्दिरों में देवदासी प्रथा चल रही थी। पंच मकार साधना, वज्रयानी सिद्धों द्वारा की गयी गुह्य-साधना से प्राप्त सिद्धियों द्वारा लोगों को चमत्कृत कर साधारण जन को धर्म तत्त्व से दूर रखा जा रहा था। ऐसी विषम परिस्थितियों में वहुदेववाद और कर्मकाण्ड में फँसे, पुरोहितों के हाथों में जकड़े असमीया समाज को शंकरदेव ने 'एक देव, एक सेव, एक विने नाही केव' कहकर श्रीकृष्ण को ही एकमात्र देव मानकर वैष्णव पन्थ पर चलने के लिए 'एकशरण नामधर्म' या 'एकशरणिया धर्म' की राह दिखायी। उनके समक्ष राम केवल अवतार हैं, परन्तु श्रीकृष्ण सर्वगुण सम्पन्न परमेश्वर। कालान्तर

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

में यही एकदेववाद 'एक शरणिया धर्म' के रूप में प्रतिष्ठित हुआ।

शंकरदेव केवल आध्यात्मिक और धार्मिक प्रचार में ही व्यस्त नहीं थे, अपितु उन्होंने भेदभावहीन समाज का पुनर्गठन कर सभी स्तर के लोगों को एक सूत्र में पिरोकर वृहद् समाज की स्थापना की। यह उनके चिन्तन और कार्यान्वयन का ही प्रभाव है कि आज असमिया समाज में कोई छुआछूत या जातिभेद देखने को नहीं मिलता। तभी तो अपने असम-प्रवास के समय यह बात जानकर गाँधीजी ने अचम्भित होते हुए कहा था कि अस्पृश्यता के जिस कोढ़ को समाज से मिटाने के लिए मैं प्रयासरत हूँ, वह पहले से ही श्रीमन्त शंकरदेव ने असमिया समाज से मिटा दिया।

आज के मेघालय, नगालैण्ड, मिजौरम कल तक असम के जिले मात्र हुआ करते थे। हमारे राजनेताओं की गलतियों से पहाड़ों-वनों में बसने वाले लोगों में पनपे असन्तोष के कारण असम का विभाजन हुआ। किन्तु शंकरदेव ने लोहित (ब्रह्मपुत्र) घाटी में बसे लोगों के साथ पहाड़ों पर बसी जनजातियों को भी अपने नामधर्म से जोड़ा था। उनके शिष्यों में गारो गोविन्द आता[1], नगा नरोत्तम आता, केवर्त जयहरि आता, मिसिंग परमानन्द, आहोम नरहरि, जयन्तिया के माधव, भूटान के जयराम के साथ मुसलमान चान्दसाई का भी समावेश है। इन सबके अतिरिक्त भी कई डफला (आज के न्यिशी), आदी, नोक्ते आदि जनजातीय लोगों ने हरि नाम की महिमा को समझा था। नगालैण्ड की सीमा से लगे हुए अरुणाचल के क्षेत्र में आज भी वैष्णव भक्त हैं।

साधारण जनता में आपसी मेल-मिलाप बढ़ाने और 'एकशरण नामधर्म' के प्रचार के लिए उन्होंने नामघरों की स्थापना की। नामघर के साथ कीर्तन घर, मणिकूट और सत्र शब्द भी जुड़े हैं। ईश्वर का जहाँ गुणगान होता है, जहाँ भजन-कीर्तन होता है उसे नामघर या कीर्तन घर कहा जाता है। नामघरों में साधारणतया मणिकूट न होकर गुरु-आसन होता है। भगवान का विग्रह जहाँ स्थापित होता है उसे मणिकूट कहा जाता है, परन्तु शंकरी परम्परा में विग्रह के स्थान पर श्रीमद्भागवत या अन्य धर्मग्रन्थ रखा जाता है। नामघर और मणिकूट सहित विशाल संस्था को सत्र कहा जाता है। सत्र की चारों दीवारों में और कहीं-कहीं एक या दो दीवारों पर 'करापाट' (प्रवेश द्वार) होता है।

1. आता : संस्कृत शब्द आत्मन (सम्माननीय) के अर्थ में है। कहीं-कहीं आतै भी लिखते हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सत्र-परिसर के बहिर्भाग में भक्तों के लिए 'हाटी' यानी वासगृह होता है। भक्त भी उदासीन (अविवाहित) और संसारी दो प्रकार के होते हैं।

सत्र परिसर में ही विद्यालय, पुस्तकालय, चिकित्सालय, रंगघर आदि होते हैं। सत्रों के भीतर ही व्यावसायिक दृष्टि से डोला, खटोला, खोल (मृदंग) जैसे वाद्य के अलावा नैवेद्य-पात्र (शराइ), हाथी दाँत से बनी सामग्री बनाने के उद्योगों को विकसित किया जाता है। एक अंकीय नाट में नाट्याभिनय की पोशाक, विभिन्न शस्त्रास्त्र, मुखौटा, मुकुट, जटा, दाढ़ी-मूँछ आदि यहीं बनाये जाते हैं। सत्रों में वयन शिल्प, पुतला, हस्तकला के साथ ही अन्यान्य मृत्तिका उद्योग, लौह उद्योग, घानी उद्योग आदि की भी शिक्षा दी जाती है। सत्र के परिचालन के लिए ज्येष्ठ सत्राधिकारी तथा कनिष्ठ सत्राधिकारी के अलावा मजूमदार, मेधी, पाठक, भण्डारी आदि भिन्न-भिन्न अधिकारी होते हैं। प्रायः प्रत्येक सत्र के अन्तर्भाग में एक कुआँ और बहिर्भाग में एक पोखर होता है।

नामघर असम के गाँव-गाँव में हैं। ये मात्र नामघर या कीर्तनघर ही नहीं, ये तब से आज तक असमिया समाज-व्यवस्था के विशिष्ट उपादान बने हुए हैं। प्रजातन्त्र के सम्यक विकास के लिए जिस ग्राम पंचायत की परिकल्पना हमारे संविधान में है, उसे आज से पाँच सौ वर्ष पहले ही श्रीमन्त शंकरदेव ने नामघर के रूप में स्थापित कर दिया था। इन नामघरों में अविराम रूप से धर्म प्रचार के साथ-साथ गाँव की नाना समस्याएँ, वाद-विवाद सुलझाये जाते हैं, नीति-नियम का निर्धारण होता है। सामाजिक न्याय, कला एवं संस्कृति को साकार करने में नामघरों का अद्वितीय स्थान है।

यद्यपि सत्रों को तत्कालीन अनेक राजाओं की कृपा उपलब्ध थी, फिर भी शंकरदेव ने इन्हें राजनीति से मुक्त रखा। नामघरों के माध्यम से प्रचारित शंकरी संस्कृति का ही प्रभाव था जो मिशनरी कार्य करने सन् 1835 में असम आये नाथन ब्राउन के धर्म-प्रचार के प्रलोभन में असमिया जनता नहीं आयी।

संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान होने के उपरान्त भी शंकरदेव ने अपनी लेखकीय अभिव्यक्ति का माध्यम कामरूपी (असमीया) को ही बनाया। उल्लेखनीय है कि उनके समय असम और असमीया भाषा क्रमशः कामरूप और कामरूपी के नाम से जानी जाती थी। सम्पूर्ण शंकरी-वाङ्मय में 'असम' नाम एक-दो वार ही आया होगा, वह भी आहोम-जाति वाचक शब्द के रूप में।

अपनी मातृभाषा कामरूपी को सर्वोपरि मानते हुए भी शंकरदेव ने यह अनुभव किया कि समस्त भारत को एक सूत्र में बांधने के लिए

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सर्वग्राही एक सम्पर्क भाषा होनी चाहिये। आज से पाँच सौ वर्ष पहले, और वह भी असम जैसे सुदूर प्रदेश में रहने वाले अहिन्दीभाषी द्वारा ऐसा सोचना उनकी दूरदर्शिता और राष्ट्रीयता का ही तो प्रमाण है।

विचारणीय बात है कि उनके समय असमिया भाषा प्रौढ़ हो चुकी थी। माधव कन्दली द्वारा 'सप्तकाण्डी रामायण', हेम सरस्वती द्वारा 'प्रह्लाद चरित' और 'हरगौरी-संवाद', हरिवर विप्र द्वारा 'लव-कुशर युद्ध', 'बभ्रुवाहन युद्ध' और 'अश्वमेध पर्व' तथा रुद्र कन्दली द्वारा 'द्रोण पर्व' और 'सात्यकि-प्रवेश' आदि कई असमिया ग्रन्थ लिखे जा चुके थे।

इसके उपरान्त भी श्रीमन्त शंकरदेव ने अपने चिन्तन को कार्यान्वित करते हुए 'सम्पर्क भाषा' के रूप में 'ब्रजावली' नामक नयी भाषा बनायी। ब्रजावली, जो तत्कालीन हिन्दी ही है– में उन्होंने अपना पहला गीत लगभग सन् 1489 में 'मन मेरि राम चरणहि लागु' बदरीनाथ-यात्रा में रचा। इस भाषा में उन्होंने अनेक गीतों तथा नौ नाटकों की रचना की। शंकरदेव ब्रजावली के जनक होने के नाते, इसके प्रथम साहित्यकार ही नहीं, बल्कि प्रथम गद्यकार भी हैं।

उनके सामने हालांकि ऐसी भी कोई विवशता नहीं थी कि तथाकथित 'कृत्रिम भाषा' ब्रजावली का प्रयोग करते। वस्तुतः इसके पीछे उनका निहितार्थ भारत को 'बृहत्तर भाषायी' आधार प्रधान करना ही था। उस समय नेपाल, बिहार, बंगाल, उड़ीसा समेत देश के लगभग पूरे पूर्वी भाग में ब्रज-मैथिली मिश्रित या इनसे मिलती-जुलती भाषाओं का ही प्रचलन था। यह भाषा असमिया लोगों के लिए भी कठिन न थी।

शंकरदेव ही पहले व्यक्ति हैं, जिन्होंने असम में नाटकों का सूत्रपात किया। उनके द्वारा लिखित, निर्देशित, अभिनीत सात अंकीय नाटक 'चिह्न यात्रा' का प्रथम अभिमंचन स्वयं उन्होंने ही किया था। उस नाट्य का लगातार सात दिनों, नित्य एक-एक अंक का मंचन चलता रहा। उन्होंने अपने नाटकों में गीतात्मकता बनाये रखने के लिए संगीत की महत्त्वपूर्ण भूमिका रखी। तभी तो उनके उपलब्ध छह नाटकों में एक सौ अस्सी संस्कृत-श्लोक, एक सौ वीस गीतों के अलावा भटिमा और पयारपद्य हैं, सो अलग। साथ ही उन्होंने सूत्रधार का नवीनीकरण कर उसकी उपस्थिति पूरे नाटक में बनाये रखी। उनके नाटकों के सूत्रधार और अभिनेता ब्रजावली गद्य में लिखे कथोपकथन का प्रयोग लयात्मक रूप में करते हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उनके नाटकों के कुछ अंश पुस्तक के परिशिष्ट में दिये गये हैं। साथ ही पाँच सौ साल पहले की पत्र-लेखन शैली का पता 'रुक्मिणी-हरण' नाटक में रुक्मिणी द्वारा श्रीकृष्ण को लिखे गये पत्र (पृष्ठ 492 पर) से चलता है। नाटकों में प्रयोग की गयी गद्यात्मक और पद्यात्मक ब्रजावली को समझना हिन्दी के सुधी पाठकों के लिए विशेष दुष्कर नहीं।

उनके नाटकों का मूल उद्देश्य श्रीकृष्ण भक्ति के माध्यम से एकशरण धर्म का प्रचार कर लोगों में नव चेतना जगाना था। इसलिए उन्होंने प्रेक्षकों को नाटक से जोड़े रखने के लिए अपने सूत्रधार से बार-बार कहलवाया– 'देखह शुनह; निरन्तरे हरि बोल हरि' (देखो सुनो; निरन्तर हरि बोलो हरि)। दर्शक भी नाटक के साथ एकाकार होकर सूत्रधार के संग 'हरि बोल हरि' के उद्घोष दोहराते।

यह भी उल्लेखनीय है कि 'चिह्न यात्रा' के बहुत बाद, शेक्सपीयर के नाटक का पहला मंचन इंग्लैण्ड की महारानी एलिजाबेथ के सम्मुख सन् 1562 में किया गया था। यह तथ्य नितान्त भ्रामक और हमारा अँग्रेजों का पिछलग्गू होने का द्योतक भी है कि विश्व में शेक्सपीयर लिखित नाटक का सर्वप्रथम मंचन हुआ था; जबकि भारत में तो संस्कृत नाटकों के मंचन की पुरातन परम्परा रही है।

शंकरदेव असम के सिरमौर हैं। उन्हें यहाँ की भूमि पर प्रवहमान लोहित का मानसपुत्र कहना सम्यक ही है, क्योंकि उनके अस्तित्व के बिना असमिया संस्कृति एवं साहित्य-संगीत की कल्पना भी नहीं की जा सकती। दूसरे शब्दों में ये असम के ही नहीं, सम्पूर्ण भारतवर्ष के ही नहीं, अपितु विश्व के प्राचीन सन्त, साहित्यकार तथा लोकनायक के रूप में पंक्तिबद्ध किये जाने चाहिये।

अन्तस् को यह बात सालती रहती थी कि शंकरदेव जैसे विराट बहुमुखी व्यक्तित्व के बारे में पूरा देश अनभिज्ञ क्यों है ? शंकरदेव जैसे राष्ट्रीय सन्त का व्यक्तित्व असम की सीमा में ही आवद्ध होकर क्यों और कैसे रह गया ? इसमें कदाचित हमारी ही भूल है। असमवासी होने के नाते यही बेचैनी मुझे उनकी जीवनी लिखने के लिए उत्प्रेरित कर रही थी। किन्तु मन ने प्रश्न किया, मैं स्वयं उनके बारे में सतही बातों के सिवाय कितना जानता हूँ ? उन्हें जानने के लिए उन पर असमीया में लिखा साहित्य कई वर्षों तक अध्ययन करता रहा। मन ने कहा, इसे गुवाहाटी में बैठकर ही लिखा जा सकता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लिखते समय बहुत-सी कठिनाइयाँ भी आयीं। कितने ही लगातार महीने तो तथ्य खोजने में ही निकल गये। फिर भी बात नहीं बन रही थी। जी चिड़चिड़ाया, एकाकीपन ने कचोटा, कथा का कोई सूत्र नहीं पकड़ पा रहा था। असमंजस में था कि कहाँ से और कैसे इसे लिखना प्रारम्भ करूँ।

शंकरदेव के परवर्ती भक्तों द्वारा लिखे गये गुरु-चरितों में मत-भिन्नताएँ हैं। गुरु-चरितों के आधार पर स्व. लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा और स्व. महेश्वर नेओग द्वारा गवेषणात्मक रूप से असमिया में अलग-अलग लिखे गये 'श्रीश्रीशंकरदेव' चरित्रों को पढ़ा। उनमें विभिन्न चरितकारों के अलग-अलग मत दिये हुए हैं। मेरे लिए समस्या थी कि उनमें से किसे मैं सही मानता और किसे नकारता। एक बार तो इतना हताश हुआ कि जीवन-वृत्त लिखने का यह विचार ही छोड़ दिया था।

इस बीच असमियाभाषी हिन्दी लेखक डॉ. देवेन दास 'सुदामा', जो मेरे पुराने परिचित हैं, से मिलकर अपनी समस्या बतायी। उन्होंने कहा कि वे भी हिन्दी में शंकरदेव की जीवनी लिख रहे हैं और इस काम में मेरी सहायता करेंगे। उन्होंने मेरा उत्साह बढ़ाया। इसके लिए मैं इनका हृदय से आभारी हूँ।

नया उत्साह जुटाकर मैंने शंकरदेव पर असमीया में लिखे तीन जीवनीपरक उपन्यास 'जाकेरि नाहिके उपाम' (लेखक : श्री लक्ष्मीनन्दन बोरा), 'सर्वगुणाकर' (लेखिका : डॉ. निरुपमा महन्त) और 'धन्य नर तनु भाल' (लेखक : स्व. सैयद अब्दुल मलिक) बड़ी मेहनत से दोबारा-तिबारा पढ़े, क्योंकि असमीया पर मेरा पूरा अधिकार नहीं है। हिन्दी माध्यम की स्कूल में पढ़ी असमीया ही मेरे काम आयी और असमवासी होने का लाभ भी मुझे मिला।

श्री लक्ष्मीनन्दन बोरा का उपन्यास 'जाकेरि नाहिके उपाम' अर्थात 'जिनकी नहीं है कोई उपमा', पढ़कर मैंने निर्णय लिया कि इस विद्वान लेखक ने जिन तथ्यों को सही मानकर अपनी पुस्तक लिखी है, उन्हीं को आधार बनाकर मुझे आगे बढ़ना चाहिये। फिर मैं व्यक्तिगत रूप में माननीय श्री लक्ष्मीनन्दन जी बोरा से मिलने गुवाहाटी स्थित उनके घर गया। उन्हें अपनी इच्छा बतायी। उन्होंने मेरा उत्साहवर्धन करते हुए कहा, "मैंने भी यह उपन्यास लिखने के लिए अनेक पुस्तकों और गुरु-चरितों की सहायता ली है। पाँच सौ साल पहले हुए उस विराट व्यक्तित्व के बारे में जानने का इससे सुगम साधन और क्या होगा ! वाल्मीकि रामायण के आधार पर भारतीय-भाषाओं में विभिन्न लेखकों द्वारा अनेक रामायणें लिखी गयी हैं या नहीं ? कथ्य तो सबके एक ही हैं।" वयोवृद्ध श्री लक्ष्मीनन्दन जी बोरा के आशीर्वाद

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के साथ उनकी यह अनुमति भी मिल गयी कि उनके उपन्यास से चाहूँ तो घटनाक्रम भी ले सकता हूँ। इस सहृदयता के लिए मैं इनका चिर कृतज्ञ हूँ।

मैंने जानकारियाँ जुटा कागज पर टिपण्णियाँ लिखीं। शंकरदेव के समय के ऐतिहासिक परिवेश को समझा। उनके एक सौ उन्नीस वर्षीय जीवनकाल (सन् 1449-1568) में छह आहोम राजाओं ने शासन किया था। वे थे– सुसेन्फा (सन् 1439-1488), सुहेन्फा (सन् 1488-1493), सुपिम्फा (सन् 1493-1497), सुहुंग्मुंग या दिहिंगिया राजा (सन् 1497-1539), सुक्लेनमुंग या गढ़गयाँ राजा (सन् 1539-1552) और सुखाम्फा या खोरा राजा (सन् 1552-1603)। साथ ही असम का यात्रा-वृत्तान्त 'ब्रह्मपुत्र के किनारे किनारे' पुस्तक लिखने का अनुभव भी मेरे काम आया।

अब तक मेरा परिचय 'एकशरण भागवती समाज' के अध्यक्ष श्री दयालकृष्ण बोरा से हो गया जिनका शंकरदेव पर अच्छा अध्ययन है। वे अपनी मातृभाषा असमिया की तरह हिन्दी भी सहज रूप में न केवल पढ़ लेते हैं अपितु समझ भी लेते हैं। कई दिनों से श्रीमन्त शंकरदेव के जन्म-स्थान बरदोवा जाने का विचार कर रहा था। यह बात श्री दयालकृष्ण बोरा को बतायी तो वे साथ चलने के लिए सहर्ष तैयार हो गये। कई वर्षों बाद नये उत्साह के साथ मेरी दोबारा बरदोवा-यात्रा हुई। बरदोवा-सत्र में उस हरितकी (हर्रे वा हरड़) वृक्ष के तले कुछ क्षण बिताये जिसे शंकरदेव के समय का वताया जाता है। वृक्ष से ताजा झरे हरितवर्णी हरितकी फल को गुरु शंकर का प्रसाद समझकर खाया, कदाचित् कोई प्रेरणा-ऊर्जा ही मुझे प्राप्त हो जाये।

इसी बीच अग्रज तुल्य मित्र श्री ओमप्रकाश गोयनका और उनके परिवार के साथ मुझे बरपेटा शहर स्थित शंकरदेव की कर्मस्थली पाटबाउसी, गणककुची, सुन्दरीदिया सत्रों, जो पास-पास ही हैं, जाने का सुअवसर मिला। पाटवाउसी के भव्य सत्रों में गुरुआनी कालिन्दी का कक्ष, उनके पलंग के अलावा शंकरदेव द्वारा काम में लायी गयी वस्तुएँ, साँचिपातों पर लिखी पाण्डुलिपियाँ, काठ के वने मुखौटे आदि देखने को मिले। साथ ही अन्यान्य वातें जानने का लाभ मिला, सो अलग। सत्र में पाँच सौ वर्ष पहले महापुरुष माधवदेव द्वारा प्रज्ज्वलित अखण्ड दीपक के दर्शन कर मैंने अपने को सौभाग्यशाली माना।

नवीन उत्साह-प्रेरणा से लेखन प्रारम्भ किया। वात धीरे-धीरे वनती गयी। किन्तु शंकरदेव की वारह वर्षीय (सन् 1481-1493) यात्रा लिखते समय लेखनी फिर अटक गयी। गुरु-चरितों में यात्रा-स्थलों के नाम मात्र मिलते हैं,

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परन्तु भौगोलिक मार्ग कहीं नहीं। उपरोक्त तीनों उपन्यासों में भी कुछ एक स्थलों के नाम भर ही हैं।

मैंने उनकी यात्रा का ताना-बाना बुनने का मन बनाया। अपनी छात्रावस्था में की गयी भारत-यात्रा पर लिखी पुस्तक 'थोड़ी यात्रा थोड़े कागज' शंकरदेव की यात्रा को रचने में मेरा सम्बल बनी। भारत का मानचित्र देखकर मैंने उनके सम्भावित यात्रा-पथ का अनुमान लगाया। कालखण्ड का मिलान किया। उनके बदरीनाथ-प्रवास के समय असम में माधवदेव का जन्म हुआ था। वे शंकरदेव से चालीस वर्ष छोटे थे। शंकरदेव ने बत्तीस वर्ष की अवस्था में यात्रा आरम्भ की थी अर्थात् बदरीनाथ पहुँचने के पहले वे आठ वर्ष तक यात्रा कर चुके थे। आखिर यात्रा-तथ्यों के अभाव में अनुमान ही एकमात्र विकल्प था।

इसके लिए शंकरदेव के समकालीन भारत में हुए सन्त महापुरुषों की जानकारी की। वे थे— सन्त रैदास (सन् 1376-1527), सन्त कबीर (सन् 1398-1502), भक्त नरसी मेहता (सन् 1413-1479), गुरु नानकदेव (सन् 1469-1539), वल्लभाचार्य (सन् 1478-1585), भक्त सूरदास (सन् 1478-1580), चैतन्य महाप्रभु (सन् 1485-1533), सन्त तुलसी दास (सन् 1497-1623), भक्तिन मीरा बाई (सन् 1504-1548)। हालाँकि इनमें से किसी से भी शंकरदेव का मिलन नहीं हुआ, परन्तु उनकी यात्रा लिखते समय इनके समय का ध्यान रखना आवश्यक था। ऐसा भी प्रवाद है कि चैतन्य महाप्रभु से उनकी भेंट हुई थी। किन्तु तर्क पर यह बात खरी नहीं उतरती। ऐसा ही प्रवाद नानकदेव के बारे में भी है। यह भी सच है कि नानकदेव का आज के असम, अरुणाचल और मणिपुर आगमन हुआ था परन्तु दोनों का मिलन हुआ या नहीं, इसका कोई ठोस साक्ष्य मुझे नहीं मिला। इसके साथ ही शंकरदेव की पूर्ववर्ती सन्त-परम्परा को भी जाना-समझा।

इसी बीच साहित्यिक मित्र श्री किशोर कुमार जैन ने मेरा परिचय 'शंकरदेव सचेतन मंच' के सचिव श्री प्रभात दास तथा अध्यक्ष श्री डालिम पाठक से करवा दिया। श्री प्रभात दास भी अपनी मातृभाषा असमिया की तरह हिन्दी पढ़ लेते हैं। उन्होंने शंकरदेव के यात्रा-स्थलों की प्रामाणिक जानकारी न केवल जुटा कर मुझे दी, अपितु कई बार विचार-विमर्श करने हेतु काफी समय भी दिया। इसके लिए मैं श्री प्रभात दास का हृदय से कृतज्ञ हूँ।

कथा में शंकरदेव से जुड़े अधिकांश पात्र वास्तविक हैं, लेकिन

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

करीब डेढ़ सौ पृष्ठों में लिखी गयी शंकरदेव की भारत-यात्रा में मिले पात्रों के नाम कल्पित हैं। चूँकि यह एक महापुरुष की जीवनगाथा है, मैंने उपलब्ध तथ्यों को ही पुस्तक में समाहित किया है, कपोल-कल्पना करने की धृष्टता कहीं नहीं की।

विद्वानों में 'चिह्न यात्रा' के लेखन-अभिमंचन के समय को लेकर मत-भिन्नताएँ हैं। कुछ का कहना है कि 'चिह्न यात्रा' का लेखन-मंचन शंकरदेव ने अपनी तीर्थ यात्रा से लौटने के बाद लगभग सन् 1506 में किया। किन्तु डॉ. देवेन दास, श्री दयालकृष्ण बोरा और श्री प्रभात दास एकमत से 'गुरु-चरितों' में लिखे इस मत पर दृढ़ प्रतिज्ञ हैं कि गुरुकुल से लौटने के बाद ही शंकरदेव ने अपने घरवालों और बरदोवावासियों के आग्रह पर करीब सन् 1470 में 'चिह्न यात्रा' का लेखन-मंचन किया था। पुस्तक में इसी मत को लिखा गया है।

शंकरदेव की रचना 'कीर्तन-घोषा' के बारे में भी कुछ तथ्य जानने आवश्यक हैं। यह नाम उनका दिया हुआ नहीं है। उनके परलोक गमन के पश्चात् उनके शिष्य माधवदेव ने अपने शिष्य और भानजे (गयापाणि और उर्वशी के पुत्र) रामचरण ठाकुर जो कि सुन्दरीदिया सत्र में रहते थे, को शंकरदेव द्वारा विभिन्न समयों में विभिन्न खण्डों में लिखी गयी समस्त रचनाओं को बरदोवा, गांमौ, धुवाहाटा आदि स्थलों से खोजकर कोच राज्य में लाने को कहा था। शंकरदेव लिखित उरेषा वर्णन, अजामिल उपाख्यान, प्रह्लाद चरित्र, हरमोहन, बलि-छलन, गजेन्द्र उपाख्यान, ध्यान-वर्णन, पाषण्ड-मर्दन, नामापराध, शिशुलीला, कालिय-दमन, रास-क्रीड़ा, कंस-वध, गोपी-उद्धव संवाद, कुजीर वांछा पूरण, अक्रूरर वांछा पूरण, चतुर्विंशति अवतार वर्णन, जरासंध युद्ध, कालयवन वध, मुचुकुन्द स्तुति, स्यमन्तक हरण, नारद-कृष्ण दर्शन, विप्र-पुत्र आनयन, देवकीर पुत्र आनयन, वेद-स्तुति, लीलामाला, रुक्मिणीर प्रेम कलह, भृगु परीक्षा, श्रीकृष्णर वैकुण्ठ-प्रयाण और भागवत तात्पर्य को एक ग्रन्थ में संकलित किया था। आज उपरोक्त रचनाएँ असम में 'कीर्तन घोषा' के नाम से ही जानी जाती हैं।

साँचिपातों पर लिखी शंकरदेव और माधवदेव की रचनाएँ प्रथम बार सन् 1876 में प्रेस में छपीं। यह स्तुत्य कार्य तेजपुर निवासी हरिविलास अगरवाला (रूपकुँवर ज्योतिप्रसाद अगरवाला के पितामह) ने किया। उन्होंने रचनाओं को स्थान-स्थान से खोजा और स्वयं कोलकाता ले गये। उन्हें वहाँ

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के प्रेस में छपवाकर असमिया जनता में निःशुल्क वितरित किया।

शंकरदेव ने अपने गीतों को कभी 'बरगीत' नहीं कहा। उनके बाद ही इन्हें बरगीत यानी दिव्यगीत कहा गया। प्रस्तुत पुस्तक उनके साहित्य का आकलन-विवेचन करने के उद्देश्य से नहीं, जिसकी इस लेखक में क्षमता भी नहीं, बल्कि इस महापुरुष को हिन्दी जगत से परिचित कराने के प्रयोजन से लिखी गयी है। शंकरदेव का असमिया में रचा गया अधिकतम रचना-संसार भागवत तथा अन्य पुराणों पर आधारित है जिनकी कतिपय बानगियों को पुस्तक में जगह-जगह देने का लघु प्रयास किया गया है। यह भी सच है कि इन बानगियों को उस विशाल व्यक्तित्व के कृतित्व को समझने के लिए संकेत मात्र ही कहा जा सकता है।

गुवाहाटी विश्वविद्यालव में हिन्दी के रीडर और मणिपुर विश्वविद्यालय में प्रोफेसर रहे डॉ. कृष्ण नारायण प्रसाद 'मागध' द्वारा शंकरी साहित्य पर लिखित और पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला द्वारा सन् 1976 में प्रकाशित साहित्यिक विवेचनात्मक विस्तृत ग्रन्थ 'शंकरदेव : साहित्यकार और विचारक' के कुछ अंशों को यहाँ उद्धृत करना समीचीन होगा। यह पुस्तक आज अप्राप्य है जिसे हिन्दी-असमिया के विद्वान और लेखक-प्रचारक वयोवृद्ध श्री चित्र महन्त ने अपने पास से उपलब्ध करवाया। इसके लिए महन्त महोदय का मैं सदैव ऋणी रहूँगा।

उपरोक्त पुस्तक में डॉ. कृष्ण नारायण प्रसाद 'मागध' लिखते हैं— "शंकरदेव का तथाकथित विशाल अनूदित साहित्य एक सोद्देश्य उपलब्धि है, मूल का अनुवाद मात्र नहीं। उसे अनुवाद की अपेक्षा, स्वतन्त्र व्याख्या कहना अधिक संगत है। विभिन्न वैष्णव पुराणों और शास्त्रों के अध्ययन-आलोड़न के पश्चात् 'भागवत' को आधार मानकर कवि घटनाओं-प्रसंगों की योजना-व्याख्या बहुत कुछ स्वतन्त्र रूप में करता चलता है। इनमें वह व्यास का पिछलगुआ भर नहीं, स्वयं व्यास भी है। भागवतीय कथाओं को उसने एक नये काव्य रूप—हरिकथा—में ढालकर मौलिक रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। यही कारण है कि असमीया वैष्णव-समाज में शंकरदेव कृत 'महाभागवत' मूल भागवत की व्याख्या और अनुवाद के साथ-साथ मौलिक कृति के रूप में भी मान्य है। कवि की भक्ति और दर्शन सम्बन्धी मान्यताओं को समझने-समझाने की दृष्टि से उसकी उपयोगिता तो है ही, उसके आधार पर कवि-कर्म और कवि-व्यक्तित्व का मूल्यांकन करना भी बेमानी नहीं होगा। उनका उद्देश्य अनुवाद-साहित्य प्रस्तुत करना नहीं, वरन् एकशरण भक्तिधर्म के

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अनुरूप मौलिक साहित्य निर्माण करना था।''

शंकरदेव की भक्ति के दास्यभाव को निरूपित करते हुए 'मागध' एक स्थान पर उसी पुस्तक में लिखते हैं— ''शंकरदेव के काव्य में दास्यभाव के पद केवल मिलते ही नहीं, बल्कि ऐसा प्रतीत होता है मानो उस पर उनका एकाधिकार-सा है। उनकी समस्त रचनाओं में दास्यभाव ही सर्वप्रधान है। उन्होंने सेवक की दीनता के जितने अतिरंजित चित्र अंकित किये, उतने ही उसे चमत्कृत आकर्षित करने वाले स्वामी के वैभव-पराक्रम वाले भी। सम्पूर्ण रचना को सरसरी दृष्टि से देखने से ही विदित हो जाता है कि उन्होंने 'श्रीमद्भागवत' के वैसे ही स्थलों और प्रसंगों को अपनी कविता का विषय बनाया है जिनमें भगवान् की विराटता, अलौकिकता इत्यादि के साथ-साथ उनकी अतुलनीय शक्ति और रक्षणशीलता का चमत्कारिक वर्णन किया गया है। कृष्ण के द्वारा सम्पन्न होने वाले अलौकिक कृत्यों से व्रजवासी क्षण-क्षण चमत्कृत और आकर्षित होते हैं एवं उनकी स्तुति-वन्दना करने लगते हैं। वस्तुतः शंकरदेव कृष्ण के नयनाभिराम रूप एवं पूतना, शकटासुर, तृणावर्त, वत्सासुर, बकासुर, धेनुकासुर, प्रलम्बासुर, शंखचूड़, अरिष्टासुर, केशी, व्योमासुर इत्यादि के वध और गोवर्धन-धारण आदि की कथाओं से उनकी अद्वितीय शक्ति तथा यशोदा द्वारा कृष्णमुख में विश्वदर्शन, ब्रह्मा द्वारा बाल-वत्स-हरण किये जाने पर कृष्ण द्वारा अनुरूप बाल-वत्स रूप धारण, नन्द-उद्धार, रास-क्रीड़ा में अन्तर्धान होने, कालियदमन, वनाग्नि-पान इत्यादि के वर्णन द्वारा उनकी अलौकिकता का प्रकाशन कर भक्तों को सर्वत्र अभिभूत करते हैं। ऐसे अनिर्वचनीय सौन्दर्य से मण्डित एवं अलौकिक शक्ति-सम्पन्न प्रभु के चरणों को एकमात्र शरणस्थल मानकर वे अपना सर्वस्व समर्पित कर देते हैं।''

आज डॉ. कृष्ण नारायण प्रसाद 'मागध' जैसे हिन्दी विद्वानों की आवश्यकता है जो शंकरदेव के दर्शन और काव्यात्मक भाषा, शैली, शब्द-अलंकार आदि का अध्ययन-मनन कर हिन्दी में लिख सकें।

इसके लिए असमीयाभाषी समाज से भी निवेदन करना चाहूँगा कि यदि वह शंकरदेव के समग्र साहित्य को मात्र देवनागरी में लिप्यन्तरण भर ही करा दें तो हिन्दी के शोधकर्ताओं को इन पर काम करने की प्रेरणा मिलेगी।

पुस्तक-लेखन प्रायः पूरा हो चुका था, पर इसका अन्तिम अध्याय 'महाप्रयाण' नहीं लिख पा रहा था। बार-बार अन्तःप्रेरणा हो रही थी कि एकबार

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शंकरदेव की प्रयाण-स्थली मधुपुर-सत्र चलना चाहिये। डॉ. देवेन दास 'सुदामा' को साथ चलने को पूछा तो वे सहर्ष तैयार हो गये। रेल से तड़के चार बजे तोरषा किनारे बसे कोचविहार (आज का कूचबिहार) पहुँचे। यही नगर कोच राजवंशी महाराज नरनारायण की राजधानी थी। इसके साथ यह जानना भी रुचिकर होगा कि इसी वंश में आगे जाकर, कुछ ही दिनों पहले दिवंगत हुई जयपुर की महारानी गायत्री देवी जन्मी थीं और उनके पूर्वजों का ब्रिटिश काल में बनाया गया भव्य राजप्रासाद आज भी नगर के मध्य खड़ा है।

कोचविहार से सात-आठ किलोमीटर दूर स्थित मधुपुर के भव्य द्वार से सत्र में प्रवेश किया। वहाँ शंकरदेव की पुण्य-तिथि मनाने की तैयारियाँ चल रही थीं। यह संयोग मात्र ही था कि हम उनकी 441वीं पुण्य तिथि भाद्रपद शुक्ल द्वितीया (22 अगस्त 2009) को वहाँ पहुँचे। सत्र के भक्त यतीन्द्रनाथ कृष्णराय यह जानकर अत्यन्त प्रसन्न हुए कि मैं राष्ट्रीय भाषा हिन्दी में शंकरदेव की जीवनी लिख रहा हूँ। उनके आशीर्वाद के रूप में मानो गुरु का आशीष ही मिल गया। कुछ घण्टे सत्र में रहकर तोरषा नदी देखने गये जिसके किनारे शंकरदेव का अन्तिम-संस्कार हुआ था। वहाँ कुछ क्षण बिताकर जैसे नयी प्रेरणा प्राप्त की।

पुस्तक में देवनागरी लिप्यन्तरण उसी तरह किया गया जैसे वह असमिया में लिखी जाती है। हमारी भारतीय भाषाओं की लिपियाँ अलग-अलग होने से हम इन्हें पढ़ नहीं पाते, जिससे हमारी भाषायी दूरी बढ़ती है, जबकि हमारी उत्तर भारतीय भाषाओं के साथ-साथ दक्षिण भारतीय भाषाओं की वर्णमालाएँ भी एक ही हैं। केवल तमिल वर्णमाला में कुछ व्यंजन अक्षरों का प्रयोग नहीं होता।

असमिया में भी बांग्ला की तरह व्यंजन अक्षरों की उच्चारण-ध्वनि ऐसे लगती है जैसे इनके साथ 'ओ' जोड़ दिया गया हो। इसलिए 'क ख ग' आदि समस्त व्यंजनों की ध्वनि 'को खो गो' जैसी होती है।

हिन्दी में अनुनासिक अक्षर– ङ्, ञ्, ण्, न् और म् के बदले बिन्दु लगाकर अंक, चंचल, तांडव, तंत्र, संबंध अदि लिखने का प्रचलन चल पड़ा है, जबकि असमिया में इन्हें अङ्क, चञ्चल, ताण्डव, तन्त्र, सम्बन्ध ही लिखा जाता है। देवनागरी लिप्यन्तरण करते समय मूल भाषा की शैली ही अपनायी गयी है। इसी प्रकार असमिया में दो 'य' होते हैं। ये यम, युग का उच्चारण जम, जुग करते हैं, परन्तु 'य' उच्चारण करने के लिए 'य' के नीचे बिन्दु (नुक्ता) लगाते हैं। इसलिए लिप्यन्तरण में सम्भवतया ऐसी गलतियाँ हुई हों।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

असमिया के सुधी पाठकों को यदि ऐसी गलतियाँ मिलें तो वे मुझसे अनजाने में हुई गलती मान कर क्षमा करेंगे।

असमिया में 'च' एवं 'छ' का उच्चारण 'स' के समान होता है। 'न' और 'ण' के उच्चारण में अन्तर नहीं है, दोनों का उच्चारण 'न' के समान होता है। दन्त्य और मूर्द्धन्य ध्वनियों में भी भेद प्रायः नहीं होता, 'त' एवं 'ट' का उच्चारण प्रायः 'ट' के समान होता है। उष्म ध्वनियों— 'श ष स' का उच्चारण शब्दारम्भ में 'ह' और 'ख' के बीच की ध्वनि के समान परन्तु अन्य स्थलों पर 'ह' के समान होता है। उदाहरणार्थ 'सन्तोष', 'सहज', 'असमीया[1]', 'कृषक', 'सोमवार' जैसे शब्दों को लिखेंगे 'सन्तोष', 'सहज', 'असमीया', 'कृषक', 'सोमवार' ही, परन्तु बोलने में 'ह्न्तोख्', 'ह्होज', 'अखमीया', 'कृखोक', 'ख्ोमबार' जैसी-सी ध्वनि का उच्चारण करेंगे। इस उच्चारण दोष के चलते कहावत है कि असमिया ब्राह्मणों का दिया 'शतायु' आशीर्वाद यजमान को 'हतायु' के रूप में मिलता है। अस्तु, किन्तु संयुक्ताक्षरों में 'श् ष् स्' एवं 'च् छ्' का उच्चारण इसी रूप में यानी 'श् ष् स्' एवं 'च् छ्' ही होता है। इसी तरह 'क्ष' का उच्चारण 'क्ख' या 'ख्य' के समान होता है।

कुछ शब्दों का असमिया-हिन्दी दोनों में प्रयोग होता है, परन्तु थोड़े से अलग-अलग अर्थ में। 'श्रीमन्त' शब्द असमीया में प्रज्ञावान व्यक्ति के लिए भी विशेषण-रूप में प्रयोग होता है, जबकि हिन्दी में इसका प्रयोग किसी ऐश्वर्यशाली या धनाढ्य व्यक्ति के लिए किया जाता है। इसी तरह 'शिल्पी' शब्द असमिया में सभी कलाकारों के अर्थ में है, जबकि हिन्दी में हस्तशिल्प-कार्य करने वाले को ही शिल्पी कहा जाता है।

हिन्दी के 'का', 'की' तथा 'के' की जगह असमिया में 'र' प्रयोग होता है, उदाहरणार्थ 'राम का', 'राम की' या 'राम के' के लिए असमिया में बस 'रामर' ही लिखना यथेष्ट है। 'में' और 'पर' के अर्थ में 'त' जोड़ते हैं, जैसे 'दिनत' (दिन में), 'कालत' (काल में), 'पाहारत' (पहाड़ पर)। इसी प्रकार 'ही' तथा 'भी' के लिए 'इ' तथा 'ओ' जोड़ेंगे, जैसे 'रामइ' (राम ही) और 'रामओ' (राम भी)। इन साधारण सूचनाओं से हम किसी भाषा को तो नहीं सीख सकते, परन्तु भारतीय भाषाओं के समानता-गुण की जो विशिष्टता है, उसका तनिक लाभ तो हम उठा ही सकेंगे।

---

1 असमीया : असमिया भाषा में 'म' के साथ दीर्घ ईकार लगाकर 'असमीया' लिखते हैं जबकि हिन्दी में 'म' के साथ ह्रस्व इकार लगाकर 'असमिया' लिखा जाता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गुवाहाटी में पाण्डुलिपि की तथ्यात्मक बातों को जांचने के लिए श्री दयालकृष्ण बोरा, डॉ. देवेन दास 'सुदामा' और श्री प्रभात दास ने वक्त निकालकर समय-समय पर मेरी सहायता की। अपने लिखे को बार-बार पढ़ने के लिए वनवासी क्षेत्र के आजीवन कार्यकर्ता और मेरे मित्र श्री भरत कुमार अग्रवाल को मैंने अनेक बार कष्ट दिया। इनके अलावा डॉ. बालकृष्ण जालान, श्री ओंकार पारीक, श्री नटवर शर्मा को भी पढ़ाता रहा। डॉ. कृष्ण गोपाल, डॉ. धर्मदेव तिवारी, श्री ओंकार शर्मा, श्री सत्यानन्द पाठक, श्री विनोद रिंगानिया, श्री रामनिरंजन गोयनका, श्री कपूरचन्द जैन, श्री राजकुमार जैन, श्री किशोर कुमार जैन, श्री रविकान्त 'नीरज', श्री आत्माराम बजाज, श्री अशोक खोवाला और श्री किशन जालान ने भी इसके अंश पढ़े। संस्कृत-हिन्दी के विद्वान मिजोभाषी श्री रमथङ्आ खोलहिङ् ने इसे पढ़कर अपने सुझाव दिये जिसके लिए इन सभी महानुभावों का मैं हृदय से चिर कृतज्ञ हूँ।

अपने मुम्बई-प्रवास में पाण्डुलिपि साहित्यिक मित्रों को दिखाकर उनकी राय ली। उनके लिए 'शंकरदेव' एक नया व्यक्तित्व था। इसलिए उनका मन्तव्य जानना मेरे लिए अति महत्त्वपूर्ण था। श्री जगदम्बा प्रसाद दीक्षित, श्री राकेश शर्मा, श्री शैलेश सिंह, श्री हरि मृदुल, डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय, डॉ. केशव फाल्के, श्रीमती सुलभा कोरे, श्री श्रीकान्त जोशी, श्री वीरेन्द्र याज्ञिक और श्री पूरण पंकज ने मनोयोग से इसे देख-पढ़कर मुझे आश्वस्त किया। श्री राकेश शर्मा ने इसे आद्योपान्त पढ़कर अपने सुझाव भी दिये। इनके साथ श्री आलोक भट्टाचार्य ने भी इसे अन्तिम रूप से पढ़कर कई सुझाव दिये जिससे इसकी रही-सही कमियाँ भी दूर हो गयीं। बांग्लाभाषी होने के कारण श्री आलोक भट्टाचार्य की असमिया संस्कृति से स्वाभाविक निकटता है जिसका लाभ इस पुस्तक को मिला। इसके लिए मैं इन सभी महानुभावों का हृदय से अत्यन्त आभारी हूँ।

पुस्तक में उद्धृत संस्कृत श्लोकों में मैंने बहुत-से असमिया पुस्तकों से भी लिये हैं। उनकी शुद्धता को जांचने में मैं सर्वथा अक्षम हूँ। अनुजसम श्री कृष्ण गोयनका ने इसमें सहयोग किया। इसके लिए मैं इनका आभारी हूँ।

गुवाहाटी में जब-जब मेरे कम्प्यूटर में यान्त्रिक बाधा आई, तब-तब असमीयाभाषी श्री त्रिदीप कलिता और श्री नारायणदेव शर्मा ने बड़े मनोयोग से उसे सुधार कर मेरी सहायता की। बहुत मनुहार करने पर भी उन्होंने यह कहकर पारिश्रमिक तक नहीं लिया कि 'आप तो हमारे शंकरदेव पर ही काम कर रहे हैं।' मैं इनकी भावना से अभिभूत हूँ और इनके प्रति कृतज्ञ भी।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नयी मुम्बई स्थित 'असम भवन' के आवासीय उपायुक्त श्री देवाशीष शर्मा ने भी समय-समय पर मेरी सहायता की जिसके लिए इनका भी आभारी हूँ।

भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कृत असमिया की प्रसिद्ध लेखिका श्रीमती इन्दिरा रायसम गोस्वामी, जिन्हें हम असमवासी सम्मान से 'मामोनी बाइदेव' कहते हैं– ने अपनी अस्वस्थता और व्यस्तता के उपरान्त समय निकाल कर पाण्डुलिपि पढ़ी तथा प्रस्तावना लिख कर दी। इसके लिए मैं इनका हृदय से अत्यन्त आभारी हूँ।

'हेरिटेज फाउण्डेशन', गुवाहाटी ने पुस्तक-प्रकाशन करने की न केवल सहमति दी, अपितु सुलभ मूल्य पर पाठकों को उपलब्ध कराकर शंकरदेव के महान चरित्र को अखिल भारतीय पहचान दिलाने एवं राष्ट्रीय एकात्मता हेतु स्तुत्य कार्य किया है। इसके लिए मैं 'हेरिटेज फाउण्डेशन' संस्थान का अत्यन्त आभारी हूँ।

पुस्तक का आवरण पृष्ठ बनवाने में श्री समीर ताँती और श्री किशन जालान का मुझे सहयोग मिला और उनके मित्र श्री रोबीन बरुवा ने इसे बनाकर दिया जिसके लिए मैं इन सबका हृदय से आभारी हूँ।

यह पुस्तक मैंने किसी विधा विशेष में नहीं लिखी है। इसकी भाषा-शैली तथा मुझ से अज्ञान में हुई भूलों का आकलन तो सुधी पाठक ही करेंगे। बहुत सम्भव है कि शंकरदेव के जीवन के कुछ महत्त्वपूर्ण पहलू मुझसे छूट गये हों, फिर भी मेरा भरसक प्रयास रहा कि उनके व्यक्तित्व को पूर्णता के साथ पाठकों के समक्ष रख सकूँ। अन्त में यही निवेदन करना चाहूँगा कि शंकरदेव जैसे विशाल व्यक्तित्व की झलक मात्र ही इस पुस्तक में आ पायी है; उनके कृतित्व की तो कतई नहीं। अब यह जैसी भी बन पड़ी है, आपके हाथों में है।

—सांवरमल सांगानेरिया

विजया दशमी, विक्रम संवत् 2066
(शंकरदेव की 561वीं जन्म-तिथि)
28 सितम्बर 2009

सम्पर्क :
चलभाप : 0-9508608552 (गुवाहाटी)
चलभाप : 0-9321092973 (मुम्बई)

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अनुक्रमणिका

पहला खण्ड : जीवनपीठिका

शंकर का प्रसाद	31
विपदा से घिरा बचपन	39
बचपन की धमा-चौकड़ी	43
दादी की फटकार	49
शब्दों से परिचय	58
ज्ञान की जननी जिज्ञासा	66
अहंकार का दमन	73
गुरुकुल से विदाई	79
चिह्नयात्रा नाट्य	82
राजपद तक	89
कामरूपी विश्वास	92
रातिखोवा सम्प्रदाय	97
शान्तिवार्ता से सृजनपथ तक	102
मन में स्थापित हरि-मन्दिर	108
नर ही नारायण	112
सती राधिकाशान्ति	117
पाणिग्रहण	122
सहधर्मिणी	128
मन का सूनापन	136

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दूसरा खण्ड : चरैवेति चरैवेति

यात्रारम्भ	143
उत्कल	146
काशी-अयोध्या होते हुए	153
व्रज भूमि	162
संगम से नर्मदा तक	173
तुंगभद्रा के किनारे	180
नये स्थलों की प्रेरणा	186
तिरुपति	192
कांचीपुरम्-महाबलीपुरम्	200
श्रीरंगम्-मदुरै	208
रामेश्वरम्-धनुष्कोटि	216
तीन सागरों के संगम पर	222
तिरुअनन्तपुरम् की ओर	232
सागर के किनारे-किनारे	241
पंचवटी-त्र्यम्बकेश्वर	250
गुजरात	257
राजस्थान-सिन्ध-पंजाब	274
कुरुक्षेत्र-इन्द्रप्रस्थ-हरिद्वार	282
मन मेरि राम चरणहि लागु	287
नेपाल होते हुए घर वापसी	295

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तीसरा खण्ड : संघर्ष

राम मन्त्र सार 303
आलिपुखुरी से बरदोवा 312
दादी से बिछोह 315
जीवन में गतिशीलता 320
बरदोवा से पलायन 324
गांमौ वास 328
तिरहुत के जगदीश मिश्र 333
धुवाहाटा में नाम-ध्वनि 337
परम्परा का वाहक 340
गयापाणि उर्फ रामदास 345
मणि-कांचन संयोग 350
शंकरदेव का बढ़ता प्रभाव 359
सतत रचनाशीलता 363
कर्मकाण्डियों का दुष्चक्र 371
आहोम राजा के अत्याचार 377
आहोम राज्य का त्याग 383

चौथा खण्ड : परिणति

धुवाहाटा से चूनपोरा 389
भवानन्द उर्फ नारायणदास उर्फ ठाकुर 'आता' 391
विश्वास और अन्धविश्वास 397

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हरि-नाम का मरहम	403
जीवन में स्थायित्व	407
ब्राह्मण-अब्राह्मण शिष्य	412
शंकर कहतु उपाय	420
गृहस्थी के जंजाल	423
वृन्दावनी वस्त्र	427
लेखन-यात्रा	433
वृद्धावस्था का प्रवास	441
श्रीमद्‌भागवत का भावानुवाद	446
राजकोप का शमन	449
धन्य धन्य भारत बरिष	458
पाटबाउसी-कोचविहार के बीच	462
शिष्य को अन्तिम सन्देश	466
अन्तिम रचना	470
महाप्रयाण	474
परिशिष्ट	
ख. केलिगोपाल नाटक	482
क. रुक्मिणी हरण नाटक	488
ग. कालिय दमन नाटक	495
घ. पारिजात हरण नाटक	500
ङ. शंकरदेव की वंशावली	505
च. श्रीमन्त शंकरदेव का रचना संसार	506
छ. सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची	508

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पहला खण्ड

जीवनपीठिका

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्रीमन्त शंकरदेव

(सन् 1449-1568)

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शराइ

शराइ

झापी

पाण्डुलिपि पर अंकित चित्र

सत्र में स्थापित गरुड़

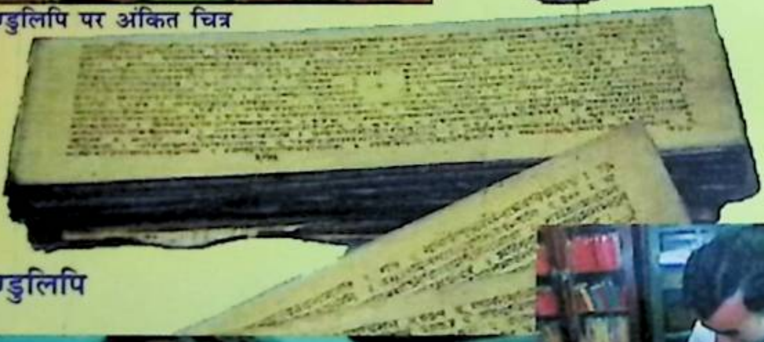

पाण्डुलिपि

संग्रहालय में विभिन्न पाण्डुलिपियाँ

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सत्रिया नृत्य
की
विभिन्न
मुद्राएँ

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

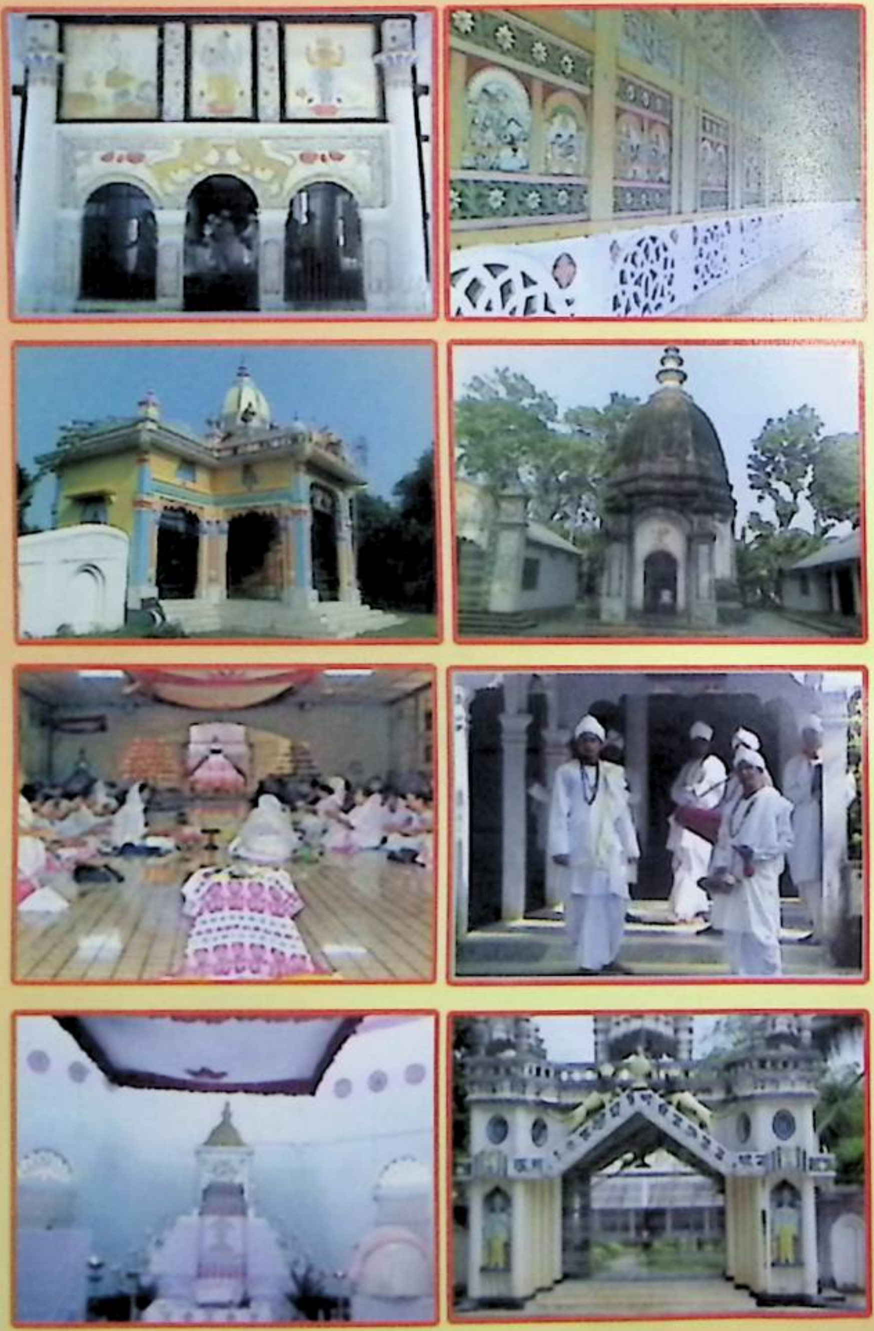

असमिया संस्कृति के वाहक विभिन्न सत्र

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शंकर का प्रसाद

ब्रह्मपुत्र आज अपना मार्ग बदलकर बरदोवा गाँव से दूर चला गया है किन्तु हमारे कथानक के समय यह इसके पास होकर बहा करता था। इसकी उपनदी टेम्बुवनी उस कालखण्ड की तरह आज भी बरदोवा के पास ही प्रवहमान है। नदी-सरोवरों से घिरे इस गाँव के चारों ओर फैले विस्तृत खेतों में धान की लहलहाती हरियाली ने इसे अति मनोरम स्वरूप प्रदान किया। नजदीक के वनों में भला लकड़ी-बाँस की क्या कमी। गाँव में ब्राह्मण, कायस्थ के अलावा ताँती, सोनार, लोहार, कुम्हार, काष्टकार (बढ़ई), ठठेरे, कैवर्त, मच्छीमार लोगों के साथ कुछ घर धोबी, नाई, चमार और लकड़हारों के भी थे।

गाँव के बीच सूर्यवर शिरोमणि भूयाँ[1] का लकड़ी के मोटे-मोटे गोल खूँटों से बना कई कमरों का लम्बा-चौड़ा आवासगृह था। उसमें कमरों के साथ बड़ा-सा सभागार था। सरकण्डों से बनी दीवारों पर दोनों तरफ गोबर-मिट्टी की मोटी परत का लेप चढ़ा था। दीवारों को चूने से पोतकर रँगा गया था। कमरों के किवाड़ों के दोनों पटों पर सुन्दर नक्काशी की हुई थी। कमरों के आगे बड़ा बरामदा और उसके सामने गोबर-मिट्टी से लिपा-पुता आँगन था। प्रांगण के बीचोंबीच तुलसी चौरा बना था। निवास की छत पर पुआल की मोटी परत छायी थी।

आवास के मुख्य द्वार से हटकर दो हाथी खड़े थे जिनके पाँवों में कसे रस्से पास के पेड़ों से बंधे थे। पिछवाड़े ग्वालीघर में गायें बंधी थीं। आवासीय परिसर की बाड़ी में हरसिंगार, गन्धराज, मोगरा, मालती, रातरानी के पौधे तथा घर के दोनों ओर आम, कटहल, जामुन, अनार, अमरूद, नारियल, सुपारी के साथ कदम्ब तथा चम्पा के पेड़ सुशोभित थे। गृह सीमा में ही बने पोखर में लगे कमल अब सूर्यास्त के बाद अगली सुबह फिर से खिलने को आकुल थे।

---

1. भूयाँ : असमीया में भूमिपति, जमीन्दार, जागीरदार आदि के लिए यह शब्द 'भूञा' यानी 'च' वर्ग के अन्तिम अक्षर अनुनासिक 'ञ' से लिखा जाता है। बांग्ला में भी ऐसा ही लिखा जाता है। लेकिन पढ़ते समय उच्चारण की सहजता की दृष्टि से 'भुइयाँ' पढ़ा-कहा जाता है। अतः बहुत-से लोग लिखने में भुइयाँ भी प्रयोग करते हैं। पुस्तक में किन्तु यहाँ 'ञा' की जगह 'याँ' का प्रयोग किया गया है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रात का पहला प्रहर बीत गया। पारिवारिक सदस्य सो चुके थे। एक कमरे में अभी भी दीपक जल रहा था। पलंग पर लेटे कुसुमवर भूयाँ और उनकी पत्नी सत्यसन्ध्या की आँखों से नींद दूर थी। उनके चेहरों पर उदासी डेरा डाले थी। कुसुमवर पत्नी से कह रहे थे– "सत्यसन्ध्या ! मेरे पिता सूर्यवर देव और विशेषकर तुम्हारे बार-बार आग्रह करने पर ही मैंने श्रीपति भूयाँ की पुत्री अनुधृति से दूसरा विवाह किया; फिर भी हम पुत्र-सुख से वंचित ही हैं। पुत्र होना या न होना ईश्वर के हाथ में है। इसे बार-बार सोचकर क्यों दुःखी हों ! हमारे पुरखों ने भी पुत्र प्राप्ति के लिए देवताओं की पूजा-आराधना की। हम भी ईश्वर-आराधना करेंगे। वे हमारी जरूर सुनेंगे।

"हाँ ! एक बात मैं तुम्हें बताना ही भूल गया। आज ग्वाले को कपिली के पीछे लगाया है। आखिर यह गाय रोज-रोज कहाँ जाती है ? घर पहुँचती है तो इसका पूरा बदन भीगा होता है। पहले इस ओर मेरा ध्यान नहीं गया। मन इस रहस्य को जानने के लिए आतुर है। ग्वाला समाचार लेकर आता है, तब तक अपने पुरखों के बारे में तुम्हें बताता हूँ। तुमने कितनी ही बार उनके बारे में पूछा होगा परन्तु मैं ही अपनी राजकीय व्यस्तताओं के कारण नहीं बता पाया।"

"सासू माँ से मैंने आपके पूर्वजों के बारे में थोड़ा बहुत सुना है। किन्तु मैं आपसे ब्यौरेवार जानना चाहती हूँ। आप कहें तो बाहर चल कर बगिया में बैठते हैं। कमरे में कितनी गरमी है ! बाहर पूनम की चाँदनी छिटकी है। वहीं बैठकर बातें करेंगे।" सत्यसन्ध्या ने कहा।

बगिया में हरसिंगार के नन्हे-नन्हे सफेद फूल तारों के मानिन्द डालियों पर टँके थे। नीचे जमीन पर झरकर बिछी हरसिंगारों की धवल चाँदनी आकाश से झर रही चन्द्र-ज्योत्स्ना में चमक रही थी। फूलों की भीनी-भीनी सुगन्ध नथुनों को भा रही थी। पेड़ से थोड़ा हटकर लकड़ी का बना आसन था। उसी पर दोनों बैठ गये।

कुसुमवर भी अपने पूर्वजों के बारे में बताने को उतने ही उत्सुक थे जितनी सत्यसन्ध्या जानने को। वे वताने लगे– "हमारे पूर्वपुरुष पश्चिम दिशा में गंगा के किनारे वसे कान्यकुब्ज नगर में रहा करते थे। कान्यकुब्ज को कन्नौजपुरा या कन्नोज भी कहते हैं। वह वहुत दूर है। हमारे कामरूप के साथ गौड़ राज्य की सीमा लगती है। उसके बाद वंग और विहार को पार कर पश्चिम में अनेक कोस जाने पर कन्नौज आता है।

"तुम यह तो जानती ही हो कि हम अत्रि गोत्रीय कायस्थ हैं। मेरे

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पास अपने पूर्वज प्रेमपूर्णान्दगिरि से वंशावली उपलब्ध है। पूर्णान्दगिरि अपने परिश्रम से कन्नौज के एक धनी और प्रभावशाली व्यक्ति बन गये। किन्तु उनकी अपार सम्पदा भी उन्हें शान्ति नहीं दे पायी। बहुत सालों तक उन्हें कोई सन्तान नहीं हुई। वेदज्ञ ब्राह्मणों से यज्ञ-हवन करवायें, तब जाकर उन्हें एक पुत्र हुआ। नाम रखा ब्रह्मगिरि। पिता की तरह ब्रह्मगिरि भी बहुत वर्षों तक सन्तानहीन रहे तो उन्होंने चन्द्र देवता की आराधना कर एक पुत्र पाया जिसका नाम रखा गया चन्द्रगिरि। चन्द्रगिरि की भी वही अवस्था हुई। उन्होंने कृष्ण की आराधना कर कृष्णगिरि नामक पुत्र पाया।''

कुसुमवर के चेहरे पर विषाद छाया था। थोड़ी देर रुकर उन्होंने फिर से कहा, ''सत्यसन्ध्या ! लगता है, हमारे वंश में सन्तान पाने के लिए किसी न किसी देवता की पूजा-आराधना करनी पड़ती है। अब तुम देखो न ! निःसन्तान कृष्णगिरि ने भी पुत्र कामना से सूर्यदेव की उपासना की तो उन्हें पुत्र हुआ। नाम रखा सुवर्णगिरि। सुवर्णगिरि ने अपना वंश आगे चलाने के लिए गन्धर्व की आराधना कर गन्धर्वगिरि नामक पुत्र पाया। उन्होंने भी अपने पुरखों की तरह पुत्र कामना से हरि की आराधना कर पुत्र हेमगिरि पाया। हेमगिरि ने भी भगवान् विष्णु की दिनरात पूजा-स्तुति की तब हरिवरगिरि नामक पुत्र हुआ।''

सत्यसन्ध्या ने आश्चर्य से पूछा, ''प्रिय ! क्या यह सम्भव है कि किसी देवता की पूजा-आराधना करने पर सन्तानहीन को भी पुत्र हो जाए।''

''सत्यसन्ध्या ! इसका कोई उत्तर नहीं। तुम्हें मैं दो-तीन सौ वर्ष पुरानी वे ही बातें बता रहा हूँ जैसी बचपन से सुनता आया हूँ। वैसे भी सब कामों में तर्क नहीं किये जा सकते; कुछ कार्य विश्वास से भी होते हैं। विश्वास न होने पर ईश्वर का भी कोई अस्तित्व नहीं। मन के विश्वास में ही ईश्वर का वास है। क्या तुम भी ऐसा नहीं मानती ?''

''मैं तो आप जितनी पढ़ी-लिखी नहीं, फिर भी इतना तो समझती हूँ कि हमारे अनेक काम मन के विश्वास से ही सम्पन्न होते हैं। अब आगे बताइये, हरिवरगिरि को क्या सन्तान हुई ?'' सत्यसन्ध्या ने सहज जिज्ञासा प्रगट की।

''हरिवरगिरि ने भगवान् कृष्ण की आराधना की जिससे उन्हें एक कन्या कृष्णकान्ति की प्राप्ति हुई। उस कन्या की विचित्र कहानी है जिस पर कोई जल्दी विश्वास नहीं करेगा। बात ऐसी हुई कि कृष्णकान्ति धीरे-धीरे युवती हुई। पिता को उसके विवाह की चिन्ता सताने लगी, परन्तु उसने

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विवाह करने से मना कर दिया। एक दिन उसकी माँ को अपनी पुत्री में गर्भवती होने के लक्षण दिखायी दिये। यह जानकर माता-पिता लोकलाज के भय से चिन्तित हो गये। बात फैलती हुई लोगों तक पहुँची। माता-पिता ने बेटी से इसका रहस्य पूछा तो उसने बताया, 'मैंने स्वप्न में भी परपुरुष का मुँह नहीं देखा। मेरी कोख में पल रही सन्तान भगवान् शंकर का वरदान है। बचपन से वे ही मेरे आराध्य हैं। मन ही मन उन्हें ही मैंने अपना पति माना है। एक रात स्वप्न में उनके शिवलिंग रूप में दर्शन हुए। मेरा तन-मन एक अपूर्व तृप्ति से भर गया। कुछ दिनों पश्चात् मैं शरीर में परिवर्तन अनुभव करने लगी। मेरे गर्भ में उनका ही अंश है।'[1]

इस बात पर भला कौन विश्वास करता। अन्ततः कृष्णकान्ति ने अपने स्वर्णाभूषण उतार, पिता को देकर कहा, 'आप इन्हें ले जाकर माँ गंगा के पवित्र जल में फेंक दें, वे डूब गये तो मैं कलंकिनी हूँ। माँ गंगा ही मेरे सती होने का प्रमाण देंगी।'

"फिर क्या हुआ !" सत्यसन्ध्या ने उत्सुकता से पूछा।

कुसुमवर ने कहा, "सांच को भला क्या आंच। हरिवरगिरि ने कृष्णकान्ति के गहने ले जाकर सबके सामने गंगा में डाले। लोग यह देखकर अवाक् रह गये कि वे जल के ऊपर ही तैर रहे थे। अब लोगों को कृष्णकान्ति की बात पर विश्वास करना पड़ा। गर्भकाल पूरा होने पर उसने एक सुन्दर पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम लन्दावर रखा गया।

"सत्यसन्ध्या ! उस समय कन्नौज ही क्या पूरे देश में बहुत अशान्ति फैली थी। अफगान शहाबुद्दीन मोहम्मद गोरी पृथ्वीराज चौहान को हराकर उसके राज्य पर अपना आधिपत्य कर चुका था। वह अफगानिस्तान लौटते समय अपने गुलाम कुतुबुद्दीन एबक को जीते हुए राज्य का भार सौंप गया। ऐसे अशान्त वातावरण में लन्दावर और उनकी पत्नी सुप्रभा के मन में अपने भावी उत्तराधिकारी को लेकर भी अशान्ति छायी थी। उन्होंने देवी चण्डी की आराधना की और उन्हें पुत्र चण्डीवर की प्राप्ति हुई।

"चण्डीवर ने बड़े होकर पिता की विरासत को सँभाला। समय के साथ कन्नौज में अशान्ति बढ़ती जा रही थी। शासक के अत्याचार बढ़ते गये। इस्लाम अपनाने के लिए जनता पर जोर-जबरदस्ती की जा रही थी। चारों ओर सैनिक लूट-खसोट कर रहे थे। इसके चलते लोग अपना धर्म बचाने को

---

1. कर्ण और पंच पाण्डव भी कुन्ती की देव प्रदत्त सन्तान थीं

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वहाँ से पलायन कर रहे थे। चण्डीवर का भी सर्वस्व लूट लिया गया तो वे कन्नौज से पूर्व की ओर पलायन कर गौड़ प्रदेश में आकर बस गये। उस समय गौड़ के राजा धर्मनारायण थे।

''गौड़ में ही चण्डीवर ने अपनी अधूरी शिक्षा पूर्ण की और पिता लन्दावर की तरह महापण्डित बने। अपनी विद्वता के बल पर वे धर्मनारायण के प्रियपात्र बन गये। राजा ने चण्डीवर को अपने शासकीय विभाग में एक उच्च पद पर आसीन कर दिया। उनकी गिनती राज्य के धनी-मानी व्यक्तियों में होने लगी। राजा ने उनकी सैन्य क्षमता देखकर उन्हें दुर्गपाल बना दिया।''

सत्यसन्ध्या कुछ ज्यादा उतावली हो रही थी। उसने फिर पूछा, ''गौड़ में जब सब कुछ ठीक चल रहा था तो वे लोग यहाँ कैसे आये ?''

कुसुमवर ने कहा, ''विधि का भी अनोखा विधान था। गौड़ेश्वर धर्मनारायण का अपने पूर्वी पड़ोसी राज्य कामरूप के राजा दुर्लभनारायण (शासनकाल, सन् 1330-1350) के बीच चल रहा सीमाविवाद युद्ध में परिणत हो गया। आखिर दोनों राज्यों के बीच करतोया नदी के किनारे बसी कामरूप की नयी राजधानी कमतापुर में सन्धि हुई। पहले यहाँ की राजधानी प्राग्ज्योतिषपुर (आज का गुवाहाटी) थी।

''कामरूप नरेश को अपने विशाल राज्य का शासन चलाने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा था। उनके राज्य में योग्य व्यक्तियों का अभाव था। दुर्लभनारायण ने गौड़ नरेश से अपने राज्य से पढ़े-लिखे शासन-कार्य में दक्ष लोगों को कामरूप भेजने का आग्रह किया। धर्मनारायण ने उनकी बात रख, अपने राज्य से सात ब्राह्मण और सात कायस्थ परिवारों को कामरूप भेजने का प्रस्ताव रखा जिसे कामरूप नरेश ने सहर्ष मान लिया। ब्राह्मणों में कृष्ण पण्डित, रघुपति, रामवर, लोहार, वरण, धरम और मथुरा के परिवार थे। कायस्थों में हमारे पूर्वज चण्डीवर के अतिरिक्त श्रीधर, हरि, श्रीहरि, श्रीपति, चिदानन्द और सदानन्द के परिवारों का समावेश था।

''राजा दुर्लभनारायण ने गौड़ नरेश धर्मनारायण को धन्यवाद देते हुए कहा, 'मुझे आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि आपके यहाँ से मेरे राज्य में बसनेवाले इन परिवारों की वंशबेल ज्यों-ज्यों बढ़ेगी, त्यों-त्यों कामरूप का राजनीतिक दृष्टि से ही नहीं सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और साहित्यिक दृष्टि से भी उत्थान होगा।'

''कमता नरेश ने उन परिवारों को ब्रह्मपुत्र के उत्तर पार हाजो के

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पास लेंगामागुरी नामक स्थान पर जमीन-जायदाद, धन-सम्पति और दास-दासियाँ देकर बसा दिया। राज्यकार्य में दक्ष होने के कारण चण्डीवर उन परिवारों के मुखिया बनाये गये। किन्तु लेंगामागुरी क्षेत्र निरापद नहीं था। उसके उत्तर में भोट राज्य (भूटान) था। भोटिया जब-तब वहाँ आकर उत्पात मचाते थे।

"चण्डीवर को अपनी पत्नी सन्ध्या के गर्भ से दो पुत्र राजधर और गदाधर हुए। एक बार अपने धान के खेत में काम करा रहे राजधर को भोटिया पकड़कर ले गये। रात को चण्डीवर ने कुछ सहायकों के साथ भोटों पर हमला कर उन्हें हराया और अपने पुत्र को उनकी कैद से छुड़ा लाये।

"इन उपद्रवों से परेशान होकर चण्डीवर भूयाँ सपरिवार वहाँ से भलुकागुड़ी गाँव आकर बस गये। वहाँ जीविका उपार्जन का कोई साधन नहीं वैठा। वहाँ से कुठारडूबी जाकर छह मास रहे, फिर रौता जाकर बस गये। वैसे रौता से भी भोट राज्य की सीमा ज्यादा दूर नहीं थी। वहाँ भी भोट जब-तब हमले करते रहे। एक बार भोटों ने अचानक आक्रमण किया। तीन दिन लड़ाई चली। अन्ततः भोट चण्डीवर से हारकर अपने क्षेत्र में भाग गये। चण्डीवर समझ गये, रौता भी निरापद नहीं। वहाँ का भी त्याग कर वे राजा दुर्लभनारायण से अनुमति लेकर ब्रह्मपुत्र के पास स्थित शिंगरी जाकर रहने लगे। किन्तु वहाँ भी भोट हमला करने यदा-कदा आ धमकते।

"चण्डीवर के छोटे पुत्र गदाधर ने पिता से अलग होकर अपनी सेना तैयार की और पूर्वी भाग में बसे सुतिया और खाम़ति सरदारों से युद्ध करने निकल पड़े। उन्हें कुछ सफलता, कुछ विफलता मिली। वे उधर ही माखीवाहा में वस गये। उनके पुत्र वृहत्भद्र ने अपनी शूर-वीरता के बल पर आहोम राज्य में अपनी जगह बनायी। उनके वंशज भी आहोम शासन में ऊँचे-ऊँचे पदों पर आसीन हुए। उनके वंशज बाद में वड़भगीया चौधरी के उपनाम से जाने गये।

कुसुमवर की बातें सत्यसन्ध्या बड़े ध्यान से सुन रही थी। उन्होंने क्रम जारी रखते हुए कहा, "एक वार की बात है। कमता नरेश दुर्लभनारायण ने चण्डीवर को अपनी सभा में बुलाया। वे उस समय भोटों से उलझे हुए थे, सो जा नहीं पाये। राजा ने इसे अपने आदेश की अवहेलना मानकर अपने सेनापति शशिपात्र को भेज उन्हें वन्दी वनवाकर कारावास में बन्द करा दिया। उन्हें एक वर्प तक कैद में रहना पड़ा।

"इसी बीच नदिया के शान्तिपुर से एक शास्त्रज्ञ पण्डित चन्द्रकवि

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कमतापुर की राज्यसभा में आये। उन्होंने कामरूप के किसी पण्डित से शास्त्रार्थ करने की मंशा जतायी। राजा दुर्लभनारायण को ऐसा कोई विद्वान नहीं सूझा तो सेनापति शशिपात्र को बन्दीगृह में बन्द चण्डीवर का ध्यान आया। वह उनकी विद्वता से परिचित था। उसने राजाज्ञा ले उन्हें कैद से छुड़ाया, दाढ़ी-केश बनवाए, स्नान करा सफेद वस्त्र पहना सभा में हाजिर किया। चण्डीवर के तर्कों और विद्वता के आगे चन्द्रकवि टिक न सके। आखिर उन्होंने अपनी हार मान ली।

दुर्लभनारायण ने प्रसन्न होकर चण्डीवर को धन-रत्न, दास-दासी के साथ 'देवीदास' नामक उपाधि देकर सम्मानित किया। इतना ही नहीं उन्हें सब भूयाँओं के ऊपर शिरोमणि भूयाँ बनाकर स्वाधीन रूप से बरदोवा अंचल का राजकार्य चलाने की अनुमति भी दे दी। तब से चण्डीवर के पुत्र-पौत्र अपने नाम के साथ शिरोमणि भूयाँ उपाधि का प्रयोग करते आ रहे हैं। शिरोमणि भूयाँ को कुछ लोग बरभूयाँ भी कहते हैं।''

''बीच में बोलने के लिए क्षमा चाहती हूँ। भूयाँ शब्द की व्युत्पति और अर्थ जानने की मेरी जिज्ञासा बलवती हो रही है।'' सत्यसन्ध्या ने कहा।

''इसकी उत्पति भूमि शब्द से है। भूस्वामी को बंगवासी भौमिक और कामरूपवासी भूयाँ कहते हैं। कुछ लोग जागीरदार या जमींदार भी कहते हैं।

''सत्यसन्ध्या ! बातों में समय का ध्यान ही नहीं रहा। रात का दूसरा प्रहर बीत रहा है। ग्वाले ने आकर कपिली के बारे में अभी तक नहीं बताया। वह समाचार लेकर आता है, तब तक तुम कहो तो अपने पूर्वजों के बारे में आगे बताता हूँ।'' इतना कहकर कुसुमवर ने पत्नी की ओर ताका।

''आपने ऐसा क्यों कहा, मैं आपकी बातें दत्तचित्त होकर सुन रही हूँ। आपके पूर्वज क्या अब मेरे भी पुरखे नहीं हैं !'' सत्यसन्ध्या ने कहा।

कुसुमवर ने आश्वस्त हो आगे बताया, ''अब ब्रह्मपुत्र के इस दक्षिण पार के नोगाँव से लेकर उत्तर पार स्थित तेजपुर तक हमारा आधिपत्य है। इस नोगाँव इलाके की सीमा से कछारी राज्य की सीमा लगती है। वहाँ की मूल निवासी कछारी जनजाति बड़े उग्र स्वभाव की है। वे जब-तब हमारी सीमा में घुसकर उत्पात मचाते रहते हैं। उनके हमलों का हमने कितनी ही बार सामना किया है। इन विपदाओं का सामना करते हुए भी मेरे दादा राजधर शिरोमणि भूयाँ ने अपने भूयाँ राज्य को समृद्धशाली बनाया।

''राजधर भूयाँ के अपनी पत्नी देवहुति से चार पुत्र हुए; सूर्यवर, जयन्त, माधव और हलायुध। सूर्यवर का विवाह रामगिरी चौधरी की पुत्री

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

खेरसुती से हुआ। इन दोनों की सन्तान यह कुसुमवर तुम्हारा पति है।''

कुछ क्षण रुककर कुसुमवर ने फिर कहा, ''मेरी माँ खेरसुती के नामकरण के पीछे परिस्थितिजन्य कारण है। माँ के जन्म के समय मेरे नाना रामगिरि का परिवार कछारियों के हमले से बचकर वन में छिपा था और नानी जयन्ती प्रसव पीड़ा से तड़प रही थीं। वहाँ रुई का बिछौना कहाँ से मिलता; सो उन्हें खेर (पुआल) पर लेटा दिया गया। मुलायम खेर पर सोकर नानी को आराम मिला। वहीं उन्होंने माँ को जन्म दिया। जन्मने के बाद बच्ची को भी खेर पर ही सुला दिया गया। इस कारण उसे खेरसुती कहा जाने लगा।

''मेरी माँ की और तीन बहनें गुतिमाली, सुभागी और सुभद्रा थीं जिनके विवाह मेरे तीनों चाचाओं से ही कर दिये गये। गुतिमाली का जयन्त से, सुभागी का माधव से और सुभद्रा का हलायुध से विवाह हुआ।

''राजधर के पुत्रों में सूर्यवर सबसे बड़े होने के कारण भूयाँ राज्य के शिरोमणि भूयाँ बने। उन्होंने राज्य को शक्तिशाली किया। उनके बाद मैं राज्य का शिरोमणि भूयाँ बना।''

इसी बीच ग्वाले ने आकर गाय के लौट आने की सूचना दी। उसने वताया, ''कपिली रोज शाम को तैरकर ब्रह्मपुत्र के उत्तर पार जाती है। वहाँ तेजपुर के पास के शिंगरी पहाड़ पर स्थित गोपेश्वर महादेव का अपने दूध से अभिषेक कर रात को बरदोवा लौटती है।''

यह सुनकर कुसुमवर भूयाँ अचरज में पड़ गये। इसके साथ ही उनके मन में विचार कौंधा, वे भी सपरिवार वहाँ जाकर भगवान् शंकर की पूजा कर अपने लिए पुत्र की याचना करेंगे। कुसुमवर को पता था कि शिंगरी में कभी ऋष्यशृंग मुनि का आश्रम था जिनकी तपस्या से वह रमणीक स्थल एक सिद्धपीठ बन गया। कभी उसके पूर्वज चण्डीवर भी वहाँ रह चुके थे।

कुसुमवर भूयाँ ने सपरिवार नाव से उत्तर पार जाकर पुत्र-प्राप्ति की कामना से गोपेश्वर महादेव की विधि-विधान से पूजा-अर्चना की। उनके मन में पक्का विश्वास हो गया कि शीघ्र ही उन्हें पुत्र रूप में शंकर का प्रसाद अवश्य मिलेगा।

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विपदा से घिरा बचपन

जन्मोत्सव की खुशियों पर यकायक वज्रपात हो गया। तीन दिनों पहले ही सत्यसन्ध्या ने सुन्दर-सलोने बालक को जन्म दिया था। दादा सूर्यवर और दादी खेरसुती के मन प्रसन्नता से उमग उठे थे। आनन फानन पण्डित को बुलाकर बालक के ग्रह-नक्षत्र दिखाये गये। उसने बताया, "भूयाँदेव ! बालक का जन्म शक संवत् 1371 (सन् 1449), आश्विन मास की शुक्ल दशमी तिथि, शुक्रवार की रात चार दण्ड बीतने पर हुआ है। इस दिन विजयादशमी भी है। बालक की धनु राशि, देव गण है। रोहिणी नक्षत्र और महेन्द्र योग में जन्मनेवाला आपका यह पौत्र दिग्विजयी महापण्डित होगा और जगत में सर्वप्रिय बनकर रहेगा। अपनी कीर्ति से आपके परिवार का नाम उज्ज्वल करेगा। राशि और नक्षत्र के अनुसार इसका नाम शंकर और गुप्त नाम गंगाधर निकलता है।"

प्रसूति रोग से ग्रसित सत्यसन्ध्या का गाँव के सुयोग्य वैद्य सुशान्त से कुसुमवर उपचार करा रहे थे। सासू माँ खेरसुती और घर की पुरानी दासी चन्दरी उसकी देखरेख में लगी थी। वैद्य ने भी आश्वस्त किया था, डरने जैसी कोई बात नहीं। यह अन्देशा तो कदापि न था कि तीन दिनों के नवजात को छोड़कर वह यों चल बसेगी। मगर होनी को कौन टाल सकता है। सत्यसन्ध्या के अचानक निधन से सब के मन क्षुब्ध हो गये। घर में कोहराम मच गया। खेरसुती गश खाकर गिर पड़ी, मुँह पर पानी के छींटें मारकर उसे होश में लाया गया। उसका विषाद कम नहीं हो रहा था। चन्दरी ने दुधमुँहे शिशु को लाकर उसकी गोद में डाला। चंचल शिशु को क्या पता, उसके भाग्य में माँ का स्तनपान तक करना नहीं लिखा। खेरसुती ने बच्चे को मोह से अपनी छाती से चिपका लिया। भविष्य की चिन्ता ने वर्तमान के दुःख-दर्द पर जैसे मरहम का काम किया।

तीन दिनों से चल रहे समारोह में निमग्न कुसुमवर की खुशियों पर तुषारापात हो गया। माता-पिता ने कितनी धूमधाम से उनका विवाह अनिरुद्ध भूयाँ की पुत्री सत्यसन्ध्या से किया था। उस समय उसका रूप किसी अग्निशिखा जैसा जाज्वल्यमान था। मृत्यु के बाद भी उसके चेहरे की चमक में कमी नहीं आयी। मृतदेह का शृंगार किया गया। सिन्दूर से मांग भरी गयी। माथे पर बड़ी-सी विन्दी लगायी गयी। लाल वस्त्रों में लिपटे शव का खुला मुख दिप-दिप कर रहा था। आज वही देह अग्नि को समर्पित हो जाएगी। 'वोल हरि ! वोल राम !!' कहते लोग उसकी अरथी कन्धों पर उठा श्मशान की ओर चल पड़े।

विपदा अपने साथ और कई विपदाओं को लेकर आती है। घर के

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लोग इस दुख को भुला भी नहीं पाये थे कि सात माह बाद ही सूर्यवर भूयाँ का स्वर्गवास हो गया। खेरसुती पर विपदा का पहाड़ टूट पड़ा। वह अपने पति के साथ सती हो जाना चाहती थी किन्तु बालक शंकर की जिम्मेदारी उसके सिर पर थी। सत्यसन्ध्या के जाने के बाद खेरसुती ही उसकी दादी थी और माँ भी।

और कुछ महीने बीते। शंकर के जन्म के तेरह माह ही हुए थे कि पड़ोसी राज्य के कछारियों ने भूयाँ राज्य पर अचानक हमला कर दिया। सब कुछ इतना आकस्मिक हुआ कि भूयाँ राज्य को सम्हलने का अवसर तक नहीं मिला। बारिश के दिन थे। फिर भी चार दिनों तक कछारियों से लड़ाई चली। आखिर परिस्थितियों को अपने विपरीत देख कुसुमवर भूयाँ को सपरिवार अपने लोगों को साथ लेकर वन में भागना पड़ा।

उस समय अनुधृति के पेट में दस मास का गर्भ था। शिशु शंकर को उसकी दादी अपनी गोद में छिपाये लोगों के साथ किसी तरह वन में लुकती-छिपती चली जा रही थी। इसी बीच अनुधृति को प्रसव पीड़ा शुरू हुई। वन में ही उसने एक बालक को जन्म दिया। वन में जन्मने के कारण उसे वनगयाँगिरि कहा जाने लगा। वैसे उसका नाम बाद में हलधर रखा गया।

खेरसुती को अपने पुत्र कुसुमवर के साहस और युद्ध कौशल पर पूरा विश्वास था। उनका क्षेत्र ज्यादा दिनों तक कछारियों के अधिकार में नहीं रहा। कुसुमवर ने विषम परिस्थितियों में भी फिर से अपनी सेना संगठित की। बरसात के वाद सूखे दिन आये। इसी समय की कुसुमवर को प्रतीक्षा थी। कछारी सेना पर आक्रमण कर दिया गया। सात दिनों तक युद्ध चला। आखिर कुसुमवरगिरि भूयाँ अपना राज्य वापस प्राप्त करने में सफल हो गये।

राज्य पाकर कुसुमवर ने सर्वप्रथम अपनी सेना को सुदृढ़ किया। राज्य में आनेवाली बाढ़ पर नियन्त्रण करने के लिए टेम्बुवनी पर बांध बनवाया। प्रजा को समयोचित न्याय दिलाने की समुचित व्यवस्था की। इससे राज्य में शान्ति कायम हुई। सारे काम सुचारु चलने लगे। भूयाँ राज्य की सेना के सतत सचेत रहने के कारण कछारियों ने भविष्य में उन पर आक्रमण करने का साहस नहीं किया।

भाग्य की विडम्वना से वह रामराज ज्यादा दिन नहीं चल सका। अचानक कुसुमवर का स्वर्गवास हो गया। किसी को इसका विश्वास नहीं आ रहा था। कल तक तो वे राजकार्य सँभाल रहे थे, उसी दिन टेम्बुवनी का बांध देखकर आये थे।

पतिशोक से अनुधृति स्वयं को नहीं उवार पायी। वह पति के साथ सती होने पर दृढ़प्रतिज्ञ थी। अपने छह वर्षीय पुत्र वनगयाँगिरि के लालन-पालन की जिम्मेदारी सास खेरसुती को सौंपी और पति के साथ सती हो गयी।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पिता की मृत्यु के समय शंकर केवल सात वर्ष का था। इतनी छोटी उम्र में मृत्यु की भयावहता से साक्षात्कार कर उसका मन उदास रहने लगा। उसने खेरसुती से कहा, "दादी ! सब लोगों को एक दिन मरना ही है, फिर भी मनुष्य इतनी आशा के साथ अपने खेत-खलिहानों में, लिखने-पढ़ने और धन कमाने में क्यों लगा रहता है ? यह पृथ्वी कितनी सुन्दर है, यहाँ हरे-भरे पेड़-पौधे, नदी-पहाड़ और विभिन्न प्रकार के जीव-जन्तु हैं। ये भी एक दिन मर जायेंगे। समय पर सूरज-चाँद उगते-छिपते हैं। लगता है, सब कुछ किसी नियम के अधीन चल रहा है। आखिर किस के संकेत पर ये सब चल रहे होंगे ?"

खेरसुती ने कहा, "बेटा ! ये सारे नियम ईश्वर के संकेत पर चल रहे हैं। वे ही चराचर जगत के नियन्ता हैं।"

"मैं तो यही समझता हूँ कि ऊपर कोई शक्ति है जो यह सब नियन्त्रित करती है। किन्तु शक्ति रूपी ईश्वर को पाने के लिए इतने सारे शास्त्र, नियम-बंधनों का क्या प्रयोजन है ? वन में रहने वाले जीव-जन्तु, पशु-पक्षी तो किसी शास्त्र नियम को नहीं मानते, फिर भी ये अपना जीवन सुचारु रूप से चला रहे हैं। मेरा तो बस यही सोचना है कि कोई किसी के प्रति अन्याय न करें। मैं प्रकृति को जानना-समझना चाहता हूँ। मैं वनों, पहाड़ों और नदियों के किनारे घूमूँगा। क्या पता वहीं कहीं मुझे ईश्वर मिल जाएं। मैं तुम्हारी बातें सुनने के साथ-साथ पृथ्वी और प्रकृति की बातें भी सुनना चाहता हूँ।"

खेरसुती शंकर की बातें ठीक तरह से नहीं समझ पायी, किन्तु निराश भी नहीं हुई। उसने कहा, "अपनी धुन में क्या तुम अपने पुरखों के नियमों का उल्लंघन करोगे ? वे कुशल प्रशासक और योद्धा होने के साथ विद्वान भी थे। शास्त्रों का ज्ञान न होने पर व्यक्ति को अपने जीवन में पग-पग पर विपदा का सामना करना पड़ता है। शास्त्र-ज्ञान पाने के लिए लिखना-पढ़ना आवश्यक है।"

"दादी ! इस समय ये बातें मुझे अच्छी नहीं लग रहीं। मेरी आँखों के सामने बार-बार अपने पिता का चेहरा आता है। कभी-कभी वे मुझे सपने में दिखायी देते हैं। पहले मेरा मन स्थिर होने दो, फिर लिखने-पढ़ने की बात सोचूँगा। अभी मेरा मन प्रकृति के साथ एकाकार होना चाहता है।"

इसके बाद खेरसुती ने शंकर से पढ़ाई के बारे में कहना बन्द कर दिया। वह समझ गयी, यह अपने मन मुताबिक चलेगा, पढ़ने के लिए ज्यादा जोर दिया तो सम्भव है कि यह इससे विरक्त ही हो जाए। पहले इसे मनमर्जी से प्रकृति को समझने देना होगा। इसके मन में जो जिज्ञासाएँ हैं, उन्हें शान्त होने देना होगा। कुसुमवर के चाचा जयन्त पूरा राज्यकार्य सँभाल ही रहे हैं। शंकर

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

की उम्र ही क्या है ! अभी तो कायस्थ परम्परा से इसके अन्नप्रासन, मुण्डन और कर्णभेदन संस्कार ही हुए हैं। यह और थोड़ा बड़ा होगा तो अपने पूर्वजों के गुणधर्म को स्वयं ही समझ कर शिरोमणि भूयाँ का दायित्व भी सँभाल लेगा।

खेरसुती शंकर को रामायण, महाभारत, भागवत की कहानियाँ यदा-कदा सुनाया करती थी। उसने सोचा यह पाठशाला नहीं जाता, तब तक इसे घर पर ही संस्कारित करना होगा। वह संगीत और चित्रांकन के प्रति अपने पोते की रुचि जानती थी। किन्तु शास्त्र-ज्ञान विना यह विद्वान कैसे बनेगा, यही चिन्ता उसे सता रही थी। अब उसने रोज रात में शंकर को पुराण कथाएँ सुनाने का नियम बना लिया। शंकर को भी उनमें रस आने लगा।

दादी से कभी प्रह्लाद, कभी ध्रुव, कभी हरिश्चन्द्र की कहानियाँ सुनते-सुनते शंकर को उसकी गोद में ही नींद आ जाती। वह उसे अपने पास सुला लेती। एक रात वह अचानक जाग पड़ा। दादी भी चौंककर जाग उठी। उसने पोते को पुचकार कर पूछा, "बेटा ! क्या हुआ ! क्या कोई दुःस्वप्न देखा है ?"

"दादी !पड़ोसी भूयाँ परिवार की देवी-पूजा में बकरे को कटते देखा। वह करुणा से मेरी ओर देख रहा था, जैसे अपने को बचाने की गुहार कर रहा हो। मैं कुछ नहीं कर पाया। मेरे देखते-देखते उस असहाय की गरदन दाव से काट कर उसका खून से सना सिर देवी के चरणों में रख दिया गया। मैं दुःखी हूँ, उसे बचा नहीं सका।" शंकर ने दादी से प्रश्न किया, "देवी को सब माँ कहते हैं न ! तब सब उसकी सन्तान हुए। बकरा भी तो उसकी सन्तान ही हुआ ! क्या कोई माँ इतनी निर्दयी हो सकती है कि अपनी सन्तान की ही बलि ले ?

शंकर बोलता रहा, "दादी ! एक बार मैं मित्रों के साथ एक कछारी गाँव में गया था। वे कोई पूजा कर रहे थे। मेरे देखते-देखते उन लोगों ने पहले एक हंस की बलि दी। उन्हें अन्य जानवरों की भी बलि देते देख मेरे मन में वितृष्णा हो गयी। उसके बाद उधर मैं कभी नहीं गया।"

"बेटा ! आगे कभी कछारी गाँव में मत जाना। वे नरबलि भी देते हैं। यह तो अच्छा हुआ, उन्होंने तुम्हें नहीं देखा। यदि उन्हें पता चल जाता कि तुम शिरोमणि भूयाँ परिवार के वंशज हो, तुम्हारी खैर नहीं थी।" दादी ने समझाया।

दादी ने शंकर को थपकाकर अपनी गोद में सुला लिया। वह उसे क्या उत्तर देती। उनका पूरा भूयाँ परिवार भी तो घोर शाक्तधर्मी है। देवी पूजा के समय उनके यहाँ भी बलि विधान होता है। अच्छा है, शंकर के सामने कभी बलि नहीं दी गयी। इस कारण उसका इस ओर ध्यान नहीं गया।

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बचपन की धमा-चौकड़ी

शंकर का जैसे यह रोज का नियम बन गया कि वह दिन उगते ही स्नानादि से निवृत्त हो दही-चिवड़ा या भात के दो-चार कौर पेट में डालता और अँगने को लांघता-फलांगता घर से बाहर निकल जाता। बूढ़ी दादी उसे टोकती रह जाती। वह उसकी एक नहीं सुनता। उसे तो नदी किनारे अपनी मित्र-मण्डली से जाकर मिलने की उतावली रहती थी। जयराम, चांद, तीताराम, वितोपन, भेकुरी, सनातन, केताई, सदानन्द, हरिवर, रामराम, जगतानन्द आदि मित्रों से मिलकर ही उसे चैन पड़ता। जगतानन्द शंकर का मित्र होने के साथ दादा जयन्त का पोता होने के नाते चचेरा भाई भी था।

खेरसुती खिन्न होकर चन्दरी से बोली, "पता नहीं यह छोकरा पढ़ेगा भी या नहीं। देखो न ! मैं रोज इसे समझा-समझा कर हार जाती हूँ पर यह मेरी एक नहीं सुनता। कालीपति का लड़का कमलापति, बंशी मिश्र का बेटा पुलिन, निदान भट्टाचार्य का पुत्र विधान और हमारे भूयाँ वंश के सभी बच्चे नियमित रूप से पाठशाला जाते हैं। पता नहीं यह निरक्षर भट्टाचार्य ही क्यों बना रहना चाहता है ? मेरे पोते की मति मारी गयी है। बिना पढ़े-लिखे यह कैसे राज सँभालेगा। इसके जन्म के समय ज्योतिषी ने कितनी बड़ी-बड़ी भविष्यवाणियाँ कीं। क्या इन्हीं लक्षणों से यह विद्वान बनेगा ! जगत में अपना और अपने वंश का नाम उज्ज्वल करेगा ! इसे तो लिखने-पढ़ने का नाम जरा भी नहीं सुहाता।"

मित्र-मण्डली में पहुँचने पर शंकर ने देखा, भेकुरी और वितोपन के हाथों में दो कोयल छटपटा रही थीं। उसने डांटा, "इन उन्मुक्त पंछियों को क्यों पकड़ रखा है? इन्हें छोड़ो।" इतना कहकर उसने पंछियों को छीनकर आकाश में खुला छोड़ दिया।

मित्रों में रामराम विप्र शंकर से पाँच वर्ष वड़ा, मजबूत कद-काठी का, किन्तु देखने में उससे नाटा था। उसके पूर्वज कृष्ण पण्डित भी चण्डीवर के साथ ही कन्नौज से गौड़ होते हुए कामरूप आये थे। रामराम के प्रति शंकर के मन में आदर भाव था; जो उसके ब्राह्मण होने के कारण नहीं, उसके स्वभाव और समझ की वजह से था।

रामराम ने मित्रों को कहा, "आज तुम लोगों से मैं कुछ नयी पहेलियाँ पूछता हूँ, देखें कौन इन्हें बूझता है ! पहली पहेली है–

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तालाब सारा सूख गया,
गाछ के ऊपर पानी गया ।

लगे हाथों दूसरी भी सुन लो। इसका उत्तर भी तुम लोगों को देना है—

राम कृष्ण बाणी
खड़ा धान पूरा डूब गया
फिर भी जड़ में पानी नहीं गया ।

सब एक दूसरे का मुँह देखने लगे। किसी को एक का उत्तर भी नहीं सूझा। शंकर को मौन देख, रामराम ने उसे कुरेदा, "मैं जानता हूँ, और दिनों की तरह आज भी तुम्हीं इनका उत्तर दोगे। चुप क्यों हो, बताते क्यों नहीं !"

"पहली पहेली का उत्तर नारियल और दूसरी का कुहासा है।" संक्षिप्त-सा उत्तर देकर शंकरने कहा, "आज मेरा मन कुछ और सोच रहा है। तुम लोग खेलो। आज मेरा खेलने का मन नहीं है।"

खेल के प्रति शंकर को उदासीन देख रामराम ने अपनी धोती के छोर में बंधी गेंद निकाली। इसे उसकी माँ ने पुराने फटे कपड़ों को एक दूसरे पर बांधकर ऊपर से सन की सुतली से कसकर बनाया था। उसने सबसे कहा, "लुका-छिपी, खो-खो, कबड्डी तो रोज खेलते हैं, चलो आज गेंद खेलते हैं। मैं इसे फेंकता हूँ, देखूँ ! कौन पहले इसे पकड़ता है।"

शंकर ब्रह्मपुत्र के किनारे बैठा लहरों को देख रहा था। उसके मन में भी विचारों की लहरें उठ रही थीं। सोच रहा था, साथियों के साथ रोज यहाँ क्या मैं केवल खेलने आता हूँ। नहीं, मुझे उन्मुक्त आकाश पुकारता है, अरण्य की हरियाली बुलाती है, माटी में छिपी महक खींचती है, हवा का शीतल स्पर्श संकेत करता है, तभी तो खिंचा-खिंचा प्रकृति की गोद में चला आता हूँ।

वह दिन-रात के बारे में सोचने लगा। दिन कब रात की गोद में जाकर सो जाता है, पता ही नहीं चलता। रात कब अपनी तारों जड़ी चुनरी को त्याग कर हिरण्यगर्भा उषा के द्वार से धवल प्रकाश के रेशमी वस्त्र पहनकर फिर दिन के रूप में परिवर्तित हो जाती है, पता ही नहीं चलता।

शंकर इन्हीं विचारों में खोया था कि उसने रोज की तरह देखा, पानी में कोई जीव बार-बार ऊपर उछलता और फिर जल में डुबकी लगा जाता। इस जीव के बारे में जानने की उसकी इच्छा बलवती हुई। उसने अपना चोला उतार

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

किनारे रखा, धोती को कसकर बांधा और ब्रह्मपुत्र में छलांग लगा दी। यह देख सभी सहम गये। शिरोमणि भूयाँ परिवार का पुत्र है, ऐसा-वैसा कुछ हो गया तो क्या उत्तर देंगे। रामराम ने आश्वस्त किया, "डरो नहीं। शंकर हम जैसा कोई साधारण लड़का नहीं। देखना, थोड़ी ही देर में वह वापस आ जाएगा।"

सचमुच, वह किनारे की ओर आता दिखा। वह अकेला नहीं था। उसकी बगल में दबे किसी भारी-भरकम जीव को देखकर बच्चों की साँस फूल गयी। शंकर उस जलचर को ठेलकर नदी की बालू पर ले आया। कौतुकवश सब उसके पास पहुँचे तो उसने बताया, "यह सूँस (नदी की डाल्फिन) है। हम इसे नदी में ऊपर उछलते और फिर से पानी में गोता लगाते देखते हैं। आज इसे पास से देख लो, यह जीव कैसा है। देखो न! इसका श्यामल बदन कैसा सुन्दर लग रहा है।"

सभी उत्साह में आकर कहने लगे, "इसे गाँव में ले चलते हैं। सब को दिखायेंगे।" सूँस को बालू पर तड़पते देखकर शंकर ने उसे नदी की धार में वापस छोड़ दिया। यह देख शतानन्द खीजकर बोला, "तुम्हें इसे छोड़ना ही था तो इतने कष्ट से पकड़कर क्यों लाये!"

"यह जल का जीव है। तुम लोगों ने देखा नहीं, यह बिन पानी कैसा तड़प रहा था। तुम सब को दिखाने के लिए इसे पकड़ लाया।" शंकर ने आगे कहा, "ब्रह्मपुत्र के बीच एक छोटी-सी सापरी[1] है, वहाँ मैंने बहुत-से कछुओं को देखा है। कहो, कौन मेरे साथ वहाँ तैरकर चलता है!"

शंकर के प्रस्ताव से और तो सभी डर गये, परन्तु रामराम साथ जाने तैयार हो गया। सापरी का दृश्य अदभुत था; वहाँ कछुओं का मेला-सा लगा था। उनके बीच दो मगरमच्छ भी बालू पर पसरे धूप का आनन्द ले रहे थे। उन्हें देखकर रामराम थोड़ा भयभीत हुआ। शंकर ने साहस बंधाया, "ये हमसे दूर हैं, इन्हें छेड़े बिना हमारा कुछ नहीं करेंगे।"

थोड़े समय बाद दोनों वापस किनारे लौट आये। वे थक गये थे। भूख भी लग आयी। शंकर ने प्रस्ताव रखा, "अभी तो पूरा दिन पड़ा है, घर जाकर क्या करेंगे।

---

1. सापरी : प्राकृतिक रूप से नदी में बने बालू-द्वीपों को असमीया में चापरि (उच्चारण में सापरी) कहते हैं। ब्रह्मपुत्र (यह नदी नहीं, नद है।) इन सापरियों से मानो आँखमिचौनी खेलता है। जलधारा के बीच ये उभरती हैं और वर्षा ऋतु में फिर जल में सामहित हो जाती हैं, परन्तु कुछ स्थायी भी होती हैं, जिनकी सीमा-रेखाएँ घटती-बढ़ती रहती हैं। वैसे यादातर सापरियाँ अस्थायी ही होती हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चलो पास में ही देहिराम ताँती का घर है। उसी के घर जाकर भात खायेंगे।''

''नहीं, वह ताँती है। हम उच्च वर्ण के ब्राह्मण-कायस्थ हैं। हमने उसके घर में पका खाया है, इस बात का पता घरवालों को चल गया तो क्या जवाब देंगे।'' रामराम ने कहा।

''यह जाति-वाति कुछ नहीं होती। मैं उसके घर कई बार गया हूँ, कपड़ा बुनना सीखने के लिए। मैंने उससे करघे में ताना लगाना और बाना भरना सीखा है। कहने मात्र के लिए बुनने का काम ताँती का कहा जाता है, पर यहाँ तो घर-घर में करघा है। मेरी दादी भी घर पर लगे करघे पर जब समय मिलता है तब कपड़ा बुनती है। कहो रामराम ! तुम तो ब्राह्मण हो, क्या तुम्हारी माँ करघे पर नहीं बुनती है ! हमारे यहाँ बुनकरी किसी जाति, धर्म या सामाजिक मर्यादा में कहाँ बंधी है ! बुनना तो पूर्वोत्तर की हर लड़की बचपन से ही सीखने लगती है, वह चाहे रानी हो या बान्दी, गोंसाई-महन्त की पुत्री-बहू हो या किसी जनजाति की महिला, जाति-वर्ण के भेद बिना सभी कपड़ा बुनती हैं।

''रामराम ! तुम भी किस जाति-पाति के चक्कर में पड़ गये। मैंने तो केशव कैवर्त से मछली पकड़ने का जाल बुनना भी सीखा है। तो क्या मैं कैवर्त हो गया। मुझे उसकी भटियाली[1] बहुत पसन्द हैं। उसके गीतों के स्वर-राग मुझे खूब भाते हैं। उसके गीतों को सुनते-सुनते मैं भी भाटियाली गाना सीख गया। तुम लोग यह उधेड़बुन छोड़ो, हम देहिराम के घर जायेंगे तो वह प्रसन्न ही होगा।''

देहिराम का भरा-पूरा परिवार था। परिवार पाट-मूँगा के वस्त्र बुनने के अलावा अपने आठ बीघा खेत में ईख की खेती भी कर लेता था। इससे गुड़ की अच्छी आमद हो जाती। सारा गुड़ बरदोवा और आसपास के गाँवों में बिक जाता। भूँया परिवार ही जन्माष्टमी के दिन भोग की मिठाई बनाने के लिए दस कलश गुड़ हर साल उससे मंगाता था। साल भर जो मंगाते, सो अलग।

शंकर को अचानक अपनी टोली के साथ घर आया देखकर देहिराम और उसकी पत्नी सब काम छोड़ उनके पास चले आये। उन्हें भूख लगी है, यह जानकर सब के लिए भात बनाने में लग गये। उनके साथ शंकर और उसके साथी भी हाथ बँटाने लगे।

खा-पीकर शंकर ने सोचा, अभी दोपहर ही हुई है। क्यों न वन में

---

1. भटियाली : नदी से शाम को घर लौटते समय मछेरे-मल्लाह ये गीत गाते हैं। असमिया-बांग्ला में इसे भाटियाली कहा जाता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जाकर और थोड़ी धमा-चौकड़ी की जाए। वन में पंछियों का कलरव उसे सुहाता, दूर से आती हिंसक पशुओं की आवाज उसे पुलकित करती। धीरे-धीरे वे ऐसे गहन वन में पहुँच गये जहाँ दिन में भी अन्धेरा छाया रहता था। उस रोमांचक परिवेश में भी शंकर का साथ होने से सभी बालक आश्वस्त थे।

वन में पहुँचकर शंकर तन्मय हो गया। उसने साथियों से कहा, "यह प्रकृति ईश्वर की सृष्टि है। यहाँ विचरते पशु-पक्षी, पेड़-लताएँ, सरोवर में क्रीड़ा करते जलजीव और जलपक्षी सभी प्रकृति के अंश हैं। देखो न ! बाँसों के झुरमुटों से वन की शोभा कैसी बढ़ गयी है !"

वितोपन डील-डौल से थोड़ा स्थूल था, शायद जरा-सी मोटी बुद्धि का भी। किन्तु उसके कान बड़े तेज थे। वह दूर से आते साँप की सरसराहट तक सुन लेता। उसकी श्रवणेन्द्रियों ने मधुमक्खियों की भिनभिनाहट सुनीं। वह समझ गया, आसपास ही उनका छत्ता होगा। उसने छत्ता तोड़कर शहद निकालने का विचार सब के सामने रखा।

उन्मुक्त बच्चों को और क्या चाहिये था। सब ने सोचा, चलो आज यही खेल सही। हालांकि इसमें थोड़ा खतरा भी था। मधुमक्खियों ने यदि हमला कर दिया तो लेने के देने पड़ सकते थे। मगर बच्चे तो बच्चे होते हैं। एक बार मन में ठान लिया तो उस काम को करना ही था। वे उस पेड़ को खोजने में सफल हो गये जिस पर छत्ता लटका था।

सबने मिलकर सूखे पत्ते और धान के खेत से सूखी पुआल बटोरकर पेड़ के नीचे रख उस खर-पतवार को दो पत्थरों को आपस में रगड़ कर जलाया। धुएँ से मधुमक्खियाँ भागने लगीं। छत्ता तोड़ने की जल्दी में वितोपन पेड़ पर चढ़ गया। छत्ता तो उसने तोड़ लिया, किन्तु मधुमक्खियों ने डंक मार दिये और वह पेड़ से गिर पड़ा। उसके साथी उसे उठाकर गाँव के वैद्य के पास ले गये। उसके दिये लेप से शंकर ने वितोपन के शरीर पर मालिश की। मक्खियों का जहर हलका हुआ। यह तो अच्छा रहा, उसकी हड्डी नहीं टूटी। वह जहाँ गिरा वहाँ मुलायम घास और मिट्टी थी।

रात हो आयी। सब की तरह शंकर के मन में भी डर समाया था, घर पहुँचने पर डाँट पड़ेगी। उधर उसकी दादी और दादा जयन्त सब चिन्तित थे। दबे पाँव वह घर पहुँचा तो सब उस पर बरस पड़े। वह चुपचाप सुनता रहा। उसे चन्दरी दिखी तो धीरे से कहा, "बहुत भूख लगी है, जो बना है, ला दो।"

चन्दरी ने तमक कर कहा, "पता नहीं सारा दिन कहाँ-कहाँ घूमते-

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

फिरते रहते हो। दादी को देखो, तुम्हारी चिन्ता में उसका क्या हाल हो गया। वह अन्दर ही अन्दर घुलती रहती है। इतनी देर से आये हो और अब खाना चाहिये। भात बनाकर रसोई में रखा है, जाओ खुद ही लेकर खा लो। मैं सोने जा रही हूँ। ध्यान रखना, रसोई में नहाये बिना मत घुसना।'' इतना कह वह अन्दर से धोती-गमछा लाकर उसे पकड़ा गयी।

शंकर के बहुत मान-मनौवल करने के बाद भी खेरसुती उससे नहीं बोली। दादी का मौन उससे नहीं सहा जा रहा था। उसने कान पकड़कर क्षमा मांगी। अब दादी की ममता का बांध टूट गया। उसने पोते को खींचकर छाती से लगा लिया। उसका सिर दादी के आँसुओं से भीग गया।

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दादी की फटकार

दिन का दूसरा प्रहर चढ़ गया। शंकर घर में ही दुबका था। किन्तु उसका बाल मन अन्दर से चंचल था। घर के बाहर हो रही पंछियों की आवाज सुन वह समझ गया कि उसे बुलाने के संकेत हो रहे हैं। काफी देर मन के आवेग को दबाये रखा। आखिर दादी के सामने जा चुपचाप खड़ा हो गया। वह काफी देर उससे नहीं बोली, बल्कि उसे आँख उठा कर भी नहीं देखा। शंकर भी ढीठ की तरह खड़ा रहा।

दादी को ही अपना मौन तोड़ना पड़ा, "बाहर से आ रही आवाजों को क्या मैं नहीं समझ रही ! तू अपने दोस्तों के साथ विचरने और खेलने-कूदने में जितना मन लगाता है उतना लिखने-पढ़ने में लगाता तो अब तक कितना कुछ सीख जाता। मैं जानती हूँ, बाहर जाए बिना तुझे चैन नहीं पड़ेगा। जा, किन्तु आज जल्दी आ जाना। रोज की तरह देर मत करना।"

इतना सुनना था कि शंकर घर से दौड़ा और मित्र मण्डली से जा मिला। वह मित्रों को कुछ दिखाने के लिए उत्सुक था। उसने सावधानी से अपने साथ लाये साँचिपात (लिखने के काम में ली जाने वाली पेड़ की छाल) को खोला। उस पर बना चित्र मित्रों को दिखाकर पूछा, "तुम लोगों ने पहचाना, यह चित्र कहाँ का है ! बताओ, यह कैसा बना है !"

सतानन्द बोला, "यह तो अपने ही बरदोवा का आकाशीगंगा सरोवर है। इसमें चित्रित कमल और कमलपत्ते कितने स्वाभाविक लग रहे हैं। सरोवर के पास खड़े वृक्ष को तुमने कितनी बारीकी से चित्रित किया है। इसका पत्ता-पत्ता दिख रहा है।"

"अरे ! इस चित्र और असल सरोवर में कोई भेद नहीं कर सकता।" हरिवर ने अपना मन्तव्य बताया।

"चित्र बनाने के लिए रंग कहाँ से लाये शंकर !" सदानन्द ने सहज भाव से फिर पूछा।

मित्रों से प्रशंसा सुन, शंकर उत्साहित हो बोला, "क्षीरोद साँचिपात और मसि (स्याही) बनाने में बड़ा निपुण है। हमारे राजकाज के लिखने के लिए वही आकर दोनों चीजें दे जाता है। मैंने उसे रंगों की अपनी आवश्यकता बतायी। कुछ ही दिनों में वह न जाने कौन-सी जड़ी-बूटियों के रस से रंग

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तैयार कर दे गया। एक दिन हम सब उसकी कार्यशाला देखने चलेंगे।''

ब्रह्मपुत्र का जल स्तर आज बढ़ा हुआ था। हमेशा करीब दो कोस में फैला रहने वाले नद का पाट उस दिन अधिक चौड़ा लग रहा था। उसे जलप्लावित देखकर शंकर ने कहा, ''रात में घनघोर बरसात हुई थी। लगता है कि इसकी पहाड़ी उपनदियों से भी काफी पानी बहकर इसमें समाया है। आज तो इसमें बाढ़ जैसी स्थिति बन गयी है।''

''सावन बीत चुका। भाद्र चल रहा है। इसकी लहरें सागर-तरंगों की तरह हिलोरें मार रही हैं। आज इसमें उतरने का साहस भला कौन कर सकता है। शंकर ! क्या तुममें साहस है ?'' वितोपन ने उसे मजाक में छेड़ा।

मित्र की चुनौती स्वीकार करते हुए शंकर ने कहा, ''हाँ, मैं तो इसमें उतर ही नहीं, इसे पार भी कर सकता हूँ। कहो, क्या तुममें भी मेरे साथ चलने का साहस है ? और कौन-कौन मेरे संग तैरने चलेगा ? हाँ करने के पहले सोच लो, पानी में मगरमच्छ भी हैं। जिसे भय लगता हो वह न चले'' शंकर को ब्रह्मपुत्र में उतरते देख तैरना जानने वाले कुछ बच्चे भी तैयार हो गये।

शंकर ने सोचा, तेज प्रवाह में ज्यादा दूर ये नहीं जा पायेंगे। उसने किनारे खड़ी नावों के दो मल्लाहों को अपनी नावें साथ लेकर चलने को तैयार किया। शिरोमणि भूयाँ परिवार के लड़के को भला कौन मना करता। तय हुआ, तैरने में जो जहाँ थकान महसूस करे, वहाँ नाव पर चढ़ जाए।

कई दिनों बाद धूप निकली थी। गरमी और पसीने से बदन चिपचिपा रहे थे। उमस भरे मौसम में पानी में उतरना सबके लिए आनन्ददायक क्रीड़ा बन गयी। तैरने पर उतारू बच्चों ने अपने कपड़े उतार नाव पर रखे और ब्रह्मपुत्र में कूद पड़े। प्रायः सभी की उम्र ग्यारह से चौदह के बीच थी। केवल रामराम ही सब से बड़ा सोलह-सत्रह वर्ष का था। थोड़ी दूर तैरकर शंकर और रामराम को छोड़ सभी नाव पर चढ़ते गये। दूसरे किनारे पहुँचे तो थोड़ी देर सुस्ताकर शंकर ने रामराम से पूछा, ''क्यों, तैर कर वापस चलोगे !''

रामराम ने अपनी असमर्थता जतायी और नाव पर जा बैठा। शंकर कहाँ मानने वाला था। उसने फिर से तैरना शुरू किया। नावें परले पार पहुँच गयीं परन्तु शंकर कहीं दिखायी नहीं दिया तो सब चिन्तित हो उठे। उन्हें लगा, आज का यह खेल बहुत भारी पड़ेगा। उन्हें विश्वास हो गया कि

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उफनते ब्रह्मपुत्र की बीच मझधार में शंकर कहीं डूब गया। उनमें कोहराम मच गया।

थोड़ी देर बाद शंकर दूर आता दिखा तो सबकी जान में जान आयी। वे उसके किनारे लौटने की आतुरता से प्रतीक्षा करने लगे। वितोपन ने फिर मजाक किया, ''लगता है, शंकर में कोई दानवी शक्ति समायी है।''

रामराम ने टोका, ''दानवी नहीं, दैवी शक्ति कहो। तुमने तो यही सोचकर उसे उकसाया था कि वह ब्रह्मपुत्र के तेज प्रवाह में उतरने का साहस नहीं करेगा। किन्तु हुआ इसका उल्टा। उसने ब्रह्मपुत्र को तैरकर दो बार पार करके दिखा दिया। इतनी तेज धार में चार-पाँच कोस तैरकर ब्रह्मपुत्र को पार कर वापस लौटना कोई दिल्लगी नहीं। वह देखो, शंकर किनारे आ गया।''

वह अपने साथ एक बड़ा कछुआ पकड़ लाया था। किनारे आते ही भारी भरकम कछुआ बालू पर मन्द गति से चलने लगा। वितोपन को फिर मजाक सूझा। वह कछुए पर सवार होने को उद्यत हुआ।

शतानन्द ने कहा, ''क्या कर रहे हो। यह तो तुम्हारे बोझ से ही दबकर मर जाएगा। खबरदार, जो इसे तंग किया।''

शंकर ने कछुए को धक्का देकर वापस ब्रह्मपुत्र में छोड़ दिया। ऐसा करने पर सभी थोड़ा झुँझलाये, ''शंकर, इतनी भी क्या जल्दी थी। उससे थोड़ी देर तो खेलने देते। उस दिन भी तुमने सूँस को तुरन्त पानी में छोड़ दिया।''

''तुम लोगों को इससे खेलने की इतनी ही पड़ी है तो मगरमच्छ पकड़कर ला देता हूँ। उससे खूब खेलना।'' शंकर की बात सुनकर सब जोर से हँस पड़े। वितोपन ने अपने पेट पर हाथ फेर कर भूख लगने का इशारा किया। भूख तो सभी को लगी थी; इतना श्रम करने के बाद लगनी ही थी।

शंकर ने प्रस्ताव रखा, ''पास में ही क्षीरोद का घर है। उसके बारे में तुम लोगों को पहले भी बताया था। वह मेरे से बहुत प्रेम रखता है। उसने मुझे मुखौटे बनाने भी सिखाये हैं। तुम लोग देखना, वह हमें खाये बिना नहीं आने देगा। आज उसकी साँचिपात और मसि बनाने की कार्यशाला भी देखेंगे।''

शंकर ने आगे कहा, ''पाठशाला जाने के लिए दादी रोज मेरे पीछे रहती है। लगता है, अब खेलना-कूदना नहीं चलेगा। पाठशाला जाऊँगा तो लिखने के लिए साँचिपात और मसि की आवश्यकता पड़ेगी। चलो, क्षीरोद

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के घर जाने के बहाने देखते हैं, ये कैसे तैयार किये जाते हैं।''

क्षीरोद शंकर को अपने मित्रों के साथ आया देख बहुत प्रसन्न हुआ। शंकर ने वहाँ आने का उद्देश्य उसे बताया। उसकी पत्नी-बोहागी थोड़ी ही देर में सब के लिए गुड़-चिवड़ा ले आयी।

क्षीरोद ने बोहागी से सबके लिए भात बनाने को कहकर सबको अपनी कार्यशाला में ले गया। वह दो भागों में बंटी थी। एक में साँचिपातशाला थी, जहाँ किसी पेड़ की छालों का ढेर लगा था। दूसरे भाग में मसिशाला बनी थी, जिसमें मिट्टी के कुछ पात्रों में काले रंग का घोल था। एक तरफ जड़ी-बूटियाँ रखी थीं। चार लोग काम में लगे थे।

शंकर ने क्षीरोध से साँचिपात और मसि बनाने की विधि पूछी।

क्षीरोद शुरू से बताने लगा, ''साँचिपात बनाने के लिए यहाँ से दूर मिकीर पहाड़ से साँचि पेड़ की छाल मंगानी पड़ती है। वहाँ इसके पेड़ बहुतायत में हैं। कस्तूरी मृग की नाभि में जैसे कस्तूरी रहती है, वैसे ही इसकी लकड़ी में काले रंग का अगरु होता है। इसको निकाल कर इसका शोधन करने में वहाँ के कारीगर सिद्धहस्त हैं। वे अगरु से तेल निकालते हैं जो इत्र का काम करता है। इसे कपड़ों पर लगाने पर सुगन्ध कई दिनों तक नहीं जाती। अगरु को जलाने पर सौरभमय धुँआ निकलता है जो वातावरण को मादक बना देता है। इसीलिए अगरु का प्रयोग राजा-महाराजा और नवाब करते हैं। यह काफी महंगा होता है।

''अब साँचिपात के बारे में बताता हूँ। इसकी कोमल लकड़ी, साँचिपात बनाने के अलावा किसी काम में नहीं आती, जलावन में भी नहीं। पेड़ से छाल उतारते समय बहुत ध्यान रखना पड़ता है। पेड़ की जड़ से चार-पाँच हाथ ऊपर की मोटी छाल को, पेड़ काटे बिना, धारदार दाव से काटकर निकाला जाता है। इसका बाहरी भाग हरे रंग का और भीतरी हिस्सा सफेदी लिये होता है। इसमें से पतले-पतले अनेक पात निकाले जाते हैं। ये पात गोलाई लिये होते हैं।''

क्षीरोद ने आगे कहा, ''इसे सीधा करने के लिए पेड़ से निकाले हुए गोल पातों को उल्टा मोड़कर हलके से बांध कर दस-बारह दिन छोड़ दिया जाता है। फिर सीधे हुए पातों को पत्थर से घिस-घिसकर चिकना किया जाता है। इस काम में लगे लोगों को तुम लोग देख ही रहे हो। अभी ये पात लिखने लायक नहीं हुए। इन्हें घिसने के बाद ओस में नरम हो जाने के लिए रात में बाहर रखः जाता है। इसलिए पात बनाने का काम ज्यादातर जाड़े में किया जाता है। पातों को फिर से घिसा जाता है, तब जाकर इनका खुरदरापन जाता है। अब इन्हें पोथी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के आकार में काटा जाता है। पात खरीदनेवाला जैसे बतांता है, हम कटाई कर देते हैं। जिन्हें जरूरत होती है वे पहले से बता देते हैं।

"कटाई के बाद भी काम पूरा नहीं होता। इन कटे साँचिपातों को स्वच्छ जल में डूबो कर रखा जाता है। इन्हें सुखाकर, फिर से दोनों ओर घिसकर और चिकना किया जाता है। पूरी प्रक्रिया में बहुत मेहनत लगती है।

"अब काली उड़द को भिगो कर उसके छिलके उतार उसे पीसकर इन पातों पर घिस-घिस कर लगाया जाता है। ऐसा करने पर ये दोनों तरफ से सफेद हो जाते हैं। इन पातों की धवलता को सरसों के फूलों जैसे हल्के सुनहरेपन में बदलने के लिए हेङ्गुल से पोता जाता है। इतना सब करने के बाद ये साँचिपात लिखने लायक बनते हैं।"

बोहागी ने कार्यशाला में प्रवेश कर क्षीरोद से कहा, "क्या इनको सारे दिन साँचिपात-स्याही के बारे में ही बताते रहोगे। दिन का तीसरा पहर चढ़ आया। इन्हें भात तो खा लेने दो। सुबह के घर से निकले हैं।" फिर शंकर से कहा, "तुम सब हाथ-पाँव धो लो। भात परोसने के लिए मैंने केले के पत्ते मंगाये हैं।"

क्षीरोद शंकर के अपने घर आने से बड़ा प्रसन्न था। वह उनके घर साँचिपात और स्याही देने जाता, तब वह उसे देखा करता था। शंकर का गौर वर्ण, उन्नत ललाट, ऊँची कद-काठी, चौड़ा सीना और उसके चेहरे पर रहने वाली स्निग्ध मुस्कान और विशेषकर घुटनों तक उसकी लम्बी बाँहें देखकर वह अभिभूत हो जाता। आज शंकर अपने बालसखाओं के साथ चलकर उसके घर आया है, उसके साथ बैठ कर सब ने भात भी खाया है। यह सब सोचकर क्षीरोद बड़ा भावुक हो रहा था। वह अपनी कार्यशाला में उसे शीघ्रातिशीघ्र ले जाकर मसि बनाने की विधि के बारे में बताने के लिए उत्सुक हो रहा था।

कार्यशाला में प्रवेश कर क्षीरोद ने बताया, "मसि बनाने के लिए छह वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है। एक मिट्टी की बनी थोड़ी गहरी थाली, दूसरे हरितकी (हर्र वा हरड़), तीसरा लोहे का टुकड़ा, चौथे केहाँराज, पाँचवें गोमूत्र और स्याही को अधिक चमकदार बनाने के लिए छठे उपादान के रूप में पानी के सर्पाकार जीव कुचिया के खून का भी उपयोग कुछ लोग करते हैं। कुचिया नहीं मिलने पर गोबर-माटी खानेवाला केंचुआ मिलाने से भी काम चल जाता है। इसलिए स्याही ज्यादाकर बरसात के दिनों में बनायी जाती है। उस मौसम में ये जलकीट खूब मिलते हैं।

"हर्रे को कूटकर थोड़ा पानी मिलाकर मिट्टी की थाली में सात-आठ दिन छोड़ दिया जाता है। थाली की हर्रे काली पड़ने लगती है तब उसमें वनों में मिलने

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वाले पौधे केहाँराज की पत्तियों को कूटकर मिलाया जाता है। मिट्टी की थाली के पेंदे से रिस कर टपकनेवाला काला पानी नीचे रखे पीतल या काँसे के बरतन में जमा होता जाता है। बरतन में लोहे का टुकड़ा डाल देने पर स्याही और अच्छी बनती है। लोहे में पानी के संग मिलकर जंग पैदा होता है जो स्याही को गाढ़ा बनाकर उसकी चमक भी थोड़ी बढ़ाता है। यों तो हर्रे और केहाँराज मिलाकर भी स्याही बनायी जा सकती है। उस काले पानी में फिर गोमूत्र मिलाया जाता है।''

स्याही के गुण बखानते हुए क्षीरोद ने आगे बताया, ''इस स्याही से लिखे अक्षर सूखने के बाद सालों तक वैसे ही बने रहते हैं। इन अक्षरों पर पानी गिर जाने पर भी नहीं फैलते। इसीलिए शास्त्र और काव्य लिखने वाले इसी स्याही का प्रयोग करते हैं।''

बातों-बातों में शाम ढल गयी। अन्धेरा हो आया। शंकर सशंकित था; देरी से घर पहुँचा तो दादी फिर नाराज होगी। आखिर वही हुआ जिसका डर था। घर में घुसते ही दादी भभक पड़ी, ''दिनभर इधर-उधर मटरगश्ती करते फिरते हो। तुम्हें बारहवाँ साल चल रहा है। तुम्हारे साथ के लड़कों ने कितना कुछ सीख लिया। लगता है, मेरे ही भाग फूटे हैं जो तुम्हारे मोह में जीवित रह गयी। हे भगवान् ! पता नहीं, शिरोमणि भूयाँ परिवार का यह लड़का पढ़ेगा-लिखेगा भी या गँवार ही रहेगा ! जयन्त कब तक राजभार सँभालेगा ? ज्योतिषी तो अपनी दक्षिणा के लिए यों ही झूठी भविष्यवाणी कर चला गया।''

खेरसुती ने शंकर को पास बुलाया। उसे प्यार से समझाते हुए कहा, ''बेटा ! तुम्हारे पूर्वज और मेरे दादा-ससुर चण्डीवर ही नहीं, उनकी सभी पीढ़ियाँ विद्वान थीं। तुम्हारे पिता कुसुमवर को उनकी संगीत-नृत्य-गीत में रुचि और निपुणता के कारण लोग गन्धर्व कहा करते थे। तुम्हारी धमनियों में भी उन्हीं पीढ़ियों का रक्त बह रहा है। तुम में अपने पिता की नृत्य-संगीत के प्रति तो रुझान है, परन्तु तुम्हारी उसकी तरह लिखने-पढ़ने में रूचि क्यों नहीं, मैं नहीं समझ पायी !''

फिर दुलारते हुए कहा, ''बेटा ! धन-सम्पति का बँटवारा हो सकता है, विद्या का नहीं। विद्या-ज्ञान जितना बाँटा जाता है उतना ही बढ़ता है। विद्या ही हमारे वंश का भूषण है। विद्याहीन पुत्र वंश का कलंक है और उसका जीवन भी नरकमय बीतता है। तुम्हें कितने दिनों से पढ़ने को कह रही हूँ, किन्तु तुम हो कि इधर-उधर डोलने-फिरने से ही फुर्सत नहीं। तुम्हें ही बड़े होकर अपने पिता के भूयाँ राज्य का भार सँभालना है। तुम लिख-पढ़कर विद्वान नहीं बनोगे

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तो अपना राज कैसे चलाओगे ?''

शंकर की आँखों से अश्रुधारा बह चली। वह शान्त चित्त से दादी की बातें सुनता रहा। दादी ने मन की भड़ास निकाल ली तव वह दादी से जाकर लिपट गया। दादी उससे कुछ और कहती इसके पहले उसने कहा, ''दादी ! आज मैं वह सब देख-समझ आया हूँ जो पढ़ाई करने के लिए चाहिये। मैं क्षीरोद के घर गया था। उसके यहाँ साँचिपात और मसि कैसे बनाये जाते हैं, सब देखकर आया हूँ। तुम मुझे रोज पाठशाला जाने के लिए कहती हो। ठीक है, तुम मेरा नाम वहाँ लिखा दो। तुम देखना, तुम्हारा शंकर वहाँ कैसे मन लगाकर पढ़ता है।'' यह सुनकर खेरसुती ने पोते को कलेजे से चिपका लिया और सन्तोष की साँस ली।

शंकर के सिर पर हाथ फेरते हुए खेरसुती ने कहा, ''बेटा ! तुम्हारी बात सुनकर बहुत सुख मिला। मैं तुम्हें अपने दादा जयन्त के साथ बैठकर जब भी आलाप लेते देखती हूँ, मुझे अच्छा लगता है। वे भी तुम्हारी गायन-वादन-नृत्य की प्रशंसा करते नहीं अघाते हैं। वे अकसर कहते हैं, 'शंकर को एक बार गाकर जो सुनाता हूँ, वह उसे हूबहू, बल्कि मेरे से भी अच्छे स्वर-राग में गाकर सुना देता है। ढोल-मृदंग बजाने में भी वह निपुण हो गया है। तुम्हारे नृत्य की तो वे प्रशंसा करते नहीं अघाते।' जयन्त को भी तुम्हारे पिता की तरह नृत्य-संगीत में गन्धर्वावतार माना जाता है। उन्होंने तुम में अवश्य कोई बात देखकर ही इतनी प्रशंसा की होगी।

''तुम्हारी चित्रकला में रुचि है, यह भी मैं जानती हूँ। मैंने तुम्हारे कमरे में साँचिपात पर बनाये चित्रों को देखकर मन ही मन तुम्हारी कला को सराहा है। तुम ने चित्र बनाना कब और किससे सीखा, मैं नहीं जानती। बेटा ! यह सब तो ठीक है ! तुम्हारी पढ़ने-लिखने में इतने दिनों रुचि क्यों नहीं हुई, मैं नहीं समझ पा रही। दिन-रात यही चिन्ता खाये जा रही थी कि बिना अक्षर ज्ञान के तुम शास्त्र कैसे पढ़ोगे और शास्त्र-अध्ययन बिना कोई ज्ञानी नहीं बन सकता। विद्या-ज्ञान के बिना तुम राजकीय गुत्थियों को कैसे सुलझाओगे ? तुम देखना, पाठशाला में तुम बहुत शीघ्र वह सब सीख जाओगे, जिसे सीखने में अन्य बच्चों को कई वर्ष लग जाते हैं। यह मेरे मन का विश्वास है।''

दादी ने आगे कहा, ''पास के ही रामपुर गाँव में महेन्द्र कन्दली का संस्कृत-गुरुकुल है। वहाँ छात्रावास भी है। कल बृहस्पतिवार है। भाद्र महीना भी अच्छा है। कल ही तुम्हें साथ ले जाऊँगी। अब तुम जाकर सो जाओ। मुझे

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वहाँ जाने के लिए बहुत-सी तैयारियाँ करनी हैं।''

सारी बातें पास खड़ी चन्दरी सुन रही थी। खेरसुती ने उससे कहा, ''तू जल्दी से कसेरे के पास जाकर उससे एक अच्छी-सी शराइ (ढक्कनदार धातु की बनी पायेदार तश्तरी) लेकर आ।''

चन्दरी ने बीच में अपना ज्ञान बघारा ''शराइ में रखकर वहाँ भगवान् का कौन-सा भोग लगाना है ?''

''तू तर्क ज्यादा करती है और काम कम। तू कितने वर्षों से यहाँ रह रही है। इतना भी नहीं जानती, शराइ में रखकर केवल भगवान् को भोग ही नहीं लगाया जाता; इसमें ताम्बूल[1] रखकर, फुलाम गमछा[2] के साथ किसी आदरणीय व्यक्ति को ससम्मान भेंट भी किया जाता है।

''हाँ देखना, पीतल या काँसे की जो भी शराइ मिले, उसकी चमक कंचन जैसी होनी चाहिये। ऊपर की बड़ी तश्तरी और नीचे की उलटी छोटी तश्तरी के बीच में जुड़े पाये के जोड़ को अच्छी तरह जाँच-परख लेना। दोनों जोड़ों में खुरदरापन जरा भी नहीं होना चाहिये। उसके गोल ढक्कन की चमक ठीक से देखकर लाना। जल्दबाजी में ऐसी-वैसी शराइ उठा लायी तो तुझे कसेरे के पास फिर दौड़ाऊँगी। और सुन ! सुबह जल्दी तैयार हो जाना, तुझे भी मेरे साथ गुरुकुल चलना है।''

चन्दरी द्वार की ओर लपकी तो खेरसुती ने उसे टोका, ''अरी भागी कहाँ जा रही है ! पूरी बात तो सुनती जा। कसेरे के यहाँ से देहिराम ताँती के

---

1. ताम्बूल : साधारणतया ताम्बूल का माने 'पान' और संस्कृत में भी 'नागवल्ली पत्रम्' ही है, परन्तु असमीया में 'ताम्बूल' कच्ची या कोमल सुपारी के अर्थ में है। असम में ताम्बूल को सुखाकर, छीलकर निकाले गये फल को सुपारी कहते हैं। असम में 'ताम्बूल-पान' यानी पान के पत्ते पर चूना लगाकर उसके साथ कच्चा ताम्बूल (कच्ची सुपारी) खाने का ही ज्यादातर प्रचलन है जो पूर्वोत्तर के राज्यों के सिवाय कहीं भी नहीं है। असम में निमन्त्रण, सम्मान, विवाह, पूजा के नैवेद्य आदि भी ताम्बूल-पान के विना पूरे नहीं होते।

संस्कृत में सुपारी को 'गुवाक' भी कहते हैं, जिसे असम में गुवा कहा जाता है।

2. फुलाम गमछा : हाथ करघे पर सफेद और लाल धागों से कलात्मक रूप में फूल तथा चौड़ी पाड़ बुनी जाती हैं। ये गमछे कामरूपी (असमीया) अस्मिता के प्रतीक हैं जिन्हें भेंटकर किसी प्रिय या आदरणीय अतिथि का सत्कार किया जाता है। पर्व-त्यौहारों पर फुलाम गमछा का उत्तरीय गले में डालने की प्रथा है। देव-देवियों के सिंहासन को सजाने के गमछों पर भगवान के नाम और चित्र भी बुने जाते हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

घर जाना, उससे मेरा नाम लेकर कहना कि मैंने एक एण्डी-चादर और एक फुलाम गमछा मंगाया है। और सुन, बिचरण से कहना कि तड़के उठकर पेड़ से एक गुच्छा ताम्बूल तोड़ लाये। अब, खड़ी-खड़ी मेरा मुँह ही देखती रहेगी या काम भी निपटायेगी।''

खेरसुती चन्दरी से निपट कर अपने कमरे में चली गयी। उसे दूसरे दिन गुरुकुल जाने की और तैयारियाँ भी करनी थीं।

चन्दरी कुछ क्षण वहीं खड़ी मन्द-मन्द मुस्कराती रही। वह मन में अच्छी तरह समझ रही थी कि दादी अपने पोते के गुरुकुल जाने पर आज भाव विभोर है। वह अपनी खुशियों को सहेज नहीं पा रही है। चन्दरी का मन भी पुलकित था। आखिर वह भी तो उनके घर की सदस्य थी। उसकी दादी ने यहाँ काम करना शुरू किया था। उसने भी अपनी आँखें इसी घर में खोली थीं।

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शब्दों से परिचय

ब्रह्मपुत्र और विश्वेश्वरी नदी के संगम के पास रामपुर में स्थित महेन्द्र कन्दली के गुरुकुल के परिवेश ने खेरसुती और शंकर को सहज ही आकर्षित किया। शीतल मन्द समीर बह रहा था। वातावरण में पक्षियों का कलरव गूँज रहा था। परिसर में आँवला, हरितकी, रुद्राक्ष के साथ ही स्थानीय वनस्पतियाँ चेचु, चतियना, करै आदि के पेड़-पौधों के अलावा आम, जामुन, दाड़िम, अमरूद, नारियल, ताम्बूल के पेड़ लगे थे। एक कोने में कृष्ण तुलसी के पौधों की बाड़ी थी। विभिन्न सुगन्धमय पुष्पों के पेड़-पौधों की तो जैसे वहाँ भरमार थी। घेरे के घगरा सरोवर में कमल खिले थे। जल में किल्लोल करते हंस और परिक्षेत्र में कुलांचे भरते हिरणों की उपस्थिति पुराणों में वर्णित किसी ऋषि के गुरुकुल का स्मरण करा रही थी।

कन्दली उस समय छात्रों को पढ़ा रहे थे। उनके कार्य से मुक्त होने तक दादी-पोते ने पूरे गुरुकुल का परिभ्रमण किया। एक तरफ शिक्षारत विद्यार्थियों के लिए बाँस-पुआल का छात्रावास बना था। उसके पास ही गौशाला में दुधारू गायें बंधी थीं। वहाँ से थोड़ी दूरी पर साँचिपात और मसि बनाने की कार्यशाला थी।

परिसर के एकान्तिक कोने में ग्रन्थागार था, जहाँ भोजपत्र और साँचिपात पर लिखे ग्रन्थ काष्ठ-मंजूषाओं में सुरक्षित कर रखे थे। मंजूषाओं के ऊपर उनमें बन्द ग्रन्थों और उनके लेखकों के नाम लिखे थे। उन नामों को न पढ़ पाने की एक टीस शंकर के मन में उठी। उसे दादी की कही बात याद आयी। उसने मन ही मन सोचा, सचमुच अक्षर-ज्ञान के बिना व्यक्ति किसी अन्धे के समान है। अब मुझे शीघ्रता से अक्षरों को सीखकर शास्त्र-ज्ञान प्राप्त करना होगा। इतने में एक छात्र ने आकर कहा, गुरुदेव आप लोगों की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

सुदर्शन देहधारी महेन्द्र कन्दली की उम्र पचास के लगभग रही होगी। देखने में चालीस वर्षीय युवक जैसी सुगठित काया। सिर पर कन्धों को छूते घने लम्बे काले बाल। बालों के पीछे झूलती शिखा। चोटी में बंधा सफेद फूल। ललाट पर धवल चन्दन का तिलक। पतले-पतले ओंठों के ऊपर पतली-सी अधपकी मूँछ। कन्धे पर मोटे सूती धागे का यज्ञोपवीत। कमर में सफेद सूती धोती और बदन चादर से ढका हुआ। हाथों में सोने की अँगूठियाँ। पाँवों में कटहल की लकड़ी से बनी खड़ाऊँ। सामने ताम्बूल और पान से भरा बोटा (बिना ढक्कन की धातु या काष्ठ से बनी पायेदार तश्तरी) रखा था। स्वयं कभी-कभार ही खाते, आगन्तुक अतिथि को सम्मान देने के लिए इसे हरदम अपने आसन के पास रखते।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संस्कृत गुरुकुल के अध्यक्ष और शिक्षक महेन्द्र कन्दली विदग्ध शास्त्रज्ञ पण्डित थे। ग्रामीण परिवेश में भी उन्होंने शिक्षा का अलख जगा रखा था। वहाँ ज्यादातर विद्यार्थी गरीब ब्राह्मण घरों के ही थे। कुछ ज्ञान पिपासु थे, कुछ जजमानी कर अपनी जीविका चलाने के उद्देश्य से संस्कृत पढ़ने आये थे। कुल विद्यार्थियों की संख्या पन्द्रह थी।

महेन्द्र कन्दली ने खेरसुती को आया देख हाथ जोड़कर उसे प्रणाम किया। उन्हें सम्मान देकर बैठने को आसन दिया। शंकर ने शीश नवाकर गुरु की चरणवन्दना की। कन्दली के कहने पर भी शंकर बैठा नहीं।

कन्दली ने खेरसुती को काफी दिनों बाद देखा। अब वह साठ वर्ष की वृद्धा थी। इस उम्र में भी उसका गौर वर्ण फीका नहीं पड़ा। सीधी लम्बवत काया में आज भी झुर्रियाँ पड़ी हों, ऐसा नहीं लग रहा था। हाँ, उसके केश पूरे सफेद हो गये थे। मुँह में केवल सामने के दो दाँत ही टूटे थे। वह आज भी ताम्बूल-पान बिना मलीदा किये चबा लेती। ताम्बूल खाते रहने से दाँतों पर थोड़ा कालापन अवश्य आ गया। कन्दली ने उसे पहली बार तब देखा, जब राजधर शिरोमणि भूयाँ से वे अपने गुरुकुल के लिए भूमि मांगने गये थे। उस वक्त वह नवोढ़ा थी। कुछ ही महीनों पहले उसका सूर्यवर भूयाँ से विवाह हुआ था। रेशमी वस्त्रों से लदी फँदी वह साक्षात लक्ष्मी का रूप दिख रही थी। और आज उसे सफेद वस्त्रों में देख कन्दली के हृदय में सहसा एक हूक-सी उठी।

कन्दली अतीत से निकलकर वर्तमान में आये। खेरसुती भी पूरी तैयारी के साथ आयी थी। उसने सर्वप्रथम शंकर को फुलाम गमछा से ढकी, ताम्बूलों से भरी शराइ गुरुदेव को भेंट करने को कहा। बुद्धिमान शंकर ने उन्हें शराइ भेंट कर दोनों घुटने भूमि पर टेक उनके चरणों में शीष रखकर प्रणिपात किया। दादी ने कन्दली को एण्डी-चादर ओढ़ा कर सम्मानित किया। खेरसुती के संकेत पर चन्दरी तथा बिचरण आदि भृत्यों ने अपने साथ लाये अनाज के बोरों के साथ ही पीठा आदि पकवान से भरा थाल गुरु के सम्मुख रखा। उसने अपनी कमर में खोंसी हुई रजत रुपयों से भरी थैली निकालकर उन्हें ससम्मान भेंट की।

गुरुवर ने बालक शंकर को आशीर्वाद देकर उसे भरपूर आँखों से देखा। उसकी सुगठित गोरी सुदीर्घ काया, घुटनों तक लम्बी बाँहें, चौड़ा सीना, ऊँचा ललाट और चेहरे पर छाये लावण्य ने बरबस ही उन्हें आकर्षित किया। उन्हें लगा, द्वापर में श्रीकृष्ण सान्दीपनि के गुरुकुल में शिक्षा ग्रहण करने गये थे, वे ही इस कलियुग में गौर वर्ण धारण कर उसके गुरुकुल में आये हैं।

गुरु कन्दली ने खेरसुती से कहा, "यह गुरुकुल आपके भूयाँ राज्य की

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सीमा में ही है। यहाँ की भूमि भी आपके ससुर स्वर्गीय राजधर देव शिरोमणि भूयाँ की दी हुई है। यहाँ उच्च कुल के ब्राह्मणों के साथ कायस्थ विद्यार्थियों को भी पढ़ाया जाता है। अन्य कई स्थानों पर तो ब्राह्मण के सिवाय अन्य बच्चों को प्रवेश ही नहीं दिया जाता।'' अब कन्दली ने बोटा में रखे ताम्बूलों में एक को कटारी से छील-काटकर एक-एक टुकड़ा दादी-पोते को दिया और एक टुकड़ा स्वयं खाया। दोनों ने उसे गुरु-प्रसाद समझ अपने मुँह में रख लिया।

खेरसुती ने कहा, ''गुरुवर इस बालक के विद्यारम्भ करने में देर हो गयी है। मुझे विश्वास है, यह आपके यहाँ शिक्षा ग्रहण कर सब शास्त्रों में अपने पुरखों की तरह निपुण हो जाएगा और अपने वंश का नाम उज्ज्वल करेगा। शंकर को आपके सुपुर्द कर मैं निश्चिन्त हुई। हमारे भूयाँ राज्य का अब यही शिरोमणि भूयाँ बनेगा। इसे योग्य बनाने के लिए आपके पास लायी हूँ।''

कन्दली ने कहा, ''आप निश्चिन्त होकर अपने घर जाइये। मैं भी इसे और इसके संस्कार देखकर
आशावान हूँ। मुझे विश्वास है कि यह आपके कुल के साथ-साथ मेरा नाम भी उजागर करेगा।''

परिसर में प्रवेश करते हुए रामराम पर शंकर की दृष्टि पड़ी। रामराम ने गुरुदेव के चरणों में प्रणाम कर गुरुकुल में अपनी पढ़ने की इच्छा बताते हुए कहा, ''गुरुदेव ! मैं दीन विप्र हूँ। घर पर रहकर पिता से अक्षर-ज्ञान लेकर थोड़ा पढ़ना-लिखना भी सीखा है। आपकी आज्ञा हो तो मैं भी शंकर के साथ रहकर आगे पढ़ना चाहता हूँ।''

रामराम की बातें सुनकर खेरसुती ने कहा, ''यह बात पहले पता होती तो तुम्हें भी साथ ही ले आती। शंकर भी कौन-सा यहाँ पहले आने वाला था। कल रात ही इसने पढ़ने की हामी भरी तो मैं बिना किसी विलम्ब के इसे यहाँ ले आयी।'' फिर गुरु कन्दली से कहा, ''गुरुदेव ! रामराम शंकर का मित्र है। यह भी साथ में पढ़ेगा तो मुझे प्रसन्नता ही होगी। इसकी शिक्षा भी मेरे जिम्मे रही।''

सामने ब्रह्मपुत्र में सूरज डूब रहा था। खेरसुती ने शंकर से विदा लेते हुए समझाया, ''बेटा शंकर !यह गुरुकुल ही अब तुम्हारा घर है। गुरु की आज्ञा का पालन करना और मन लगाकर अध्ययन-मनन करना।'' फिर रामराम से कहा, ''बेटा ! तुम किसी प्रकार की चिन्ता मत करना। अब मैं चलती हूँ।''

दूसरे दिन प्रातः शंकर अध्ययन कक्ष में आया। वहाँ की प्राचीरों पर संस्कृत और कामरूपी लिपियों में साँचिपात पर लिखे क ख ग अक्षर टँके थे। अभ्यास के लिए केले के पत्ते और मसि-दवात रखी थी। गुरुकुल के शिक्षक

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नारायण गुरु ने अन्दर प्रवेश किया। शंकर ने उठकर उनके चरण-स्पर्श किये। उन्होंने अपना परिचय देकर कहा, "गुरुकुल में इस समय वर्णमाला सीखने वाले तुम अकेले विद्यार्थी हो। मैं तुम्हें पहले संस्कृत वर्णमाला के व्यंजन और फिर स्वर सिखाऊँगा। कामरूपी भाखा में भी वे ही व्यंजन-स्वर होते हैं। केवल दोनों की लिपियों में अन्तर है। उसके बाद बारहखड़ी सिखाऊँगा। अभ्यास करोगे तो शीघ्र ही सीख जाओगे।

"अक्षर ज्ञान के बाद संयुक्ताक्षर बनाना सिखाऊँगा और फिर शब्द। शब्द सीख लेने के बाद वाक्य विन्यास बताया जाएगा। यह प्रारम्भिक शिक्षा होने के बाद गुरुवर महेन्द्र कन्दली तुम्हें संस्कृत व्याकरण पढ़ायेंगे। इसके बाद ही शास्त्र सीखने का क्रम शुरू होगा। बीज जिस तरह समय लेकर पनपता है, उसी प्रकार विद्या को सीखने में समय लगता है।"

नारायण गुरु ने साँचीपात पर लिखे संस्कृत के सभी व्यंजनों का पहले परिचय दिया। फिर 'क' वर्ग और 'च' वर्ग का अभ्यास कराकर भोजन के लिए अवकाश कर दिया। किन्तु शंकर कक्ष में ही बैठा, साँचिपात पर लिखे अन्य व्यंजनों को देख-देखकर केले के पत्ते पर लिखकर अभ्यास करता रहा।

गुरु लौटे तो शंकर ने कहा, "गुरुवर मैंने सभी व्यंजन-अक्षरों का अभ्यास करने का प्रयास किया है। गुरुकुल आने में जो विलम्ब हुआ, उसकी शीघ्रता से भरपाई करनी है। आप मेरी परीक्षा लें, मैं यदि उत्तीर्ण हो गया तो मेरे मन का विश्वास पक्का हो जाएगा।"

सचमुच नारायण गुरु की परीक्षा में शंकर खरा उतरा। अब वह अति उत्साहित हो गया। प्रतिदिन सन्ध्या भोजन करने के पश्चात् वह अपने कक्ष में दीपक के मन्द प्रकाश में देर तक बैठा व्यंजन-अक्षरों का अभ्यास करता रहता।

एक रात गुरु कन्दली ने विचित्र स्वप्न देखा। शंकर एक पेड़ के नीचे सोया है। उसके सिर के पीछे फण फैलाये कुण्डली मारे एक भयानक सतमुँहा नाग बैठा है। शंकर के चेहरे पर धूप है। उसे घाम से बचाने के लिए नाग ने अपने फणों से शंकर के सिर पर छाँव कर रखी है। यह देखकर कन्दली डर जाते हैं, नाग कहीं उसे डंस न ले। उसके पास जाते भी डरते हैं। वे आतुर हैं, इस भयानक विपदा से शिष्य को कैसे बचायें। नाग वहाँ से हिलने का नाम नहीं ले रहा। साहस कर कन्दली बाँस की कमानी दिखा उसे डराते हैं। वह है कि ढीठ की तरह अपनी जगह अड़ा है। वे साहस कर उसके पास जाते हैं तो नाग वहाँ से सरक जाता है। इतने में उनकी नींद खुल जाती है। वे उस भयानक स्वप्न पर विचार करते हैं; जिसका कोई अर्थ उनकी समझ में नहीं आया।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उसी रात की बात है, शंकर का मन सीखे हुए व्यंजनों को शब्दों में ढालकर कुछ रचने को आकुल था। उसने सारी रात जागकर अपनी बालबुद्धि से केले के पत्ते पर शब्दों के मेल से कुछ लिखा।

सुबह उसने गुरु कन्दली को दण्डवत प्रणाम कर रात में पिरोयी हुई शब्द-माला उनके हाथों में विनम्रतापूर्वक थमा दी। उसे पढ़कर गुरु अवाक रह गये। कदली-पात पर एक रचना लिखी थी—

करतल कमल कमल-दल नयन ।
भवदव दहन गहन वन शयन ।।
नपर नपर पर सतरत गमय ।
सभय मभय भय ममहर सततय ।।
खरतर बरशर हत दश बदन ।
खगचर नगधर फणधर शयन ।।
जगदग मदहर भवभय तरण ।
परपद लयकर कमलज नयन ।।

रचना को पढ़कर भला किसी को कैसे विश्वास होता कि कुछ ही दिनों में व्यंजन-अक्षरों का ज्ञान कर कोई बालक ऐसी सारगर्भित कविता लिख सकता है। गुरु कन्दली ने शंकर को अपने कलेजे से लगा लिया। उसके सिर पर हाथ फेरकर चिरंजीवी होने का आशीर्वाद दिया।

"शंकर ! क्या तुम इस रचना की व्याख्या करके भी बता सकते हो ?" गुरु ने परीक्षा लेने के उद्देश्य से पूछा।

"हाँ ! गुरुदेव ! मैं छुटपन से जयन्त दादा से संस्कृत के स्तोत्र सुनता आया हूँ। उनके अर्थ भी मैं उनको पूछा करता था। वे स्तोत्रों के सरल शब्दों को मुझे समझाया करते थे। अक्षर ज्ञान के अभाव में उनमें से कुछ शब्दों को मैंने अर्थ के साथ स्मरण कर लिया। आपके यहाँ अक्षर लिखने सीखे तो वे भाव और शब्द मेरे मन पर उमड़ने लगे और मैंने उन्हीं को जोड़ कर यह रचना लिखी है।

इस रचना में निहित भाव है— कमल के समान हथेली (करतल) और कमल-पँखुड़ी (कमल दल) सम नयन वाले, गहन वन जैसी गम्भीर निद्रा में शयन करने वाले हे ईश्वर ! मेरे सांसारिक दुःखों (भवदव) का दहन करो।

"गुरुदेव ! नपर शब्द का दो बार प्रयोग हुआ है। पहला न पर यानी जो नित्य है और दूसरे नपर का तात्पर्य भूत और भविष्य से है अर्थात् जो भूतकाल में नित्य था, वर्तमान में नित्य है और भविष्य में भी नित्य रहेगा। सततर से

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तात्पर्य सदा रत रहने से है, अर्थात् जो सर्वदा हमारे प्रति कृपामय रहे। गमय से मेरा तात्पर्य सर्वदा गतिशील रखने से है। पूरी पंक्ति में मेरा आशय है कि तीनों काल में जो नित्य है वे हमारे प्रति सदैव कृपा रखते हुए हमें गतिशील रखे।

मायाभय (मभय) से भयभीत (सभय) मेरे मन से सदैव (सततय) इन भयों को हरो (ममहर)। गुरुदेव ! अगली पंक्ति का अर्थ है, आपने ही दशानन (दश बदन) को अति शीघ्रता पूर्वक (खरतर) भयानक अस्त्र-शस्त्रों (बर शर) से मारा (हत) था। हे ! गरुड़ारुढ़ (खगचर), गोवर्धनधारी (नगधर), फणधर शेषनाग पर शयन करने वाले अर्थात् हे ! विष्णु ! हमारे जागतिक दग अर्थात् दुःखों (जगदग) और मद का विनाश (मदहर) करो, भवसागर के भयों (भवभय) से हमारा उद्धार (तरण) करो। हे ! कमल सम (कमलज) नयन वाले अपने अव्यय पद (परपद) में हमारा लय करना अर्थात् परममुक्ति देना।

शंकर के मुख से ऐसी सारगर्भित व्याख्या सुनकर गुरु महेन्द्र कन्दली को पूरा विश्वास हो गया कि शंकर कोई साधारण बालक नहीं। यह अवश्य पूर्व जन्म का कोई शापित देवता या ऋषि-मुनि है, जो अपने किसी प्रारब्धवश इस कलिकाल में धरती पर जन्मा है। इसके साथ ही उन्हें रात में देखे स्वप्न की बात याद आयी। हो न हो वह सतमुँहा नाग साक्षात शेषनाग ही था जो इस कलयुगी कृष्ण के मुखमण्डल पर अपने सातों फण फैलाकर छाया किये हुए था। गुरु कन्दली ने इसे विधि की तरफ से दिया गया भविष्य का एक संकेत समझा।

महेन्द्र कन्दली उस रचना को पढ़कर आत्मविभोर हो गये। उनके मुँह से अनायास ही निकल पड़ा, "शंकरदेव ! तुमने जो कर दिखाया है, वह स्तुत्य है। बिना तेल, घी या नमक के भी कोई सुस्वादु व्यंजन बन सकता है, यह तुम्हारी रचना ने प्रमाणित कर दिया।"

नारायण गुरु को बुलाकर रचना दिखायी तो वे भी शंकर का मुँह देखते रह गये। कन्दली ने उन्हें कहा, "नारायण ! देखा, बिना स्वर अक्षरों के ज्ञान के इसने कितनी सुन्दर रचना की है ! मेरे पूछने पर इसने इसकी व्याख्या भी कर दी। आज से सभी इसे शंकर नहीं, शंकरदेव कहकर सम्बोधित करें। मुझे आश्चर्य है कि ऐसे विलक्षण छात्र ने शिक्षा आरम्भ करने में इतना विलम्ब क्यों किया !"

महेन्द्र कन्दली शंकरदेव की तीक्ष्ण बुद्धि को समझ गये। वे यह भी समझ गये कि इसके जैसी मेधाशक्ति किसी विरले की ही होती है। उन्हें लगा, इसके लिए पढ़ने की व्यवस्था अलग करनी पड़ेगी। उन्होंने नारायण गुरु से फिर कहा, "कल से शंकरदेव मेरे पास आकर पढ़ेगा। नारायण ! तुम देखना, यह स्वर वर्ण सीखकर शीघ्र ही संयुक्त अक्षरों का अभ्यास कर वाक्य विन्यास करने

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लगेगा। संस्कृत व्याकरण के सूत्रों को समझने में भी इसे समय नहीं लगेगा। मेरे मन में पूर्ण विश्वास है कि जगत में इसका नाम अमर होगा।''

शंकरदेव कुछ ही दिनों में शब्द, संयुक्ताक्षर और वाक्य विन्यास करने में पारंगत हो गये। इस पर गुरु कन्दली को अपार सन्तोष हुआ। अब उन्होंने उन्हें कामरूपी लिपि का अभ्यास कराया। साधारण लोगों में यही भाषा और लिपि प्रचलित थी।

व्याकरण पढ़ाते समय कन्दली को शंकरदेव की अद्भुत स्मरणशक्ति का परिचय मिला। उनके मित्र रामराम तथा अन्य सहपाठी शंकर को पढ़ाई में अग्रसर होते देख, मन ही मन आत्ममुग्ध थे। रामराम ने एक दिन कहा, ''शंकरदेव ! तुम जैसे खेल-खेल में ब्रह्मपुत्र तैरकर पार कर लिया करते थे, वैसे ही शिक्षा ग्रहण करने में भी अपनी प्रतिभा का लोहा मनवा लिया। सचमुच, आज मैं अपने को गौरवान्वित समझता हूँ कि मुझे तुम्हारे जैसा मित्र मिला।''

''रामराम ! तुम तो मेरे नाम के आगे देव मत लगाया करो। मुझे संकोच होता है। यह तो गुरुवर की महानता है जो वे सब को मुझे शंकरदेव कहने को कहते हैं। मित्र, संस्कृत व्याकरण पढ़ने के साथ-साथ मुझे स्थानीय भापा के तत्त्वों को भी पूरी तरह समझना होगा। हमारा सम्पूर्ण ज्ञान संस्कृत में समाहित है। किन्तु इसे साधारण व्यक्ति नहीं समझ पाता।

''व्याकरण के बाद मुझे वेद, उपनिषद, पुराण पढ़ने हैं। मेरे मन के किसी कोने में यह वात उभर रही है कि संस्कृत से मिले ज्ञान को साधारण प्रजा तक उनकी ही भाषा में पहुँचाना चाहिये। अपनी दैनन्दिन जीविका उपार्जित करने में व्यस्त-परेशान लोग शिक्षा नहीं ले पाते। उनके लिए दिन भर काम कर दो वक्त के खाने की जुगत विठानी ही प्राथमिकता है। अब चलो, भोजन का समय हो गया।''

भोजन के पश्चात् गुरु के आदेशानुसार सभी विद्यार्थी गुरुकुल परिसर में स्थित साँचिपात और मसि बनाने की कार्यशाला में पहुँचे। उन्हें बनाने में कितना परिश्रम लगता है, इसे शंकरदेव और रामराम क्षीरोद की कार्यशाला में देख चुके थे। अन्य विद्यार्थियों के साथ साँचिपात और मसि बनाने की विधि दोबारा देख शंकरदेव ने कहा, ''तुम लोगों ने देखा, यह कितना श्रमसाध्य है। किसी भी काम को छोटा नहीं समझना चाहिये। साँचिपात और मसि न होते तो शास्त्र-काव्य कैसे लिखे जाते ! मानव-शरीर नश्वर है किन्तु उसका लिखा उसके मर जाने के वाद भी रहता है। हमारे ऋपि-मुनि जो लिख गये वह आज भी हमारी अमूल्य धरोहर है। उन्हीं को पढ़कर हमारी ज्ञान-वृद्धि होती है।

''एक उदाहरण से इसे अच्छी प्रकार समझ सकते हैं। हमारे पुरखे मर

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गये परन्तु उनके द्वारा उपयोग की गयी वस्तु आज भी हमारे काम आ रही है।''

एक सन्ध्या गुरु कन्दली विद्यार्थियों को लेकर गुरुकुल की बाड़ी में गये। उन्होंने वहाँ लगे आँवला, हर्र, बहड़े आदि के पेड़-पौधे दिखाकर उनके विभिन्न औषधीय गुणों के बारे में बताते हुए कहा, ''मैं कोई आयुर्वेदाचार्य नहीं हूँ। इस क्षणभंगुर शरीर को कभी भी कोई व्याधि घेर सकती है। उसके उपचार के लिए आयुर्वेद है। इसमें औषधि, पथ्य, नीति-नियमों का सांगोपांग विस्तृत वर्णन है। महर्षि सुश्रुत और चरक मुनि द्वारा लिखा आयुर्वेद शास्त्र संस्कृत में है। यहाँ संस्कृत पढ़नेवालों में ही कोई आयुर्वेद पढ़ना चाहेगा। उसे कम से कम इसके बारे में प्राथमिक ज्ञान हो सके, इसी नीयत से मैं तुम लोगों को ये बातें समझा रहा हूँ।

''शरीर को सदैव स्वस्थ रखने के लिए योग, आसन-प्राणायाम तथा हठयोग है। इनका विस्तृत वर्णन पतंजलि योग में है। तुममें से जो इसे पढ़ना चाहेगा, उसे मैं पढ़ाऊँगा। किन्तु आयुर्वेद पढ़ने के इच्छुक को यहाँ शिक्षा पूरी कर किसी आयुर्वेदाचार्य के गुरुकुल में जाकर पढ़ना होगा। मेरा प्रयत्न है कि इसी गुरुकुल में आयुर्वेद शिक्षा की अनुकूल व्यवस्था हो जाए। अभी तक कोई उपयुक्त आयुर्वेदाचार्य नहीं मिल पाया। मैंने काशी भी समाचार भिजवा रखा है।

''दो दिनों बाद बैशाख की संक्रान्ति है। गुरुकुल में हर वर्ष की भाँति इस बार भी बैशाखी बिहू-उत्सव मनायेंगे। कल गऊ बिहू है। गुरुकुल की समस्त गाय-बैलों को विश्वेश्वरी नदी पर ले जाकर पिसी हुई उड़द, हल्दी, तेल का उबटन लगाकर नहलायेंगे। उनके पगहे बदलकर पूजा करेंगे, उन्हें मीठे-मीठे पीठा खिलायेंगे।

''गऊ बिहू के दूसरे दिन गोंसाई बिहू मनाया जाएगा। गुरुकुल के मन्दिर में विराजित गोंसाई (भगवान्) की पूजा-अर्चना होगी। अगर कोई बिहू पर अपने घर जाना चाहे तो उसका अभिभावक आने पर साथ में जा सकता है।''

ये बातें हो रही थीं कि दूर से खेरसुती आती दिखायी दी। उसने आकर गुरु कन्दली को हाथ जोड़कर प्रणाम किया। अपने साथ लाये अनाज के बोरे, एक थाल में मिष्टान्न पीठा और गुरु कन्दली तथा सभी शिक्षार्थियों के लिए नवीन वस्त्रों से भरी बेंत की मंजूषा उन्हें भेंट की।

कुशलक्षेम पूछने की औपचारिकता के उपरान्त खेरसुती ने विनम्रता से कहा, ''गुरुवर ! आपकी आज्ञा हो तो शंकर को कुछ दिनों के लिए अपने साथ घर ले जाऊँ। यह शीघ्र ही गुरुकुल लौट आयेगा।''

कन्दली तो पहले ही अनुमति दे चुके थे। रामराम ने शंकर की ओर ताका। उसे भी उसके साथ जाने की गुरु-आज्ञा मिल गयी।

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ज्ञान की जननी जिज्ञासा

शंकरदेव की मसें फूट आयीं। वे सत्रह वर्ष के हो गये। किसी विषय को एक बार पढ़कर ही वे हृदयंगम कर लेते। इसी विलक्षण प्रतिभा के बल पर उन्होंने पाणिनी, कलाप, पण्डिका, शब्दरत्न, मुग्धबोध, ज्ञानांकुश, स्वरप्रदीप, शब्दज्ञान, प्रश्नबोध, सन्धि, वृत्ति और कृति आदि व्याकरणों को पढ़ लिया। इसके बाद उन्होंने भाषातत्त्व और ध्वनितत्त्व को पढ़कर भाषा और उसकी ध्वनि में निहित मर्म को समझा।

शंकरदेव को गुरुकुल में पाँच वर्ष हो गये। बालपन का नटखटपन गाम्भीर्य में परिवर्तित हो चुका था। उनकी ज्ञान पिपासा बलवती होती गयी। अब वेद पढ़ने के बाद उनका रुझान पुराणों की ओर हुआ। अग्नि, कूर्म, गरुड़, नारद, पद्‌म, ब्रह्म, ब्रह्मवैवर्त, ब्रह्माण्ड, भविष्य, भागवत, मत्स्य, मार्कण्डेय, लिंग, वाराह, वामन, विष्णु, शिव और स्कन्द नामक अठारह पुराणों को उन्होंने मन लगाकर पढ़ा।

रामायण और महाभारत पढ़े। शृंगार-तिलक, ऋतुमंजरी, श्रुतिबोध के साथ ही नारदी, आगष्टि, मार्कण्डेय आदि अठारह संहिताओं का अध्ययन-मनन किया। न्यायनीति और राजनीति की बारीकियों को भी पढ़कर समझा।

माघ, भारवी, कालिदास, भवभूति के काव्यों-नाटकों को पढ़ा तो शंकरदेव भावविभोर हो गये। भरत मुनि का नाट्य शास्त्र पढ़कर उनके मन में विचार प्रस्फुटित हुआ, शास्त्रों को साधारण लोग नहीं पढ़ पाते। गद्य के बदले पद्य में की गयी रचना साधारण लोगों को शीघ्र याद हो जाती है। यदि पुराणों के सारगर्भित आख्यानों को नाट्य रूपान्तर कर लोगों को दिखाये जाएँ तो उनके मर्म को हजारों जन बड़ी सुगमता से समझ लेंगे। इस दिशा में हम अभी बहुत पीछे हैं। विक्रमादित्य के युग में हुए कालिदास-भवभूति ने केवल नाटकों की रचना ही नहीं की, उनके संग गीत-संगीत का मेल करा सफल मंचन भी करवाया। उनके लिखे नाटक आज भी हैं, वे रचनाकार अमर हैं। ऐसा ही कुछ मुझे भी करना होगा। लघु या एकांकी नाटक लिखकर गीत-संगीत-नृत्य के साथ प्रदर्शित किये जायें तो सहज रूप में बात लोगों तक पहुँचेगी। इसे अपने भारत के इस उत्तर-पूर्वी अंचल में नये रूप में प्रस्तुत करना होगा।

शंकरदेव ब्रह्मसूत्र और श्रीमद्‌भगवद्‌गीता पढ़ना चाहते थे। वे उन्हें गुरुकुल में नहीं मिले। गुरु महेन्द्र कन्दली को इस विषय में बताया तो वे उन्हें

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गुरुकुल में नये स्थापित विभाग के कक्ष में ले गये। वहाँ भोजपत्र पर लिखे शास्त्रों को साँचिपात पर उतारने का कार्य चल रहा था। इस कार्य में पाँच लोग लगे थे। शंकरदेव को यह जानकर प्रसन्नता हुई कि उन ग्रन्थों में श्रीमद्भगद्गीता की प्रतिलिपि तैयार हो गयी थी।

वहाँ हो रहे कार्य को शंकरदेव को दिखाकर महेन्द्र कन्दली ने कहा, "शंकरदेव ! कामरूप में संस्कृत का अध्ययन प्राचीन काल से चल रहा है। इसमें कुछ ग्रन्थ भी यहाँ लिखे गये हैं। भास्कर वर्मन के पहले से यहाँ संस्कृत का प्रचार-प्रसार रहा है। उस समय के ताम्रपत्रों और शिलालेखों की भाषा भी संस्कृत ही रही है। उनके युग से भोजपत्र पर लिखे संस्कृत ग्रन्थों को यहाँ मंगाकर साँचिपात पर प्रतिलिपियाँ की जाती रही हैं। यह काम श्रमसाध्य होने के साथ समय भी बहुत लेता है। फिर इन प्रतिलिपियों को सुरक्षित रखना भी एक समस्या है। इसलिए समय-समय पर उनकी नयी प्रतियाँ बनाने का क्रम चलते रहना आवश्यक है। इसी बात को ध्यान में रखकर मैंने गुरुकुल में यह नया विभाग प्रारम्भ किया है। इसी के चलते श्रीमद्भगवद्गीता की प्रति आज तुम्हें प्राप्त हो सकी।

"संस्कृत साहित्य के आधार पर स्थानीय भाषा में भी अनेक ग्रन्थ रचे गये। दुर्लभनारायण, जिनके राजत्वकाल में तुम्हारे पूर्वज चण्डीवर कामरूप में आये थे, बड़े विद्योत्साही और साहित्यानुरागी भी थे। उनका प्रश्रय पाकर हेम सरस्वती ने वामन पुराण के आधार पर कामरूपी में 'प्रह्लाद चरित' लिखा। 'पद बांधे तेहो प्रचार करिला वामन पुराण कय' ऐसा कवि हेम सरस्वती ने स्वयं लिखा है। इसके अतिरिक्त उन्होंने एक अन्य ग्रन्थ 'हरगौरी-संवाद' भी लिखा।"

कन्दली ने आगे बताया, "हरिवर विप्र ने 'लव-कुशर युद्ध', 'बभ्रुवाहन युद्ध' तथा 'अश्वमेध पर्व' लिखे। कविरत्न रामसरस्वती ने महाभारत का कामरूपी में अनुवाद कर बड़ा स्तुत्य कार्य किया। इसके साथ उन्होंने 'जयद्रथ-वध' भी लिखा। इसी तरह रुद्र कन्दली ने कामरूपी भाषा में महाभारत के द्रोण पर्व का अनुवाद प्रस्तुत किया और 'सात्यकि-प्रवेश' लिखा। इन सबसे परे करीब सौ वर्ष पहले ही राजा महामाणिक्य की प्रेरणा से माधव कन्दली ने उत्तर भारतीय भाषाओं की पहली 'सप्तकाण्ड रामायण' लिखी थी।"

"हाँ गुरुदेव ! अन्य ग्रन्थों के सिवाय मैंने माधव कन्दली रचित रामायण भी पढ़ी है। इसका पहला आदिकाण्ड (बालकाण्ड) और अन्तिम उत्तरकाण्ड पढ़ने को नहीं मिले। मालूम करने पर पता चला कि वे दोनों

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

काण्ड कहीं खो या नष्ट हो गये। इस बात को जानकर बहुत दुःख हुआ।

"गुरुदेव !क्या ऐसा सम्भव नहीं कि माधव कन्दली ने जिस काव्यात्मक शैली और झुमरि छन्द में अपनी रामायण लिखी, उसी शैली में दोनों खोये हुए काण्डों को लिखकर उसे फिर से सप्तकाण्डी बनाकर पूरा किया जा सके।" शंकरदेव ने सहज भाव से गुरु से पूछा।

"हाँ ! बिल्कुल सम्भव है, परन्तु इसके लिए उनके जैसा प्रतिभावान व्यक्ति चाहिये। पुत्र ! पता नहीं, क्यों मेरी अन्तरात्मा कह रही है कि यह गुरुतर कार्य एक दिन तुम्हारे ही द्वारा पूरा होगा।"

महेन्द्र कन्दली ने कुछ स्मरण करते हुए कहा, "हम लोग साहित्य चर्चा में खो गये। शंकरदेव ! एक महत्त्वपूर्ण बात तो तुमको बताना ही भूल गया। कल रात एक वयोवृद्ध संन्यासी गुरुकुल में आये थे। रात को वे यहीं सोये। मेरे पूछने पर उन्होंने बताया कि वे अधिकतर हिमालय पर रहते हैं। कभी-कभार तीर्थों का भ्रमण करने, विशेषकर कुम्भ के समय, नीचे उतरते हैं। मैंने उनका नाम और आयु के बारे में पूछा तो वे टाल गये। केवल इतना बताया, पृथ्वीराज चौहान के राज्य पर यवन आक्रमण हुआ, वह उन्हें याद है। इससे सहज अनुमान लगता है कि उनकी आयु ढाई-तीन सौ के मध्य है।"

"इतनी अधिक आयु तक जीवित रहना क्या सम्भव है, गुरुदेव !" शंकरदेव ने जिज्ञासा की।

"हाँ ! सम्भव है। इसके लिए योग विद्या में अनेक आसन-प्राणायाम, हठयोग आदि की क्रियाएँ हैं। इन्हें नित्य-नियमित रूप से किया जाए तो व्यक्ति की आयु बढ़ सकती है।

"संन्यासी यहाँ से परशुरामकुण्ड गये हैं। जाते-जाते वे भोजपत्र पर लिखे दो ग्रन्थ मुझे दे गये जिनमें ब्रह्मसूत्र के अलावा एक उपनिषद भी है। सभी उपनिषदों का सार श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में है।"

"गुरुदेव ! क्या वे परशुरामकुण्ड से लौटकर वापस आयेंगे ?"

"जाते समय कहकर तो यही गये थे। वे आयेंगे तो मैं तुम्हें उनके दर्शन अवश्य कराऊँगा, निश्चिन्त रहो।"

ब्रह्मसूत्र हाथ लगने के बाद शंकरदेव को चैन कहाँ ! उन्हें लगा, कोई खोया खजाना हाथ लग गया हो। वे दिन-रात ग्रन्थ का अध्ययन करने में लग गये। खाने-सोने की भी सुध न रही। क्षुधा तृप्ति के लिए कोमल चावल दही के साथ खा लेते, अत्यन्त थक जाने पर थोड़ी देर सो लेते।

ब्रह्मसूत्र पढ़ लेने के बाद उन्होंने गुरुवर से संन्यासी का दिया

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उपनिषद लेकर अध्ययन किया। उन्हें लगा, इन शास्त्रों में वेदान्त के सिद्धान्तों को और विस्तृत रूप से व्याख्या कर लिखा गया है।

गुरुकुल में एकादशी का अवकाश था। और दिनों की तरह इस बार भी सब ने एकादशी का उपवास रखा था। उन्हें पता चला, संन्यासी परशुरामकुण्ड से लौट आये हैं। वे तुरन्त उनके दर्शन करने पहुँचे। उनकी सुगढ़ काया और व्यक्तित्व देखकर वे मन्त्रमुग्ध हो गये। उन्हें दण्डवत प्रणिपात कर आसन-प्राणायाम और हठयोग सीखने का अपना मन्तव्य बताया।

संन्यासी ने संस्कृत में कहा, ''पुत्र ! योगाभ्यास में हठयोग सब से कठिन है। तुम्हारी उत्कट इच्छा देख, मैं तुम्हें सिखाने के लिए प्रेरित हुआ हूँ। तुम्हारे बारे में कन्दली से सुन चुका हूँ। कल ब्राह्म-मुहूर्त में ब्रह्मपुत्र के तट पर आ जाना।''

तड़के शंकरदेव को संन्यासी समझा रहे थे, ''मैं ज्ञानमार्गी हूँ। ज्ञानमार्ग के अतिरिक्त कर्मयोग और भक्तियोग हैं। इन तीनों की साधना के लिए शरीर को स्वस्थ-सबल और युवकोचित रखने के लिए हठयोग है।

''भारतवर्ष में योग साधना युग-युग से चली आ रही है। योगों में मन्त्र-योग, लययोग, कुण्डलिनी-योग, तान्त्रिक-योग आदि अनेक योग हैं। इन सब का विषद वर्णन पतंजलि के योगसूत्र में दिया हुआ है।''

शंकरदेव मन्त्रमुग्ध हो उनकी बातें मनन कर रहे थे। उनकी जिज्ञासा बढ़ती जा रही थी। उन्होंने संस्कृत में ही पूछा, ''क्या केवल इसी एक ग्रन्थ मात्र में ही योग के बारे में लिखा है ?''

''नहीं ! नहीं !! इसके अतिरिक्त श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में भी योग के बारे में है। हठयोग के बारे में घेरण्ड-संहिता, शिव-संहिता, हठयोग प्रदीपिका में भी लिखा मिलता है। तुम्हारे जिज्ञासु भाव को देखकर मुझे प्रसन्नता हुई। मेरे पास त्रशिखी-ब्राह्मण्य उपनिषद की एक प्रति है जिसमें पद्‌मासन के विषय में विस्तृत रूप से लिखा हुआ है, वह मैं यहाँ से जाते समय तुम्हें दे जाऊँगा।''

संन्यासी ने शंकरदेव के पूछने पर भी अपनी सही आयु और नाम नहीं बताया। उन्होंने भी विशेष हठ करना उचित नहीं समझा। संन्यासी ने कुछ ही दिनों में उन्हें शरीर के अंगों को स्वनियन्त्रित करने के लिए योग मुद्राओं में महामुद्रा, शक्तिशालिनी-मुद्रा, वज्रलि-मुद्रा, खेचरी-मुद्रा और बंधों में महाबंध, उड्डीयन-बंध, मूलबंध, जालन्धर-बंध, विरितकरणी-बंध सिखा दिये। साथ ही उनकी उपयोगिता भी विस्तार से बताते गये।

शारीरिक विकारों को दूर करने के लिए संन्यासी ने दंत धौति, जिह्वा-

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शोधन, वमन धौति, जलनेति आदि क्रियाएँ सिखाकर शंकरदेव से उनका अभ्यास करवाया।

एक दिन संन्यासी ने प्राणायाम करते समय भूमि से हाथ भर ऊपर शून्य में उठ कर दिखाया। उन्होंने शंकरदेव को समझाया, "यह लघिमा है, अर्थात् शरीर में स्थित वायु को अति विरल करने की प्रक्रिया। शरीर में स्थित वायु के भार को अति हलका कर स्वयं को शून्य में स्थिर किया जा सकता है। शरीर में स्थित प्राण, अपान, उदान, समान आदि वायु हमारे शरीर की समस्त क्रियाओं का संचालन करती हैं। इन्हीं के द्वारा रक्त-संचार, मस्तिष्क, पेट के सारे अवयव, हृदय, फेफड़े, हाथ-पैर आदि अपने-अपने कार्य करते हैं। इनमें प्राणवायु ही मुख्य है। प्राणवायु के बिना अन्य वायु भी निष्क्रिय हो जाती हैं। इसके बिना जीव क्षण मात्र भी जीवित नहीं रह सकता। प्राणायामादि से प्राणशक्ति को बढ़ाया जा सकता है।"

योग साधना के साथ संन्यासी से शंकरदेव की उपनिषद और श्रीमद्भगवद्गीता पर चर्चा चल पड़ी। उन्होंने बताया, "भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने सखा अर्जुन को श्रीमद्भगवद्गीता में कहा–

च मां योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ।
स गुणान् समतित्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते ।।

इसलिए हे अर्जुन ! सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज।"

संन्यासी की बातें सुनकर शंकरदेव के मन में उमड़ रही अनेक शंकाओं का समाधान हुआ। उन्होंने संन्यासी को दण्डवत प्रणाम कर धन्यवाद दिया। वे शंकरदेव के मन में योगाभ्यास का बीजारोपण कर फिर से हिमालय की ओर चल दिये।

शंकरदेव योग विषयक ग्रन्थ पढ़कर योगाभ्यास कर, आसन, मुद्रा, वंध और प्रणायाम में सिद्धहस्त हो गये। वे बांये हाथ के अंगूठे के बल पर शीर्षासन कर लेते। उन्होंने अपनी प्राण, अपान, समान, उदान वायुओं को वश में कर, अपने प्रयोजन के अनुसार उन्हें परिचालित करने का अभ्यास किया। इसके साथ ही मानव शरीर में स्थित छह चक्र– मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा के द्वारा अपने मन को स्थिर करने का अभ्यास किया। आसन-प्राणायाम के अतिरिक्त ध्यान, धारणा, समाधि में अपना मन लगाया।

कुम्भक कर वहुत समय तक जल में रहना, लघिमा से शरीर को

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भार-विहीन कर भूमि से उठकर शून्य में स्थिर होना, गरिमा द्वारा अपने बदन को फैलाने जैसी सिद्धियाँ भी शंकरदेव ने प्राप्त कीं।

एक दिन शंकरदेव ने अपनी परीक्षा लेने के लिए अपने मित्रों को कहकर स्वयं को सन की मजबूत रस्सियों से बंधवाया। फिर गरिमा सिद्धि के वल पर अपने शरीर को फैलाकर उन बंधनों को तोड़कर मुक्त हो गये।

मित्रों के लिए यह चमत्कार था। वे शंकरदेव से ऐसे और चमत्कार देखने के लिए उत्सुक थे। उनके बार-बार करने पर उन्होंने कहा, "ये सिद्धियाँ बन्दर-भालू नचानेवाले मदारी का तमाशा नहीं। इन्हें किसी को चमत्कृत करने या अपनी महिमा बखानने के लिए कभी नहीं करना चाहिए। सिद्धियाँ तो आध्यात्मिक साधना की दिशा में पड़ाव मात्र हैं। अगर कोई साधक इसी में उलझ जाता है तो वह भटक जाता है। इसलिए चमत्कार देखने का आग्रह छोड़ दो।"

शंकरदेव के मन में मन्थन चल रहा था, अन्य साधु-संन्यासियों की भाँति क्या मुझे भी किसी गिरि-कन्दरा के एकान्त में जाकर अध्यात्म साधना में लग जाना चाहिये। अन्तरात्मा कुछ और कह रही थी– शंकर ! स्वयं की मुक्ति और मोक्ष लाभ के लिए भगवान् में लीन हो जाने मात्र से तो केवल अपना ही लाभ होगा। क्या अपने स्वार्थ लाभ के लिए ही इतनी साधना कर सिद्धियाँ प्राप्त की हैं ? स्वयं की मुक्ति से जीवन का कौन-सा प्रयोजन सिद्ध होगा ? यह तो निजी स्वार्थ ही हुआ। भगवान् के प्रति अनुराग-भक्ति रखते हुए अपने चित्त को शुद्ध रखने मात्र से क्या उसे नहीं पाया जा सकता ? यह सच है कि अपनी मुक्ति के लिए भी शास्त्रों का अध्ययन-मनन करना पड़ता है, परन्तु हुआ तो यह अपना स्वार्थ ही न ! मनुष्य जिस समाज और परिवेश में जन्मता है, क्या उसके प्रति उसका कोई उत्तरदायित्व नहीं ?

शंकरदेव ने आगे विचार किया, भारत के इस उत्तर-पूर्व अंचल में, जहाँ मैंने जन्म लिया है, कितनी विषमताएँ हैं। कितनी जातियाँ-उपजातियाँ हैं यहाँ। यहाँ ब्रह्मपुत्र उपत्यका और पर्वत-वनों में रहने वाले अधिवासियों के उत्थान के लिए कुछ करना आवश्यक है। मैं समझ रहा हूँ कि इनमें एक ओर आध्यात्मिकता है तो दूसरी ओर दैवी और आसुरी शक्तियों को अपने तरीकों से प्रसन्न करने के नाम पर ये अनेकानेक प्रपंचों में भी उलझे हुए हैं। इनके लिए यदि कुछ नहीं कर सका तो यह शास्त्र-ज्ञान किस काम का है !

उनका मन कहता, शंकर ! समग्र की उन्नति और उत्कर्ष में ही

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्वयं की मुक्ति है। इस बात को कभी नहीं भूलना। इन्हें भारतीय संस्कृति की मूलभूत बातें समझानी होंगी। इन्हें छल-प्रपंचों से बचाते हुए हरि-भक्ति करने का सरल उपाय बताना होगा।

शंकरदेव के मन में सतत चिन्तन चल रहा था, इन ग्रामीणों, वनवासियों के लिए कौन-सी भाषा उपयुक्त होगी, जिसे ये समझ सकें। निश्चित तौर पर संस्कृत के बदले आम लोगों की भाषा में ही उस ज्ञान को लिख-बोल कर समझाना होगा, तब ही ये लाभान्वित हो सकेंगे।

शंकरदेव की अवस्था उन्नीस वर्ष की हो गयी। उनका शिक्षण पूरा हो चुका था। दादी खेरसुती इस बार अपने देवर जयन्त को साथ लेकर गुरुकुल आयीं। उन्हें ज़ब से शंकर की योग साधना के बारे में पता चला, उनके मन में उनके संन्यासी होकर कहीं चले जाने का भय समाया था। उन्होंने पोते से घर चलने के लिए बहुत आग्रह किया। गुरु महेन्द्र कन्दली से अनुमति भी ले ली।

शंकरदेव भलिभाँति जानते थे कि घर लौटते ही उनका विवाह कर उन पर शिरोमणि भूयाँ का उत्तरदायित्व थोप दिया जाएगा। वे इन सब से परे हटकर समाज हित के लिए कुछ अलग करना चाहते थे। उन्होंने गुरुकुल में और कुछ वर्ष रहने का दृढ़ निर्णय कर कहा, "दादी ! हमारे यहाँ जीवन के चार आश्रम माने गये हैं। अभी तो मैंने अपना पहला ब्रह्मचर्याश्रम ही पूरा नहीं किया। मुझे कुछ समय यहाँ और रहकर अपनी ज्ञान-पिपासा शान्त करने दो। मैं जानता हूँ, तुम्हारे मन में मेरे संन्यासी होकर कहीं चले जाने का भय समाया है। उसे तुम अपने मन से निकाल दो। अपने समाज से विरक्त हो अपनी स्वयं की मुक्ति करने की स्वार्थसिद्धि में लग जाऊँ, मेरा ऐसा विचार नहीं। मुझे अपने समाज के लिए भी कुछ करना चाहिये, यही बात मैं कई दिनों से सोच रहा हूँ।"

सारी बातें जयन्त दादा भी सुन रहे थे। उन्होंने खेरसुती को समझाया, "भाभी ! इस वक्त इसकी बात मानकर हम लौट चलते हैं। मेरा दृढ़ विश्वास है, हमारा शंकर संन्यासी होकर कहीं नहीं जाएगा। देखना, यह जल्द ही हमारे बीच लौटेगा। गृहस्थ बन, शिरोमणि भूयाँ का दायित्व भी सँभालेगा।"

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अहंकार का दमन

शारदीया दुर्गापूजा की नवमी तिथि थी। ब्रह्मपुत्र के दक्षिणी तीर पर आचार्य राघव भट्टाचार्य के आश्रम में बने बड़े पण्डाल में सिंहवाहिनी महिषासुरमर्दिनी देवी दुर्गा की प्रतिमा विराजमान थी। मुख्य मूर्ति के दोनों ओर लक्ष्मी, सरस्वती, गणेश और कार्तिकेय की प्रतिमाएँ थीं। बाँसों से बने पण्डाल पर पुआल छायी थी। मण्डप को फूल-पत्तों से सजाया गया था। केला-गाछों से बने द्वार पर जल से भरे मिट्टी के कलशों पर आम्रपत्र और उन पर हरे नारियल रखे थे। धूप-धूम्र से वातावरण सुगन्धित था। पण्डाल के सामने बनी अस्थायी बलिवेदी के पास खूँटे से बलि का एक भैंसा बंधा था। होने को आश्रम में कालीदेवी का स्थायी मन्दिर भी था। किन्तु भट्टाचार्य दुर्गापूजा धूमधाम से मनाने के लिए भव्य पण्डाल बनवाते। आश्रम में बड़े ताम-झाम के साथ की जाने वाली दुर्गा-पूजा को देखने आसपास के गाँव वाले बड़ी संख्या में आते। आश्रम में लोगों का मेला लग जाता।

आचार्य ठहरे घोर शाक्त। शास्त्रों के ज्ञाता होने के साथ ही महातान्त्रिक भी थे। आश्रम के नाम पर उनके पास बहुत जमीन थी। जमीन खेतिहरों को जोतने के लिए दे रखी थी। इससे बड़ी आय हो जाती। भक्तों का चढ़ावा आता सो अलग। भट्टाचार्य की विद्वत्ता, सम्पन्नता और दबंगता के चलते सभी उन्हें आदर देते।

आचार्य भट्टाचार्य की उम्र पचहत्तर के आसपास रही होगी। हृष्ट-पुष्ट गेहूँ वर्णी शरीर। सिर पर बीच के बाल नहीं। कान के ऊपर चारों ओर निकले लम्बे सफेद बाल कन्धों तक झूल रहे थे। माथे पर बड़ा-सा लाल गोल टीका लगा था। कमर में लाल रंग की रेशमी धोती और कन्धे पर उसी रंग का उत्तरीय ओढ़े थे। उत्तरीय के नीचे यज्ञोपवीत झाँक रहा था। बाँहों में कई ताबीज बंधे थे और गले में लाल मणकों की मालाएँ झूल रही थीं। हाथों की उंगलियों में मूल्यवान नग जड़ी अंगूठियाँ थीं।

देवी की षोड़शोपचार पूजा करने में उनका सहयोगी पण्डित दुर्गादास महन्त उनकी सहायता कर रहा था। बाहर बंधे भैंसे का बलि-विधान कर उसका रक्तरंजित मुण्ड देवी के चरणों में चढ़ाये जाने के साथ जोर से ढोल बजाये गये। पूजा के उपरान्त आचार्य राघव भट्टाचार्य ने उच्च स्वर में दुर्गासप्तशती के श्लोकों से माँ की प्रार्थना की—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः ।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताःस्म ताम् ।।
रौद्रायै नमो नित्यायै गोर्यै धात्र्यै नमो नमः ।
ज्योत्स्नायै चेन्दुरूपिण्यै सुखायै सततं नमः ।।
कल्याणै प्रणतां वृद्ध्यै सिद्ध्यै कुर्मो नमो नमः ।
नैर्ऋत्यै भूभृतां लक्ष्म्यै शर्वाण्यै ते नमो नमः ।।
दुर्गायै दुर्गपारायै सारायै सर्वकारिण्यै ।
नमो जगत्प्रतिष्ठायै देव्यै कृत्यै नमो नमः ।।
या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।।

देवी-पूजा पूर्ण हो जाने के बाद अवसर देख, दुर्गादास ने राघव भट्टाचार्य को कहा, "आपके रहते कैसा अन्याय हो रहा है। उत्तर पार के महेन्द्र कन्दली के गुरुकुल में अब ब्राह्मण-पुत्रों के साथ शूद्रों की सन्तान पढ़ने लगी है। कायस्थ जाति के भूयाँ शूद्र नहीं तो और क्या हैं ! कुसुमवर भूयाँ का बेटा शंकर वहाँ सब के साथ बैठकर शिक्षा ले रहा है। मेरा पुत्र कामेश्वर भी उसी गुरुकुल में पढ़ता है। महाप्रभु ! आपके रहते हुए यह अनीति कैसे चलेगी।"

दुर्गादास की बात सुनकर आचार्य की भौंहें तन गयीं। उन्होंने कहा, "दुर्गा ! दुर्गा !! मेरे रहते ऐसा अन्याय नहीं चल सकता। कल दशमी है; माँ की प्रतिमा का विसर्जन हो जाने दो, फिर उस पथभ्रष्ट महेन्द्र की खबर लेता हूँ।"

दुर्गादास की जीविका अपने और आसपास के गाँवों की जजमानी से चलती थी। थोड़ी बहुत संस्कृत पढ़ी थी, पूजा विधि में काम आनेवाले मन्त्र उसने अभ्यास से कण्ठस्थ कर रखे थे। पाठ-पूजा तथा जन्म-मरण के कर्मकाण्ड कराके दक्षिणा, वस्त्र, अनाज, शय्यादान के अलावा विशेष पूजा में बलि का मांस भी घर ले जाने को मिल जाता। बेटे कामेश्वर को भी संस्कृत पढ़कर अपने पिता की जमी-जमायी जजमानी ही सँभालनी थी।

दो दिनों बाद नाव से आचार्य राघव भट्टाचार्य दक्षिण पार पहुँचे। उनकी डोली और कहार भी नाव में साथ थे। ब्रह्मपुत्र तट से डोली में सवार होकर वे महेन्द्र कन्दली के गुरुकुल पहुँचे।

आचार्य राघव भट्टाचार्य के यकायक आने से गुरुकुल में अफरा-तफरी मच गयी। गुरु महेन्द्र कन्दली को पता लगते ही वे सेवा में उपस्थित हो गये। उनका आदर सत्कार किया। विद्यार्थियों ने बारी-बारी अपना परिचय देकर घुटने जमीन पर टेककर उन्हें प्रणिपात किया। शंकरदेव अपना नाम बताकर प्रणाम करने लगे तो उन्होंने पाँव पीछे खींच लिये। आँखें क्रोध से लाल हो गयीं। ओंठों में कम्पन

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

होने लगा। आचार्य राघव आसन से खड़े होकर बरस पड़े, "तू ही शंकर है ! इन ब्राह्मण पुत्रों के साथ बैठकर पढ़ने का तेरा साहस कैसे हुआ ? अरे नीच ! क्या तू यह भी नहीं जानता कि संस्कृत देवभाषा है जिसे पढ़ने का अधिकार केवल ब्राह्मण का होता है।"

फिर महेन्द्र कन्दली को आड़े हाथों लेते हुए कहा, "महेन्द्र ! तुम्हारे नाम के साथ यह कन्दली उपनाम किसने लगा दिया। किसी विदग्ध विद्वान के नाम के साथ ही 'कन्दली' या 'आता'[1] जैसा सम्मानसूचक शब्द लगता है। तुम्हें तो इतना ज्ञान भी नहीं कि दुर्गाप्रसाद जैसे श्रेष्ठ ब्राह्मणों के पुत्रों के साथ शूद्र बैठकर नहीं पढ़ सकता। इस चण्डाल को अभी मेरे सामने अपने गुरुकुल से निकालो। यह मेरा आदेश है। इसमें तनिक भी विलम्ब मत करो।"

ये बातें सुनकर गुरु महेन्द्र कन्दली को बड़ा क्रोध आया, फिर भी उन्होंने संयत रहते हुए कहा, "आचार्यदेव ! ऐसी बातों का कोमल मन के बच्चों पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ेगा। आप शंकरदेव के बारे में नहीं जानते, इसलिए ऐसा कह रहे हैं। मैंने अपने पूरे शैक्षिक जीवन में इसके जैसा मेधावी छात्र नहीं देखा। आप इसकी परीक्षा लेकर देख लें।"

आचार्य ने क्रोध में फुफकारते हुए कहा, "महेन्द्र ! तुम बार-बार इसके नाम के आगे देव क्यों लगा रहे हो। यह इसके योग्य नहीं। फिर यह तुम्हारे यहाँ शिक्षा ले रहा है। तुम्हारा विद्यार्थी है, उस नाते भी तुम्हारा इसे देव कहना अशोभनीय है।"

"आचार्यवर ! हम आपका अति सम्मान करते हैं। आपको भी अपने क्रोध को संयत रखना चाहिये। क्रोध से मनुष्य का विवेक चला जाता है। आपसे ऐसी बातें सुनने की अपेक्षा नहीं थी। यह मेरा गुरुकुल है। मैं इसका अध्यक्ष हूँ। रही बात इसके नाम के साथ देव लगाने की। आप स्वयं इसकी परीक्षा लेकर परख लीजिये। सारे उत्तर आप को स्वतः ही मिल जायेंगे।" कन्दली ने कहा।

इस बार आचार्य ने भभककर शंकरदेव से एक अति कठिन प्रश्न पूछा, "प्रस्थानत्रयी के विषय में तू क्या जानता है ?"

शंकरदेव ने विनम्रतापूर्वक कहा, "आचार्यवर ! सत्य को जानने-समझने और अनुभव करने के लिए तीन श्रेणी के ग्रन्थ रचे गये हैं। पहली 'श्रुति-प्रस्थान' श्रेणी में हमारे ऋषियों द्वारा द्वारा रचे गये ऋग्, यजुः, साम और अथर्व, ये चार वेद तथा शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्द, न्याय और ज्योतिष, ये छह ग्रन्थ आते हैं। दूसरी श्रेणी के 'न्याय-प्रस्थान' ग्रन्थों में

---

1. आता : संस्कृत शब्द आत्मन (सम्माननीय) के अर्थ में है। कहीं-कहीं आते भी लिखते हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सांख्य, योग, वैशेषिक (पदार्थ विद्या), पूर्व-मीमांसा, उत्तर-मीमांसा इत्यादि दर्शन आते हैं। इन दर्शनों के माध्यम से हम युक्तिपूर्ण तरीके से चिन्तन करके अपने निजी सिद्धान्तों तक पहुँच सकते हैं। तीसरी श्रेणी के ग्रन्थों को 'स्मृति-प्रस्थान' कहते हैं। वेदों के आधार पर जो ज्ञान कथा-कहानी के रूप में पुरातन समय से चला आया है, वे स्मृतियाँ, अठारह पुराण, उप-पुराण, रामायण, महाभारत आदि के रूप में पढ़कर स्मरण किया जाता है। इनमें न केवल कथा है, अपितु उसके साथ में न्याय, विचार और सामाजिक परम्परा का विस्तृत विवरण भी होता है।''

इस पर भी आचार्य का क्रोध शान्त नहीं हुआ। उन्होंने अपने अनर्गल प्रलाप को विराम नहीं दिया। अब शंकरदेव से प्रत्युत्तर दिये बिना नहीं रहा गया। वे उनके पास जाकर हाथ जोड़ अति विनम्रता से बोले, ''आचार्यवर ! मैंने आपके जितने शास्त्र तो नहीं पढ़े, किन्तु मैंने जो भी दो-एक शास्त्र गुरुदेव से पढ़े हैं उनका सार यही समझ में आया, पाण्डित्य का अभिमान करने से ज्यादा महत्त्वपूर्ण उन पर मनन कर उनके मर्म को हृदयंगम करना है।

''आचार्यवर ! शास्त्रों के अध्ययन से कोई विद्वान तो बन सकता है, परन्तु वास्तविक ज्ञान तो उनमें निहित मर्म को समझने से ही सम्भव है। और जिसका ज्ञान जागृत हो जाता है, उसमें अहंकार लेशमात्र भी नहीं रहता। ज्ञान तो प्रकाश है, अहंकार अन्धकार। ज्ञान का ज्योतिप्रकाश ज्यों-ज्यों फैलता है अहंकार रूपी अन्धकार दूर होता जाता है। उसी तरह अहंकार की काली घटाएँ मन पर छा जाने पर ज्ञान रूपी सूरज उसमें छिप जाता है।

''मेरी समझ में शुद्ध मन का सामान्य व्यक्ति भी भगवद्कृपा प्राप्त कर सकता है। ईश्वर भी अभिमानी विद्वान उपासक के प्रति सदय नहीं होते। रावण अति विद्वान शास्त्रज्ञ पण्डित था, उसके अभिमान ने उसकी क्या दशा की, किसी से छिपी नहीं। मेरे लिए आप अति आदरणीय हैं, इससे अधिक और क्या कहूँ ! मेरे कहने में यदि कोई धृष्टता हो गयी हो तो बालक समझकर क्षमा करें।''

शंकरदेव की बात राघव भट्टाचार्य के हृदय में बिंध गयी। शंकरदेव गुरु से आज्ञा ले छात्रावास में चले गये। कन्दली ने रात के समय आचार्य को नहीं लौटने दिया। उनकी सोने की व्यवस्था गुरुकुल में करा दी।

छात्रावास में राम सरस्वती ने कहा, ''यह सारी करतूत कामेश्वर की है। यह पण्डित दुर्गादास का पुत्र है।'' रामराम की आँखें डबडबा आयीं। उसने कहा, ''आज आचार्यवर ने सबके सामने हम ब्राह्मणों का सिर लज्जा से झुका दिया। उसने ही अपने पिता के कान भरे हैं। हम उसे कभी क्षमा नहीं करेंगे।''

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शंकरदेव ने सबको शान्त करते हुए कहा, "दोष कामेश्वर का नहीं। आचार्य जैसे वयोवृद्ध विद्वान का है। उन्होंने जातिगत हिंसा फैलायी है; अपने विवेक का थोड़ा भी उपयोग नहीं किया। यही तो रुढ़िवादिता है। क्या हमें समय-समय पर अपनी मान्यताओं की जांच-परख नहीं करनी चाहिये !

"तुममें से कामेश्वर को कोई भी कुछ नहीं कहेगा। जरा सोचो, उसके पढ़ने का उद्देश्य कितना सीमित है। वह संस्कृत पढ़कर, कुछ श्लोकों को कण्ठस्थ कर, अन्ततः अपने पिता की तरह घर-घर जाकर पुरोहिती ही तो करेगा। पुरोहिती कर्म से उसके परिवार के सिवाय समाज का तो कोई हित होने वाला नहीं। तुम लोगों को फिर से सचेत कर रहा हूँ कि कोई उसे कुछ नहीं कहेगा। यदि किसी ने ऐसा किया तो मैं यही मानूँगा कि मेरे प्रति तुम लोगों का प्रेम झूठा है।"

उधर भट्टाचार्य बिछौने पर करवटें बदलते रहे। जैसे-जैसे क्रोध शान्त हो रहा था, विवेक जागृत हो रहा था। वे विचार करने लगे, अपने जीवन में ऐसे गुणी युवक से कभी सामना नहीं हुआ। उसकी वाणी के आगे मेरे तर्क नहीं टिक सके। उसका रूप मन को कैसा छू रहा था। उस समय क्रोध की धूल आँखों के सामने छायी थी। उसकी बातों से लग रहा था, उसने अनेक शास्त्रों, पुराणों, संहिताओं का अध्ययन किया है। उसने कितना सच कहा, 'शुद्ध मन का सामान्य व्यक्ति भी भगवद्कृपा पा सकता है। ईश्वर भी अभिमानी उपासक के प्रति सदय नहीं होता।'

मेरा गहन शास्त्राध्ययन भी मन को निर्मल नहीं कर सका। इतने वर्षों तक माँ दुर्गा की पूजा-आराधना की। देवी की प्रतिमा के आगे सैकड़ों निरीह पशुओं की बलियाँ दीं। उनकी जगह देवी के चरणों में अपने अभिमान की बलि चढ़ाता तो माँ अवश्य प्रसन्न हो जातीं। मैं भी किस ब्राह्मणवाद के पचड़े में पड़ गया। मुनि विश्वामित्र और स्वयं राम और कृष्ण भी तो ब्राह्मण नहीं थे। आज पूरा जगत उन्हें पूजता है। जाति से बड़ा मानव का आत्मोत्थान है।

प्रातःकाल कन्दली ने जाकर आचार्यवर को प्रणाम किया। वे उनका सौम्य रूप और वार्तालाप में विनम्रता देख सुखद आश्चर्य में पड़ गये। आचार्य राघव ने कन्दली से कहा, "मुझे इसी समय शंकरदेव के पास ले चलिये।"

"उसे ही बुला देता हूँ, भला आपको कष्ट करने की क्या आवश्यकता है !"

"नहीं, आज मुझे ही जाना होगा। अन्यथा मेरे पापों का परिमार्जन नहीं होगा।" आचार्य राघव भट्टाचार्य ने अपने मन का पश्चाताप व्यक्त किया।

आचार्य की बात सुनकर गुरु कन्दली ने कहा, "आचार्यवर ! यह कम सन्तोष की बात नहीं कि आपने सत्य को पहचाना, भले देर से ही सही। शंकरदेव की ओर से आपका मन निर्मल हुआ। आप देखियेगा, उसके

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

माध्यम से नया सूर्योदय होगा, जो पूरे पूर्वांचल को आलोकित करेगा; धीरे-धीरे यह प्रकाश सम्पूर्ण भारतभूमि तक फैलेगा। ये बातें मैं आपको कल ही कहना चाहता था। किन्तु आप ये सब सुनने की मनःस्थिति में नहीं थे। एक तरह अच्छा ही हुआ, सबके सामने कहने की बात भी नहीं थी।''

''अब चलो, देर मत करो।'' इतना कह आचार्य कक्ष से बाहर निकल गये, पीछे-पीछे कन्दली।

शंकरदेव अपने कक्ष में बैठे ग्रन्थागार से लायी श्रीमद्भगवद्गीता का अध्ययन कर रहे थे। अचानक गुरु महेन्द्र कन्दली के साथ आचार्य रघुवर भट्टाचार्य को आया देखकर वे उठकर बारी-बारी दोनों की चरण-वन्दना करने झुके। आचार्य भट्टाचार्य ने उन्हें अपने पाँव नहीं छूने दिये। उन्हें अपने हृदय से लगाकर कल की धृष्टता के लिए क्षमा याचना की।

विचलित हुए बिना शंकरदेव ने कहा, ''आचार्यदेव ! मैं तो गुरुकुल का एक साधारण विद्यार्थी हूँ, मुझमें इतनी योग्यता नहीं कि आप जैसे वयोवृद्ध विद्वान को क्षमादान कर सकूँ। आप ब्राह्मण हैं, मेरे लिए पूजनीय हैं। ईश्वरकृपा से मैं आपकी कृपादृष्टि का भाजन बना, मेरे लिए यह कम बड़ी बात नहीं।''

आचार्य राघव भट्टाचार्य मौन हो गये। सुबह कुछ आहार लेकर वे अपने आश्रम में लौटने को तैयार हुए। कहार डोली लेकर आये। उन्होंने कहा, ''अब मैं डोली में कभी नहीं बैठूँगा। इसमें बैठना और मनुष्य के कन्धों पर बैठना एक समान है। मनुष्य तो ईश्वर का रूप है। तुम लोग यह डोली अपने साथ ले जाओ। अब से यह तुम्हारी रोजी-रोटी का साधन हुई।''

कामेश्वर ने आचार्य भट्टाचार्य और गुरु कन्दली के सम्मुख उपस्थित होकर कर कहा, ''आचार्यदेव ! यह सब मेरी मूर्खता के कारण हुआ। मेरे मन में जातिभाव जागा। ब्राह्मण होने का दम्भ पैदा हुआ। सच कहूँ तो मेरे मन में शंकरदेव के प्रति इर्ष्या जाग गयी थी। मैं गुरुकुल में उनसे पुराना विद्यार्थी होकर भी वह सब नहीं पढ़-समझ सका, जिन विषयों में ये कुछ वर्षों में ही निष्णात हो गये। पिछले दिनों जब मैं घर गया था, तब मैंने ही अपने पिता के मन में प्रज्वलित जातिवाद की अग्नि में घी डालने का काम किया। मैं शंकरदेव के साथ गुरुकुल का भी अपराधी हूँ। हो सके तो आप लोग मुझ अधम को क्षमा कर दें।''

आचार्य राघव भट्टाचार्य पैदल चलते धीरे-धीरे तट की ओर बढ़े। उनके साथ खाली डोली लिये कहार भी चले जा रहे थे।

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गुरुकुल से विदाई

गुरुकुल में छात्रों के विदाई समारोह की सारी तैयारी हो चुकी थी। निवर्तमान शिक्षार्थियों के अभिभावक भी उपस्थित थे। खेरसुती और जयन्त गुरु महेन्द्र कन्दली के लिए गुरुदक्षिणा के रूप में अनाज के साथ रजत रुपयों की थैली लेकर आये हैं। गुरु कन्दली को गुरुदक्षिणा देकर खेरसुती उन्हें प्रणाम कर बोली, "गुरुवर ! आपने मेरे पोते शंकर के जीवन में ज्ञान का जो प्रकाश-दीप जलाया है, उसके लिए मैं ही नहीं मेरा पूरा परिवार आपका सदैव ऋणी रहेगा। शंकर का शास्त्र ज्ञान हमारे भूयाँ राज्य को और समृद्ध तथा शक्तिशाली बनाने में सहायक सिद्ध होगा। अब हमारी इच्छा है कि वह शीघ्र ही गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे और अपना राज्यभार सँभाले। हम और कितने दिनों तक जीवित रहेंगे।"

समारोह के प्रति शंकरदेव के मन में उमंग नहीं थी। एक तो गुरुकुल छोड़कर जाने का दुःख, दूसरे घर पर सांसारिकता में धकेल दिये जाने की आशंका। वे सरोवर के पास बैठे विचारों में निमग्न हैं– मेरा विद्यार्थी जीवन पूरा हुआ। अब घरवाले मुझे राज्य का शिरोमणि भूयाँ बनायेंगे, मेरा ब्याह रचायेंगे। क्या मैंने जीवन की इन्हीं साधारण उपलब्धियों के लिए इतने शास्त्रों का अध्ययन-मनन किया ! क्या इसीलिए हठयोग का कठिन अभ्यास कर सिद्धियाँ प्राप्त कीं !

इस आत्मकेन्द्रित ज्ञान का क्या उपयोग होगा ! शिक्षण से प्राप्त मेरा ज्ञान यदि समाज के दबे-कुचले लोगों का हित न साध सका तो व्यर्थ ही जाएगा। मैं अपने परिवार के भरण-पोषण में ही लग गया तो वह सब नहीं कर सकता जो करना चाहता हूँ। पुराणों की कथाओं को साधारण जनता की भाषा में रचने का जो विचार मेरे मन में है, उसे कैसे पूरा कर पाऊँगा ! क्या उन रचनाओं से लोगों में फैले कर्मकाण्ड और आडम्बरों से उन्हें मुक्ति दिला सकूँगा !

शंकरदेव के मन का दूसरा कोना कुछ और कह रहा था, माता-पिता की मृत्यु के बाद दादी ने मुझे कितने जतन से पाला-पोसा है। पिता कुसुमवर देव के बाद दादा जयन्त ही राज कार्य सँभालते आ रहे हैं। आज मैं जो भी थोड़ा-बहुत संगीत जानता हूँ, सब उनका ही सिखाया हुआ है। उन्होंने ही मुझे गायन-वादन, ताल-स्वर, राग-रागिनियों का ज्ञान कराया। अब वे बूढ़े हो गये। कमर झुक गयी। शरीर में झुर्रियाँ पड़ गयीं। दाँतों ने शरीर का साथ छोड़ दिया। ताम्बूल भी अब उन्हें कूटकर खाना पड़ता है। आँख-कान ने अपने कार्य करने शिथिल कर दिये।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दोनों भाभी-देवर कितनी आशा से मुझे गुरुकुल से विदा करा, घर ले जाने आये हैं। मेरा जीवन अभी शुरू हुआ है। कुछ समय इनकी बात रख, इनके बताये रास्ते पर अगर चलूँ तो राज्य की आम जनता के दुःख-दर्दों को मैं और करीब से जान पाऊँगा। इससे इनकी बात भी रह जाएगी और मैं भी अधिक दृढ़ प्रतिज्ञ होकर अपना लक्ष्य तय कर सकूँगा।

खेरसुती पोते को खोजती सरोवर पर पहुँची। उसने उदास शंकर के सिर पर ममता का हाथ फेरकर कहा, ''शंकर ! मैं समझ सकती हूँ कि इतने वर्ष यहाँ रहकर शिक्षा ग्रहण करने के बाद गुरुकुल छोड़ते तुम्हें दुःख हो रहा है। बेटा ! यह तो सोचो, तुम बीस वर्ष के हो गये। हमने भी तुम्हारे लिए कुछ सपने बुने हैं। मेरी और तुम्हारे तीनों दादा जयन्त, माधव, हलायुध के साथ राजकार्य में लगे सभी भूयाँ बन्धुओं की इच्छा है कि तुम शिरोमणि भूयाँ का पदभार सँभालो। ब्याह कर गृहस्थी में प्रवेश करो। जयन्त कब तक राज्यभार सँभालेंगे। अब वे बूढ़े हो गये हैं। उनकी देह में कम्पन होने लगा है। स्मृति भी पहले जैसी नहीं रही।''

''वह सब ठीक है। मैं तुम लोगों की भावना समझता हूँ, परन्तु मेरा मन कुछ और चाहता है। मैंने अपने मन में जो संकल्प कर रखे हैं, वे कदाचित् आप लोगों को पसन्द न आयें।'' शंकरदेव ने कहा।

खेरसुती ने बात टालते हुए कहा, ''अभी तुम घर चलो। वहाँ पहुँचकर विचार करेंगे। समारोह का समय हो गया। तुम्हें खोजती आयी तो देखा कि गुरुकुल-प्रांगण में सभी पहुँच गये। तुम्हारी उपस्थिति भी वहाँ अनिवार्य है।''

दोनों वहाँ से जाने के लिए मुड़े ही थे कि शंकरदेव ने देखा एक साँड़ उनकी ओर दौड़ा आ रहा था। उन्होंने एक क्षण भी विलम्ब किये बिना उसके दोनों सींगों को मजबूती से पकड़कर रोक लिया। साँड़ आगे बढ़ने के लिए धरती पर पैर पटकता रह गया। अन्ततः उन्होंने सींगों सहित साँड़ की गरदन मरोड़कर उसे ऐसी पटकनी दी कि वह दुम दबाकर भाग गया। यह दृश्य देखकर खेरसुती हतप्रभ रह गयी। पोते ने दादी को आश्वस्त किया।

विदाई समारोह में गुरु कन्दली ने कहा, ''प्रिय छात्रो ! इतने वर्ष यहाँ गुरुकुल में रहकर आपने विद्या अर्जित की। मेरे पास जो भी शास्त्र-ज्ञान था, उसे आपको पढ़ाने का मैंने पूरा प्रयास किया। अब आप लोग जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करेंगे। आपकी असल शिक्षा तो अब प्रारम्भ होगी। जीवन में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। जीवन की गुत्थियों को सुलझाने में यहाँ मिली शिक्षा आपका मार्गदर्शन करेगी। किन्तु यह बात भी आपके विवेक पर निर्भर करेगी कि उसका उपयोग आप सही तरीके से किस प्रकार करते हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"शिक्षा हमारे ज्ञान में वृद्धि करती है। शिक्षा-ज्ञान ही जीवन-रथ का सारथी है। विघ्न-बाधा में शिक्षा ही सहायक होती है। शिक्षा से जीवन में विनय, दक्षता, उदारता और दूरदृष्टि आती है। शिक्षा का अहंकार मनुष्य का पतन कर देता है। इसलिए शिक्षा ही नहीं, किसी भी प्रकार के अहंकार से सदैव बचना चाहिये। अन्यथा सारा शास्त्र-ज्ञान वृथा है।

"आज जो विद्यार्थी विदाई लेकर जा रहे हैं, उनका मुझे सदैव स्मरण रहेगा। भावावेश में मेरा मन आतुर है। यह सोच कर मन को धीरज बंधाया है कि यहाँ से पढ़कर जानेवाले छात्रों को अपने जीवन में अब कुछ करना है। विवेकानन्द ने मुझे बताया कि वह आगे आयुर्वेद की शिक्षा लेने काशी जाएगा। भास्कर भी विवेक से साथ काशी जाकर ज्योतिष शास्त्र का अध्ययन करना चाहता है। मैं उनके भावी जीवन के लिए मंगलकामना करता हूँ। कामेश्वर अपना पुरोहिती का पुश्तैनी कार्य करेगा। आशा है कि वह अपने यजमानों को सही दिशा दिखायेगा, उन्हें किन्हीं आडम्बर या वहम में डाल कर अपनी जीविकोपार्जन नहीं करेगा।

"रामराम बरदोवा जाकर शंकरदेव के साथ अपना जीवन जीना चाहता है। इससे यह लाभान्वित ही होगा और शंकरदेव को भी अपना एक बालसखा सहयोगी के रूप में मिल जाएगा। अन्य छात्रों की अपनी-अपनी योजनाएँ हैं। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि सभी अपने-अपने भावी जीवन में सफल हों।

"अन्त में शंकरदेव के बारे में कुछ कहना चाहूँगा। वर्तमान परिस्थितियाँ संकेत कर रही हैं कि सम्प्रति यह अपना राज्यभार सँभालते हुए गृहस्थाश्रम में प्रवेश करेगा। किन्तु मेरे मन में दृढ़ विश्वास है कि यह केवल इतने भर के लिए इस धरती पर नहीं आया। इसकी रचनाधर्मिता के गुणों के उदाहरण मुझे अनेक बार मिले हैं। अभी इसका मन अपनी प्रथम रचना के रूप में 'हरिश्चन्द्र उपाख्यान' लिखने का है। आशा है कि यह इसे शीघ्र प्रारम्भ कर पूरी करेगा।

"आप लोग देखियेगा, शंकरदेव भविष्य में अनेक ग्रन्थों की रचना करने के साथ अन्य क्षेत्रों में भी काम करेगा। मेरी बात को सभी याद रखें, यह एक दिन समाज और देश के लिए ऐसा कुछ करेगा जिससे इसका ही नहीं, इसके परिवार, सहपाठियों और गुरु के नाते मेरा नाम भी उजागर होगा। ईश्वर इसे शत आयु से अधिक जीवन दें, यह मेरा आशीर्वाद है। पिता की भाँति गुरु के लिए भी इससे बढ़कर प्रसन्नता की और कोई बात नहीं हो सकती कि उसका पुत्र या शिष्य उससे भी आगे बढ़कर जीवन में कोई उपलब्धि प्राप्त करे। मैं तुम सबके भावी जीवन के लिए मंगल कामना करता हूँ।"

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चिह्न-यात्रा नाट्य

गुरुकुल से लौटने के बाद शंकरदेव अपनी पारिवारिक शाक्त परम्परा के विपरीत वैष्णवता की बात किया करते थे। उन्होंने अपने कक्ष में विष्णु-मूर्ति स्थापित कर ली। एक दिन खेरसुती के कक्ष में जयन्त, माधव आदि कुटुम्बियों के संग शंकरदेव भी बैठे थे। बातों-बातों में माधव ने कहा, "तुम हरदम विष्णु के गुणगान करते रहते हो। विष्णु में ऐसा क्या है ? हमारे परिवार में पीढ़ियों से शाक्त-परम्परा चली आयी है। किन्तु तुम हरदम विष्णु और उनके वैकुण्ठ का गुणगान करते रहते हो। अपने किसी ग्रन्थ में एक स्थान पर तुमने ही लिखा है—

विष्णु बुद्धि करिं नन्दर पोक ।
देखाइल वैकुण्ठ ब्रजर लोक ।।

"हाँ, शंकर ! तुम्हीं तो कह रहे हो कि नन्द के पुत्र ने अपनी विष्णु बुद्धि से ब्रज के लोगों को वैकुण्ठ दिखाया था। तुम भी कृष्ण भक्त हो। क्या हमें वैकुण्ठ के दर्शन नहीं करवा सकते ?" जयन्त ने कहा।

"शंकर ! हमारे साथ बरदोवा की जनता भी इसे भली प्रकार समझना चाहेगी। तुम चित्रकार भी हो। वैकुण्ठ को चित्रित कर अभिनय के साथ विष्णु की ऐसी क्या लीलाएँ हैं, दिखाओ तो हम भी जानें।" खेरसुती ने भी अपने देवरों की बातों का अनुमोदन करते हुए कहा।

शंकरदेव ने इस पर कुछ पल मौन रह कर मनन किया। वे सोचने लगे, नाट्य-नृत्य और चित्रकला की कोई सीमारेखा नहीं। आगे बढ़ने के पहले मुझे भरत मुनि की नाट्य परम्परा के साथ कामरूप में प्रचलित अभिनय कला के अनुसार नाटक लिखना होगा। फिर उसका मंचन करने के लिए नृत्य-गीत-संगीत का समावेश और संयोजन करने के लिए साधन जुटाने होंगे।

इसके साथ ही इन कलाओं में अनुराग रखने वाले स्थानीय लोगों में से सुयोग्य व्यक्तियों को मानसिक रूप से तैयार कर, उनसे अभ्यास कराना होगा। ऐसा विचार कर उन्होंने कहा, "अच्छी बात है। मैं आप लोगों को विष्णु की वैकुण्ठलीला दिखाऊँगा। इसके लिए मुझे तैयारी करनी होगी। आप धैर्य के साथ समय की प्रतीक्षा कीजिये।"

शंकरदेव वैकुण्ठलीला को सचित्र, नृत्य-गीत-संगीत और अभिनय के साथ दिखाने का मन ही मन संकल्प कर इसकी तैयारी में जुट गये। अपने कलाप्रेमी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चचेरे भाई जगतानन्द से इस विषय पर उनका लम्बा विचार-विमर्श चला।

शंकरदेव ने कहा, "जगतानन्द ! कितने ही दिनों से मेरे मन में यह बात है कि दृश्य और श्रव्य द्वारा वैष्णव नामधर्म का प्रचार करना चाहिये। घर वालों का आग्रह देख, विष्णु की सप्त वैकुण्ठ की लीलाएँ पट पर चित्रित कर, नृत्य-गीत-संगीत और अभिनय के साथ दिखाना होगा। इससे साधारण लोग भी लाभान्वित होंगे। इसमें देवताओं के मुख से हम संस्कृत में नहीं, साधारण जनता की भाषा में संवाद कहलवायेंगे।"

जगतानन्द ने जिज्ञासा प्रगट की, "क्या ऐसा करना प्रचलित नाट्य नियमों से विद्रोह करना नहीं होगा ? क्या जनता राम-कृष्ण या सीता-रुक्मिणी के मुँह से संस्कृत के वदले जनभाषा में संवाद सुनना पसन्द करेगी ?"

शंकरदेव ने समझाते हुए कहा, "ऐसा साहस नहीं कर पाने के कारण ही पालि-प्राकृत-अपभ्रंश भाषाओं में नाट्य साहित्य का विकास नहीं हो पाया। संस्कृत में काव्य के दो भेद हैं— श्रव्य काव्य तथा दृश्य काव्य अर्थात् नाट्य। दृश्य काव्य को श्रेष्ठ मानकर कहा गया है— 'काव्येषु नाटकम् रम्यम्।' नाट्य के फिर दो रूप हैं— रूपक तथा उपरूपक। रूपक को दस भागों और उपरूपक को अठारह भागों में विभाजित किया गया है। रूपक से उपरूपक कुछ निम्न स्तर का होता है। हम संस्कृत नाटकों से जो भी लेंगे उसे अपने अनुरूप बना लेंगे। मंचन के समय बीच-बीच में पड़ने वाली बाधाओं को हम गायन-वादन से दूर करेंगे।"

जगतानन्द ने फिर पूछा, "नाटक की भाषा क्या शुद्ध कामरूपी होगी ?"

"जगतानन्द ! नाट में श्रीकृष्ण और राम के मुँह से अपनी भाषा सुनकर भक्तों को देवभाषा जैसी अनुभूति होगी। अन्य पात्रों के संवाद भी कामरूपी में ही होंगे।" शंकरदेव ने विश्लेषित किया।

उन्होंने इस नाटक विधा का नामकरण किया--- चिह्न-यात्रा[1] अर्थात् पट की पृष्ठभूमि पर सात वैकुण्ठों का नाट। उन्होंने सोचा, इसके प्रदर्शन के वाद जनता की प्रतिक्रिया जाननी होगी। यदि वे इस विधा की ओर आकर्षित होते हैं तो ऐसे और नाट लिखकर मंचस्थ करने होंगे। उन नाटों को चिह्न-यात्रा की भाँति दीर्घ न कर एक अंकीय नाट विधा में रचना होगा।

मन में एक वार योजना बनी तो उसके कार्यान्वयन की तैयारियाँ शुरू हो गयीं। शंकरदेव ने क्षीरोद को बुलाकर रंग और मुखौटे शीघ्रातिशीघ्र वनाकर देने को कहा। देहिराम ताँती को सूत से एक थान मोटा कपड़ा बुनने को कहा।

---

1. चिह्न यात्रा : यह नाटक अप्राप्य है। शंकरदेव द्वारा बाद में लिखे गये दो अन्य नाटक 'जन्मयात्रा' और 'कंसवध' भी अप्राप्य हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गाँव के कुम्हार को बुलाकर माटी से लकड़ी की ढोलक जैसा तालवाद्य 'खोल'[1] गढ़कर देने को कहा। उन्होंने कुम्हार को समझाया, उसकी दाहिनी तरफ का मुँह सात अंगुल और बाँयी तरफ का मुँह तेरह अंगुल का होना चाहिये।

उधर शंकरदेव नाट्य रचना में लग गये। रचना में संस्कृत श्लोक, गीत, सूत्रधार भटिमा (स्तुति) और बीच-बीच में कुछ प्रहसन रखे गये। संस्कृत नाटकों की तरह उन्होंने अपने नाटक में नान्दीपाठ और सूत्रधार की भूमिका अलग-अलग नहीं रखी। उन्होंने दोनों कार्य एक ही सूत्रधार से कराने का निश्चय किया। उन्होंने सूत्रधार की भूमिका इस प्रकार रखी कि वही नान्दीपाठ करे, मंच पर रहकर नायक-नायिका तथा अन्य पात्रों के आगमन-निष्क्रमण का संकेत दे और उनके द्वारा न कहे जाने वाले संलाप की व्याख्या कर अभिनेता और दर्शक के बीच समन्वय स्थापित किये रखे।

नाट्य में ब्रह्मपुत्र उपत्यका में प्रचलित पुरातन ओजापाली, नागरानाम, कुशान गान, भारीगान आदि और संगीत के साथ संस्कृत की नाट्य पद्धति का संमिश्रण कर शंकरदेव एक नयी नाट्य विधा लोगों के सम्मुख प्रस्तुत करना चाहते थे। बचपन में बूढ़ा भूयाँ से सीखे नृत्य को काम में लाने का अब अवसर मिलेगा। विश्वास है कि इस नाट्य-प्रस्तुति का बरदोवा की जनता के साथ-साथ आसपास के गाँवों के लोगों के मन पर भी गहरा असर होगा। जनता चाहे तो इसे 'भाउना' अर्थात् भावों का विस्तार भी कह सकती है।

क्षीरोद रंग तैयार कर ले आया, मुखौटे भी कुछ दिनों में बनाकर दे देने को कहा। देहिराम ताँती के यहाँ से पट-वस्त्र बनकर जैसे ही आया, शंकरदेव के हाथों में स्फूर्ति आ गयी। सारी परिकल्पना उन्होंने पहले से सोच रखी थी। उन्होंने थान के सात हिस्से किये और पटों पर सन्त वैकुण्ठ— श्वेत विलास, शान्तनु विलास, पुष्प विलास, पंकज विलास, कनक दत्त, सनातन और गोलोक (वैष्णव कीर्तन) को चित्रित करने के लिए एक-एक पट को दीवार के सहारे टाँगा, और उन पर उनकी कूची चलने लगी। चित्रों में उपवन, सरोवर, स्वर्णघाट, लक्ष्मी, सरस्वती, विष्णु परिषद और विष्णु के अवतार और उनके मध्य विशाल कल्पवृक्ष के अंकन किये।

इसी बीच कुम्हार खोल बनाकर ले आया। उसके मुँहों पर चमड़ा चढ़ाया गया। उसे बजाकर शंकरदेव सन्तुष्ट हुए तो वैसे ही खोल और बनाने के लिए उससे कहा। जगतानन्द, रामराम, परमानन्द, गोविन्द, केताई, भीमा, लक्षण, दामोदर, कपिल, अनिरुद्ध, कलाधर, जगन्नाथ आदि स्थानीय लोगों से

---

1. खोल : यह असम के अलावा मणिपुर, बंगाल, उड़ीसा के लोकसंगीत-भक्तिसंगीत में भी प्रयुक्त होता है। शंकरदेव ने इसका प्रयोग सत्रिया नृत्यों में भी पखावज-मृदंग की भाँति किया।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ही अभिनय कराना था और वादन-नर्तन भी। इन नौसिखियों को सिखाकर तैयार करने का जिम्मा भी शंकरदेव पर ही था। उनके मन में विश्वास था कि हर व्यक्ति में एक कलाकार छिपा है, उसे जागृत करने की आवश्यकता भर है।

खोल पर शंकरदेव नयी ताल और स्वरलिपि रचने में तल्लीन हो गये। कुछ दिनों में और खोल बनाकर कुम्हार लाया तो उन्होंने सबसे पहले गोविन्द, कलाधर, भीमा, केताइ आदि को उसे बजाना सिखाया। गायन के लिए कपिल, अनिरुद्ध, कलाधर, जगन्नाथ को तैयार कर अभ्यास कराया।

नृत्य सीख रहे युवकों को अभ्यास कराने से पहले शंकरदेव ने समझाया, "भरत मुनि के नाट्य शास्त्र में नृत्य के चार विभाग हैं— दक्षिणात्य, आवन्ति, पांचाली और उड्र-मागधी। इन चारों में उड्र-मागधी प्राच्य प्रदेशों— अंग, बंग, कलिंग, उड्र, मगध, नेपाल, प्राग्ज्योतिष, विदेह आदि में प्रचलित है।" फिर उन्होंने आगे कहा, "नृत्य नाचना-कूदना-थिरकना मात्र नहीं होता। इसमें कथानुरूप हमारे मुख पर करुण, रौद्र, वीभत्स, हास्य आदि नौ रसों के भाव आने चाहिये। वाद्य की ताल के साथ नर्तक के पद संचालित होने चाहिये। इसी तरह नृत्य में हस्त-मुद्राओं के व्यवहार का बड़ा महत्त्व है। हमारे कामरूप में रचित 'कालिका पुराण' में धेनु, सम्पुट, प्रांजलि, विल्व, पद्मक, योनि, महामुद्रा आदि एक सौ आठ प्रकार की हस्त-मुद्राओं का वर्णन है। साथ ही इस पुराण में कितने ही प्रकार के कण्ठ-संगीत, यन्त्र-संगीत और नृत्यों का उल्लेख भी मिलता है। इन सम्मिलित क्रियाओं और वाद्य-ध्वनि के साथ पद संचालन को 'शास्त्रीय ध्रुपदी नृत्य' कहा जाता है। अब मैं तुम लोगों को टुकड़ों में नृत्य करके दिखाऊँगा, जिसका तुम लोगों को अभ्यास करना है। हाँ, एक बात यह भी समझ लो कि हमारे नृत्य-नाटक में जो किशोर या युवक नारी पात्र निभायेंगे, उनकी भाव-भंगिमा भी नारी सुलभ होनी चाहिये।"

गोविन्द, कलाधर, भीमा, केताइ ने शंकरदेव द्वारा सिखायी ताल-लिपि पर खोलों पर समवेत थापें देनी शुरू की। वातावरण में शंकरदेव की पदचाप के साथ वाद्यों की ताल-ध्वनि गूंजायमान होने लगी—

ताक	धिना	धेनि	दाओं
तात्ता	थिता	खिताताखि	ताओं
ताक	धिना	धेनि	दाओं
तात्ता	खिता	खिताताखि	ताओं
धिनातानि	तानिदाओ	खितातानि	तानिदाओ
खितातानि	तानिदाओ	खिताओताक	धेइ

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

धेइताता खिति दाओं ताखितिता खितिदाओं
ताखितिता खितिदाओ ताततात ताओऽऽ

अन्य एक दिन भरत मुनि के नाट्य नियमों के बारे में समझाते हुए शंकरदेव ने कहा, 'त्रैलोक्यस्यास्य सर्वस्य नाट्यं भावानुकीर्तनम्।' फिर कालिदास-भवभूति के नाटकों की बारीकियों की व्याख्या की। मंच पर कैसे बोलना है, कैसे खड़े रहना है– ये बातें बताने के लिए शंकरदेव ने अभिनेताओं को उनके पात्रों के बारे में समझाकर कहा, "नाट्यशास्त्र में अभिनय का सविस्तार वर्णन है। अभिनय के पांच प्रकार हैं– आंगिक, वाचिक, आहार्य, सात्विक और चित्राभिनय। नेत्र, मुख, हाथ, पैर आदि अंगों की चेष्टाओं या भावानुरूप संचालन को आंगिक अभिनय कहा जाता है। नटों तथा चरित्रों के पाठ-विधान को वाचिक अभिनय कहा जाता है। वाचिक रूप से ही एक पात्र दूसरे पात्र के साथ संवाद में प्रवृत्त होकर कथा को आगे बढ़ाता है। संवाद ही नाटक के प्राण होते हैं। इसी तरह आहार्य के अन्तर्गत सूत्रधार और अभिनेताओं द्वारा धारण किये गये वेश-भूषा और अलंकार आदि आते हैं। समुचित वेश-भूषा के अभाव में कुशल अभिनेता सीधी-सादी वेश-भूषा में भी अपने चरित्र को कुशलतापूर्वक रंगमंच पर निभा सकता है। सात्विक अभिनय में पुरुष तथा स्त्री पात्रों की विभिन्न चेष्टाएँ परिगणित की जाती हैं। सात्विक भाव सदा अव्यक्त होता है। वह रोमांच आदि द्वारा भावों तथा रसों का सहायक होता है। विभिन्न भावों के प्रदर्शन को ही सात्विक अभिनय कहा गया है। इन चार अभिनयों के अतिरिक्त नाट्यशास्त्र में चित्राभिनय की भी विस्तृत चर्चा है। उक्त चारों अभिनयों में ही इसका भी समावेश है। संक्षेप में विभिन्न परिस्थितियों में पात्रों द्वारा प्रदर्शित भावों को चित्राभिनय कहते हैं। यथा, वर्षा-धूल-धूप-लू आदि से हुए कष्ट का अभिनय पात्र मुख ढक कर या अन्यान्य भंगिमाओं द्वारा करते हैं।"

जगतानन्द ने पूछा, "शंकरदेव ! स्त्री पात्र कहाँ से आयेंगे ?"

शंकरदेव ने कहा, "हम स्त्री पात्रों का काम युवकों से करायेंगे। वे ही स्त्री रूप धरकर अपनी अभिनय कला का परिचय देंगे।"

रामराम को सूत्रधार बनाना तय कर उसे उसकी भूमिका का महत्त्व समझाते हुए कहा, "संस्कृत नाटकों में सूत्रधार और नटी नाटक और नाटककार का परिचय देकर मंच से सदा के लिए प्रस्थान कर जाते हैं। हमारा सूत्रधार एक संगी के साथ आयेगा जो मंच पर अन्त तक बना रहेगा। सूत्रधार एक प्रकार से कथावाचक की भाँति होगा जो साधारण दर्शकों को

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कथा और पात्रों का परिचय देते हुए नाटक को आगे बढ़ायेगा। संगी का काम उसका संग देना होगा।''

इसी बीच क्षीरोद लकड़ी के मुखौटे बना ले आया। शंकरदेव ने उन्हें हाथ में लेकर परखा, वजन में एकदम हलके थे। क्षीरोद ने पता नहीं किस पेड़ की लकड़ी से वे बनाये थे ! मुखौटों पर उकेरे हुए नाक नक्श, आँखों के छिद्र देखने में एकदम स्वाभाविक लग रहे थे। बस, उन पर रंग चढ़ाना शेष था। शंकरदेव ने कूची उठाई और उन्हें अनुरूप रंगों से रँगना प्रारम्भ किया।

गाँव के मध्य लकड़ी के पायों पर फट्टों का बीस हाथ गुणा दस हाथ नाप का ऊँचा मंच बनाया गया। मंच को तीन ओर से बाँस की खपचियों से बने बेड़े की आड़ों से घेरकर कपड़ों से सजाया गया। रंगकर्मियों को सजने सँवरने और अपना रूप विन्यास करने के लिए मंच के समीप एक कक्ष अलग से बनाया गया। सारी तैयारियाँ हो चुकीं तो रात्रि-प्रकाश के लिए मशालों की व्यवस्था की गयी। स्थान-स्थान पर केले के थाम गाड़कर उन्हें दीपों से सजाया गया। अभिनेताओं के चेहरों पर पात्रानुरूप भाव देने के लिए कुम्हार से कह कर तीन-चार प्रकार की मिट्टी और उसे रँगने के लिए क्षीरोद से विभिन्न रंग बनवाकर मंगवाए। रंगों को रूप-विन्यास में उपयोग करने के पहले उन्हें जानवर पर लगाकर परखा गया कि वे मानव शरीर के लिए हानिकारक तो नहीं।

मंच मशालों से प्रकाशित हो उठा। खेरसुती, जयन्त, माधव, हलधर, वनगयाँ, हरि, मनु आदि सब आये। बूढ़ा भूयाँ भी अपनी झुकी कमर पर बायां हाथ धरे, दाहिने हाथ में लाठी पकड़े खाँसते-खँखारते आ उपस्थित हुए। गुरु कन्दली को विशेष रूप से आमन्त्रित किया गया। सभी बेंत से बने आसनों पर बैठ गये। उनके बीच तिपाई पर बोटा में चूनेदानी के साथ ताम्बूल-पान रखे थे।

शंकरदेव ने नाट्यारम्भ करते हुए एकमेवाद्वितीय ईश्वर का ध्यान कर नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरत मुनि और अपने पिता कुसुमवर को स्मरण किया, उनके प्रति अपनी कृतज्ञता अर्पित कर 'श्रीमत् यशोदा सूत पूत कमले' गाकर वन्दना की। खोलों की समवेत ताल से आकाश गुंजायमान हो गया। गायन-वादन करने वालों ने अपने सिरों पर सुनहरे गोटे की पट्टी और तुलसी माला से सजी सामने से तिकोनी पगड़ी पहनी थी। कमर में धवल धोती और कन्धों पर रेशमी उत्तरीय शोभा दे रहा था। इसी वेष में रामराम सूत्रधार की गुरुतर भूमिका कर रहा था। खोल की ताल पर नान्दी गीत के गायन के साथ भटिमा (स्तुति) हुई।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गायन-वादन कर रहे शंकरदेव कब नारायण का रूप धारण कर फिर से मंचस्थ हुए, किसी को पता नहीं चला। सर्वजय गरुड़ का मुखौटा पहने था। नारायण रूपी शंकरदेव का नर्तन देख सभी अभिभूत थे। नित्य वैकुण्ठ के एक पट का प्रदर्शन हुआ। इस तरह सात दिनों तक चली चिह्न-यात्रा में सात बैकुण्ठों का विस्तारपूर्वक प्रदर्शन चला।

चिह्न-यात्रा नाट में गायन-वादन, नृत्य-संगीत, लेखन-निर्देशन सभी कलाओं के कर्ता-धर्ता शंकरदेव ही थे। सात दिनों में हजारों हजार लोगों ने इस अनुपम प्रस्तुति को देखा और सराहा। इससे नामधर्म का प्रचार गाँव-गाँव तक पहुँचा। इस चित्र-नाट को देखकर जनता शंकरदेव को देवतुल्य मानने लगी।

गुरु महेन्द्र कन्दली ने शिष्य को नारायण रूप में देखकर उन्हें नारायण का अवतार ही कह दिया। नाट्य-समाप्ति पश्चात् शंकरदेव गुरु के चरण-स्पर्श कर उनका आशीर्वाद लेने आगे बढ़े। गुरु कन्दली ने उन्हें रोककर कहा, "अब तुम स्वयं ऐसी स्थिति में पहुँच गये हो कि लोग तुम्हारा आशीर्वाद लें।"

शंकरदेव ने कहा, "गुरुदेव ! यह आप क्या कह रहे हैं। मैं आज जो कुछ भी हूँ, आपकी शिक्षा का पुण्य-प्रताप है। आपने ही मेरे ज्ञानचक्षुओं को प्रकाशित किया है।"

महेन्द्र कन्दली ने उनकी बातों से प्रभावित हुए बिना कहा, "तुम सचमुच प्रणाम के योग्य हो। तुम में जो गुण हैं, वे हम में नहीं। तुम देवतुल्य हो।"

कन्दली ने अपनी बात को स्पष्ट किया, "जानते हो ! नमस्कार किसे करना चहिये ? जो परपीड़ा का हरण करे। समस्त प्राणियों को शान्ति दे। जो पृथ्वी पर वरदान बनकर आये। नमस्कार उसे किया जाता है जो शक्तिशाली होता है। दुर्बल और कमजोर को कोई नमस्कार नहीं करता। मेरी दृष्टि में तुममें ये सारे गुण हैं।"

गुरु महेन्द्र कन्दली के वचन सुनकर शंकरदेव विनम्रता की मूर्ति बन गये। गुरु कन्दली के साथ रामराम, जगतानन्द, चतुर्भुज, रामसरस्वती, कविरत्न, विद्यारत्न आदि ने उन्हें प्रणाम किया। रामराम ने कहा, "आपको नमस्कार करने से हमारा ही लाभ होगा। आध्यात्मिक और वैज्ञानिक दोनों दृष्टियों से झुकने से व्यक्ति का अहंकार क्षीण होता है। झुकने के साथ हमारी गरदन भी झुकती है। गरदन के झुकने से मन में बैठा अहंकार भी क्रमशः क्षीण होता है। अहंकार के वशीभूत होकर ही हमारे मन में क्रोध, माया, लोभ, घृणा, ईर्ष्या जैसे नकारात्मक भाव पैदा होते हैं। अतएव, आप हमें आशीर्वाद दीजिये।"

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

राजपद तक

गृहसभा में गुरु कन्दली को विशेष रूप से आमन्त्रित किया गया। सभागार के एक कोने में लकड़ी के तख्त पर लगे गद्दे पर सफेद चादर बिछी थी। ईशान कोने में पूजा का स्थान था। दूसरे कोने में बड़ी-सी पीतल की ढक्कनदार शराइ रखी थी। शराइ पर तह करके रखे हुए फुलाम गमछे के दोनों छोर उत्तरीय की भाँति झूल रहे थे। दीवार पर कामरूपी संस्कृति की प्रतीक गोल झाँपी टँगी थी। उसके दोनों ओर देवी-देवताओं के चित्र लगे थे।

तख्त पर जयन्त दादा के साथ गुरु महेन्द्र कन्दली बैठे थे। सामने बेंत और काष्टासनों पर खेरसुती, माधव, हलायुध, शंकरदेव, जयन्त का पोता जगतानन्द, वनगयाँगिरि, रामराम आदि के अलावा राज्य की देखरेख करनेवाले हरिवरगिरि भूयाँ, बूढ़ा भूयाँ इत्यादि बैठे थे। उनके बीच चौकी पर पीतल के बोटा में ताम्बूल, पान, चूना और कटारी रखे थे।

जयन्त ने कूटे हुए ताम्बूल-पान की लुगदी मुँह में चुबलाते हुए पहले गला खँखारा, फिर बैठे-बैठे ही कहना प्रारम्भ किया, "आप सभी जानते हैं कि हम यहाँ एक विशेष निर्णय करने के लिए आये हैं। इस समय भूयाँ राज्य की स्थिति अच्छी नहीं। ब्रह्मपुत्र पार के भूयाँ राज्य की उत्तरी सीमा पर भोटिया और इस पार की पश्चिमी सीमा पर कछारियों का उत्पात सदैव चलता रहता है। आज चण्डीवर या कुसुमवर जैसा कोई योग्य शिरोमणि भूयाँ नहीं, जो इनकी नकेल कस सके। मैं भी अब बूढ़ा हो गया। मेरी इन्द्रियाँ शिथिल पड़ चुकीं हैं। शंकर अब पढ़-लिखकर इस योग्य हो गया है कि यह भूयाँ राज्य का भार सँभाले।"

शंकरदेव भलीभाँति समझ चुके थे कि सर्वसम्मति से उन्हें बरभूयाँ बनाना तय हो चुका है। मुझ पर मानसिक दबाव बनाने के लिए ही गुरुवर को बुलाया गया है। यह घरेलू सभा तो केवल औपचारिकता भर है। शंकरदेव का राज्यभार सँभालने का जरा भी मन नहीं था। उन्होंने खड़े हो सबको हाथ जोड़कर कहा, "आप लोग मेरे बदले भाई वनगयाँगिरि या जयन्त दादा के पौत्र और मेरे भाई जगतानन्द को राज्य का शिरोमणि भूयाँ क्यों नहीं बनाते ! ये सब भी पढ़े-लिखे हैं। इनमें से कोई भी इस पद के लिए कम योग्य नहीं। मेरा मन कुछ और काम करना चाहता है। वही मेरी रुचि है और जीवन का लक्ष्य भी। आशा है, आप लोग मेरे प्रस्ताव पर गम्भीरतापूर्वक विचार करेंगे।"

जयन्त ने कहा, "इस समय तुमसे उपयुक्त और कोई नहीं। यह

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बात यहाँ बैठे सभी लोग भलीभाँति जानते हैं।''

अब तक चुप बैठी खेरसुती ने थोड़ी नाराजगी से कहा, ''शंकर ! राज्य की वर्तमान विषम परिस्थिति में तुम कैसे ऐसी बात सोच सकते हो। तुमने तो रामायण पढ़ी है। भगवान् रामचन्द्र ने क्या राज नहीं चलाया। जनक को विदेह कहा जाता है। उन्होंने ईश्वर भक्ति में लगे रहकर भी निपुणतापूर्वक अपना राज्य चलाया। कान खोलकर सुन लो शंकर ! तुम अपने उत्तरदायित्व से इस तरह मुँह नहीं फेर सकते।''

दादी की बातें शंकरदेव के मन में तीर की तरह बिंध गयीं। वे कुछ क्षणों के लिए मौन हो गये। इसी बीच सभासद हरिवरगिरि भूयाँ बोले, ''शंकर, तुम्हारे ना कहने पर प्रजा में निराशा छाएगी। सभी तुम्हें ही शिरोमणि भूयाँ के पद पर देखना चाहते हैं।''

शंकरदेव ने मनन किया, वर्तमान परिस्थितियों से नहीं बचा जा सकता। अब भी अगर मैंने हाँ नहीं की तो प्रजा में गलत संदेश जाएगा। इस समय यही उचित होगा कि इनकी बात मान ली जाये। इससे राज्य के लोगों की सही दशा के बारे में अधिक अच्छी तरह जान पाऊँगा। सम्भव है कि इसमें भी ईश्वर की कोई सदिच्छा छिपी हो। यह सोचकर उन्होंने दादी के चरणों में प्रणाम कर कहा, ''आप मुझे आशीर्वाद दें कि मैं यह गुरुतर राज्य भार भली प्रकार सँभाल सकूँ।''

भूयाँ राज्य का राजकार्य जहाँ से चलता था उस स्थान को पूर्वजों के जमाने से 'कारखाना' कहा जाता था। नये शिरोमणि भूयाँ श्रीमन्त शंकरदेव वहाँ उपस्थित हुए। उनके साथ उनके ब्राह्मण मित्रों में रामराम, कण्ठभूषण, रामसरस्वती तथा अन्य सहपाठियों में सर्वजय, परमानन्द, बलराम, बलभद्र, गोविन्द, नारायण और मुकुन्द थे।

गुरु कन्दली ने शंकरदेव को राजगद्दी पर बिठाकर उनके सिर पर पगड़ी बांधी। बोटा में रखी सफेद पुष्पों की माला उनके गले में पहनायी। मस्तक पर तिलक लगाकर यजुर्वेद के श्लोकों से मंगलाचरण प्रारम्भ किया—

ॐ स्वस्तिनऽ इन्द्रोवृद्धश्र्श्रवाः स्वस्तिनः पूषाविश्ववेदाः ।। स्वस्तिनस्ताक्ष्योऽअरिष्ट नेमिः स्वस्तिनो बृहस्पतिर्द्दधातु ।।१।। पयः पृथिव्यांपयऽओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयोधाः ।। पयस्वतीः प्रदिशः सन्तुमह्यम् ।।२।। विष्णो रराटमसि विष्णोः श्रप्पत्रेस्तथो विष्णोः स्यूरसि विष्णोर्द्ध्रुवोसि ।। वैष्णमसिविष्णुवेत्वा ।।३।। अग्निर्देवता वातो देवता सूर्य्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रा देवतादित्यादेवता मरुतो देवता विश्वे देवादेवता

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बृहस्पत्तिर्देवतेन्द्रोदेवतावरुणो देवता ।।४।। द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष ग्वं शान्तिः पृथिवीशान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः ।। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः शान्ति सर्व ग्वं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सामाशान्तिरेधि ।।५।। विश्वानि देव सवितुर्दुरितानि परासुव ।। यद्भद्रन्तन्नऽआसुव ।।६।। एतन्ते देव सवितुर्यज्ञं प्राहुर्बृहस्पतये ब्रह्मणे ।। तेन यज्ञमवतेन यज्ञपतिं तेन मामव ।।७।। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः शुभ शान्तिर्भवतु सर्वारिष्टशान्तिर्भवतु ।।

शंकरदेव ने उठकर बड़ों को प्रणाम किया, फिर प्रजा को सम्बोधित कर एक श्लोक से अपना कथन प्रारम्भ किया–

ब्रह्मण्याध्याय कर्माणि सङ्गं त्यक्तवा करोति यः ।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ।।

"अर्थात् ब्रह्म को अर्पण कर अपनी आसक्ति का त्याग कर काम करें, जिस प्रकार सदैव जल में रहकर भी पद्म का पत्ता भीगता नहीं, उसी प्रकार संसार में रहते हुए भी पाप में लिप्त होने से बचना चाहिये।

"मैं इस गुरुतर कार्य के योग्य हूँ या नहीं, नहीं जानता। आप लोगों की आज्ञा को शिरोधार्य कर मैं यह भार वहन कर रहा हूँ। आपके आशीर्वाद और सहयोग से इस कार्य को सुचारु रूप से चलाने का पूरा प्रयास करूँगा।

"हमारे उत्तर-पूर्व में सुतिया राज्य, दक्षिण-पूर्व में आहोमों का शासन है। आहोम राज्य के पश्चिम में दिखौ नदी से लेकर हमारे दक्षिण में कपिली नदी तक कछारी राज्य है। हमारे पश्चिम में कमता राज्य है। ये सभी शक्तिशाली राज्य हैं। इन सब के बीच ब्रह्मपुत्र के दोनों किनारों पर हमारा भूयाँ राज्य है। हमें शक्तिशाली बनने के लिए आपसी एकता रखते हुए स्वावलम्बी बनना होगा। इसके साथ ही बरसात के समय नदियों में आनेवाली बाढ़, भू-कटाव और यहाँ के विषम मौसम से अपने बचाव के उपाय करने होंगे। इन सभी बातों पर हमें चिन्तन करना होगा।"

शंकरवर शिरोमणि भूयाँ के अभिभाषण से सभी के मन में नये उत्साह का संचार हुआ। खेरसुती और गुरु कन्दली तो भावविभोर हो गये। उन्होंने नहीं सोचा था कि शंकरदेव का अपने राज्य के बारे में भी इतना गम्भीर चिन्तन है।

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कामरूपी विश्वास

भारतवर्ष पर मुसलमानों का अधिकार हुए कोई ढाई सौ साल हो गये थे। वे एक हाथ में तलवार और दूसरे हाथ में धर्म-पुस्तक लेकर जनता पर अपना धर्म बदलने की जोर-जबरदस्ती करते रहे। इस्लाम की सही परिभाषा से हटकर उन आक्रान्ताओं ने सदैव अपनी मनमानी की। इस्लाम एकेश्वरवाद को मानता है। मतभेद इससे नहीं उपजता। मतभेद तब उपजता है, जब कोई दूसरे को भी अपने मतानुसार चलने के लिए जोर-जबरदस्ती करता है।

भारतीय शास्त्रों में एकेश्वरवाद के साथ द्वैतवाद का भी विस्तृत विश्लेषण है। किसी पर कोई वाद मानने के लिए जोर-जबरदस्ती नहीं, जिसको जो भाये, उसे अपने विश्वासानुसार माने। इस छूट के उपरान्त भी कर्मकाण्डी ब्राह्मणों का शिंकजा जनता पर कसा हुआ था। छूआ-छूत और जात-पाँत ने भारतीय समाज को विविन्न वर्गों में बाँट रखा था।

इन विषमताओं से पूर्वोत्तर का हिन्दू समाज भी नहीं बचा हुआ था। वहीं कामरूप के विशाल क्षेत्र में रहने वाली जनजातियाँ अपने प्राकृतिक धर्म-विश्वास पर चलती आयी हैं। किन्तु इनमें अन्धविश्वासों का बोलबाला था। शिक्षा का तो नितान्त अभाव था ही। इतना सब होने पर भी मुसलमानों द्वारा जीते गये अन्य देश जहाँ पूरी तरह इस्लाम को मानने लगे थे, परन्तु वैसी सफलता उन्हें धर्म-संस्कृति से गहरे रूप में जुड़े हुए भारतवर्ष में नहीं मिली।

वृहद् कामरूप के मध्य में स्थापित भूयाँ राज्य का विस्तार ब्रह्मपुत्र के दोनों किनारों पर था। इसके उत्तरी किनारे की राज्य-सीमा के पूर्व में सुतिया राज्य और दक्षिणी तट के दक्षिण-पूर्व में कछारी राज्य था, जिसके दक्षिण में जयन्तिया राज्य और पूर्व में बर्मा से आये आहोमों ने अपना राज्य स्थापित कर लिया था। आहोम राज्य के उत्तर-पूर्वी छोर पर छोटा-सा मटक राज्य था। भूयाँ राज्य का सीमावर्ती कामरूप राज्य पश्चिम में करतोया नदी तक विस्तृत था। इन सारे राज्यों और समस्त पर्वतीय अंचलों के सम्मिलित क्षेत्र को प्राचीन काल में कामरूप साम्राज्य कहा जाता था। उस सिमटे हुए छोटे-से राज्य को ही कालान्तर में कामरूप राज्य कहा जाने लगा।

कामरूप भी कालान्तर में कमता राज्य कहलाने लगा। क्योंकि कामरूप के देव वंशीय राजा सन्ध्या (सन् 1250-1270) ने अपनी नयी राजधानी प्राग्ज्योतिषपुर के बदले कमतापुर में बना ली। सन्ध्या की छठी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पीढ़ी में हुए दुर्लभनारायण (सन् 1330-1350) ने अपने राज्य का विस्तार (आज के उत्तरी बंगाल के) कोचविहार तक किया। इसके अन्तर्गत ही आज के रंगपुर (अब बांग्लादेश में) और जलपाईगुड़ी जनपद भी थे।

दुर्लभनारायण के बाद हुए उसके वंशज इन्द्रनारायण (सन् 1350-1365) से खेन वंशीय नीलध्वज ने कमता राज्य को अपने अधिकार में कर लिया। उसके पुत्र चक्रध्वज के बाद उसके बेटे नीलाम्बर ने कमतापुर पर शासन किया, परन्तु वह गौड़ प्रदेश के सुलतान हुसैन शाह द्वारा सन् 1498 में युद्ध में मारा गया और इस तरह खेन वंश का अन्त हो गया।

इन सभी राज्यों के पूर्ववर्ती काल में लगभग पाँच हजार वर्षों पहले यहाँ पराक्रमी राजा नरकासुर द्वारा शासित कामरूप साम्राज्य था जिसकी राजधानी प्राग्ज्योतिषपुर थी। पौराणिक कथानुसार नरकासुर को विष्णु का पुत्र माना जाता है। वह उनके वाराह अवतार में पृथ्वी का उद्धार करते समय दोनों के समागम से जन्मा था। भूमि-पुत्र होने के कारण वह भौमासुर भी कहलाया।

कामरूप साम्राज्य की सीमाएँ उत्तर में हिमालय, दक्षिण में बंगोपसागर, पश्चिम में मिथिला और पूर्व में बर्मा तक विस्तृत थीं। तिब्बत और भूटान भी इसी राज्य के अन्तर्गत थे। प्राचीन बृहत कामरूप में किरात संस्कृति थी। कामरूप में रचित कालिका पुराण में यहाँ की सीमा वर्णित है–

त्रिदशयोजन विस्तीर्णं दीर्घेन शत योजनम्
कामरूपम् विजानीहि त्रिकोणाकारमुत्तमम् ।।
करतोयां समाश्रिता यावद्दिक्करवासिनीम्
उत्तरस्यां कुञ्जगिरिः करोतोयात्तु पश्चिमे ।।
तीर्थश्रेष्ठ दिक्षु नदी पूर्वस्यां गिरिकन्यका
दक्षिणे ब्रह्मपुत्रस्य लाक्षाः संगसमाधिः
कामरूप इति ख्यातः सर्वसशिरेषु निश्चितः ।।

अनुमान ऐसा भी है कि कभी कामरूप साम्राज्य की सीमा उत्तर में कश्मीर तक सटी थी। कश्मीर के राजकुमार मेघवाहन के साथ कामरूप की राजकुमारी अमृतप्रभा का विवाह हुआ था। जो भी हो, नरकासुर के समय कामरूप में परशुराम तथा वशिष्ठ जैसे ऋषियों के आगमन से यहाँ की किरात संस्कृति उत्तर भारत की आर्य संस्कृति से प्रभावित हुई। इसके फलस्वरूप यहाँ विष्णु पूजा का प्रचलन हुआ।

पाँचवीं शताब्दी में हुए वर्मन वंशज भूतिवर्मन के बरगंगा में मिले

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शिलालेख में उसने अपने को 'परम भागवत' कहा है। इस शिलालेख में बासुदेव के साथ-साथ अगल-बगल में शिव और शक्ति की मूर्तियाँ भी उत्कीर्ण हैं। वस्तुतः प्राचीन कामरूप में वैष्णव तथा शैव दोनों मतों का अस्तित्व था।

किन्तु विष्णु पूजा पर यहाँ की कैरातज संस्कृति का प्रभाव पड़ा। विष्णु को भी यहाँ अघोर भैरव माना जाता है। यहाँ की मान्यता रही है कि बाल-गोपाल और नृसिंह भी अघोर भैरव ही हैं। यहाँ हयग्रीवमाधव विष्णु, मत्स्य विष्णु, माधव विष्णु, महावाराह विष्णु, वासुदेव विष्णु, पाण्डुनाथ विष्णु, अश्वक्लान्त विष्णु, जनार्दन विष्णु आदि नामों से विष्णु-पीठ हैं। इन पीठों में भी शाक्त-पीठों की भाँति वामाचार पद्धति से पूजा होती थी। ऐसी भी मान्यता रही है कि भैरवी चक्र की तरह विष्णु के भी साधना चक्र रहे हैं। विष्णु-पूजकों में भी अपने अलग-अलग सहस्रनाम, बीज-मन्त्र, सम्पुट-साधना, यन्त्र तथा मुद्रा-चिह्न रहे हैं। इसलिए विष्णु-पूजा में भी मछली चढ़ायी जाती थी।

उन किरातों के वंशज ही आज बोड़ो, कछारी, मिसिंग, सुतिया, राभा, तिवा, सोनवाल, डिमासा, कोच, गारो, मेस, धीमल, हाजोंग, नगा, कार्बी, मिजो आदि विभिन्न जनजातियों के नाम से जाने जाते हैं। इनमें मत्स्य, हंस, कबूतर, कछुवा, सूअर सभी भक्ष्य हैं। इस खाद्य रुचि का प्रभाव इनमें प्रचलित शैव, शाक्त और वैष्णव मतों पर भी पड़ा।

किरातों में लिंग रूप में शिव-पूजा का प्रचलन था। यहाँ के जनजातीय लोग शिव्राइ (शिव) को अपना पूर्वज मानते हैं। बोड़ो शिव को बाथौ कहकर पूजा करते हैं। विंभिन्न जनजातियाँ शिव की पूजा में मत्स्य-मांस-मदिरा चढ़ाया करती थीं। इसीलिए इन लोगों में शिव को विश्वेश्वर नहीं, तान्त्रिकों के अघोर भैरव रूपमें माना जाता है। ये पूजा के समय ढोल बजाते और नाचते-गाते हुए पशु-पक्षी की वलि देते थे। किन्तु शिव मन्दिरों में पशु-पक्षी पर किसी शस्त्र का प्रयोग करने के बदले उसकी गरदन मरोड़ कर बलि देने का प्रचलन रहा है। यहाँ धीरे-धीरे देवदासी प्रथा शुरू हुई। मन्दिरों में उन देवदासियों के नृत्य होते। इसके मुख्य केन्द्र हाजो, परिहरेश्वर और नेघेरीटिंग के मन्दिर थे। देवदासी का विवाह नहीं हो सकता था। यह प्रथा कालान्तर में व्यभिचार में बदल गयी।

भारत के पूर्वोत्तर में ही शाक्त पन्थ का उद्‌गम हुआ था, ऐसा कहा जा सकता है। यहाँ योनि-पूजा का प्रचलन सदैव रहा है। नीलाचल पहाड़ स्थित मन्दिर की देवी 'कामाख्या' नाम की व्युत्पति भी खासी जनजाति के शब्दों 'का माइ खा' से है। तान्त्रिक और शाक्त मत में योनि-पूजा के साथ-साथ कुमारी पूजा भी प्रचलित है। इसके साथ ही यहाँ सर्प-देवी मनसा की पूजा और शीतला-पूजा का प्रचलन भी रहा है। देवी-प्रतिमाओं के सम्मुख देवध्वनी नृत्य

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

होते हैं, जिनमें कभी-कभी बड़ी वीभत्स क्रियाएँ की जाती हैं; नर्तक कबूतर की गर्दन अपने दांतों से काटकर अलग कर उसका रक्तपान करते हैं। इनके अतिरिक्त तान्त्रिकों द्वारा ऐन्द्रजालिक विद्या, भौतिक विद्या के भ्रष्ट प्रयोग भी होते थे।

कामाख्या मन्दिर के दक्षिण में स्थित भैरवी मन्दिर, सदिया के ताम्रेश्वरी मन्दिर, जयन्तियापुर के जयन्ती मन्दिर के अलावा और भी कई देवी मन्दिरों में नरबलि दी जाती थी। बलि देते समय यह ख्याल रखा जाता था कि बलि दिये जाने वाले व्यक्ति की गरदन बलिवेदी पर ठीक दिशा में रखी जाए। बलि के बाद उसके कच्चे गरम रक्त को देवी को सही विधि-विधान से अर्पित किया जाए।

नरबलि के लिए अपनी इच्छा से तैयार व्यक्ति को भोगी कहा जाता था। समाज में तिरस्कृत या बहिष्कृत व्यक्ति को समझा-बुझाकर या फिर फुसला-ललचा कर भी भोगी बनने के लिए मानसिक रूप से तैयार किया जाता था। क्योंकि भोगी को एक वर्ष तक अपना मनचाहा कुछ भी करने, खाने-पीने की छूट होती थी। वह यदि किसी महिला से सहवास करने का इच्छुक होता, तब भी कोई बाधक नहीं बनता। इसके अतिरिक्त आत्मबलि, अपने शरीर से रक्तदान और अपने तन से मांस-पिण्ड देने का प्रचलन भी था।

देवियों की पूजा वामाचार अथवा तान्त्रिक पद्धति से करने के लिए ग्यारहवीं से चौदहवीं शताब्दियों के बीच कामरूप में 'कालिका पुराण' और 'योगिनीतन्त्र' नामक ग्रन्थ रचे गये। योनि-पूजा और कुमारी-पूजा की विस्तृत चर्चा योगिनीतन्त्र में मिलती है। कालिका पुराण में शबरोत्सव का वर्णन मिलता है जिसमें देव-नटियों, वेश्याओं आदि के साथ साधक रात्रि-जागरण करता था। अन्तिम रात्रि स्त्री-पुरुषों के गुप्तांगों के नामोच्चार सहित शृंगार-सज्जित रमणियों के अश्लील गीत गाये जाते थे।

योगिनीतन्त्र में पंच मकार आदि का विस्तृत वर्णन मिलता है। इसके अलावा कुब्जिका-तन्त्र, तन्त्र-चुड़ामणि, महानील-तन्त्र भी यहाँ लिखे गये।

शैव मत की एक शाखा में नाथपन्थी रहे हैं। नाथों को जोगी भी कहा जाता था। इन पर गुरु मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य गोरखनाथ का प्रभाव था। मत्स्येन्द्रनाथ स्वयं कामरूप आये थे। गुरु गोरखनाथ ऐसे व्यक्ति थे जिनका प्रभाव यहीं नहीं, भारतवर्ष के सभी क्षेत्रों में सभी वर्गों के लोगों पर पड़ा है। उनकी जन्मभूमि भी कामरूप ही थी। गोरखनाथ के जन्म-स्थान के बारे में बहुत-सी अटकलें चली आयी हैं। उनके द्वारा रचित गोरखवाणी के अलावा बाईस ग्रन्थ और बताये जाते हैं। गोरखवाणी में संकलित गीत इस बात का

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रमाण है कि उनकी भाषा कामरूपी थी। वे गीत न हिन्दी के हैं, न मैथिली के, न बांग्ला के, न ओड़िया के-- अपितु सम्पूर्ण रूप से उस समय प्रचलित कामरूपी (असमीया) के गीत हैं–

हसिबा बोलिबा रहिबा रंग ।
काम क्रोध न करिबा संग ।।
हसिबा बोलिबा गाइबा गीत ।
दृढ़ करि राखि अपना चीत ।।
हसिबा बोलिबा धरिबा ध्यान ।
अहर्निशि कथिबा ब्रह्म गियान ।।
हषै खेले न करे मन भंग ।
ते निश्चल सदा नाथ के संग ।।

गोरखनाथ से दीक्षा लेकर त्रिपुरा की महारानी मयनामति ने उन्हें अपना गुरु बनाया था। वहीं काम करनेवाला तथा उस कालखण्ड के रिवाज से अति निम्न समझा जानेवाला डोम हाड़ी भी उन्हीं का शिष्य था। रानी मयनामति ने डोम हाड़ी को अपना गुरुभाई मानकर सम्मान किया। इतना ही नहीं अपने पुत्र गोविन्दचन्द्र को उसका शिष्य बनने को कहा। गोविन्दचन्द्र वाद में हाड़ी सिद्ध के शिष्य गोपीचन्द के नाम से विख्यात हुए।

इसके साथ बौद्ध धर्म का प्रभाव भी यहाँ पड़ा। इस पन्थ में हिन्दू धर्म के कुछ देवी-देवताओं की पूजा भी होती है। बौद्ध धर्म के महायान पन्थ से निकले वज्रयान के वाममार्ग ने यहाँ अपना असर डाला। वज्रयान से ही सहजयान, कालचक्रयान, मन्त्रयान, तन्त्रयान, भद्रयान, उड्रयान आदि का उद्भव हुआ। इन विविध यानों का असर कामरूप में पहले से ही प्रचलित वाममार्ग पर और पड़ा।

भोग की लालसा में लिप्त तान्त्रिक वामाचारियों ने भी समाज में विशृंखलता और व्यभिचार को ही प्रश्रय दिया। ऐसे वातावरण में कुछ दिग्भ्रमित लोगों ने मिलकर यहाँ एक नया रातिखोवा सम्प्रदाय चलाया। रातिखोवा सम्प्रदाय के मूल आदर्श या लोकाचार वस्तुतः कैरातज ही थे।

उस समय के कामरूप में भक्ति थी ही नहीं। लोग नैतिक, आत्मिक और सांस्कारिक दृष्टि से कैरातज थे। ऐसी सामजिक परिस्थितियों में यहाँ नव-वैष्णववाद के सूर्य का उदय होना अपने आप में एक विस्मयकारी सुखद घटना ही तो थी।

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रातिखोवा सम्प्रदाय

अमावस्या की काली रात। चारों ओर घटाटोप अन्धकार। गहन वन के वीराने में जमीन से दो-तीन हाथ की ऊँचाई पर लकड़ी के खूँटों पर बना वर्गाकार चांग-घर। घर में कोई खिड़की नहीं। आने-जाने के लिए कम ऊँचे दो दरवाजे, जिनमें झुके बिना प्रवेश नहीं किया जा सकता। माटी का लेप की हुई मोटे सरकण्डों से बनी दीवारें। लकड़ी के मोटे फट्टों का बना फर्श। घर के पास ही एक पुराना पोखर। उसके चारों ओर खड़े ऊँचे-ऊँचे पेड़। वहाँ तक जाने के लिए पतली-सी पगडण्डी। पोखर के पास बने छोटे-छोटे घर।

घर के बाहर पत्थरों को जोड़कर बनाये गये चूल्हे के पास एक खूँटे से काले रंग का एक बकरा बंधा था। बाँस की जालीदार टोकरी में कैद एक सूअर छटपटा रहा था। एक बड़े बर्तन के थोड़े-से पानी में शाल, सिंघी, सेंग आदि छोटी-बड़ी स्थानीय मछलियाँ तड़प रही थीं। सब की सब काली। चूल्हे के पास जलाऊ लकड़ी, खाना बनाने के पीतल के बड़े बर्तनों के साथ केले के पत्ते रखे थे, साथ ही चावल, कुम्हड़ा, लौकी, कटहल, प्याज, लहसुन, हरी मिर्च, अदरक, सरसों तेल से भरा बाँस का चोंगा, खार[1], नमक, हल्दी आदि भी।

घर के भीतर चारों कोनों में सरसों तेल के चार दीपक जल रहे थे। दीवार से लगे तख्त पर किसी पोथी को आसन बनाकर उस पर करीब चालीस की वय का एक ओझा बैठा था। उसने काले रंग की धोती जैसा कोई वस्त्र कमर में लपेट रखा था। लम्बे काले केशों को काली डोरी से ही बांध रखा था। गले में हड्डियों और रुद्राक्ष की मालाएँ थीं। माथे पर लिपटे सिन्दूर के बीच बड़ा-सा काला टीका था। उसकी बगल में मद्य-पात्र रखा था। उसके सामने एक चौकी पर साँचिपात पर लिखी कोई पोथी रखी थी। उसके नजदीक दीप स्तम्भ पर भी एक दीपक जल रहा था। तख्त के सामने बनी वेदी पर मद्य का एक कलशा रखा था। वेदी के सामने फर्श पर अठरह स्त्री-पुरुष बैठे थे। पुरुषों के बदन पर लंगोटी जैसी धोती के सिवाय कोई वस्त्र नहीं था। सब की उम्र तीस और पचास के बीच थी। उनके सामने मद्य से भरे बाँस के चोंगे और पत्तों में मछली

---

1 खार : नमक के अभाव में कामरूपवासी (असमीया) केले के गाछों को जलाकर उसकी राख से बने 'खार' को नमक की तरह काम में लेते थे, जिससे बनी कहावत 'खार खोवा असमीया' आज भी प्रचलित है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

की नमकीन भजिया रखी थी। सभी मद्यपान के साथ बीच-बीच में भजिया खा रहे थे।

तख्त पर आसीन पुरुष ने वहाँ बैठे लोगों में जाने-पहचाने चेहरे देखे। उनमें एक जोड़ा पति-पत्नी का, शेष अपने विपरीत लिंगी मित्र के साथ आये थे। किसी अकेले पुरुष या स्त्री का प्रवेश उनके रातिखोवा सम्प्रदाय के नियमानुसार निषेध था।

ओझा ने पोथी का एक पात उठा कर अपनी आँखों के पास ले जाकर उसमें लिखा पद ऊँचे स्वर में पढ़ा—

मद्य मांसञ्च मुद्रा मत्स्यस्य मिथुनमेव च
मद्यपानेन मनुजो सिद्धिम् लभ्येत वै,
मद्यपानरता सर्वे सिद्धिम् गच्छन्तु पामरा..

उपस्थित लोगों ने अपने मद्यपात्र उठाकर हर्ष व्यक्त किया। इस पर ओझा ने उत्साहित होकर पोथी के दूसरे पात को पढ़कर फिर गुनगुनाया—

मांस भक्षणमात्रेण पुण्य गतिर्भवेत्,
मासाशिनः सर्वे पुण्यभोजा भवन्तिहि ।

ओझा के मुख से उच्चारित संस्कृत श्लोकों को सुनकर कोई भी सोचेगा कि वह महापण्डित है। उसने उच्च स्वर में आगे पढ़ा—

सोमधारा क्षरेत् षा तु ब्रह्मतन्त्रात् वराणने,
पीत्वानन्दमयीम् तां षः स एषः मद्यसाधक ।

मद्य-पात्र खाली होने के साथ वहाँ मद्य-सेवा में तत्पर युवती रिक्त पात्रों को फिर से भर देती। तीखे नाक-नक्श वाली बाला ने आँखों में काजल की मोटी लकीरें खींच रखी थीं। उसके रक्ताभ ओंठों पर, चबाये हुए ताम्बूल की लाली चढ़ी थी, कानों में बालियाँ लटकी थीं, कलाइयों में एकल चौड़े कंगन थे।

ओझा मन्त्र पढ़ता जाता और खाली होते मद्य-पात्र फिर से भरे जाते रहे। यह क्रम कितनी बार चला होगा, उन लोगों को भी नहीं पता।

घर के बाहर चार लोग ढोल, झाँझ, तुरही और शंख बजा रहे थे। चूल्हे के पास दो पुरुष और दो महिलाएँ खाना बनाने में लगी थीं। एक कम वयसीय हट्टा-कट्टा काला-कलूटा युवक अपने हाथ में तेज धार का दाव लिये बकरे को

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

काटने के लिए तत्पर खड़ा था।

पहले बकरे को खींचकर उसके सामने लाया गया। उसने बकरे की गरदन काठ से बने फँदे में फँसायी और दाव के एक ही झटके से उसके सिर को अलग कर दिया। मुण्ड उछल कर दूर जा गिरा। बकरे के बदन से निकलती गरम खून की धार से एक युवती ने पात्र भर लिया। बकरे का धड़ थोड़ी देर तड़प कर शान्त हो गया। इसी तरह रक्त के दो पात्र भरे गये। सूअर को मारा गया। दूसरी ओर बैठी महिलाएँ लाल कुम्हड़े आदि तरकारियों के साथ ही मछलियों को छीलने-काटने में अपनी दक्षता दिखा रही थीं। इसके साथ ही बकरे और सूअर के मांस के छोटे-छोटे टुकड़े किये गये। भात पक जाने पर चूल्हे की लपटों पर चढ़े बर्तन में मत्स्य और मांस के अलग-अलग झोलदार व्यंजन बनाये गये।

भीतर ओझा का मन्त्र-पाठ सतत चल रहा था। उसने पोथी का और एक पात उठाया, आँखों के नजदीक ले जाकर उच्च स्वर में पाठ किया—

आशा-तृष्णा-जुगुप्सा-भय-विशद-घृणा मान-लज्जाभिषङ्गाः ।
ब्रह्माण्णविष्ट मुद्रा परा सुकृतिर्ण जपास्यामामः समस्तात् ।।

हमारे बीच कोई गोपनीयता नहीं। जीवन के गूढ़ तत्त्व प्राप्त करने के लिए हमें एक शरीर, एक प्राण और एक मन बनना होगा। इसके अलावा सब बातें आधारहीन हैं। इससे हर्षित होकर सभी ने एक साथ अपने मद्य पात्र हाथ में उठाये और चिल्ला कर कहा, "हमारे मध्य कोई भेद नहीं। कोई गोपनीयता नहीं। स्त्री-पुरुष का कोई अन्तर नहीं।" बाहर ढोल बज रहे थे। चांग-घर में दो युवतियाँ खड़ी होकर नाचने लगीं। वहाँ बैठे सभी स्त्री-पुरुषों ने हर्ष ध्वनि कर उनका साथ दिया।

चूल्हे की आग बुझा दी गयी। खाना बनकर अन्दर आ गया। उबले चावल और पके मांस-मछली की गन्ध से मदिरा से मदमस्त लोगों की भूख और जाग उठी। सब पंगत में बैठ गये। सामने केले के पत्ते बिछा भात-मत्स्य-मांस परोसा गया। मद्य-पात्र फिर से भरे गये।

ओझा ने उच्च स्वर में कहा, "हमारे रातिखोवा सम्प्रदाय में कहावत है, 'शाल सिंघी सूँआर, एटा तीनी मुक्तिर दुआर।' (अर्थात् शाल और सिंघी मछलियाँ तथा सूअर, ये ही मुक्ति के तीन द्वार हैं।) सो भक्त जनो ! इनसे बना स्वादिष्ट भोजन आपके सामने परोसा हुआ है। अब आप खाना शुरू करें।"

भोजन के साथ जल की आवश्यकता कोई अनुभव नहीं कर रहा था।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

खाने के बाद अपना बचा-खुचा उठाकर सब बाहर ले गये। लौटते समय अपने लोटों में पानी ले आये, ताकि प्यास लगने पर उठना न पड़े। सभी फिर से अपने स्थानों पर आकर बैठ गये, खाना बनाने और वाद्य बजाने वाले भी।

मद्य की मादकता सबके सिर पर चढ़कर नाच रही थी। सभी उतेजित थे। नशे से ओझा की आँखें अंगारों जैसी लाल हो गयीं। उसने पोथी का एक पात फिर उठाया और पढ़ना आरम्भ किया—

सहस्रारोपरि बिन्दो कुण्डलात् मिलनात् शिवे,
मैथुनं परमं दिव्यं यतीनां परिकीर्तितं ।

इसके साथ श्रोताओं में पान-ताम्बूल खाने का सिलसिला चलता रहा। ओझा भी पूरी मादकता में था। अब वह गाने लगा—

मैथुनं महेशानि निविर्ये प्रवल कलो
स्वकीयं केवलं ज्ञेयं सर्वदोष विवर्ज्जितः ।

इसके साथ ही वहाँ बैठे वाद्य-वादकों ने जोर से अपने-अपने वाद्य बजाए। मद्य और गरिष्ठ भोजन से लोगों की आँखे बोझिल हो गयीं। किन्तु उत्तेजनावश नींद को दूर भगाये रखा।

ओझा ने उपस्थित लोगों को सम्बोधित कर कहा, ''यहाँ किसी अनजान व्यक्ति का प्रवेश वर्जित है। हम यहाँ गुप्त परमार्थ लाभ के लिए पंचमकार— मद, मांस, मुद्रा, मैथुन और मत्स्य से साधना करने आये हैं। यहाँ कोई व्यवधान स्वीकार नहीं। इस साधना के लिए एकान्त और एकाग्रता नितान्त आवश्यक है।

''मेरे सामने जल रहे दीपक के प्रतीकों को आप समझिये। इसका माटी का दीया योनि का और इसमें जल रही बत्ती लिंग का प्रतीक है। हम में नारी-पुरुप में कोई भेद नहीं। हमारा एक गोत्र, एक समाज है। हम में कोई जातिभेद नहीं, ब्राह्मण, शूद्र, म्लेच्छे, युवा, वृद्ध का भी भेद नहीं। हम सभी गुरु, सभी भक्त हैं। हम एक साथ खाते हैं, एक वस्तु खाते हैं और एक साथ सोते हैं। हमारे लिए पाप नहीं, पुण्य नहीं, धर्म नहीं, अधर्म नहीं, हमारे सभी क्रियाकलाप गुप्त हैं। यहाँ उपस्थित भक्त-भक्तिनों में से अब कोई बाहर नहीं जा राकता। ये वातें आप सव भली प्रकार जानते हैं।

''हमारे सम्प्रदाय के लोग रात के अन्धेरे में जो तृप्ति पाते हैं उसे सूरज-चन्द्रमा और दीपक के प्रकाश में नहीं प्राप्त किया जा सकता। जीवन

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के सारे तथ्य गहन अन्धकार में छिपे हैं। हम शरीर का सर्वसुख भोगेंगे, तभी हमारी आत्मा तृप्त होकर युगों-युगों तक स्वर्ग में वास करती हुई, वहाँ भी स्वर्गीय आनन्द उठायेगी। संसार के सभी भोगों से तृप्त होने पर ही मनुष्य की आत्मा उन्मुक्त हो अपनी चरम अवस्था को प्राप्त होती है।''

ओझा ने अपना कथन पूरा कर मद्य परोसने वाली युवती को अपनी ओर आने का इशारा किया। इस संकेत को सभी समझते थे। इसके साथ जलते दीपक फूँककर बुझा दिये गये। घर में घुप्प अन्धकार हो गया। सभी स्त्री-पुरुष अपने बदन से मानो बोझ उतार निर्वस्त्र हो गये। उस गहन अन्धकार में किसी को नहीं पता कि कौन किसके साथ है।

उस समय उनके जीवन का एक ही लक्ष्य था– भोग ! भोग !! केवल मात्र भोग !!! उनके लिए भोग ही एक दूसरे की सेवा थी ! पंचमकार कर्म और स्त्री-पुरुष का आपसी शारीरिक सेवन ही उनके लिए गूढ़ तत्त्व था ! यह रतिपूर्ण कार्यकलाप ही उनकी पूजा-सेवा थी ! यही था, उनका विकृत 'रातिखोवा' सम्प्रदाय !

सूर्योदय के पहले अन्धेरे-अन्धेरे ही अपने वस्त्र पहन सब वहाँ से निकलकर पास ही बने छोटे-छोटे घरों में जाकर सो गये, रात की नींद पूरी करने। कोई भी आखिर तक यह नहीं जान पाया, कौन किसके साथ था, और न ही यह जानना उनके लिए आवश्यक था !

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शान्तिवार्ता से सृजनपथ तक

सीमान्त क्षेत्र पर हो रहे कछारियों के हमलों के समाचार शिरोमणि भूयाँ शंकरवर बरभूयाँ तक बार-बार आ रहे थे। कछारियों ने भूयाँ सीमा के खेतों में खड़ी धान की पकी फसल काट ली, गाय-बैलों को हाँक ले गये। सीमान्त गाँवों में आगजनी की। घरों में घुसकर लूटपाट की। उन्हें रोकने की कोशिश की गयी तो तकरार लड़ाई में बदल गयी। तीन दिनों से दोनों राज्यों के सैनिक आपस में लड़कर कट-मर रहे थे। इस पर विचार करने शंकरवर बरभूयाँ ने अपनी मन्त्री परिषद की आपात्कालीन बैठक बुलायी।

जयन्त ने वस्तुस्थिति का ब्यौरा दिया, ''कछारी उपद्रवों के कारण हमारा भूयाँ राज्य कभी निरापद नहीं रहा। सीमा पर सदैव अशान्ति बनी रही। चण्डीवर के समय जब से भूयाँ राज्य बना है, हम कछारी राज्य का दंश सहते आये हैं। चार पीढ़ियाँ हो गयीं। दोनों राज्यों के राजा बदले परन्तु कछारियों की मानसिकता नहीं। अब हमें इस ओर कोई कठोर निर्णय लेना होगा।''

रामराम इस विषय पर मौन रहा। राजकाज की बातों में कोई राय देने में अभी उसे अपनी बुद्धि अपरिपक्व लगी।

शंकरवर ने अपना मन्तव्य रखा, ''कछारी समस्या को युद्ध के बदले राजनीतिक तरीके से सुलझाया जाए तो क्या ठीक नहीं होगा ! यदि हमारा शान्ति प्रयास सफल हो जाता है तो युद्ध टाला जा सकता है। प्राचीन कामरूप के विभिन्न राज्यों के राजाओं को आपसी एकता के महत्त्व को समझने की आवश्यकता है। सभी राज्य लिप्सा और दम्भ के वशीभूत हैं। यह दुःख और चिन्ता की बात है, इस बात पर कोई विचार नहीं कर रहा।

''भारत के इस उत्तर-पूर्वांचल में वास कर रही विभिन्न जातियों की भाषाएँ, रहन-सहन अलग-अलग हो सकते हैं, परन्तु हमारी सम्पर्क भाषा कामरूपी है। ब्रह्मपुत्र उपत्यका में बसे लोगों को एक सांस्कृतिक मंच पर लाना होगा। राजनीतिक सम्बन्ध कुछ समय के लिए स्थिर रहकर टूट सकते हैं, लेकिन सांस्कृतिक एकजुटता चिरकाल तक अक्षुण्ण रहती है। इसके दीर्घगामी फल वर्तमान पीढ़ी के साथ भावी पीढ़ी को भी मिलते हैं।

''इसलिए मेरा प्रस्ताव है कि कछारी राजा को मेरी ओर से एक पत्र लिखकर भेजा जाए। इसे लेकर जाने के लिए जगतानन्द और वनगयाँगिरि के नाम प्रस्तावित करता हूँ। अब निर्णय आप लोगों पर छोड़ता हूँ।''

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हरिवरगिरि भूयाँ ने कहा, "यह प्रस्ताव अच्छा है। यदि शान्तिवार्ता से बात बन जाए तो इससे अच्छा और क्या होगा ! मेरी समझ में पत्रवाहक के रूप में जगतानन्द को भेजना ज्यादा उपयुक्त होगा। इसने अपने दादा जयन्त से राजनीति सीखी है और सुदर्शन व्यक्तित्त्व का धनी होने के साथ-साथ साहसी तथा वाक्पटु भी है। वनगयाँगिरि राजनीतिक मामलों में अभी अपरिपक्व है। दूत का काम केवल संदेशवाहक का ही नहीं होता, उसे समय और परिस्थिति के अनुसार अपने राज्य का प्रतिनिधित्व भी करना पड़ता है।"

धवल रेशमी वस्त्र पर शंकरवर ने मोती जैसे अक्षरों में पत्र लिखकर, उसके दोनों छोरों पर बंधी बेंत को लपेटकर लाल डोरी से बांधा। फिर बड़े जतन से नक्काशीदार बाँस की नलिका में रखकर जगतानन्द के सुपुर्द किया।

कछारी राजा के पास जगतानन्द के आने की अग्रिम सूचना भेज दी गयी। राजसभा में पहुँचने पर उसका हार्दिक स्वागत हुआ। उसके व्यक्तित्व और बोलचाल के तौर-तरीके ने कछारी राजसभा को प्रभावित किया। राजा ने पत्र खोलकर स्वयं पढ़ा—

हैड़म्बवर्मन राजवंश के उंत्तराधिकारी राजन् को भूयाँ राज्य के शिरोमणि भूयाँ शंकरवर का सादर प्रणाम। आपके कुशलक्षेम का आकांक्षी हूँ। सम्पूर्ण उत्तर-पूर्व अंचल में एक मात्र आपका राजवंश ही है जिसे अपने नाम के साथ नारायण उपाधि जोड़ने का गौरव प्राप्त है। आपके ही वंश में जन्मी हिड़िम्बा ने हस्तिनापुर के द्वितीय पाण्डव भीम से विवाह सम्बन्ध स्थापित कर किरात और आर्य सभ्यता को एक किया। उनके वीर पुत्र घटोत्कच के आप वशंज हैं।

आज भारतवर्ष के इस पूर्वोत्तर अंचल के पूर्व में परशुरामकुण्ड से लेकर पश्चिम में करतोया नदी की सीमा तक अनेक छोटे-बड़े राज्य पनप गये हैं। पूर्वी सीमा पर पड़ोसी ब्रह्म देश से आये हुए आहोमों को अपना राज्य स्थापित किये लगभग ढाई सौ वर्ष हो गये। हमारे पूर्वज भी पश्चिम के कन्नौज से आकर यहाँ बसे। यहाँ जो भी बाहर से आया उसने अपने आपको यहाँ की मिट्टी के रंग में रँग लिया, यहाँ की संस्कृति से समरूप कर लिया। आपके वंशज तो हमारी तरह बाहर से नहीं आये वरन् न जाने कितनी ही शताब्दियों से यहीं रह रहे हैं।

हमारा पूरा अंचल आज एक सन्धिकाल से गुजर रहा है। हमें बार-बार पश्चिम के मुसलिम आक्रान्ताओं के आक्रमणों से जूझना पड़ा है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कामरूप नरेश पृथु के युग से शुरू हुए विदेशी आक्रमण अभी रुके नहीं। पहले मोहम्मद बिन बख्तियार ने हमारे बृहत कामरूप पर आक्रमण किया, जो पृथु के हाथों मारा गया। दूसरा आक्रान्ता सुलतान गियासुद्दीन भी पृथु के हाथों मारा गया। अगले वर्ष ही दिल्ली के सुलतान अल्तमश के बेटे नसीरुद्दीन ने कामरूप पर हमला बोल दिया। इस बार राजा पृथु उसके हाथों मारे गये। फिर देव वंशीय सन्ध्या के समय उजबेक हमलावर इख्तियारुद्दीन मलिक तुघ्रिल खाँ ने हम पर आक्रमण किया। उस आक्रमणकारी को राजा सन्ध्या ने परास्त किया।

आज भी हमारे पूरे पूर्वांचल की स्थिति निरापद नहीं। भारतवर्ष की पश्चिमी सीमा भी सुरक्षित नहीं। आये दिन विदेशी लुटेरे उस सीमा से भारतवर्ष पर आक्रमण करते रहते हैं। वहाँ से भारत में आनेवाले आक्रमणकारियों का ही असर था कि कामरूप पर चार बार आक्रमण हुए। दिल्ली के मुसलमान शासक हम पर फिर कब आक्रमण कर बैठें, कुंछ नहीं कहा जा सकता। हमारे पड़ोसी गौड़ प्रदेश का नवाब भी अपनी सैन्य शक्ति बढ़ा रहा है। दिल्ली और गौड़ के शासक हमसे ज्यादा शक्तिशाली और रणकुशल हैं। उनके पास सुसज्जित अश्वारोही सेना है।

हम अपने छोटे-छोटे मतभेदों में उलझकर आपस में लड़ रहे हैं। ये विदेशी हमलावर यही तो चाहते हैं कि हममें कभी एकता स्थापित न हो। हे राजन् ! मैं आपके गौरवशाली वंश की परम्परा का उल्लेख करते हुए निवेदन करना हूँ कि हमारी फूट का फायदा उठाने का अवसर विदेशियों को न दिया जाए। इनका सामना करने का एकमात्र शस्त्र है, हमारी एकजुटता और सहअस्तित्व।

हमारे राज्यों में कोई मतभेद यदि है भी तो हम आपस में बैठकर सुलझा सकते हैं। आपके कछारी वंश के प्रति हम भूयाँ राज्य के समस्त कायस्थ वंशी श्रद्धा रखते हैं। पूर्ण विश्वास है कि एक शक्तिशाली नृपति होने के नाते आप इन सारी बातों पर ध्यान देंगे। इति।

आपका शुभाकांक्षी,
शंकरवर बरभूयाँ

पत्र को पढ़कर कछारी राजा अभिभूत हो गया। उसने जगतानन्द से कहा, "मैं शिरोमणि भूयाँ शंकरवर की बातों से सहमत हूँ। उनके युक्तिपूर्ण तर्कों से प्रभावित हुआ। सच है, हमारे पूरे उत्तर-पूर्वांचल को पश्चिम के यवन आक्रमणकारी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

निगल जाने की ताक में घात लगाये बैठे हैं। हमें आपसी मतभेदों को भुलाकर विदेशी आक्रान्ताओं का सामना करने के लिए एकता स्थापित करनी होगी। यही वर्तमान समय की मांग है। आप अपने राजा को मेरी ओर से संदेश दीजियेगा कि अब हमारी ओर से कोई अप्रिय घटना नहीं होगी।''

कछारी राजा ने जगतानन्द को हाथी-दांत, मृग-छाल जैसे अनेक वनज तथा अन्यान्य उपहार देकर विदा किया, स्वयं चलकर नाव में बिठाने के लिए कपिली के घाट तक आया।

जगतानन्द से सब समाचार सुनकर शंकरवर मन में आश्वस्त हुए कि बुद्धि कौशल से भावी युद्ध टल गया और आपसी सम्बन्धों की मधुर शुरुआत हो गयी। उन्होंने भाई का अभिनन्दन कर कहा, ''जगतानन्द ! तुम्हारी सुझबूझ से ही यह कार्य हो सका। तुम्हारी जितनी प्रसंशा की जाए कम है।''

इसके साथ शंकरवर ने अपने भाई वनगयाँगिरि और रामराम को प्रजा-पालन का भार देकर उनका पर्यवेक्षक जगतानन्द को बनाया।

राजकार्य से थोड़ी फुर्सत मिली तो शंकरदेव का मन कुछ रचने के लिए आतुर हो उठा। उनके मन में शुरू से ही यह विचार था कि वे जो भी लिखेंगे, संस्कृत में न लिखकर मातृभाषा में ही लिखेंगे। संस्कृत को समझनेवाले कितने हैं। उनका मन इस बात से भी क्षुब्ध था कि संस्कृत पढ़े पण्डितों ने इस भाषा को अपनी रोजी-रोटी का साधन मात्र बना लिया। संस्कृत ग्रन्थों में लिखे तथ्यों को अपनी अनुरूपता के अनुसार तोड़-मरोड़ कर जनता के सामने व्याख्यायित किया। इससे एक भ्रम का ही सृजन होता है। मूल बात लोगों तक नहीं पहुँच पाती।

गुरुकुल में जब से उन्होंने मार्कण्डेय पुराण में हरिश्चन्द्र उपाख्यान पढ़ा, तब से उनकी सत्यनिष्ठा और सत्य के लिए किये त्याग की बातें उनके मन को झकझोर रही थीं। उसे लिखने के लिए वे मचल उठे। माधव कन्दली द्वारा रामायण में प्रयोग किया गया झुमरि छन्द उनके मन को भाया। उन्होंने काव्य छन्दों के साथ पिंगल शास्त्र पढ़ा था। उन्होंने सोचा, पहले से ही क्यों तय किया जाए कि किस विशेष छन्द में रचना करनी है। काव्य रचते हुए दुलड़ी, छवि, पयार आदि जो भी छन्द उपयुक्त होंगे, रचना स्वतः उसमें लिखी जाएगी।

इसके सिवाय माधव कन्दली द्वारा कामरूपी भाषा में रचित रामायण में संस्कृत के तत्सम शब्दों का तद्भव रूप में किया गया प्रयोग भी उन्हें उपयुक्त लगा। उन्होंने मुग्ध के स्थान पर मुगुध का प्रयोग किया है। इसी तरह

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

धर्म को धरम, मूर्ख को मुरुख, दर्शन को दरशन लिखा है। ये शब्द साधारण लोगों को सरलतापूर्वक समझ में आ जाते हैं।

ऐसा चिन्तन कर शंकरदेव लिखने बैठ गये। उनके मन में हरिश्चन्द्र उपाख्यान का कथानक उतरा रहा था। मसि-दवात में डूबी उनकी कलम से साँचीपात पर हरि-वन्दना के रूप में प्रथम पद प्रकट हुआ—

नमो नारायण निरंजन जगजीव ।
पुराण पुरुष ऋषिकेश सदाशिव ।।
मार्कण्डेय पुराणर कथाते प्रधान ।
पयारे रचिबो हरिश्चन्द्र उपाख्यान ।।
जय जय हरिश्चन्द्र नृपति तिलक ।
राजसूय यज्ञ यजि त्रिदश देवक ।।

मन में भावों का ज्वार उठ रहा था। राजा हरिश्चन्द्र अपार विपदाओं को सहकर भी अपनी सत्यनिष्ठा और अपने आराध्य विष्णु के प्रति भक्ति-विश्वास में कमी नहीं आने देते। हरिश्चन्द्र भगवान् विष्णु के सिवाय किसी को नहीं मानते। गुरु वशिष्ठ कहने पर भी गणेश पूजा नहीं करने के कारण उन्हें अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं। कर्मकाण्ड के पोषक विश्वामित्र द्वारा दी गयीं अनेक हृदय-विदारक विपत्तियों में भी हरिश्चन्द्र एक मात्र 'हरि' पर भरोसा कर सत्य और अपनी आस्था पर डटे रहकर उन विपदाओं का दृढ़तापूर्वक सामना करते हैं। जीव मात्र के लिए समता और वैष्णव भक्ति को प्रतिपादित करते हुए और अपनी धर्मवीरता परिचय देते हुए शंकरदेव ने लिखा—

विघ्निक शंकाये नुपूजिबो ऋषिकेश ।
ओकनीक भये कोने मुण्डी काछे केश ।।
वशिष्ठ लैलन्त आनो ऋषित सम्मति ।
गणेशक एरि पूजिलन्त लक्ष्मीपति ।।
अनेक नैवेध बलि वस्त्र उपहारे ।
माधवक पूजिलन्त विविध प्रकारे ।।
स्तुति नति भकति करिला भहुभावे ।
जावत शकति पूजिलन्त कृष्ण पावे ।।

अपने मत 'हरि तुष्ट भैले तुष्ट होवे चराचर' को दृढ़ता देते हुए उन्होंने आगे यह भी लिखा—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विष्णु वैष्णवर कथा दुयो समतुल ।
श्रवण कीर्तने करे पापक निर्मूल ।।
चण्डाल पर्यन्ते करे सबाको पवित्र ।
जानि निरन्तरे सुना वैष्णव चरित्र ।।

नारी के प्रति अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करते हुए हरिश्चन्द्र उपाख्यान में शंकरदेव ने एक स्थान पर लिखा–

....मोर मुखे कतेक वर्णाइबो तोर गुण ।।
तइ हेन भार्या पाइलो कत जन्म भागे ।
तोहार कथाक आबे कि करिबे लागे ।।
कर्म समयत तोक मन्त्री बुलि लेखी ।
रंगर बेलात जेन तइ प्राण सखी ।।
स्नेहर प्रस्तावे तइ मातृ हेन ठान ।
शयन बेलात तइ दासीर समान ।।

रोज दोपहर में रचना कर्म प्रारम्भ होता। सन्ध्या हो जाती। धीरे-धीरे रात होने लगती। चन्दरी आकर दीप-स्तम्भ के पाँचों दीपकों को जला जाती। मन के प्रकाश को बाह्य प्रकाश का अवलम्ब मिलता। शंकरदेव की लेखनी सतत गति से चल रही थी। कुछ ही दिनों में उन्होंने पूरे उपाख्यान को छह सौ अठारह (618) छन्दों में खण्डकाव्य के रूप में लिखकर सम्पूर्ण किया।

आज शंकरदेव का मन बड़ा उत्फुल्ल था। उनके मन में सन्तोष था कि वे अपने जीवन-उद्देश्य की ओर अग्रसर हो रहे हैं। गुरुकुल में देखे सपने को साकार करने की दिशा में वे पहले सोपान पर चढ़ गये हैं।

रात्रि का पहला प्रहर बीतने को था। दादी ने आकर टोका, "लिखने मात्र से पेट नहीं भरेगा शंकर ! अपनी देह का भी ध्यान रखना होगा। अब बहुत हो गया। चलो, भात खा लो।"

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मन में स्थापित हरि मन्दिर

भूयाँ राज्य की जनता की सुध लेने, उनके दुःख-दर्द को समझने के लिए शंकरदेव जगतानन्द, वनगयाँगिरि और रामराम को साथ लेकर नौका से भ्रमण पर निकले। नदी किनारे बसे गाँवों के घाटों पर नाव रुकती। गाँव में जाकर वहाँ रहनेवालों से मिलते। उनके रहन-सहन, खान-पान, वेशभूषा को देखते, उनकी दशा को समझते।

गाँववाले बड़े उत्फुल्लित होकर ताम्बूल-पान भेंट कर उनका स्वागत करते। जिस गाँव में रात्रि-विश्राम करते वहाँ के बाशिन्दे अपने लोकनृत्य करते। शंकरदेव ने अपने को धन्य माना कि इन गाँवों में इतनी वाद्य-ध्वनियाँ, नृत्य-गीत सुनने-देखने को मिले। उनका कलाकार मन उन्हें आमत्सात करता रहता।

गाँवों के खेतों में लहलहाती फसल को देखकर उनका मन प्रसन्न हुआ। उन्होंने देखा कि घरों में लगे छोटे-छोटे करघों पर ग्रामीण स्त्रियाँ रंग-बिरंगे धागों से अपनी आवश्यकता के वस्त्र बुन लेती हैं। गाँव के लोहार, कुम्हार, ठठेरे, बढ़ई गाँववालों के लिए आवश्यक वस्तुएँ बना देते हैं। किसी-किसी गाँव में नाव बनाने वाले भी मिल जाते हैं। नदी के बालू-कणों से स्वर्ण निकालनेवाले भी अपनी जीविका चला लेते हैं। लोगों को खाने के लिए खेतों से धान और नदी-पोखरों से मछलियाँ सहज ही मिल जातीं। नमक के अभाव में लोग केले के गाछों को जलाकर उससे बनाये खार से अपना काम चला लेते। लोग नमक के सिवाय किसी वस्तु के लिए अन्य पर निर्भर नहीं। बंग प्रदेश से नमक से लदी कोई नाव आती तब लोग अपनी जरूरत का नमक खरीदते।

लौकिक पूजा विधान के नाम पर बलि देने की परम्परा से शंकरदेव क्षुब्ध थे। फिर सोचा, बलि प्रथा तो ऊँचे वर्ग के लोगों में भी प्रचलित है। शाक्त धर्म के नाम पर वामाचार और तान्त्रिक प्रथाओं का बोलबाला है। उनके अपने पूर्वज भी घोर शाक्तधर्मी रहे हैं। ऐसी पूजा में खर्च बहुत होता है जिसे धनी व्यक्ति तो वहन कर लेता है, परन्तु गरीब वर्ग को परम्परा के नाम पर उसके यहाँ होने वाली पूजा में अपना पेट काटकर भी समय-समय पर साधन जुटाने पड़ते हैं।

क्षणिक सुख-प्राप्ति के लिए लोग विकृत रातिखोवा सम्प्रदाय की

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ओर आकर्षित हो रहे हैं, जहाँ पंचमकार साधना के नाम पर लोगों को भ्रमित किया जाता है। बीमार को कुशल वैद्य के पास ले जाने के वदले लोग टोना-टोटका करनेवाले ओझाओं के चक्कर में पड़ कर अपना समय, धन और कभी-कभी अपनी जान भी गंवाते हैं। और मृत्योपरान्त कर्मकाण्ड के नाम पर शय्यादान, भूमिदान, सामूहिक भोज के लिए गरीब को तो अपनी जमीन-माटी तक बेचनी पड़ती है। इसी तरह आपसी झगड़ों को मिल-बैठकर सुलझाने के बदले पीढ़ी दर पीढ़ी का बैर बांध लेते हैं।

इनके भोलेपन का फायदा उठाकर कुछ धर्माधिकारी अपना उल्लू सीधा करते हैं। इनमें अक्षर-ज्ञान का भले अभाव है, परन्तु अपने भले-बुरे की समझ तो कम से कम होनी चाहिये। ये बातें इन्हें कौन बतायेगा ! कौन समझायेगा ! न ऐसा कोई व्यक्ति है और न ही ऐसा कोई स्थान, जहाँ बैठकर इन बातों पर इनसे चर्चा की जा सके। यदि ऐसा कोई स्थान बन जाए तो ये सीधे-सादे ग्रामीण वहाँ आपसी चर्चा-विचार के साथ ही अपने रागरंग का आनन्द ले सकेंगे, गीत गा सकेंगे, वाद्य बजा सकेंगे। अपने लोक नृत्यों का प्रदर्शन भी कर सकेंगे। एक दूसरे के दुःख को बांट सकेंगे और एक दूजे की परम्पराओं को समझ सकेंगे।

शंकरदेव के मन में मंथन चल रहा था— हमारे समाज को ऐसे धर्म की आवश्यकता है जो आडम्बर रहित हो, आम लोगों को उसका पालन करने में किसी प्रकार का कष्ट न हो, खर्च भी न हो। दैनन्दिन के काम करते-करते भी वे धर्म का पालन करते हुए अपना जीवन उन्नत कर सकें। इसके साथ उनके मन में नामधर्म की बात आयी। इसकी शुरुआत मुझे अपने ही गाँव से करनी होगी। मन में कुछ कल्पनाएँ मँडराने लगीं। अब उनका मन घर लौटकर उन्हें साकार रूप देना चाहता था। वैसे भी उन्हें घर छोड़े महीना भर हो गया था। उन्हें मन में अपार सन्तोष हुआ कि इस यात्रा के कारण ही लोगों का जन-जीवन इतनी नजदीक से देखने और समझने का सौभाग्य मिला।

शंकरदेव के मन में एक हरि मन्दिर स्थापित हो चुका था। ऊँचे मजबूत खूँटों पर खड़ा मन्दिर। सामने लम्बे-चौड़े बड़े-से सभागार की पुआल की मोटी परत छायी ढलुवा छत की छाँव तले धूप-वर्षा की चिन्ता नहीं। श्रोतागार में बैठकर हरि-कीर्तन के बाद आपसी चर्चा-विचार भी करेंगे। अपने नृत्य-गीत और नाटकों का प्रदर्शन करेंगे। मेरे मन में कल्पित नामधर्म का यह हरि मन्दिर साधारण जनता के लिए प्राणकेन्द्र होगा। मन में विश्वास है कि इसके साकार हो जाने पर लोगों के मानसिक अभावों की पूर्ति होगी।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विचारों की सरिता शंकरदेव के मानस में सतत बह रही थी। मैं दिन भर भूयाँ राज्य को चलाने के कर्तव्यों में ही केवल उलझा रहा तो ये सब कार्य कैसे कर पाऊँगा ! मैं जिस वैष्णव धर्म के बारे में सोच रहा हूँ, वह कोई नया नहीं। इसे शाक्तधर्मी ब्राह्मण, कायस्थ आदि भी मानते हैं। हमारे पूर्वोत्तर में ही हयग्रीव माधव जेसे वासुदेव के अनेक थान हैं। उन थानों पर भी स्वार्थी धर्माचार्यों ने यहाँ प्रचलित वामाचार का रंग चढ़ा दिया है।

ब्रह्मपुत्र उपत्यका में श्रीमद्भगवद्गीता के माध्यम से वैष्णव धर्म का प्रभाव कई शताब्दियों से है। आज से एक हजार साल पहले हुए कामरूपी पण्डित दामोदर मिश्र ने गीता की टीका लिखी थी। इनके अतिरिक्त और भी चार कामरूपी पण्डितों ने गीताशास्त्र के व्यापक प्रचार-प्रसार के लिए गीता पर भाष्य लिखे थे। उन्होंने बार-बार 'एकमेवाद्वितीयम्' की आराधना-पूजा पर बल दिया। गीता के प्रभाव से बलिप्रथा में विश्वास करनेवाले शाक्तों के सिवाय, सात्विक पूजा भी कतिपय लोग करते रहे हैं। राम की महिमा का बखान करते हुए हमारे कामरूपी काव्यकारों ने अनेक ग्रन्थ लिखे हैं।

भारतवर्ष में विगत पाँच सौ वर्ष में अनेक वैष्णवाचार्यों का अविर्भाव हुआ। रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैतवाद, मध्वाचार्य के द्वैतवाद और निम्बकाचार्य के द्वैताद्वैतवाद का आधार नारायण विष्णु ही है। विष्णु धर्म भी वेदों की तरह अति प्राचीन है। ऐतरेय ब्राह्मण में विष्णु को सर्वदेवों में श्रेष्ठ देव निरूपित किया गया है। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं अर्जुन से कहा है—

सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरण ब्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ।।

शंकरदेव को भरोसा हो गया कि इसी श्लोक में मेरे मन में विचारे हुए वैष्णव धर्म के बीज हैं। भक्तिभाव से नाम-कीर्तन करते हुए वैष्णव धर्म का प्रसार करना होगा। इस नये मत में किसी जाति या गरीब-अमीर का भेद नहीं रखा जाएगा। नाम-कीर्तन को ग्राह्य बनाकर साधारण लोगों तक प्रचारित करने के लिए गीत-संगीत, नाटक जैसी ललित कलाओं का सहारा लेना होगा।

शंकरदेव के ओंठों से गीता के एक श्लोक का प्रस्फुटन हुआ—

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वम् प्रवर्तते ।
इति मत्त्वा भजन्ते मां बुधा भाव समन्विताः ।।

फिर इसका भावार्थ मन ही मन किया, भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं को

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परमेश्वर कहकर परिचय देते हैं। सच है, श्रीकृष्ण मर्त्यलोक में साकार रूप में जन्म लेकर भी निराकार परमेश्वर हैं। श्रीकृष्ण ही कृपामय विष्णु हैं। उन्हीं को केन्द्रित करके ही वैष्णव धर्म का आविर्भाव हुआ है। मुझे भी श्रीकृष्ण के उसी निराकार रूप को अपने वैष्णव धर्म में स्थापित करना होगा।

चिन्तन-मनन शंकरदेव के मन में सतत चल रहा था। उन्होंने मन ही मन उस संन्यासी को कोटिशः धन्यवाद दिया जिसने उन्हें पुरी के जगन्नाथ मन्दिर और उसकी कथा बतायी। मथुरा-वृन्दावन और बदरीनाथ के बारे में बताया। दक्षिण भारत के विशाल मन्दिरों के बारे में बताकर अपने भारतवर्ष की विशालता का एक चित्र उनके मन में उकेरा। उन्होंने मन में निर्णय किया, अवसर मिलने पर सब तीर्थों की यात्रा कर अपने विशाल देश के दर्शन करूँगा। फिर दृढ़ निश्चय किया, देश-भ्रमण के लिए किसी प्रकार मुझे समय निकालना ही होगा।

संन्यासी की सिखायी योग साधना से मुझे शारीरिक शक्ति मिली, मन को एकाग्र करने की क्षमता आई। लोगों की धारणा है कि मुझ में असाधारण क्षमताएँ हैं, मुझे तो ऐसा किंचित मात्र भी नहीं लगता। जो भी हो, भगवान् श्रीकृष्ण के बताये अलौकिक पथ पर चलते हुए लोगों को भी अपने साथ लेकर मैं चल सका तो श्रीकृष्ण-कृपा ही होगी।

शंकरदेव ने विचार किया, समय का सदुपयोग करना चाहिये। हरि-मन्दिर बनने में अभी समय लगेगा। वन से कून्दें कटकर आयेंगे, अन्य सामान की व्यवस्था भी करनी होगी। सारी बातें जगतानन्द और रामराम से हो ही चुकी हैं। लकड़हारों को वन में भेजा जा चुका है।

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नर ही नारायण

हरि मन्दिर निर्माण के आवश्यक सामान जुटा लिये गये। हरितकी पेड़ के पास का खुला विस्तृत स्थान मन्दिर बनाने के लिए शंकरदेव को उपयुक्त लगा। हरितकी के पूर्व की ओर उन्होंने अपने हाथ में फावड़ा लेकर हरि-ध्वनि कर नींव खोदनी शुरू की। गाँव के लोग तगार-फावड़े लिये उनका साथ दे रहे थे।

'हरि बोल' उद्घोष के साथ सभी कार्यरत थे। मिट्टी खोदते हुए जमीन में दबी चतुर्भुज विष्णु की एक पाषाण-मूर्ति मिली। सफाई करने पर उसकी चमक निखर आयी। लोगों में हर्ष फैल गया। शंकरदेव के मन में विश्वास हो गया, परमब्रह्म श्रीकृष्ण का यह संकेत है, जो कार्य मन में धारा है, वह पूरा होगा।

अब क्या था, लोग दूने उत्साह से काम में जुट गये। मन्दिर बनकर तैयार हो गया। मन्दिर के बाहर और भीतर लगे लकड़ी के खम्भों और शहतीरों पर कारीगरों ने लता-पुष्पों के विभिन्न आकारों को उकेरा। प्राचीरों पर भागवत की विभिन्न कथाओं को अंकित किया गया। द्वार पर भगवान् के पार्षद जय-विजय की दो काष्ठ-प्रतिमाएँ खड़ी की गयीं। भीतर मुख्य गर्भगृह के सम्मुख विष्णु-वाहन गरुड़ की काष्ठ-प्रतिमा स्थापित की गयी।

मणिकूट या गर्भगृह में स्थापित करने के लिए शंकरदेव ने अपनी देखरेख में सात वैकुण्ठों के प्रतीक सात सोपानों का काष्ठ का वर्गाकार गुरु-आसन बनवाया। इसकी सात सीढ़ियों के चारों कोनों पर एक-एक ऐरावत, ऐरावत पर एक-एक सिंह बनाये गये। उसे ढाँपने के लिए लाल और सफेद धागों से हरि-कृष्ण के नाम तथा लता-पुष्प से अंकित वस्त्र बुनवाया। गुरु-आसन को विभिन्न रंगों से रँगा गया। फिर काष्ठ निर्मित कछुए पर गुरु-आसन को रखकर उस पर चतुर्भुज विष्णु की मूर्ति स्थापित की गयी।

प्राणप्रतिष्ठा के निश्चित दिन आसपास के गाँवों के ब्राह्मण, वैश्य, कायस्थ, कलिता, कोच, सुतिया, कछारी, बोड़ो, कैवर्त, धोबी, नापित आदि सभी जातियों के लोग बिना किसी भेदभाव के एक साथ जमा हुए। वहाँ मेला-सा लग गया।

दिनभर भगवान् का हरि-कीर्तन चलता रहा। शंकरदेव ने भगवान् के नैवेद्य में स्थानीय उपज चना, मूंग, चावल को रातभर पानी में भिगोकर,

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उसमें अदरक-नारियल की कतरनों के साथ जरा-सा नमक मिला कर या फिर केले और ईख के टुकड़े तथा अन्य असिद्ध (आग पर बिना पकाए हुए) भोग चढ़ाने की प्रथा शुरू की। इसे चढ़ाना दीन-हीन व्यक्तियों के लिए भी सुगम हो गया।

दिन प्रतिदिन जन-समूह को उत्तरोत्तर बढ़ते देखकर शंकरदेव ने आसपास के गड्ढों को भरवाकर और जगह बनवायी। भक्तों के रात्रि-विश्राम के लिए बाँस-पुआल से हाटी घर (पंक्तिबद्ध कोठरियाँ) बनवाये। मन्दिर की नित्य-पूजा और देखरेख के लिए अपने बालसखा रामराम को मन्दिर का पुजारी बनाया। मन्दिर को लोग गोविन्द मन्दिर और बोलचाल की भाषा में कीर्तन घर अथवा नामघर कहने लगे।

फागुन महीना आ गया। शंकरदेव ने हरि मन्दिर में फगुवा उत्सव मनाने के विचार से वन में मिलने वाले 'लसन' पेड़ के फूलों और अन्य जड़ी-बूटियों को पीसकर गुलाल बनवाया। सर्वप्रथम विष्णु मूर्ति पर पुष्प-तुलसी-चन्दन चढ़ाकर पूजा की गयी; फिर गुलाल लगाया गया। बरदोवावासियों ने मिलकर एक दूसरे को गुलाल से लाल कर दिया। व्रज की होली जैसा दृश्य उपस्थित हो गया। शंकरदेव ने इसे 'दोल-उत्सव' नाम दिया।

भगवान् की मूर्ति एक डोली में विराजमान कर दोल-यात्रा निकाली गयी। शंकरदेव के लिए भी एक डोली लाकर उसमें बैठने का आग्रह किया गया, ''आप हमारे शिरोमणि भूयाँ हैं। आपकी प्रेरणा से ही यह गोविन्द मन्दिर बना है। आपने हमें जीवन जीने का नया रास्ता दिखाया। आप इसमें बैठकर दोल-यात्रा के साथ चलें।'' शंकरदेव ने उसमें बैठने से साफ मना कर दिया। उन्हें आचार्य राघव भट्टाचार्य की कही बात याद आयी। उन्होंने समझाया, ''डोली में बैठने का अर्थ, दूसरे व्यक्तियों के कन्धों पर बैठना है। मनुष्य तो नररूपी नारायण हैं। मैं यह अधर्म कदापि नहीं करूँगा। मैं इसी गाँव का एक साधारण युवक हूँ। आप लोगों के साथ पैदल ही चलूँगा।''

यात्रा के मध्य 'जय गुरु शंकर' के उद्घोष शंकरदेव ने सुने। वे चिन्तित हो गये। इस तरह की व्यक्तिपूजा उन्हें अच्छी नहीं लगी। उन्होंने विचार किया, इसी तरह पाखण्ड को प्रश्रय मिलता है। निसन्देह व्यक्ति को अपनी जय-जयकार बहुत अच्छी लगती है, किन्तु इससे मुझे बचना होगा। लोकैष्णा के मोह में पड़ गया तो आगे जो करना चाहता हूँ, उस पर यहीं विराम लग जाएगा। आज चारों ओर अधर्म का राज है। कलिकाल ने अपना

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रभाव दिखाना प्रारम्भ कर दिया। धर्म को पाखण्डियों ने अपना व्यवसाय बना लिया है। राजा, सामन्त, भूस्वामी की तरह ये भी शक्ति अर्जित कर स्वेच्छाचारी बन गये। इनमें से कुछ ने शास्त्रों की व्याख्या तक को विकृत किया है। इसका कुपरिणाम समाज पर परिलक्षित होने लगा है। ऐसे लोगों में मुझे अपने आपको समाहित नहीं करना। शास्त्रों के गूढ़ अर्थ को समझने वाले पण्डित बहुत कम हैं। इस प्रकार चिन्तन कर उन्होंने लोगों को समझाया, "आप लोग मेरे नाम के बदले 'हरि बोल', 'हरि बोल' के उद्घोष करें। व्यक्ति में अनेक कमजोरियाँ होती हैं। किसी 'व्यक्ति-नाम' के बदले 'पूर्णब्रह्म श्रीकृष्ण' का नाम स्मरण करें। आप सब मेरे साथ मिलकर उच्च स्वर में बोलें, मुकुन्द माधव गोविन्द बोल, हरि बोल हरि बोल हरि हरि बोल।"

इस अवसर पर गुरु महेन्द्र कन्दली भी आये थे। दोल-यात्रा के पश्चात् सारे दिन गोविन्द मन्दिर में हरि-कीर्तन चलता रहा। इसके बीच शंकरदेव ने अपनी नयी रचना 'उद्धव-गोपी संवाद' के कुछ पद गाकर सुनाये। बूढ़े होने के उपरान्त भी जयन्त और उनके पोते जगतानन्द ने संगीत से उनका साथ देकर समा बांध दिया। गुरु महेन्द्र कन्दली को अपने शिष्य पर गर्व हुआ।

शंकरदेव की ख्याति चारों ओर फैल गयी। इतनी कम आयु में उनकी प्रतिभा और ख्याति देखकर खेरसुती, जयन्त, माधव, हलायुध अति प्रसन्न थे। कुछ लोग, जिनमें ब्राह्मण भी थे, उनके पास आकर उन्हें दीक्षा देने का आग्रह करने लगे। वे बड़े संकोच में पड़ गये। उन्होंने कहा, "मैं अभी इस योग्य नहीं हुआ कि किसी को दीक्षा दे अपनी शरण दे सकूँ। अभी तो मुझे बहुत कुछ सीखना-समझना है।" ब्राह्मणों से उन्होंने कहा, "आप लोग मेरे लिए पूजनीय हैं, मैं आपको भला क्या दीक्षा दूँगा। आज जो भी शास्त्र-पुराण हम पढ़ते हैं, वे सभी ब्राह्मणों के ही लिखे हुए हैं। मेरे प्रति अनुग्रहवश आप लोग ऐसा कहते हैं। मैं आप सभी का आभारी हूँ।"

बरदोवा में चारों तरफ खुशियाँ थीं। खेतों में लहलहाती धान की फसल की हरियाली और सरसों के खेतों में सोने जैसी आभा छायी थी। घरों की बाड़ियाँ शाक-सब्जियों से लदी-फँदी थीं। गाँव के पोखरों में मछलियों की भरमार थी। लोग अपने दैनन्दिन के काम निपटा कर, बिना किसी जातिभेद के नामघर में जमा होते, हरि कीर्तन करते। कीर्तन में कोई-कोई ढोल-मृदंग बजाता, शेष लोग अपनी करतल ध्वनि से साथ देते। आपसी दुःख-सुख को आपस में

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बाँटते, बतियाते। नौसिखिया भी बिना संकोच के नाच-गाकर स्वयं में छिपी कला का वहाँ प्रदर्शन करता। लोगों के आत्मविश्वास में धीरे-धीरे बढ़ोतरी होने लगी।

खेरसुती अपने पोते की चारों ओर हो रही जय-जयकार से जहाँ प्रसन्न थी, वहीं राज्यकार्य को लेकर चिन्तित भी। उसने गुरु कन्दली को बुलाकर अपनी चिन्ताओं से अवगत कराते हुए कहा, "उत्तर में शिंगरी से घिलाधारी तक और दक्षिण पार के चामधरा से लेकर कपिली तक भूयाँ राज्य फैला है। शंकर हरि-कीर्तन में ही लगा रहा तो राज्य का क्या होगा ?" उसका छोटा देवर माधव भूयाँ भी वहाँ बैठा सुन रहा था। खेरसुती ने आगे कहा, "उसकी उम्र विवाह योग्य हो गयी। हरिवरगिरि भूयाँ अपनी सुपुत्री सूर्यवती का उससे विवाह के इच्छुक हैं। वे मुझ पर बार-बार दबाव डाल रहे हैं। कन्या को मैंने देखा है। सुशील, बुद्धिमती और शरीर से भी सुगढ़ है। आप बतायें मैं शंकर को यह बात किस तरह कहूँ ?"

गुरु कन्दली ने कहा, "आप शंकर को अपने और परिवार तक सीमित रखना चाहती हैं। आपकी ममता वह नहीं देख रही, जो मैं देख रहा हूँ। उसके मन में द्वन्द्व चल रहा है। वह सोचता है, भूपति शिरोमणि भूयाँ बनकर, ब्याह कर संसारी जीवन यापन करने से उसे कौन सी उपलब्धि होगी !"

कन्दली ने आगे कहा, "आप शंकर की असीमित क्षमताओं की अपने मोहवश अनदेखी कर रही हैं। इसीलिए ऐसा सोचती हैं। वह समय पर कारखाना जाकर राज्य की सब व्यवस्थाएँ देखता है। लोगों से मिलकर उनकी समस्याएँ सुनकर निपटारा करता है। आप भी यह जानती हैं कि वह शिरोमणि भूयाँ बनने का इच्छुक नहीं था। हमारे दवाब के कारण ही उसने राज्यभार सँभाला।"

महेन्द्र कन्दली ने स्वप्न में देखे शेषनाग की बात उन्हें बतायी। फिर उनकी शंका का समाधान करने के लिए कहा, "आप लोगों को कदाचित् पूरा अनुमान नहीं कि उसे संस्कृत का अपरिसीम ज्ञान है। वह चाहे तो संस्कृत में काव्य रच सकता है। किन्तु वह ऐसा करके अपने पाण्डित्य का प्रदर्शन कहीं करना चाहता और न ही यह उसके जीवन का उद्देश्य है। आप लोग देखियेगा वह आम लोगों के लिए अपनी भाषा में ऐसे शास्त्र रच जाएगा जो हजारों वर्षों तक उसके नाम को अमर रखेंगे। एक बार चर्चा करते हुए उसने मुझे गरुड़ पुराण, ब्रह्म पुराण, हरिवंश, भागवत आदि शास्त्रों में वर्णित उपाख्यानों के बारे में यह भी बताया था की इन कथाओं पर वह काव्य और नाट्य लिखेगा। उसे पिंगल शास्त्र का भी पूरा ज्ञान है जो काव्य रचना करने

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

में सहायक होगा। आप लोग उसके प्रति निश्चिन्त रहें। समय आने पर वह विवाह भी कर लेगा।''

एक दिन शंकरदेव हरितकी वृक्ष के नीचे बैठे भावी योजना पर चिन्तन कर रहे थे। उस समय बूढ़ा भूयाँ, नरोत्तम आदि कुछ सभासद उनके पास आये। बूढ़ा भूयाँ ने कहा, ''शंकर ! प्रजा तुमसे अति प्रसन्न है। लोग तुम्हारी राजकीय व्यवस्था के साथ तुम्हारे आध्यात्मिक रुझान और रचनाधर्मिता से भी बड़े प्रभावित हैं। हम भी तुम्हारे मुँह से उद्धव-गोपी संवाद सुनकर मुग्ध हैं। शंकर ! सचमुच तुम सब विद्याओं में पारंगत हो। सभी शास्त्र तुमने पढ़े हैं। तुम भूयाँ वंश के सिरमौर हो।''

राजकाज में शुरू से ही शंकरदेव की रुचि नहीं थी। वे प्रजा के शासक बन कर जीवनयापन करना नहीं चाहते थे। शासक बनने के लिए शासकीय दृढ़ता, अपनी क्षमताओं को बढ़ाने का लोभ, समय-समय पर निष्ठुरता और छल-चातुरी की आवश्यकता पड़ती है। यह सब उनके स्वभाव से मेल नहीं खाता था। जनसाधारण का हृदय जीतने में उनका विश्वास था। किन्तु उस समय वे एक शासक थे। इस नाते अपने कर्तव्यों से भी मुँह नहीं मोड़ना चाहते थे।

उस साल मूसलाधार बारिश ने पूरे बरदोवा क्षेत्र को पानी-पानी कर दिया। टेम्बुवनी में उफान आ गया। ब्रह्मपुत्र का जलस्तर बढ़ जाने से टेम्बुवनी के मुहाने से पानी और चढ़ आया। बाढ़ से काफी नुकसान हुआ। कुसुमवर वरभूयाँ द्वारा बनवाये गये बांध में अब जगह-जगह दरारें पड़ गयीं।

सात दिनों तक लगातार बरसने के बाद बरसात रुकी। शंकरदेव के साथ गाँव के लोग फावड़े-तगार लिये नदी किनारे पहुँचे। कुछ लोग आसपास के वनों में जाकर बाँस काट लाये। लकड़हारे पेड़ काटने में लग गये। बांध की दरारों के आगे बाँस और लकड़ी के खूँटे गाड़ कर उसमें मिट्टी भरी गयी। नदी के कगार को ऊँचा उठाया गया। सम्मिलित श्रमशक्ति का लाभ मिला।

बाढ़ के समय नदी का पानी पीने लायक नहीं रहता था। बरदोवा निवासियों को पीने के पानी के लिए बहुत कष्ट उठाना पड़ता। इन समस्याओं को दूर करने के लिए शंकरदेव ने नये तालाब खुदवाए तथा नदी के बांध की पुख्ता मरम्मत करवा कर आगे आनेवाली बाढ़ से लोगों को निश्चिन्त किया।

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सती राधिकाशान्ति

हिड़िम्बा के समय का घर्णिप्रस्थ कालचक्की में लोगों की जबान पर पिसते-पिसते पाकघूरणी होकर रह गया। पहले की तरह अब भी यह गाँव हैड़म्बवर्मन राजवंश के उत्तराधिकारी कछारियों के राज्य के अन्तर्गत था। पाकघूरणी के पास वर्षाकाल में उमड़ी-घुमड़ी रहनेवाली पहाड़ी नदी शेष दिनों सूखी रहती। ग्रामवासी पानी को तरसते। जमीन ऐसी पथरीली थी कि कुआँ खोदने पर भी पानी नहीं मिलता। तालाब खुदवाते तो उसमें पानी के बदले चट्टानें निकलतीं।

वहाँ का बाशिन्दा बाहिराम लांगथासा तड़के ही नदियों से मछलियाँ पकड़ने निकल जाता। साथ में रात का बचा भात और नमक ले जाता। नदी पर ही नहाता और कटोरे में भात-नमक में पानी मिलाकर 'पान्ता भात'[1] का कलेवा करता। थोड़े भात दोपहर के लिए बचाकर रख लेता। फिर नाव को नदी की धार में छोड़ देता। पकड़ी हुई मछलियाँ तट पर बसे आसपास के गाँवों में बेच आता, कुछ अपने गाँव में बेचने ले आता।

एक रात बाहिराम लांगथासा अपने मित्र परितम पारबोसा को साथ लिये घर लौटा। आज उसके मुँह से लाऊपानी का भभका नहीं आ रहा था। चेहरा शान्त था। रोज की तरह घर पर अपनी औरत और बाल-बच्चों को मारपीट करना तो दूर की बात, गाली-गलौज भी नहीं की। घरवाली नुबी छिजाइ अचरज कर रही थी, आज बाहिम को क्या हो गया। वह इतना शान्त कैसे है ?

उसने धीरे से पूछा, "तुम लोगों के लिए भात परोसती हूँ। दोनों खा लो। साथ में मच्छी का झोल है।" वह पति से अब भी सहमी हुई थी, पता नहीं, वह कब किस बात पर भड़क उठे।

"घर पर पीने का पानी रखा है न !" बाहिम ने पूछा। उसे खाने से पहले पानी की चिन्ता सतायी। वह जानता था, नुबी को दो कलशे पानी लाने दूसरे

---

1 पान्ता भात : 'पानी ते' अर्थात् 'पानी में' भात डालकर खाना असम-बंगाल-उड़ीसा सहित समूचे पूर्वोत्तर प्रान्तों के गरीबों का लोकप्रिय सस्ता भोजन है। रात के बचे भात को ठण्डे पानी में डालकर रख दिया जाता है। सुबह उसमें नमक-मिर्च-तेल-निम्बू आदि मिलाकर खाया जाता है। सहज पाच्य यह भोजन शरीर को ठण्डा रखने के साथ गृहिणी को भी सुबह-सुबह चूल्हा फूँकने से मिला जाती है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गाँव के पोखर पर जाना पड़ता है। वह अपने साथ बच्चों को भी ले जाती। सब नहाना-कपड़ा धोना वहीं करते। लौटते समय नुबी पानी भरी एक कलशी सिर पर और दूसरी बगल में थामें घर ले आती। बच्चे पानी भरे बाँस के चोंगे शंकु टोकरी में रख पीठ पर लादकर जो लाते, वह अतिरिक्त आमद होती।

नुबी ने पति की चिन्ता दूर करते हुए कहा, "कल जो पानी लायी थी उसमें से पीने भर का एक चोंगा बचाकर रखा है।" बाहिम की शान्त मुद्रा देख, उसने साहस कर पूछा, "परितम को इस वक्त कैसे फुर्सत मिल गयी !"

"इसे कहाँ फुर्सत थी। मैं ही इसे पकड़ लाया। मैं टेम्बुवनी से बरदोवा पहुँच गया। वहाँ भूयाँओं की बस्ती है। सोचा, अच्छे दामों में मछली बिक जाएगी। घाट पर परितम की नाव बंधी दिखी। सोचा, परितम भी गाँव में मछली बेचने आया होगा।" बाहिम ने आगे कहा, "जानती हो, वहाँ मेला-सा लगा था। भूयाँ राज्य के नये शिरोमणि भूयाँ श्रीमन्त शंकरदेव ने वहाँ नया हरि मन्दिर बनाया है। पहले मैं सभागार में जाते झिझका। वहाँ लोगों के बीच परितम को भी बैठा देखा तो अन्दर चला गया। वहाँ हो रहे नाम-कीर्तन में मेरा मन खूब रमा, बहुत देर बैठा रहा।" फिर परितम का कन्धा झिंझोड़कर बाहिम ने कहा, "तुम कुछ क्यों नहीं बोलते, मैं ही बोले जा रहा हूँ।"

"हाँ नुबी ! मैं वहाँ बहुत बार गया हूँ। अब बाहिम को भी रस आने लगा है। यह वहीं नाम-कीर्तन में रम गया तो मछली कौन पकड़ेगा !" परितम ने नुबी से ठिठोली की।

"यह सब मैं नहीं जानती। मेरे लिए तो यही क्या कम सन्तोष की वात है कि बाहिम ने आज लाऊपानी नहीं पीया, घर में गाली-गलौज नहीं किया, मैं इसकी मार खाकर रोज अपने भाग को कोसती, और करती भी क्या !" नुबी ने मन की भड़ास निकाली।

यह सुनकर बाहिम का दिल पसीजा। उसने पत्नी से कहा, "नुबी ! यह सब मैं नहीं, लाऊपानी का नशा कराता था। तुम्हें गृहस्थी चलाने में कितना कष्ट उठाना पड़ता है, क्या मैं नहीं समझ सकता ! पानी लाने के लिए तुम्हें दूर दूसरे गाँव जाना होता है। हमारी सूखी नदी और पथरीली जमीन की छाती में तो जैसे ममता ही नहीं। काश ! हमारे यहाँ भी शंकरदेव जैसा कोई गुणी होता तो कोई न कोई सती नारी भी मिल जाती। सती के कारण ही वरदोवा वालों का कष्ट दूर हुआ। हमारी रोज-रोज की इस समस्या से कोई छुटकारा दिला पाता।" फिर परितम से कहा, "नुबी को सती राधिकाशान्ति वाली बात बताओ न ! उसने कैसा चमत्कार किया था।"

"तुम क्यों नहीं बताते, तुम भी तो वहीं थे। कितने लोगों की भीड़

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

थी। पूरी घटना सब की आँखों के सामने हुई।''

''ऐसा क्या हुआ ! बताते क्यों नहीं। तुम लोग किस सती की बात कर रहे हो। इस कलजुग में कौन सी सती सावित्री धरती पर आ गयी ?'' नुबी ने जिज्ञासा की।

बाहिराम ने बात की शुरुआत करते हुए कहा, ''पिछले दिनों कितनी बारिश हुई थी। टेम्बुवनी में बाढ़ आ गयी। वहाँ के शिरोमणि भूयाँ श्रीमन्त शंकरदेव ने बाढ़ से बचने के लिए लोगों से कहा, ''कोई सती नारी यदि पास के ब्रह्मपुत्र से मछली पकड़ने के पलव में पानी भरकर लाये और टेम्बुवनी में छोड़े, फिर एक पलव मिट्टी लाकर नदी में डाले, तब बाढ़ कभी नहीं आयेगी।''

''यह कैसी अजब बात है। भला बाँस से बने जालीदार पलव में पानी कैसे रुक सकता है ? शंकरदेव ने यह बात मजाक में कही होगी। अब, तुम लोग मुझसे फिर ठिठोली कर रहे हो।'' नुबी ने कहा।

''नहीं री ! तू जिसे मजाक समझ रही है, वह पूरा सच है।'' नुबी से इतना कहकर बाहिम ने परितम से कहा, ''तुम पूरी बात इसे क्यों नहीं बताते।''

''मैं क्यों, तुम भी तो बता सकते हो।''

''मेरी बतायी बात पर यह विश्वास नहीं करेगी। मुझे हरदम शंका की दृष्टि से देखती है। इसलिए तुम्हें अपने साथ लेकर आया हूँ।''

''मैं तो समझ रहा था, भाभी के हाथ का बना मच्छी-भात खिलाने अपने घर ले जा रहे हो।''

परितम ने कहा, ''भाभी ! मैं बताता हूँ।'' इतना कहकर उसने पूरा घटनाक्रम सिलसिलेवार बताना शुरू किया, ''टेम्बुवनी की बाढ़ से हर साल खड़ी फसल को नुकसान होता था। इस बार हुई घनघोर बरसात से उस पर बने बांध में दरारें पड़ गयीं। श्रीमन्त शंकरदेव सबको साथ लेकर वहाँ गये। गाँववालों के हाथों में कुल्हाड़ी-फावड़े-तगार थे। लोगों ने नदी किनारे बाँस-लकड़ी के खूँटे गाड़े। मिट्टी काटकर दरार और गड्ढों को भरा। शंकरदेव ऊँचे पीढ़े पर बैठे सारी कार्यवाही का संचालन कर रहे थे। किन्तु बात पूरी तरह नहीं बन पायी। लोगों में निराशा फैलने लगी।

''उनके सहयोगी जगतानन्द भूयाँ ने पूछा, 'अब हमें क्या करना होगा। यह काम किस तरह पूरा होगा ?'

''शंकरदेव ने कहा, 'मन छोटा करने से नहीं होगा। हर समस्या का कोई न कोई निदान भी होता है। इस काम के लिए एक सती साध्वी पतिव्रता चाहिये। वह ब्रह्मपुत्र से पलव में पानी भरकर लाये और टेम्बुवनी में छोड़े, फिर एक पलव मिट्टी लाकर नदी में डाले। सती के प्रभाव से इस समस्या से

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हरदम के लिए हमें छुटकारा मिल जायेगा।'

"ऐसा कैसे सम्भव है ? यदि सम्भव भी है तो इस कलयुग में ऐसी सती नारी कहाँ मिलेगी ?' रामराम ने शंका की।

"शंकरदेव ने उसे आश्वस्त करते हुए कहा, 'रामराम ! तुम ने भी अनेक शास्त्र-पुराण पढ़े हैं। सती अनसूया ने त्रिदेव ब्रह्मा, विष्णु और महेश को दुधमुँहे शिशु नहीं बना दिये थे ! सती सावित्री साक्षात् यमराज से अपने पति सत्यवान के प्राण लौटा लायी थी ! हमारे यहाँ हुई सती बेहुला ने भी अपने सतीत्व के प्रभाव से अपने मृत पति लखीन्दर को क्या पुनर्जीवन नहीं दिलाया था ! इस बात में तुम लोग सन्देह मत करो। खोजने पर ऐसी सती नारी आज भी मिल जाएगी। इस भारत भूमि पर सती नारियों का अकाल नहीं।"

परितम ने नुबी को आगे बताया, "नुबी ! वहाँ ब्राह्मण-कायस्थों की उच्चवर्णीया स्त्रियाँ खड़ी थीं। सबको सांप सूँघ गया। किसी में आगे आने का साहस नहीं हुआ।

"नुबी ! लगता है, भगवान् को सती के सत का प्रमाण लोगों के सामने रखना था। संयोगवश वहाँ घाट पर एक नाव आकर रुकी। नाव में पूरनानन्द और उसकी पत्नी राधिका थी। उन्होंने वहाँ लगा जमघट देखा। लोगों से वस्तुस्थिति को जानकर राधिका से रहा नहीं गया। उसने पति से विश्वास के साथ कहा, 'तुम कहो तो मैं यह कर सकती हूँ।'

"पूरनानन्द ने राधिका को झिड़कते हुए कहा, 'तुम्हारी मत मारी गयी। तुम करोगी यह काम ! यहाँ कितनी उच्चवर्णीया ब्राह्मण-कायस्थ स्त्रियाँ हैं। सभी सुबह नहाकर, साफ-सुथरे कपड़े पहन, नित्य भगवान् की पूंजा-सेवा करती हैं। उनमें ही कोई आगे नहीं आयी। हम तो निम्न कुल के मच्छीमार कैवर्त हैं। देखो, तुम्हारे शरीर से मछली की कैसी बू आ रही है। तुमने ऐसा सोचने का साहस भी कैसे किया ? तुम्हारी बात लोग सुनेंगे तो तुम्हारे साथ मेरी भी दुर-दुर छी-छी होगी। भले शंकरदेव तुम्हारा उपहास न करें, पर यह काम करने की अनुमति तुम्हें कदापि नहीं मिलेगी।'

'राधिका ने कहा, 'जात-वात मैं नहीं जानती। मुझे पूरा विश्वास है, यह काम मैं कर सकती हूँ। तुम लोकनिन्दा का डर मन से निकाल दो। बस, यह नेक काम करने तुम मुझे जाने दो।'

"आखिर पूरनानन्द को पत्नी की बात माननी पड़ी। राधिका शंकरदेव के पास गयी। उन्हें प्रणाम किया, फिर परिचय देकर अपना संकल्प बताया।

"राधिका को कैवर्त जाति की जानकर लोगों ने मुँह बिचकाये। उसकी छीछालेदरी का तमाशा देखने की बाट जोहने लगे। शंकरदेव ने उसकी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बात को गम्भीरता से लिया। रामराम से उसे पलव देने को कहा।

"राधिका भगवान् का स्मरण कर ब्रह्मपुत्र से सचमुच में पलव भर कर ले आयी। पलव को चार अंगुल खाली देखकर शंकरदेव ने पूछा, 'माता ! यह ऊपर से थोड़ा खाली कैसे रह गया ?"

'श्रीमन्त ! मेरे से आज तक कोई भूल नहीं हुई। बस, एक बार अनजाने में एक चूक हुई थी। उस दिन मैं खाना बना रही थी। इतने में अचानक दूसरे गाँव से आये मेरे बहनोई ने आवाज दी। मैं उसकी आवाज पहचान कर बाहर भागी आयी। जल्दीबाजी में मेरी ओढ़नी सरक गयी और उसने मुझे देख लिया। कदाचित यह पाप मेरे से हो गया।'

'कोई बात नहीं। तुमने सत्य कहकर अनजाने में हुए पाप का परिमार्जन कर लिया। एक बार फिर जाकर पलव में पानी भरकर लाओ।'

"नुबी ! जानती हो, राधिका दोबारा ब्रह्मपुत्र से पानी भर लायी। इस बार पलव ऊपर तक लबालब था। उसने पलव का पानी टेम्बुवनी में छोड़ दिया। फिर उसी पलव में मिट्टी भर कर लायी, उसे भी नदी में छोड़ दिया। अब टेम्बुवनी का जल धीरे-धीरे अपने स्तर पर आने लगा।

"शंकरदेव ने सबको सम्बोधित कर कहा, 'माता राधिका ने जो किया, वह आप लोगों को आश्चर्य लग रहा होगा। यह एक दृष्टान्त है। इस कलयुग में भी जो नारी मन को शुद्ध रखकर अपने पति की सेवा करती है, वह हरिसेवा के समान ही है। इसके लिए किसी उच्च कुल में जन्म लेना आवश्यक नहीं। किसी को निम्न जाति का समझकर उसकी अवहेलना करना पाप है। शरीर की शुद्धि से मन की शुद्धि ज्यादा महत्त्व रखती है। राधिका ने यह बात प्रमाणित कर दी है।'

"पीढ़े से उठकर शंकरदेव ने कहा, 'माता ! तुम्हारे सतीत्व की कथा आज से इस टेम्बुवनी के साथ सदैव के लिए जुड़ गयी। आज से हम इसे सती राधिकाशान्ति नदी[1] कहेंगे।"

परितम पारबोसा से पूरी बात जानकर नुबी को विश्वास नहीं हो रहा था। किन्तु आँखों देखी बात को सुनकर उसे झुठलाती भी कैसे। बाहिम ने अपनी पत्नी से कहा, "नुबी ! तुम एक दिन बच्चों को लेकर मेरे साथ नाव में बरदोवा चलना। सती राधिकाशान्ति नदी में नहाकर नामघर चलेंगे।"

□□

---

1 राधिकाशान्ति नदी : यह नदी आज भी बरदोवा में बहती है। इसके तट पर सती राधिकाशान्ति का एक छोटा-सा मन्दिर भी है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पाणिग्रहण

नामघर के बाहर हरितकी-वृक्ष तले बैठे शंकरदेव के मन में विचारों की उत्ताल तरंगें हिलोरें ले रही थीं। स्कन्द तथा अन्य पुराणों में तीर्थों के बारे में पढ़ा था, गुरुकुल में आये साधु-संन्यासियों से भी सुना था। वे सोचने लगे कि अब स्वयं अपने विशाल भारत की यात्रा कर विभिन्न लोगों, उनकी भाषा-संस्कृति, बोलियों, रहन-सहन, पहनावे को देखना-समझना होगा। यात्रा में कितने ही प्रकार के लोकगीत, वाद्य सुनने को मिलेंगे। विभिन्न नृत्यों और नाट्यकला को देख सकूँगा। चित्रकारी की विभिन्न बानगियों को देखूँगा। देश में कितने ही तीर्थ और नदियाँ हैं। जगन्नाथपुरी-रामेश्वर में जहाँ गंगासागर के दर्शन होंगे, वहीं द्वारका में सिन्धुसागर की लहरों की अठखेलियाँ देखूँगा।

वे प्रतीत कर रहे थे कि शिरोमणि भूयाँ का भार मेरे स्वभाव से मेल नहीं खाता। मैं इसके चलते कारखाने में बन्द होकर रह गया हूँ। एक घुटन-सी होती है। जीवन ठ्हरे पानी की तरह स्थिर हो गया है। अब राजकाज का बोझा कन्धों से उतारना होगा। नहीं तो घानी के बैल की तरह चक्कर लगाता रहूँगा। मेरे पहले भी राज्य का काम चलता था, मेरे न रहने पर भी रुकेगा नहीं।

दृढ़ निश्चय के साथ वे जयन्त के पास गये। वहाँ मझले दादा माधव भी बैठे थे। उन्हें प्रणाम कर बिना किसी लाग लपेट के अपना निर्णय स्पष्ट बताया। यह सुनकर दोनों सन्न रह गये। जयन्त ने कहा, ''मेरे कानों को तुम्हारी बातों पर विश्वास नहीं हो रहा। यह तुम क्या कह रहे हो ?''

''वही, जो आपने सुना। मैंने भली प्रकार चिन्तन कर लिया, राजकाज मेरे मन को नहीं भाता। मैं भूयाँवंशी अवश्य हूँ, किन्तु मेरा सोच अलग है। अभी मुझे बहुत अध्ययन-मनन करना है, भारतवर्ष को देखना है। अपने मन के संकल्पों को इस पद-भार के साथ पूरा नहीं कर सकता। रुचि बिना, आधे-अधूरे मन से किये गये काम कभी सफल नहीं होते। आपसे विनम्र निवेदन है, राजकाज से मुझे मुक्ति दे दें। यह मेरा अन्तिम निर्णय है।'' इतना कहकर वे चले आये।

दोनों भाई असमंजस में पड़ गये। माधव ने कहा, ''दादा ! युवावस्था में तो सबका मन ब्याह रचाकर घर-गृहस्थी बसाने का होता है। पहले वह धन कमाता है, फिर सत्ता प्राप्त करना चाहता है। शंकर के पास तो जन्मजात

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सत्ता है, धन की भी कोई कमी नहीं। शिरोमणि भूयाँ परिवार में जन्मा है। इसे सारी सुख-सुविधाएँ सहज ही प्राप्त हैं। और यह है कि सब छोड़कर वैरागी बनना चाहता है !''

जयन्त ने कहा, ''माधव ! शंकर अपने कहे पर दृढ़प्रतिज्ञ है। इससे पहले कि यह वैरागी बनकर कहीं चला जाए, इसे विवाह-बंधन में जकड़ना होगा। पूर्ण वैरागी होने से तो अच्छा है कि विवाहित वैरागी बन घर पर ही रहे। कम से कम हमारी आँखों के सामने तो रहेगा। सन्तान होगी तब उसके मोह में पड़कर ऊल-जलूल बकना भी बन्द कर देगा। हमारे परिवार में इसके जितना पढ़ालिखा कोई नहीं। चलो, भाभी खेरसुती से इस विषय पर चर्चा करते हैं।''

अध्ययन कक्ष में बैठे शंकरदेव का चित्त ब्रह्म पुराण पढ़ने में लगा था। गरुड़, पद्म, ब्रह्मवैवर्त, हरिवंश, भागवत आदि बगल की चौकी पर रखे थे। पदचाप सुन, उनका ध्यान द्वार की ओर गया। दादी खेरसुती, जयन्त, माधव के साथ ही गुरु कन्दली, जगतानन्द तथा रामराम भी थे। उन्हें देखते ही समझ गये कि वे क्या कहने आये हैं। वे गम्भीर हो गये। अपने मन को दृढ़ किया कि कितने भी प्रलोभन दिये जायें, शिरोमणि भूयाँ का भार अब नहीं सँभालना।

सर्वप्रथम गुरु कन्दली ने पूछा, ''शंकरदेव ! राजकाज का परित्याग कर अब तुमने क्या करने का निर्णय लिया है ?''

''गुरुदेव ! मैं भारतवर्ष का भ्रमण कर अपने देश के लोगों की आत्मा में झाँकना चाहता हूँ, देश की विविध कलाओं को समझना चाहता हूँ। इसके लिए मुझे देश का दीर्घकालीन भ्रमण करना होगा। मात्र शास्त्र पढ़कर सारी बातें नहीं समझी जा सकतीं। मेरे मन में चरैवेति-चरैवेति का मन्त्र गूँज रहा है। किसी कारण अभी भ्रमण पर न भी जा पाया तो फिर नामधर्म का प्रचार करूँगा। आप लोग मेरे निर्णय को यदि वैराग्य मानते हैं तो मेरे पास इसका कोई उत्तर नहीं।''

जयन्त ने सोचा, किसी से जोर-जबरदस्ती राजकार्य नहीं करवाया जा सकता। उनकी हाँ में हाँ मिलाते हुए प्रकट में कहा, ''बेटा शंकर ! तुम राज्यभार नहीं उठाना चाहते, इसका कोई विकल्प हम ढूँढ़ लेंगे। किन्तु अपनी घर-गृहस्थी बसाये बिना तुम भ्रमण पर जाना चाहते हो। हमारा मन सशंकित है, कहीं तुम संन्यासी न बन जाओ।''

खेरसुती विवाह की बात से उत्साहित होकर बोली, ''मुझे घुमावदार बातें नहीं आतीं। इतना धैर्य भी मुझ में नहीं। बेटा ! तुम्हें अब विवाह करना होगा। अन्यथा पूर्वजों की वंशबेल कैसे आगे बढ़ेगी ! मैं तुम में जैसे अपने

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पुत्र कुसुमवर और तुम्हारे दादा सूर्यवर की झलक देखती हूँ; उसी प्रकार तुम भी अपने पुत्र में अपनी उपस्थिति का अनुभव करोगे।''

गुरु महेन्द्र कन्दली ने दादी की बात का समर्थन करते हुए कहा, ''शंकरदेव ! तुम्हारी दादी सही कह रही है। पुत्र के रूप में मनुष्य अपने ही जीवन का विकास करता है। अतः वंश वृद्धि के लिए विवाह आवश्यक है।''

शंकरदेव को मोह में डालने के लिए जयन्त ने फिर कहा, ''हरिवरगिरि भूयाँ की कन्या सूर्यवती रूप-गुण में देवीस्वरूपा है। तुम्हारे योग्य है। हरिवर कब से इस सम्बन्ध के लिए जोर दे रहे हैं। तुम्हारी एक बात हमने मान ली, अब हमारी एक बात तुम्हें भी माननी होगी।''

शंकरदेव को मौन देखकर कन्दली ने कहा, ''संन्यासी को छोड़कर सभी संसारी हैं। गृहस्थी बसाकर भी तुम भक्ति कर सकते हो। वे सारे काम भी कर सकते हो, जिन्हें करने की मन में ठान रखी है।''

शंकरदेव ने विचार किया, गृहस्थ बने बिना सांसारिकता को नहीं समझा जा सकता। गृहस्थ धर्म, कदाचित मेरे जीवन की एक परीक्षा होगी। एक वैरागी पत्नी-प्रेम, सन्तान के प्रति स्नेह की अनुभूति कैसे कर सकता है ? भारत में कई ऐसे साधक और धर्म प्रवर्तक हुए हैं जो सफल गृहस्थ भी रहे।

कुछ पल कक्ष में नीरवता छायी रही। इसे तोड़ते हुए कन्दली ने फिर कहा, ''शंकरदेव ! एक बात अच्छी तरह समझ लो, गृहस्थ होकर भी अनासक्त रहा जा सकता है, अपनी वासनाओं पर विजय पायी जा सकती है। मनुष्य की बुद्धि जब मोहरूपी अन्धकार को चीरने में सक्षम होती है तभी वह ज्ञात और जानने योग्य में भेद कर पाता है। शास्त्र में कहा है–

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति ।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ।।

गुरु का कथन सुनकर शंकरदेव ने विचार किया, अपने मन को वश में कर, अनुराग और द्वेष से मुक्त होकर और इन्द्रिय विषय भोग से अलिप्त रहकर सांसारिक जीवन व्यतीत करने में कोई दोष नहीं।

शंकरदेव के मौन को उनकी स्वीकृति मान ली गयी। खेरसुती के चेहरे पर प्रसन्नता छा गयी। उसने पोते के सिर पर हाथ फेर आशीर्वाद दिया।

हरिवरगिरि भूयाँ की चौदह वर्षीया कन्या सूर्यवती से इक्कीस वर्ष के शंकरदेव का विवाह सम्पन्न हो जाने पर दोनों पक्षों को अपार सन्तोष हुआ। जयन्त ने खेरसुती से कहा, ''भाभी ! शंकर के कन्धों पर गृहस्थी का जुआ रख दिया

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है। अब यह वैराग के बारे में कभी नहीं सोचेगा। सुन्दर पत्नी के मोह में यह ऐसा आबद्ध हो जाएगा कि इसे देश भ्रमण का ख्याल भी नहीं आयेगा।''

''यही तो मैं चाहती थी। मुझे एक ही डर था, यह कहीं विवाह से न मना कर दे। इस कार्य में गुरु कन्दली ने उसे तैयार कर बहुत सहायता की है। बहू भी ऐसी सुन्दर है कि उसके रूप-जाल से यह कभी नहीं निकल सकेगा।''

दो दिनों बाद ही साँचिपात का गट्टर लिये क्षीरोद को घर पर आया देखकर जयन्त ने उससे पूछा, ''ये किसलिए लाये हो, हमने तो नहीं मँगाये। पहले के साँचिपात ही अब तक पड़े हैं।''

''कल प्रातःभ्रमण के समय श्रीमन्त शंकरदेव मेरे घर आये थे। वे ही घर पर साँचिपात दे जाने को कह गये।'' क्षीरोद ने उत्तर दिया।

राजकाज से मुक्त हो, शंकरदेव अपनी रचनाधर्मिता में लग गये। सुबह हल्का नाश्ता कर वे अध्ययन कक्ष में जा बैठते। दोपहर का भात कभी जाकर खा आते, कभी कक्ष में मंगा लेते। शारीरिक थकान का जैसे उन्हें कोई भान ही न था। देर रात्रि तक कार्य में लगे रहते। एक रात सूर्यवती कक्ष में आयी। साथ लाये ताम्बूल-पान का बोटा उनके सामने रखा। दीपक के मन्द पड़े प्रकाश को बढ़ाने बाती सरकायी। फिर वहीं ठिठक कर खड़ी हो गयी।

''खड़ी क्यों हो ! आओ, मेरे पास बैठो।'' वह पति के समीप बैठ गयी। शंकरदेव पत्नी का मान रखने बोटा से ताम्बूल का एक टुकड़ा उठा मुँह में रख चुबलाने लगे। फिर पत्नी का हाथ अपने हाथ में लेकर कहा, ''सूर्यवती ! मैं तुम्हारे साथ अन्याय कर रहा हूँ। इतने दिन हो गये तुम्हारी सुध तक नहीं ली।''

''मैंने तो कोई उपालम्भ नहीं दिया। आप सुबह से रात तक कार्य में लगे रहते हैं। शरीर का भी ध्यान नहीं रखते। स्वस्थ रहेंगे तभी तो अपने कार्यों को आगे बढ़ा पायेंगे।''

''नित्य प्राणायाम-ध्यान कर शरीर को मैंने कष्टसहिष्णु बनाया है। मेरे स्वास्थ्य को लेकर चिन्तित मत हो। हाँ ! मैं यहाँ अकेला पड़ गया। शास्त्र चर्चा करने के लिए कभी-कभी व्याकुल हो जाता हूँ। गुरुकुल में तो गुरुदेव से विभिन्न विषयों पर चर्चा होती थी। यहाँ किससे करूँ ? दादी और दादा जयन्त कहने को तो कुछ नहीं कहते, मैं जानता हूँ मेरे राजकाज छोड़ देने से वे प्रसन्न नहीं।''

सूर्यवती ने कहा, ''मैं इस योग्य नहीं कि आप से शास्त्र चर्चा कर सकूँ। हाँ, एक बात मेरे मन में बार-बार उठती है, आप कहें तो पूछूँ !''

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"हाँ ! हाँ !! पूछो, मैं भी तो जानूँ कि तुम्हारे मन में कौन-कौन से प्रश्न छिपे हैं ?"

"मैं शाक्त परिवार में जन्मी-पली हूँ। आपका वंश भी शाक्त ही है। आपके पूर्वजों ने सदैव अपनी प्रजा का पालन किया। आप शाक्त पन्थ के बदले वैष्णव पन्थ की ओर कैसे प्रवृत्त हो गये ?"

शंकरदेव मन ही मन सूर्यवती की तर्कपूर्ण बातें सुनकर प्रसन्न हुए। वे समझ गये, यह उम्र में भले छोटी हो, बुद्धि-चातुर्य में कम नहीं।

उन्होंने कहा, "वैष्णव पन्थ किसी भी देवी-देवता की पूजा-आराधना करने से नहीं रोकता। वह तो आडम्बरों का विरोध करता है। मनुष्य को ईश्वर का अंश मान उससे प्रेम करना सिखाता है। हमारे मूल सनातन धर्म में अनेक गूढ़ तत्त्व हैं, जिन्हें हमारे ऋषि-मुनियों ने वेदों और उपनिषदों में रखा है। उन सब का सारतत्त्व श्रीमद्भागवत और श्रीमद्भगवद्गीता है। इनमें लिखी एक बात भी यदि कोई अपने जीवन में उतार ले तो उसे कहीं भटकने की आवश्यकता नहीं।"

"ये बातें साधारण लोगों तक कैसे पहुँचायेंगे ?"

"सूर्यवती ! इसके लिए मोहमाया का त्याग कर भक्तिभाव और शुद्ध मन से जनसेवा में लगना होगा। परमब्रह्म श्रीकृष्ण के सन्देश को वैष्णव धर्म के माध्यम से प्रचारित करना होगा। कर्मकाण्ड की विसंगतियाँ लोगों को वतानी होगीं। पौराणिक आख्यानों पर काव्य-नाट्य रचने होंगे। उन्हें समय-समय पर सुर-संगीत और राग-रागिनियों में ढालकर नृत्य-नाटिकाओं द्वारा लोगों के हृदय में उतारना होगा।"

"आप अकेले इतने सारे कार्य कैसे कर पायेंगे ?"

"मैं अकेला कहाँ हूँ ? मेरे पहले हुए महापुरुष यह मार्ग दिखा गये हैं। उनकी बातें ही सरल सुवोध भाषा में साधारण जन के सामने रखनी हैं।"

उन्होंने आगे कहा, "राज्यकाल में एक बार अनेक गाँवों का नौका-भ्रमण किया था। मेरे साथ जगतानन्द, वनगयाँगिरि और रामराम के साथ खाना बनाने और हमारी देखभाल करनेवाले महाराज-नौकर भी थे।

"अपने भूयाँ राज्य और इसके आसपास के वनों-पर्वतों पर रहनेवाले कछारी, डिमासा, नगा, बोड़ो, मिरी आदि अनेक जातियों को भी मैंने नजदीक से देख उनके दुःख-दर्द को समझने का प्रयास किया है।

"अनेक गाँवों का भ्रमण करते हुए हम ब्रह्मपुत्र में स्थित तीन द्वीपों के पास पहुँचे। नाव घाट पर लगवायी। तट पर लोगों की चहल-पहल थी।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वहाँ लगी हाट पर लोग ताम्बूल और पान बेच-खरीद रहे थे। हम कच्ची सुपारी के अर्थ में ताम्बूल शब्द का प्रयोग करते हैं, जबकि संस्कृत में ताम्बूल पान को कहा जाता है और सुपारी को संस्कृत में गुवाक कहते हैं, जिसे हमारे यहाँ बोलचाल में गुवा कहा जाता है। वहाँ दो दिन रहकर हम खासी-जयन्तिया पहाड़ी पर गये।

"पहाड़ से लौटकर नाव को फिर ब्रह्मपुत्र की मझधार में छोड़ दिया। वहाँ से पश्चिम की ओर गारो पहाड़ तक गये। वह क्षेत्र हमारे राज्य के अन्तर्गत नहीं, किन्तु वहाँ के वनवासियों से मिलने की चाह मुझे उन क्षेत्रों तक ले गयी।

"सूर्यवती ! ब्राह्मण-कायस्थों के सभ्य समाज में व्याप्त नीच-उच्च और जातिभेद की भावना के कारण पनपी छुआछूत से अपने ही लोगों से हमारी मानसिक दूरी बनी। वैष्णव नामधर्म में केवल हरि-कीर्तन कराना मेरा उद्देश्य नहीं। इसके माध्यम से लोगों में फैली भ्रान्तियों, अन्धविश्वासों और आपसी भेद को दूर करना होगा, उन्हें एक दूसरे के नजदीक लाना होगा। मैं अगर इस जातिभेद और छुआछूत को मिटा उनमें हरिभक्ति के बीज अंकुरित कर सका तो अपने जीवन को धन्य समझूँगा।"

सूर्यवती ने कहा, "इन गहन बातों को समझने के लिए आपके साथ बार-बार बैठना होगा। आप कार्य में व्यस्त रहते हैं। अगर अपने अमूल्य समय में से थोड़ा समय नित्य मुझे दें पायेंगे तो आभारी रहूँगी। इस समय रात बहुत हो रही है। चलिये, कुछ देर विश्राम कर लीजिये।"

"सूर्यवती ! ऐसी औपचारिक बात क्यों कर रही हो। तुम्हारा जब मन हो, चली आया करो। तुमसे बातें कर मुझे कितना सन्तोष हुआ, तुम नहीं जानती। इतनी कम उम्र में भी तुममें जानने की जो ललक है, वह सराहनीय है। सन्तोष की बात है, तुम मेरी बातों को समझ पा रही हो। तुम मेरी धर्मपत्नी होने के साथ-साथ सही अर्थों में सहधर्मिणी भी हो। पत्नी यदि पति के कार्य का मूल्य न समझकर सदैव कलह करे तो पति विचलित रहता है। ऐसे में वह अपने कार्य का सही प्रतिपादन नहीं कर सकता। विशेषकर रचनात्मक कार्य करने के लिए, जिसमें प्रत्यक्ष रूप में कोई आर्थिक लाभ नहीं दिखता, पत्नी का सहयोग बहुत महत्त्वपूर्ण है। दूसरा प्रहर बीतने को है। चलो, अब शयनकक्ष में चलते हैं।"

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सहधर्मिणी

नवोढ़ा की सारी झिझक त्यागकर सूर्यवती शंकरदेव के सुबह के कलेवे से लेकर रात्रि भोजन तक तथा अन्य सुविधाओं का ध्यान स्वयं रखने लगी। दोपहर के भोजन का थाल लेकर वह अध्ययन कक्ष में प्रविष्ट हुई। भोजनोपरान्त शंकरदेव घड़ीभर लेटे। वह उनके पाँव दबाने लगी। उन्होंने उसे मना करते हुए कहा, "सूर्यवती ! तुम मेरी आदत मत बिगाड़ो। पत्नी का स्थान चरणों में नहीं, हृदय में होता है। तुम जानती हो, मैं ब्याह करने के लिए ही राजी नहीं था। किन्तु अब तुम्हारी जैसी गृहिणी पाकर सन्तुष्ट हूँ। हाँ ! कल तुम मुझसे कुछ पूछना चाहती थी। पूछो, क्या पूछना है।"

"कल आप सुर-संगीत को अपनी राग-रागिनियों में ढालने की बात कह रहे थे। यह आप कैसे करेंगे ?"

"सूर्यवती ! वनों-पहाड़ों पर रहनेवाले वनवासियों के अपने-अपने राग और वाद्य हैं। मैंने उन्हें समझने का प्रयास किया है। प्राचीनकाल में हमारे ऋषि-मुनियों ने वनों में चहचहाते पक्षियों के कलरव को सुनकर संगीत रचा। आकाश में होती मेघ-गर्जना, सागर में होते लहरों के नाद से राग-रागिनियाँ रचीं। वैसे ही मैं भी उन वनवासियों के सुरों से अपने सुर गढ़ूँगा। पौराणिक आख्यानों पर नाट्य रचूँगा। उन्हें सुर-संगीत और नृत्य-नाट्य द्वारा लोगों के हृदय में उतारूँगा।"

"इसका अर्थ हुआ, आप गायक-वादक के साथ-साथ नर्तक भी होंगे।"

"देखें, क्या-क्या होता है। पहले विशाल भारतभूमि के अन्य क्षेत्रों में क्या-क्या विधाएँ हैं, उनको जानना होगा। इसके लिए भ्रमण करना होगा। पता नहीं, यह सुयोग मुझे कब मिलेगा !"

"आप भ्रमण पर जायें तो मुझे भी अवश्य साथ ले चलियेगा। वचपन से मेरे मन में पतितपावनी गंगा में स्नान कर काशी के विश्वनाथ के दर्शन करने की साध है।"

"सूर्यवती ! यात्रा में वहुत कष्ट है, तुम्हारी जैसी कोमलांगी उन कष्टों को कैसे सहन कर पायेगी ! अभी इस वात को छोड़ो, समय तो आने दो। इस समय क्या कहा जा सकता है !"

शंकरदेव को भी पत्नी का सान्निध्य भाने लगा। वे उससे अनेक विषयों पर चर्चा करते। एक दिन सूर्यवती ने पति से पूछा, "आपने एक बार वैष्णव

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

धर्म के बारे में कहा था, उसके बारे में थोड़ा विस्तार से जानने की इच्छा है।''

''सूर्यवती ! तुम्हारा प्रश्न मुझे बहुत अच्छा लगा। अब तुम भी मेरे कार्यों में रुचि लेने लगी हो। वैष्णव धर्म कोई अलग नहीं है। इसे श्रीमद्‌भागवत और श्रीमद्‌भगवद्‌गीता से लिया गया है। सार रूप में ऐसा समझो कि भागवत पुराण ही वैष्णव धर्म है। इस भारतभूमि पर भागवत को जाननेवाले अनेक पण्डित थे और आज भी हैं। किन्तु उन्होंने पूर्व निर्धारित नीति-नियमों के अनुसार न चलकर अपने लाभ के लिए भागवत कथा को समाज में प्रचारित नहीं किया; लगता है कि अब भी वे विद्वान पण्डित इस काम की ओर ध्यान नहीं दे रहे। इस विषय पर दो-एक जन से मेरी बात भी हुई। मैंने उन्हें अपना मन्तव्य बताया, यदि भागवत की सही व्याख्या नहीं होगी तो उसका लाभ जनता को कैसे मिलेगा ?''

शंकरदेव ने आगे कहा, ''अब तुम्हारी बात पर आता हूँ। भारतवर्ष में अद्वैतवाद का प्रचार पूर्वकाल से चला आ रहा है। आज से लगभग दो हजार वर्षों पहले शंकराचार्य हुए थे। वे मात्र बत्तीस वर्ष ही इस धरती पर रहे। वे नहीं होते तो वेद और उपनिषदों की सही व्याख्या नहीं होती। उन्होंने सम्पूर्ण भारतभूमि का भ्रमण कर लोगों में प्रचार किया कि ईश्वर ही सत्य है, जगत मिथ्या है। उन्होंने भारत की चारों दिशाओं में चार मठ स्थापित किये। वे ज्ञानमार्गी थे। उनके ज्ञानमार्ग से कुछ भक्तिमार्गी असहमत भी हो सकते हैं। फिर भी वैष्णव उनके प्रति सदैव कृतज्ञ रहेंगे।

''आज से करीब तीन सौ वर्ष पहले हुए रामानुजाचार्य ने भी समस्त भारत का भ्रमण किया था। उन्हें अद्वैतवादी कहा जाता है। उनके मतानुसार ईश्वर एक है। ज्ञान, कर्म और भक्ति द्वारा मुक्ति मिल सकती है। ईश्वर के प्रति मनुष्य अपनी देह, मन और आत्मा को समर्पित कर वैकुण्ठ भी पा सकता है। उन्होंने ब्रह्मसूत्र और श्रीमद्‌भगवद्‌गीता पर भाष्य लिखे थे।

''इसी तरह दक्षिण भारत में हुए श्रीरंगनाथाचार्य ने शंकराचार्य के अद्वैतवाद का विरोध कर वैष्णव सम्प्रदाय की स्थापना की थी। उनके कुछ दिनों पश्चात् दक्षिण में ही निम्बार्काचार्य ने ज्ञान से भक्ति धर्म को अधिक शक्तिशाली प्रतिपादित किया। उनके मतानुसार श्रीकृष्ण का स्मरण और गुणगान मात्र से ही मुक्ति मिल जाती है। दक्षिण के कर्नाटक में हुए मध्वाचार्य ने अपने माधव-सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया। वे वेदान्त के विद्वान प्रवक्ता थे। उनके मतानुसार हरि को पाने के लिए अपने जीवन का यही लक्ष्य निर्धारित करना आवश्यक है।

''इसके पश्चात् श्रीमद्‌भागवत के विख्यात टीकाकार श्रीधर स्वामी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हुए। अद्वैतवादी उस विद्वान के मतानुसार भगवान् की शरण में जाने पर ही आत्मबोध होता है और भक्तिमार्ग से ही मोक्ष मिलता है।

"सूर्यवती ! इसी तरह उत्तर भारत में कुछ वर्षों पहले हुए स्वामी रामानन्द ने वैष्णव धर्म को और अधिक शक्तिशाली किया। तब तेज गति से बलपूर्वक इस्लाम का प्रचार हो रहा था। उसके चलते ही मेरे पुरखों को अपना धर्म बचाने के लिए कन्नौज से भागकर गौड़ प्रदेश में आकर बसना पड़ा। ऐसी विषम स्थिति में रामानन्द ने वैष्णव धर्म के एकेश्वरवाद का प्रबल पक्ष लेकर लोगों को धर्मान्तरित होने से रोका।"

सूर्यवती ने सहज जिज्ञासा की, "आपने इतनी बातें बतायीं। इन्हें केवल शास्त्र पढ़कर तो नहीं जाना जा सकता। आपने ये बातें कैसे जानीं ?"

"सूर्यवती ! तुमने ठीक कहा। प्रयाग, काशी आदि तीर्थों के भ्रमण पर आनेवाले कई साधु-संन्यासी इधर भी आते हैं। उनसे मिलकर ही ये सारी बातें मैंने जानी हैं। एक बात और, सूर्यवती ! कुछ लोगों की धारणा है कि इस्लाम के एकेश्वरवाद से प्रभावित होकर लोगों ने यह धर्म ग्रहण किया है। इससे प्रेरित होकर ही हमारे यहाँ भी एकेश्वरवाद स्थापित हुआ है। यह पूरी भ्रान्ति है। शंकराचार्य एकेश्वरवाद के प्रबल समर्थक थे। वे जब हुए उस समय तो भारतवर्ष में क्या पूरी दुनिया में न इस्लाम था और न ही कोई मुसलमान।

"नामधर्म वैष्णव मत ही है। उपनिषद, भागवत और गीता वैष्णव धर्म के मूलाधार हैं। इसका बीजारोपण भारतवर्ष में बहुत पहले हो चुका है। उसी बीज रूप को फिर से सिंचित करना होगा। श्रीमद्भगवद्गीता में भी कहीं मूर्तिपूजा करने के लिए नहीं कहा गया है।"

सूर्यवती के आ जाने पर शंकरदेव के जीवन में जैसे गति आ गयी। उनका उछाह तरंगें मारने लगा। अब उनका मन 'रुक्मिणी हरण' काव्य रचने के लिए उत्प्रेरित हो रहा था। उनकी कल्पना में रुक्मिणी की छवि बिल्कुल सूर्यवती जैसी उभरी। इसी सोच के साथ उनकी लेखनी से साँचिपात पर शब्द आबद्ध होने लगे—

त्रैलोक्यत समरूप नाही रुक्मिणीक ।
चन्द्रतो अधिक जले वदनर कान्ति,
दशन निविर जेन मुकुतार पान्ति ।
आयत लोचन सम नोहये कमले,
मदनर धनु सम भ्रू-युग जले ।
सुवर्नर पाता सम सुसम कपोल,

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

याक देखि सिद्ध मुनिगन होवे भोल ।
केश वेश विचित्र चामरे नुहि तुल,
निरुपम नासाक नोजोरे तिल फूल ।
रुचिकर कर्ण उपमाक् नाहि तुल,
अधर रातुल मेन बन्दुलिर फूल ।
अमृत सुरस वाणी कोकिलर स्वर,
चारु कम्बु कण्ठक देखते मनोहर ।
बाहु युग जले येन कोमल मोलान,
आरकत कर किशलय येन थान ।
बलित अंगुलि चय चम्पार पाकरि,
अरुण नखक चन्द्रबिम्ब नुहि सरि ।
प्रथम वयसी नारी पद्मिनी प्रधान,
हृदयत बाढ़े स्तन बदरी प्रमाण ।
बहल ज़ंघनी कटिदेश अति सरु,
मूठिते लुकाय येन हरर डमरु ।
ललित बलित उरु येन रामकल,
देखन्ते सन्तोष दुइ चरण कमल ।
चन्द्र सम जलै अति चारु नख पान्ति,
याक देखि मदनर चित्त उदभ्रान्ति ।
सर्वांगे सुन्दरी येन सुवर्ण प्रतिमा,
रुक्मिणीर रूपक करिबे कौने सीमा ।

रुक्मिणी-हरण की कथा विशेष रूप में हरिवंश और भागवत पुराणों से शंकरदेव ने ली। पुराण-कथा होने पर भी 796 छन्दों में रचित इस खण्डकाव्य में उन्होंने अपनी मौलिकता का परिचय देते हुए अपने समयानुसार कुण्डिलनगर का अति सुन्दर विस्तृत वर्णन करते हुए लिखा–

कुण्डिलनगर अति मनोहर, देखिला श्री गोपाल ।
नाना विध घर अति उच्चतर, परम चारु चौछाल ।।
कतो गृह आछे साजि शुद्ध काचे, ऊपरे ढाकिला खौ ।
येन शुक्ल गिरि आछे शारी शारी, भितरे टालिला जौ ।।
विचित्र कषटि काटि शिलाकुटि, गृहर बान्धिला कान्ही ।
ताते नाना पट घट नट भाट, प्रकटि गढ़िल हाथी ।।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बाघ घोंग सिंह नाना बिहंगम, शारी शारी साजि आछे ।
अनेक पुतलि येन हात तुलि, अंगि भंगि करि नाचे ।।
दर्पण आकार साजि दिल बार, जिंजिरि काटिल ताते ।
फटिक कपाट पोवालेर खया, लगाय आछे हस्तो ताते ।।
सुवर्णर घट करे फट फट, निशेष गृह ऊपरे ।
बज्र सम दृढ़ चौपाशर गड़, देवर दुर्गम डरे ।।
विचित्र बाखर बिके निरन्तर, बनिया लोके प्रवन्धे ।
अगरु चन्दन लक्षि सर्वक्षणे, आमोद करय गन्धे ।।
एला जायफल डाव नारिकल, भांगि बिके कतोजना ।
चिनि करपूर विकय प्रचुर, गन्धे गन्धे धूप धुना ।।
हाट बाट बेढ़ि करे नाना खेरि, नगरि यत छोबाल ।
अनेक रमणी पिन्धे किनि-किनि, मुकुता हीरा पोवाल ।।
असंख्य पुखुरी चप चप करि, चारु जले आछे भरि ।
चारिओ काखरे बान्धित पाथरे, घाटे घाटे खाट खरि ।।
पारे पारे तार फूले जातिष्कार, चम्पक बक बन्धुलि ।
जलत कमल भेंट उत्पल, पद्म आछे फुलि फुलि ।।
कोढ़ा कंक बक अनेक चटक, जले परि थाके रंजि ।
प्रमत्त निर्भय राजहंस चय, मृणाल भुंजे उंभजि ।।
अनेक नागेरि रूर्पे विद्याधरी, मनक मोहय हासि ।
स्नान करिबाक याइ जाके जाक, गावे तेल कूर घसि ।।
सवे शशिमुख संभोगत सुखि, सुबलित हाथ पाव ।
पुरुषर चित मोहय त्वरित, दरशिया काम भाव ।।
राज राजेश्वर अनेक कुमार, हस्ति स्कन्धे याइ चरि ।
पितृक अर्चिया क्रर्म समर्निया, पुनरपि याइ लरि ।।
अनेक ब्राह्मण करन्त तर्पण, निर्मल जलत पशि ।
स्नान दान करि सुमरन्त हरि, कतो काखरत बसि ।।
मत कौतूहल देखिल सकल, कुण्डिल नगर गैया ।
काव्य कोष शास्त्र पढ़े नाना छात्र, गुरु उपदेश लैया ।।
ब्राह्मणर वेद शुनि अविच्छेद, सतते निरत पूजा ।
केहो नोहे दुखी सवे महासुखी, भीष्मक रजार प्रजा ।।

शंकरदेव ने रुक्मिणी को आदर्श भक्ति का प्रतीक माना। भीष्मक

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

का परिवार वृहत्त कामरूप के आदर्श हिन्दू परिवार का प्रतिनिधित्व करता है। श्रीकृष्ण को भक्तवत्सल और वीर रूप में चित्रित किया। भक्ति विरोधी रुक्मी-शिशुपाल से युद्ध कर भक्ति की विजय को सर्वोपरि दिखाया गया। क्योंकि रुक्मि श्रीकृष्ण-द्वेषी, अभिमानी, क्रोधी, अविनीत, माता-पिता की अवज्ञा करनेवाला और हठी व्यक्ति है। भीष्मक वैष्णव भक्त और उदार पिता है।

शंकरदेव ने आम लोगों के बीच इस रचना को प्रचारित करने के लिए सरल-सुबोध संवाद-शैली में लिखा। स्थानीय जीवन की प्रतिछाया दिखाने के लिए इसमें कामरूपी भाषा की लोकोक्तियों-मुहावरों के साथ ही देशज शब्दों का भरपूर प्रयोग किया। काव्य में वेदनिधि नामक एक मौलिक पात्र के माध्यम से हास्य रस का भी संचार किया। मूल पुराण कथा के साथ शशिप्रभा, सुमालिनी के पात्र गढ़े। पौराणिक प्रेम-कथा के माध्यम से उन्होंने वैष्णव भक्ति का प्रचार किया। शृंगार और वीर रस की प्रमुखता होने पर भी शंकरदेव ने भक्ति की धारा को नहीं छोड़ा। वे इस काव्य में लिखते हैं–

हरिबंश कथा कवि शंकरे सम्प्रति ।
रुक्मिणी हरण पद बन्धे निगदित ।।
एके हरिबंश कथा अमृत साक्षात ।
आरो भागवत कथा मिश्र दिलो तात ।।
दुयो कथो पद बन्धे करो किसलाइ ।
जेन मधु मिश्र दुग्ध स्वाद आति पाय ।।

एकशरण भक्ति को प्रतिपादित करते हुए यह भी इंगित करते हैं कि भक्त की मनोकामना श्रीकृष्ण कैसे पूरी करते हैं। इस काव्य-लेखन का आशय स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं–

पातेक तरण रुक्मिणी हरण एहि माने समापति ।
इहार श्रवणे कर्तिने साक्षात साधय परम गति ।।
कृष्णर कथात परे महन्तर नाहि आन पुरुषार्थ ।
सकले शास्त्रर गूढ़ तात्पर्य जानि करा परमार्थ ।।
ईश्वर कृष्णर चरण सेवाक प्रति प्रति आछे काम ।
कृष्णर चरण हृदयत धरिया डाकि बोला राम राम ।।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

काव्य-रचना के साथ-साथ शंकरदेव नामघर में धर्मचर्चा और कीर्तन करते तथा अपने एकान्तिक क्षणों में श्रीमद्भागवत आदि पुराणों का पठन-मनन करते।

सूर्यवती पति की विद्वत्ता और हरि-भक्ति देखकर अति प्रफुल्लित थी। समय अपनी धुरी पर आगे बढ़ रहा था। कुछ समय बाद वह गर्भवती हुई। खेरसुती यह जाकर आगामी पीढ़ी के स्वागत के लिए तत्पर हो गयी। वह अपनी पौत्रबहू का पूरा ध्यान रखती। समय आने पर सूर्यवती ने एक सुन्दर कन्या को जन्म दिया। उस समय सूर्यवती अठारह वर्ष की और शंकरदेव पच्चीस के थे।

खेरसुती और चन्दरी बहू की देखभाल में जी-जान से लगी रहीं क्योंकि शंकर को जन्म देकर सत्यसन्ध्या के अचानक चले जाने का दुःख दादी भूली नहीं थी। महीने भर में सूर्यवती स्वस्थ होकर घर के कामकाज में लग गयी। कन्या का नाम हरिप्रिया रखा गया, वैसे सभी उसे दुलार से मनु कहकर पुकारते।

घर में छायी खुशी ज्यादा दिन न टिक सकी। मनु के जन्म के नौ महीनों बाद अचानक सूर्यवती का देहान्त हो गया। मृत्यु के समय शंकरदेव अपने पत्नी के पास थे। उनके देखते-देखते सूर्यवती ने प्राण त्याग दिये। शंकरदेव को विश्वास नहीं हो पाया कि सूर्यवती की काया निष्प्राण हो गयी है।

कुछ क्षणों पहले ही तो सूर्यवती बातें कर रही थी। ज्वर में तपते हुए भी वह एकाएक विस्तर से उठी। चौकी पर रखी सिन्दूर की डिबिया उठा उसने पति से कहा, "स्वामी ! आप अपने हाथों से मेरी मांग में सिन्दूर भरिये। लगता है कि मुझ अभागिन का आपके संग इतना ही साथ था। अगले जन्म में आपकी सेवा करने मैं फिर आपकी पत्नी बनकर आऊँगी। मनु को मैं माँ की ममता नहीं दे पायी, वह अब आप और दादी के जिम्मे है।"

सूर्यवती का मन रखने को शंकरदेव ने उसकी मांग सिन्दूर से लाल कर दी। उसने जमीन पर घुटने टेक कर पति की चरण वन्दना की। शंकरदेव ने उसे उठाकर बिछौने पर लेटाया, उसके सिर को अपनी गोद में रखकर सहलाने के लिए ललाट पर हाथ का स्पर्श किया तो अवाक रह गये। सूर्यवती की आँखें खुली की खुली रह गयीं। उसकी आँखों में जैसे

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कोई आतुरता थी, कदाचित् वह पति से कुछ और भी कहना चाहती थ
शंकरदेव ने पत्नी के साथ ही सहधर्मिणी और मित्र को भी खो दिया।
सोच रहे थे, जो जन्मा है उसका मरण अवश्यम्भावी है। किन्तु यह ए
छलावे की तरह हो जाएगा, ऐसा कभी नहीं सोचा था। जन्म-मरण ज
अपजस विधि हाथ। मन में उठ रहे भावों को गीता के श्लोक में उन्हें
उद्धृत किया---

> वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि
> तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यान्यानि संयाति नवानि देही

दार्शनिक चिन्तन भी शंकरदेव के मन से पत्नी के दुःख को क
न कर पा रहा था। अब उन पर अपनी नवजात पुत्री के पालन-पोषण
उत्तरदायित्व आ गया। कुछ क्षणों के लिए वे मोह के पाश में आबद्ध
गये; हृदय सिंहासन पर विराजमान धर्मपरायण पत्नी सूर्यवती को इत
शीघ्र कैसे विसरा दें !

□।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मन का सूनापन

समय के पंख लगे होते हैं। वह किसी की ओर नहीं ताकता, न किसी की प्रतीक्षा करता है। देखते-देखते वर्ष बीतते गये। इस बीच मनु का पूरा जिम्मा दादी खेरसुती और चन्दरी ने ले लिया। दोनों ने कभी मनु को माँ की ममता की कमी अनुभव नहीं होने दी। शंकरदेव का विषाद बहुत दिनों तक कम नहीं हुआ। उनकी मानसिक दशा को ठीक करने के लिए खेरसुती बार-बार समझाया करती। एक दिन उसने कहा, "शंकर ! तुमने जिस कार्य को करने के लिए राजकाज से निवृत्ति ली, उसके प्रति अपना ध्यान लगाओ। नामघर में लोगों का तांता लगा रहता है। तुम पहले की तरह ही वहाँ अधिक समय क्यों नहीं देते ! तुम्हें नयी-नयी रचनाएँ लिखनी हैं, उसमें अपना मन लगाओ। अब लोगों की तुमसे अपेक्षाएँ बढ़ गयी हैं। उन्हें निराश मत होने देना।"

खेरसुती की बातों से शंकरदेव के मन में उत्साह बढ़ा। उन्होंने सोचा, सूर्यवती को मैंने अपनी जो भावी योजनाएँ बतायी थीं, यदि पूरी न कर पाया तो उसकी आत्मा को भी कष्ट पहुँचेगा। मैं अपने निजी शोक में और कितने दिन डूबा रहूँगा। लोगों की अपेक्षाओं पर मुझे खरा उतरना होगा। जीवन के इकत्तीस साल चले गये। इतने समय में जितना कार्य करना चाहिये था, कहाँ कर पाया। मैंने गरुड़ पुराण पर 'भक्ति प्रदीप' और ब्रह्म पुराण पर 'उरेषा-वर्णन' लिखने का जो खाका मन में तैयार किया था, वे ग्रन्थ अब तक नहीं लिख पाया। भारत-भ्रमण की योजना भी नहीं बन पायी। शंकराचार्य ने तो अपने तीस वर्ष के जीवन में ही बहुत कुछ कर दिया था।

नामघर में शंकरदेव फिर से पहले की भाँति आने लगे। नित्य का नाम-प्रसंग पूरा होने के बाद वे भक्तों के साथ बैठे बातचीत कर रहे थे। एक व्यक्ति ने आकर उन्हें प्रणाम किया। गौर वर्ण और ऊँचे कद के उस व्यक्ति के दोनों कान उसके चेहरे के अनुपात में बड़े थे। देखने में वह किसी सम्भ्रान्त परिवार का लगता था। किन्तु उसके मुँह पर उदासी थी। शंकरदेव ने उससे पूछा, "मैंने आपको पहचाना नहीं ! आप कहाँ से आये हैं ! मेरे योग्य कोई काम हो तो बतायें !"

"मेरा नाम गोविन्दगिरि भूयाँ है। मेरे कान लम्बे होने के कारण

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लोग मुझे बरकणागिरि या बड़े कानवाला कहकर भी बुलाते हैं। मैं यहाँ से बहुत दूर रंगपुर (वर्तमान बांग्लादेश) क्षेत्र में धवला नदी के किनारे बसे बण्डुका का रहने वाला हूँ। कन्नौज से आकर वहाँ बसने वाले अनेक कायस्थ परिवारों में हमारा परिवार भी पीढ़ियों से वहाँ बसा है। वहाँ के सामन्त (जमीन्दार) के यहाँ मैं मजीन्दारी (मजुमदार या लिपिक) करता था। राजस्व का लेखा-जोखा रखना और पत्र-व्यवहार करना मेरे जिम्मे था। सरकारी नौकरी के अलावा मेरे पास वहाँ काफी माटी-जमीन है। मेरी पत्नी अनुचिता और पुत्र दामोदर के साथ मैं सुखी गृहस्थ था। दामोदर पढ़-लिख कर युवा हुआ तो उसका विवाह शची नामक एक सुशील कन्या से कर दिया। एक दिन अचानक मेरी पत्नी का देहावसान हो गया। इससे मेरा मन इतना क्षुब्ध हुआ कि वहाँ की सम्पत्ति और मजीन्दारी का भार बेटे दामोदर को सौंप कर इधर पूर्व की ओर चला आया और बरदोवा पहुँच गया।''

''मरना-जीना तो ईश्वर के हाथ है। आपके पत्नी-दुःख को मैं समझ सकता हूँ। आप मुझ से क्या सहायता चाहते हैं, बताइये !''

''यहाँ अपने सजातीय कायस्थ परिवारों की बस्ती देखकर मेरा मन भी यहीं बसने का हो रहा है।''

''इसमें कोई परेशानी नहीं। यहाँ के वनों में घर बनाने के लिए लकड़ी-बाँस प्रचुर मात्रा में मिल जायेंगे। गाँववाले घर बनाने में आपकी सहायता कर देंगे। बरदोवा के पास टेम्बुवनी और आलिपुखुरी गाँव भी हैं। आप कहाँ रहना चाहते हैं ! जगह का चुनाव कर लीजिये।''

गोविन्दगिरि ने कहा, ''मुझे टेम्बुवनी के किनारे बसा टेम्बुवनी गाँव पसन्द आया है। आपने सहायता का आश्वासन देकर मेरे मन के बोझ को हल्का कर दिया। मैं आपका उपकार कभी नहीं भूलूँगा।''

गोविन्दगिरि का शंकरदेव के परिवार के साथ हुआ परिचय धीरे-धीरे घनिष्ठता में बदल गया। सुन्दर व्यक्तित्व का धनी गोविन्द पढ़ा-लिखा होने साथ ज्ञानी-गुणी भी था। उसने पूरे भूयाँ परिवार के साथ अपने सम्बन्ध प्रगाढ़ बना लिये। इन सम्बन्धों के चलते शंकरदेव के चाचा की पुत्री मनोरमा के साथ उसका दूसरा विवाह हो गया। बरदोवा में बरकणागिरि या गोविन्दगिरि ने परिश्रम कर काफी धन कमाया। वह अपने धन को जमीन-जायदाद में लगाने की बनिस्पत सोना-चांदी खरीद कर जमा करने में विश्वास करता था। उसकी गृहस्थी मनोरमा के साथ अच्छी चलने लगी।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

एक दिन नामघर में शंकरदेव के पास आकर एक स्त्री अपना दुखड़ा सुनाने लगी, ''मेरा परिवार बरदोवा के दक्षिण में स्थित बामुनी पहाड़ पर रहता है। मेरे पति अत्यन्त विद्वान हैं। उन्होंने अनेक शास्त्र पढ़े हैं। किन्तु वे घोर शाक्त हैं। मैं पिछले कई दिनों से यहाँ नामघर में आकर हरि-कीर्तन करती हूँ। मेरा मन आपके द्वारा प्रचारित वैष्णव धर्म में रम गया है। मेरे पति को मेरा यहाँ आना नहीं सुहाता। हमारे घर में नित्य कलह रहने लगी है। आज वे अत्यन्त क्रोध में मेरे पीछे यहाँ तक चले आये हैं। सम्भव है, वे आपसे भी मिलें।'' शंकरदेव ने उसे सान्त्वना दी। उसके पति को अपने निकट बुलाया। पति उनका सौम्य रूप देखकर अभिभूत हो गया। उन्होंने उसे हरिनाम लेने और भागवत-गीता पढ़ने के लिए प्रेरित किया। शंकरदेव की बातों का उस पर न जाने क्या प्रभाव पड़ा ! उस दिन वह रात तक नामघर में बैठा हरि-कीर्तन करता रहा। रात में भी पति-पत्नी घर नहीं गये। नामघर के पास बने हाटी घर में ही सो गये।

एक दिन बाबा-बाबा कहती मनु शंकरदेव के पास आयी। उसे देख उनकी चिन्ता बढ़ गयी। वे सोचने लगे, जब तक इसका विवाह नहीं हो जाता वे बरदोवा छोड़कर कहीं बाहर जाने के बारे में सोच भी नहीं सकते। पास खड़ी खेरसुती को उन्होंने अपनी मानसिक दुविधा बतायी, ''दादी ! मनु अभी छोटी है। इसका जब तक विवाह नहीं हो जाता, मैं चिन्ताओं से कैसे मुक्त हो सकता हूँ !''

''शंकर ! इसमें इतनी चिन्ता की क्या बात है। यह इतनी छोटी भी नहीं। रामचन्द्र कायस्थ के बेटे हरि से इसका विवाह कर देते हैं। वह हमारे यहाँ घर जँवाई बनकर रहेगा।''

''दादी ! क्या मनु का विवाह करना ठीक होगा ! वह तो अभी दस वर्ष की भी नहीं हुई।''

''तुम कैसी बातें कर रहे हो। हम समाज से हटकर कोई अनोखा काम नहीं करने जा रहे ! बेटी पाँच वर्ष की होते-होते माँ-बाप को उसके विवाह की चिन्ता सताने लगती है। फिर मनु को हम कहीं दूर थोड़े ही भेज रहे हैं। तुम यह सब चिन्ता मुझ पर छोड़ दो। रामचन्द्र कायस्थ से सब बातें मैं पहले ही साफ-साफ कर लूँगी। वह अपने बेटे हरि को हमारे घर छोड़ने को राजी होगा, तभी बात आगे बढ़ेगी। तुम अपने काम में ध्यान लगाओ। अब मुझे भी लगने लगा है कि तुम अवश्य जनहित का कोई ऐसा काम करोगे जिससे जग में तुम्हारा नाम अमर होने के साथ भूयाँ वंश का नाम

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भी उज्ज्वल होगा।''

बरदोवा के पास के एक गाँव में सार्वभौम भट्टाचार्य नामक विद्वान पं
रहता था। उसने काशी में रहकर पाँच वर्षों तक संस्कृत पढ़ी थी। अ
शास्त्रों का अध्ययन किया था। अपने पाण्डित्य का उसे अभिमान
उसने शंकरदेव के नाम की चर्चा सुनी। वह उनसे तर्क-वितर्क क
बरदोवा आ पहुँचा। शंकरदेव उस समय भागवत के बारे में बता रहे
शिष्टाचारवश वह वहीं बैठकर उन्हें सुनने लगा। हरिकीर्तन प्रारम्भ हुआ
लोगों के साथ ताल में ताल मिलाकर तालियाँ बजाने से वह अ
आपको न रोक सका। धीरे-धीरे उसके मन के भावों में परिवर्तन आ
वह तर्क करने की बात बिसराकर शंकरदेव के चरणों में गिर प
उन्होंने उसे उठाकर गले लगाया। अब वह वैष्णव धर्म में दीक्षित हो ग

खेरसुती ने रामचन्द्र से सारी बातें तय कर उसके बेटे हरि से मनु
अगहन में विवाह कर दिया। हरि भी अब भूयाँ परिवार का सदस्य
खेरसुती और चन्दरी उन दोनों का ख्याल रखती थीं।

शंकरदेव ने बेटी की ओर से निश्चिन्त होकर अपने भारत-भ्र
के स्वप्न को साकार रूप देने का निश्चय किया। यह जानकर खेरस
चिन्तित हो गयी। वह जयन्त, माधव और मनु के नाना हरिवरगिरि
साथ लेकर पौत्र के पास पहुँची।

खेरसुती ने कहा, ''शंकर ! सुना है, तुम तीर्थ-यात्रा पर ज
चाहते हो। तीर्थ जाने की भला यह भी कोई उम्र है ! तुम्हारी वयस ही
हुई है, केवल बत्तीस साल ही तो। जानते नहीं, यात्रा में कितनी कठिना
हैं। दुर्गम पथों पर दस्युयों और हिंसक पशुओं का भय रहता है। ख
रहने-सोने की असीम तकलीफें उठानी पड़ती हैं। लोग तो अपनी ढ
उम्र में तीर्थ करने जाते हैं। उन्हें रास्ते में कुछ हो भी जाए तो घरवालों
विशेष चिन्ता नहीं रहती।''

जयन्त ने समझाया, ''शंकर ! अभी तुम्हारी उम्र पुनः विवाह क
की है। सूर्यवती तो वापस आने से रही। सबकी इच्छा है कि तुम अ
गृहस्थी फिर से बसाओ। तुम्हें कोई वैरागी बनना है क्या जो इस उम्र में
दर भटकने घर से निकलना चाहते हो ?''

हरिवरगिरि ने कहा, ''शंकर ! सब ठीक कह रहे हैं। तुम द
विवाह कर लो, तुम्हारे जीवन की रिक्तता भर जाएगी और मेरी बेट

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अभाव की पूर्ति भी हो जाएगी। इससे मुझे प्रसन्नता ही होगी। मैं समझूँगा, मेरी सूर्यवती लौट आयी। तीर्थ-यात्रा की उम्र होवे तब वह भी कर आना। तुम्हें कोई नहीं मना करेगा। तब तक हम इस जगत में रहेंगे भी क्या !''

शंकरदेव ने कहा, ''आप लोग गलत सोच रहे हैं। मेरे भ्रमण का उद्देश्य केवल तीर्थाटन करना नहीं। मुझे अपने भारत को देखना-समझना है। वहाँ की विभिन्न संस्कृतियों, भाषाओं, लोकनृत्यों, संगीत, राग-रागिनियों, नाट्यों को देखकर मैं कुछ सीखना चाहता हूँ। वहाँ मुझे कितने ही प्रकार के साधु-संन्यासी और विद्वान मिलेंगे। उनसे मुझे बहुत कुछ नया सीखने-समझने को मिलेगा। सम्भव है, मैं वहाँ के नये माहौल में नया कुछ लिख-रच सकूँ। मैं न तो संन्यास लूँगा और न ही वैरागी बनूँगा। आप लोग इस ओर से निश्चिन्त रहकर मुझे भारत-भ्रमण पर जाने की सहर्ष आज्ञा प्रदान करें।''

परिवार वालों ने जब देखा, शंकरदेव को किसी तरह समझाकर भ्रमण पर जाने से नहीं रोका जा सकता तो उन्होंने प्रस्ताव रखा कि वे रामराम और गुरु महेन्द्र कन्दली को भी यात्रा पर अपने साथ ले जाएँ। शंकरदेव इसके लिए तैयार हो गये। इस बात का पता चलने पर अन्य कई लोगों ने भी उनके साथ जाने की इच्छा जतायी। अन्ततः सत्रह लोगों का दल यात्रा पर जाने को तत्पर हो गया। उनमें शंकरदेव के अतिरिक्त रामराम, महेन्द्र कन्दली, सर्वजय, परमानन्द, बड़ा बलराम, छोटा बलराम, बलभद्र, गोविन्द, नारायण, गोपाल, मुकुन्द, बड़ा श्रीराम, छोटा श्रीराम, हरिदास वणिया, दामोदर और ऋषिकेश सम्मिलित थे।

शंकरदेव ने मनु और जामाता हरि को अपने पास बुलाया। हरि को अपने हिस्से की सम्पत्ति का मालिक बनाया, उनकी जिम्मेदारी का दायित्व दादी खेरसुती और छोटे भाई वनगयाँगिरि के कन्धों पर डाला। दादी तथा अन्यान्य वड़ों का आशीर्वाद ले, वनगयाँ से गले मिल, अपने दल के साथ यात्रा पर निकलने को तत्पर हो गये।

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दूसरा खण्ड

चरैवेति चरैवेति

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यात्रारम्भ

ब्रह्मपुत्र के तट पर पालदार बड़ी नौका खड़ी थी। उस पर आठ मल्लाह थे। यात्रियों के बैठने के स्थान पर धूप-वर्षा से बचाव के लिए फूस का छपरा बना था। साथ में बंधी एक छोटी नाव पर प्रचुर खाद्य सामग्री लदी थी। यात्रा-व्यय के लिए रजत रुपये सँभाल कर रख लिये गये।

गाँव के लोग विदाई देने घाट पर आये। समवेत हरिध्वनि से पूरा वातावरण गूँज उठा। नौका ब्रह्मपुत्र की लहरों पर पश्चिम दिशा की ओर चल पड़ी। पश्चिमामुखी बहाव के साथ नावें जैसे स्वतः आगे बढ़ती जा रही थीं। नावरिये श्रम को भुलाने अपनी ही मस्ती में कोई लोकगीत गा रहे थे—

धेनु लैया जाई नन्देर कानाइ
यशोदा सहिते गोपी गणे आछे चाइ...

मनमौजी नद की उत्ताल तरंगों के छींटे चप्पुओं की छपाछप से नाव के किनारे बैठे लोगों को सिंचित कर रहे थे। नौका-यात्रा सप्ताह भर से सतत चल रही थी। यात्रीदल भोजन बनाने के लिए या फिर रात में कहीं सोने के लिए किसी गाँव-बस्ती के तट पर डेरा डालता। नावों को कामरूप की सीमा से निकलने में ज्यादा समय नहीं था। ब्रह्मपुत्र भी अब दक्षिणाभिमुख हो अपनी यात्रा के अन्तिम चरण की ओर बढ़ रहा था।

शाम का धुँधलका छाने लगा था। नाव पर बैठे यात्री नाम-कीर्तन कर रहे थे। दूर किनारे से ढोल बजने की समवेत आवाज सुनायी दे रही थी। नाव ज्यों-ज्यों करीब पहुँच रही थी, त्यों-त्यों धुँधलका रात के अन्धियारे में बदलता जा रहा था। किनारे जलते अलाव और मशालों के प्रकाश में कुछ लोग नाचते दिखायी दिये। शंकरदेव ने नावें किनारे बंधवायीं।

वह गारो जनजाति की बस्ती थी। उनका 'वांगला' पर्व चल रहा था। पुरुष वर्ग हाथों में लम्बे ढोलों को थामे बजा रहे थे, स्त्रियाँ सामूहिक रूप से नाच रही थीं। बिना घुँघरुओं की नर्तकियों की पदचाप वाद्यों की ताल के साथ धम-धम धरती पर पड़ रही थी। नृत्य का ऐसा समा बंधा कि शंकरदेव ने वहीं रात्रि-विश्राम करने का मन बनाकर सवके लिए भोजन बनाने को कहा। रात सबने उसी गाँव में बितायी।

सुबह को चलीं नावें दोपहर तक वंग प्रदेश के उस क्षेत्र में पहुँच

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गयीं जहाँ ब्रह्मपुत्र का नाम बदल कर स्त्रीवाची जमुना हो गया। जगन्नाथगंज, शीराजगंज होते हुए नावें जमुना (ब्रह्मपुत्र) और गंगा के संगम पर जा पहुँचीं। नावें किनारे पर बांध दी गयीं। सबने वहाँ उतरकर स्नानादि किया।

बंग प्रदेश में भी कामरूप जैसी ही हरियाली छायी थी। पुरुषों की वेशभूषा में विशेष अन्तर नहीं था। हाँ, महिलाओं ने मेखला के बदले साड़ियाँ पहन रखी थीं। कुछ की कलाइयों में चमकती धवल-लाल चूड़ियाँ इस बात की द्योतक थीं कि वे विवाहिता हैं। अब नावें गंगा की लहरों पर आगे बढ़ती हुई मुर्शिदाबाद पहुँचीं। नित्यक्रियाओं के लिए नावों को किनारे बांधा गया।

तट पर लगी मच्छीमारों की हाट पर ग्राहकों की भीड़ बढ़ती जा रही थी। तट से कुछ दूरी पर मण्डी थी। यात्रीदल यों ही चहलकदमी करने उधर चला गया। वहाँ अच्छी चहल-पहल थी। कुछ दुकानों पर स्थानीय कारीगरों द्वारा बुनीं रंग-बिरंगी रेशमी साड़ियों के साथ ढाका की मलमल बिक रही थीं तो कुछ पर हाथी-दाँत और पीतल की बनी कलात्मक वस्तुएँ।

पण्यवीथी में शंकरदेव की अरविन्द बन्द्योपाध्याय नामक एक विद्वान से अनायास ही भेंट हो गयी। उससे रामायण पर चर्चा चल पड़ी। माधव कन्दली लिखित रामायण की बात सुनकर अरविन्द ने उत्साहपूर्वक कहा, "आज से पचास वर्ष पूर्व बांग्ला में भी कृत्तिवास ने सप्तकाण्डी 'कृत्तिवासरामायण' पयार छन्दों में पांचाली गान के रूप में उपनिबद्ध की है। इतने अल्पकाल में ही इसका बंगभूमि के घर-घर में प्रचार हो गया है।"

घाट पर लौटकर आये तब तक दो पहर बीत गये। सूरज सिर पर तप रहा था। दोपहर का भोजन हो चुका तो अवसर देखकर प्रधान मल्लाह ने शंकरदेव से कहा, "भूयाँ देव ! आगे की यात्रा के लिए आपको यहाँ से अन्य नावें मिल जायेंगी। आपकी आज्ञा हो तो हम वापस बरदोवा लौट जावें।"

नयी नावों की व्यवस्था होते समय नहीं लगा। शंकरदेव ने नये नावरियों को समझाते हुए कहा, "हम पहले गया जाकर अपने साथ लायीं पितरों की अस्थियाँ फल्गु में विसर्जित करेंगे। फिर जगन्नाथपुरी जाना चाहते हैं।"

नावरिया ने कहा, "श्रीमान ! गया के नजदीक के गंगातट तक आपको छोड़ देंगे। वहाँ से गया के लिए आप लोगों को पैदल या बैलगाड़ी से जाना होगा। पुरी जाने के रास्ते की आपको वहीं सही जानकारी मिलेगी।"

सत्रह यात्रियों से लदीं नावें कुछ दिनों में गंगा के सिलीपुर घाट पहुँचीं। बरदोवा से वहाँ तक पहुँचने में उन्हें दो महीने इक्कीस दिन लग गये। गंगा-घाट से यात्रीदल गया की ओर पैदल प्रस्थान कर गया।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कलकल बहती फल्गु में जल लबालब भरा था। वहाँ एक पण्डे ने बताया, "कल से बिन मौसम के हो रही मूसलाधार वर्षा के कारण आप लोगों को फल्गु में भरपूर पानी मिल गया। अन्यथा लोगों को घुटने तक के पानी में ही काम चलाना पड़ता है। वैसे भी इस समय यात्री कम आते हैं। आश्विन के श्राद्ध पक्ष में यहाँ श्रद्धालुओं की रैलम-पैल रहती है। अब आप लोग स्नान कीजिये।"

नदी में स्नान कर शंकरदेव ने साथियों को वहाँ का माहात्म्य बताते हुए वायु पुराण का एक श्लोक सस्वर सुनाया–

गयायां न हि तत् स्थानं यत्र तीर्थं न विद्यते ।
सांन्निध्यं सर्वतीर्थानां गयातीर्थं ततो वरम् ।।

फिर अर्थ समझाते हुए कहा, "गया में ऐसा कोई स्थान नहीं है, जो तीर्थ न हो। यहाँ सभी तीर्थों का सान्निध्य है। अतः गया तीर्थ सर्वश्रेष्ठ है।"

"इसीलिए तो तुम्हारी दादी ने आग्रहपूर्वक पुरखों की अस्थियाँ यहाँ विसर्जित करने तुम्हारे साथ भेजी हैं, शंकरदेव !" गुरु कन्दली ने कहा।

"गुरुदेव ! क्या यहाँ पुरखों की अस्थियाँ विसर्जित कर उनका श्राद्ध करने मात्र से सचमुच उनको मोक्ष मिल जायेगा ?"

"शंकरदेव ! कुछ बातें शास्त्र सम्मत होती हैं और कुछ लौकिक। तुम्हारे लिए इन बातों से भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण यह है कि तुम अपनी दादी की भावना का सच्चे मन से पालन करो। इस समय यही तुम्हारा धर्म है।"

फल्गु किनारे कुछ ने मुण्डन करवा अपने पितरों का पिण्डदान किया। शंकरदेव ने भी अपने साथ लायी पितरों की अस्थियों का वहाँ विसर्जन किया।

नदी किनारे बने विशाल मन्दिर में अष्टकोण वेदी पर बने विष्णु के चरण-चिह्न के सबने दर्शन किये। मन्दिर के पास स्थित गरुड़ प्रतिमा को शीश नवाकर सबने गदाधर मन्दिर में जाकर चतुर्भुज विष्णु प्रतिमा के दर्शन किये। विष्णुपद मन्दिर के सामने स्थित सीताकुण्ड और रामगया गये। वहाँ से जाकर ब्रह्म सरोवर के पास खड़े अक्षय वट वृक्ष के दर्शन किये।

गया में तीन दिन रहकर शंकरदेव ने श्रीक्षेत्र जगन्नाथपुरी की ओर अपने दल के साथ प्रयाण किया। दुर्गम पथों से दुःसाहसिक यात्रा आगे बढ़ रही थी। यह तो अच्छा रहा कि साथ लायी खाद्य सामग्री इतने दिनों में शेष हो गयी। सो अब आवश्यक सामान की गठरी-मुठरी के सिवाय उनके पास कोई वजन न था।

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उत्कल

'हरि बोल, हरि बोल' के सामूहिक उद्घोष के साथ यात्रीदल अग्रसर हो रहा था। रास्ते में आये गाँवों के लोगों की बोली को समझना अधिक दुरूह नहीं था। ओड़िया के अनेक शब्द उन्हें अपनी कामरूपी से मिलते-जुलते लगे। शंकरदेव उन शब्दों को आत्मसात करने का प्रयास कर रहे थे। कुछ दिनों की यात्रा के बाद रास्ते में कटक आया। महानदी की दो धाराओं के मध्य बसे पाँच सौ वर्ष पुरातन कटक नगर की शोभा अद्भुत थी। वहाँ रात्रि-विश्राम कर दूसरे दिन पुरी की ओर अग्रसर होते हुए मन्दिरों के नगर भुवनेश्वर पहुँचे। वहाँ के बिन्दु सरोवर में स्नान कर सभी लिंगराज मन्दिर तथा अन्यान्य मन्दिर गये। वहाँ के अद्भुत स्थापत्य ने सबको आकर्षित किया।

रास्ते में आयी भार्गवी नदी में स्नान कर उसके किनारे बैठ अपने पास के गुड़-चिवड़ा का कलेऊ हुआ। वहाँ से तुलसीपुर पहुँचते-पहुँचते शाम का धुंधलका हो आया। रात्रि-विश्राम के लिए उसी गाँव में सब ठहर गये। अगले दिन के प्रथम प्रहर में एक नदी पर बने पाषाण-सेतु 'अठर नाला' को पार किया। शिला-खण्ड से बने इस पुल में अठारह नाले थे। नदी किनारे नावें बंधी थीं। नावों से जगन्नाथपुरी आनेवाले आसपास के लोग इसी घाट पर उतरते।

जगन्नाथपुरी

दूर से ही यात्रीदल को जगन्नाथ मन्दिर के शीर्ष पर लगा नीलचक्र और ध्वजा दिखायी दिये। उनका उत्साह दुगुना हो गया। यात्री-दल अब श्रीक्षेत्र-सीमा में प्रवेश कर गया। मन्दिर के सामने पुरी का मुख्य मार्ग 'बड़दाण्ड' लगभग सौ हाथ चौड़ा रहा होगा।

मुख्य मन्दिर तक दूर गरजते सागर की गर्जना सुनायी दे रही थी। नवागत यात्रियों को देख पण्डे उनके साथ हो गये। उनमें से एक प्रौढ़ वय के गोपालकृष्ण को उन्होंने मार्ग निर्देशक के रूप में अपना पण्डा नियुक्त किया। पण्डा पहली दृष्टि में ही शंकरदेव के व्यक्तित्व से प्रभावित हो गया। उनका बलिष्ठ लम्बा कद, गौर वर्ण, चौड़ा ललाट, कन्धों तक झूलते काले घने केश, सफेद धोती पर सफेद ही कुर्ता और लाल फूलों के बेलबूटे काढ़ा हुआ सफेद गमछे का उत्तरीय तथा घुटनों को छूती लम्बी भुजाएँ देखकर वह अभिभूत हो गया। उसने सोचा, मेरे भाग्य अच्छे हैं जो प्रभु जगन्नाथ ने ऐसे दिव्य पुरुष की यजमानी करने का अवसर दिया। शंकरदेव ने पण्डे को अपनी ओर

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

निर्निमेष ताकते देखकर कहा, "क्या सोच रहे हैं आप ! हमें भगवान् जगन्नाथ के दर्शन कराने मन्दिर ले चलिये।"

गोपालकृष्ण पण्डा की जैसे तन्द्रा टूटी। उसने कहा, "हाँ, चलिये, उसी निमित्त तो मैं हूँ।"

'जय जगन्नाथ' के जयकारे लगाते शंकरदेव और उनके साथियों ने विशाल परकोटे में स्थित मन्दिर के सिंहद्वार से भीतर प्रवेश किया। विशाल मन्दिर की प्राचीरों पर किये गये स्थापत्य को देखकर सभी आश्चर्यचकित थे। सबने गर्भगृह में जगन्नाथ, सुभद्रा और बलराम के दर्शन कर दण्डवत प्रणाम किया। शंकरदेव तो जैसे कुछ क्षणों के लिए संज्ञाशून्य हो गये। उनकी भाव समाधि लग गयी। इस अवस्था में किसी ने व्यवधान नहीं डाला। सर्वजय उनके पास रुक गया। शेष लोग गर्भगृह से बाहर चले आये।

कुछ घड़ी पश्चात् शंकरदेव ने आँखें खोलीं। उनके मुखमंडल पर छायी दिव्य आभा को सर्वजय ने अनुभव किया। उसने मन ही मन गुरु शंकर को प्रणाम कर स्वयं को धन्य माना जो ऐसे दिव्य महापुरुष के साथ ऐसी दिव्य तीर्थ-यात्रा पर आने का सुअवसर उसे मिला। शंकरदेव ने उससे पूछा, "सर्वजय, सब लोग कहाँ हैं ?"

"गुरुदेव ! सभी मन्दिर के बाहर के प्रांगण में हमारी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। आप भगवान् के सम्मुख ध्यानस्थ थे, इसलिए मैं आपके पास ठहर गया।"

पण्डा यात्रियों के साथ मन्दिर प्रांगण में बैठा था। वहाँ शंकरदेव का परिचय गोपीनाथ से हुआ। उसने कहा, "मेरे पिता यहाँ पण्डा हैं। वे यात्रियों से मिली दक्षिणा से गृहस्थी चलाते हैं। इस काम में मेरा मन नहीं लगता। मैं आपकी बातें कितनी ही देर से सुन रहा हूँ। मेरा मन कहता है कि अब मुझे सच्चा पथ-प्रदर्शक गुरु मिल गया। आप जब तक जगन्नाथपुरी में हैं, मुझे अपने साथ रहने दीजिये। मैं आपके नामधर्म में दीक्षित होकर प्रभु जगन्नाथ की भक्ति करना चाहता हूँ।"

शंकरदेव ने कहा, "इसके लिए दीक्षा लेने की क्या आवश्यकता है ? भक्ति ऐसे भी की जा सकती है।"

गोपीनाथ ने कहा, "गुरुदेव ! मेरे मन ने आपको गुरु मान लिया है। आप मुझे इससे वंचित मत कीजिये। गुरु के बिना सम्यक ज्ञान नहीं मिलता।"

"समय आने पर तुम्हारी बात पर विचार किया जायेगा।" शंकरदेव ने ऐसा कह कर बात को टाला।

दोपहर के समय पण्डा भगवान् का महाप्रसाद लेने सबको साथ ले गया। भोग में बने भात-शाक का भोजन कर सब तृप्त हुए। गोपीनाथ भी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उनके साथ था। पण्डा ने बताया, "प्रभु जगन्नाथ के प्रसाद में कोई जात-पाँत या ऊँच-नीच का भेद नहीं किया जाता।" पण्डा ने मन्दिर के पास बने छता मठ में उनके ठहरने की व्यवस्था करवा दी। परमानन्द को याद आया कि रात में खाना बनाने के लिए दाल-चावल नहीं। वह पण्डे के साथ जाकर सारा सामान खरीद लाया।

दूर से समुद्र की सुनायी दे रही गर्जना सबको तट तक खींच ले गयी। सागर-तट पर पहुँचकर पण्डे ने कहा, "इसी सागर में पतित पावनी गंगा आकर मिलती है। इसलिए इसे गंगासार (बंगोपसागर) कहते हैं।"

ऐसी विशाल जलराशि आज तक उनमें से किसी ने नहीं देखी थी। जल-तरंगों का समवेत संगीत शंकरदेव को नये ताल-सुर रचने को प्रेरित कर रहा था। उत्ताल लहरों को देख सबका मन स्नान करने के लिए मचलने लगा। पण्डे के कहने पर बात दूसरे दिन पर टाल दी गयी। तट पर पछाड़ खातीं सागर की लहरों के साथ सब अठखेलियाँ कर रहे थे। शंकरदेव का बालपन जैसे फिर लौट आया। इस खिलवाड़ से मन में रोमांच का संचार हुआ।

सागर-संगीत में अवगाहन करती शंकरदेव की चेतना को सुध ही नहीं रही कि कब अथाह जलराशि ने रात की चादर ओढ़ ली। रात्रि की निस्तब्धता में लहरों के संगीत का सुर बदला-बदला लगा। रात अधिक होते देख सब डेरे पर लौट आये। सभी थके थे। खा-पीकर सो गये।

तड़के ही पण्डा आ धमका। वह सब को सागर किनारे ले गया। आकाश में धीरे-धीरे उजाला फैल रहा था। सागर-जल के उस छोर से बालरवि ने जरा-सा झाँका। धीरे-धीरे क्षितिज पर सूर्य का लाल वलयाकार ऊपर उठने लगा। उस दृश्य को देखकर सब अभिभूत थे।

स्नान के लिए सागर में उतरने लगे तो पण्डे ने सावधान करते हुए कहा, "आप लोग पहली बार सागर में नहा रहे हैं। इसलिए कमरभर पानी से अधिक अन्दर न जायें। समुद्री लहर आये तो सर नीचे कर बैठ जाएँ; लहर वापस लौट जाए तभी खड़े हों। मेरी बात का ध्यान रखें।"

पण्डे की बात सुनकर गोपीनाथ ने कहा, "आप लोग कोई चिन्ता न करें। आप लोगों के साथ मैं हूँ न ! यहीं का रहनेवाला हूँ, न जाने कितनी बार इस सागर में गोते लगाये हैं।"

सागर के खारे पानी में स्नान कर सब के शरीर चिपचिपाने लगे। ताजा मीठे पानी से दोबारा नहाने के लिए पण्डा उन्हें पास के कुएँ पर ले गया। शंकरदेव का मन शीघ्रातिशीघ्र मन्दिर पहुँच कर भगवान् जगन्नाथ के फिर से दर्शन करने के लिए व्यग्र हो रहा था।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जगन्नाथ पुरी धाम का धार्मिक और प्राकृतिक रंग शंकरदेव पर ऐसा चढ़ा कि उन्होंने कुछ महीने वहाँ रहने का मन बना लिया। अब उनका प्रातःकाल गंगासागर में स्नान कर प्रभु जगन्नाथ के दर्शन करना नित्य-नियम बन गया। एक दिन आदिशंकराचार्य द्वारा पुरी में प्रतिष्ठापित गोवर्धनपीठ के दर्शन किये। इसी प्रकार पुरी स्थित पंचतीर्थों के दर्शन करने कभी श्वेत गंगा, कभी मार्कण्डेय सरोवर तो एक दिन चन्दन सरोवर, कभी लोकनाथ सरोवर और इसी तरह इन्द्रद्युम्न सरोवर के दर्शन कर आये।

इन्द्रद्युम्न सरोवर के पास स्थित गुण्डीचा मन्दिर में शंकरदेव को कोई देव विग्रह नहीं दिखा। साथ आये पण्डे ने बताया, "रथ-यात्रा के समय भगवान् जगन्नाथ की मूर्ति यहाँ अस्थायी रूप में स्थापित होती है। शेष समय यह खाली रहता है। इसी गुण्डीचा मन्दिर में राजा इन्द्रद्युम्न के आग्रह पर उसे समुद्र में मिले काष्ठ से बढ़ई के रूप में विश्वकर्मा ने जगन्नाथ, सुभद्रा और बलराम की मूर्तियाँ बनायी थीं, जो राजा की शीघ्रता के कारण अधूरी रह गयीं।"

"ऐसी क्या बात हो गयी ?" सर्वजय ने पूछा।

पण्डे ने बताया, "मालव-नरेश इन्द्रद्युम्न के उत्कल प्रवास के समय एक दिन समुद्र में एक महा-दारु (बहुत बड़ा काष्ठ) बहकर आया। राजा ने उसे निकलवाकर विष्णु-मूर्ति बनवाने का निश्चय किया। उसी समय वृद्ध बढ़ई के रूप में विश्वकर्मा उपस्थित हुए और इस शर्त के साथ मूर्ति बनाना स्वीकार किया कि उनके आदेश के बिना उस भवन के द्वार न खोले जाएँ जिसमें वे मूर्ति बनायेंगे। कुछ दिनों पश्चात भीतर से आवाज आनी बंद हो गयी। रानी को आशंका हुई, बढ़ई भूख-प्यास से कहीं मर न गया हो। उसने द्वार खुलवा दिये। बढ़ई अदृश्य हो चुका था। वहाँ श्रीजगन्नाथजी, सुमद्रा तथा बलभद्र की अपूर्ण मूर्तियाँ रखी थीं। राजा असंमजस में पड़ गया। तभी आकाशवाणी हुई कि इन विग्रहों को इसी रूप में प्रतिष्ठित कर दिया जाये। राजा ने वैसा ही किया"

"यह कथा हमारे कामरूप में लिखे गये योगिनीतन्त्र में और विस्तारपूर्वक है।" इतना कहकर शंकरदेव ने आगे कहा, "उसमें लिखा है कि राजा इन्द्रद्युम्न को स्वप्न में भगवान् का आदेश हुआ कि सूर्योदय के पहले वह समुद्र किनारे जाए, वहाँ उसे एक दिव्य-वृक्ष का तना मिलेगा। उससे वह दिव्य-प्रतिमाओं का निर्माण करवाए। इन्द्रद्युम्न ने महादारु के सात भाग करवाए। उस तने के सात भागों से बनवाये गये सात विग्रहों के बारे में योगिनीतन्त्र में विस्तृत वर्णन इस प्रकार लिखा है—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उड्रदेशे मूलभागे कल्पयामास वै विभुः ।
तदूर्ध्वखण्डं काश्मीरे कवन्धाकारमेव च ।।
आदित्यं च विजानीयाद्रामेण स्थापितं पुरा ।
शोणादित्यं तदूर्द्ध्वां शुक्रेण स्थापितं प्रिये ।।
शिलारूपं महेशानि स्थापितं गुरुणा ततः ।
भागद्वयं कामरूपे भागेकं मलयागिरौ ।।
मणिकूटे तदार्द्धञ्च स्थापितं वरुणेन हि ।
प्राच्यां नन्दीशमीशान्ये मत्स्याक्षोनाम माधवः ।।
शिलामयो दारुमयः कुबेरेणैव स्थापितः ।
महावराहनामा च योऽष्टादशभुजैर्युतः ।।
हयाख्यो मणिकूटे च माधवाख्यो व्यवस्थितः ।

अर्थात् इसके मूल भाग से विग्रह बनाकर उड्र देश में, यानी उड़ीसा में यहाँ, जगन्नाथ के रूप में स्थापित कराया गया, जैसा कि स्कन्दपुराण में भी इन्द्रद्युम्न को समुद्र में मिले महादारु से देव-शिल्पी विश्वकर्मा द्वारा बनाए गये जगन्नाथ, सुभद्रा और बलभद्र के विग्रहों के बारे में लिखा हुआ है। मूल से ऊपरी भाग से निर्मित कबन्धाकार मूर्ति आदित्य के नाम से काश्मीर में स्थापित करायी गयी। सुना है कि उस पर वहाँ के राजा ने मार्तण्ड मन्दिर बनवा दिया। उसके और ऊपर के भाग से मूर्ति बनवाकर शोणादित्य के नाम से (गुजरात में) शुक्रचार्य ने स्थापित की। उसके और ऊपरी भाग से निर्मित शिलारूपी महेश को बृहस्पति (श्वेतमाधव के नाम से उज्जैन में) स्थापित किया।

उसके और ऊपरी दो भागों को कामरूप में तथा अन्तिम भाग को मलयागिरि में प्रस्थापित किया गया। कामरूप में स्थापित दो भागों में से पहला हाजो स्थित मणिकूट पर्वत पर वरुण द्वारा विराजमान विग्रह हयग्रीव माधव के नाम से विख्यात हुआ। हयग्रीव माधव के बारे में मान्यता है कि वहाँ दर्शन करने से जगन्नाथ-दर्शन का फल मिलता है। दूसरे भाग से निर्मित दारुमय (काष्ठमय) मूर्ति को कामरूप के ईशान कोण में नारायणपुर (वर्तमान लखीमपुर) के पास नन्देश नाम से कुबेर ने स्थापित किया, जिसे मत्स्याक्ष माधव भी कहा जाता है।

यह कथा सुनकर पण्डे ने आनन्दित होकर कहा, "महाभाग ! आज मुझे यह नवीन जानकारी आपसे मिली। कभी मौका लगा तो मैं हयग्रीव माधव के दर्शन करने कामरूप आपके पास आऊँगा। आप तो मेरे जजमान वन ही गये हैं, फिर मुझे क्या चिन्ता है। अव देर हो रही है, हमें चलना चाहिये।"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

एक दिन पुरी से पाँच कोस दूर स्थित साक्षी गोपाल के दर्शन करने शंकरदेव सदल चल पड़े। दोपहर की धूप सताने लगी। शरीर पसीने से कसमसाने लगे। वहाँ से लौटने पर गुरु महेन्द्र कन्दली के पाँवों में भीषण पीड़ा हो रही थी। गोविन्द को ज्वर हो आया। हरिदास बणिया को पेट का दर्द सता रहा था। पुरी के वैद्य से उनका उपचार कराया।

शंकरदेव ने विचार किया, अभी तो यात्रारम्भ है। यात्रा ज्यों-ज्यों आगे बढ़ेगी, कष्ट भी बढ़ते जायेंगे। गुरुदेव की तो अवस्था भी काफी हो गयी। वे साहस कर साथ चले आये। मनोबल आखिर कहाँ तक शरीर का साथ देगा। ऐसा विचार कर उन्होंने सबसे कहा, "आप लोगों से निवेदन है कि मुझे अकेला छोड़कर आप सभी बरदोवा लौट जायें। आगे की यात्रा में और अधिक कठिनाइयाँ आयेंगीं। वहाँ से आप लौटना चाहेंगे तो अति दुष्कर होगा। यहाँ से कुछ योजन जाने पर गंगा आएगी। वहाँ से आप सभी नाव द्वारा सकुशल घर लौट सकेंगे।"

यह बात मानने के लिए कोई राजी नहीं हुआ। वे शंकरदेव को अकेले यात्रा पर नहीं जाने देना चाहते थे। दादी ने उन्हें आते समय सावधान किया था, शंकर को छोड़कर तुम लोग मत चले आना। उसे अकेला छोड़ दिया तो वह कभी घर नहीं लौटेगा। संन्यासी या वैरागी बनकर न जाने वह कहाँ रम जाए।

शंकरदेव ने तय किया कि सर्वजय, बलराम और परमानन्द उनके साथ आगे की यात्रा पर जायेंगे, शेष सभी बरदोवा लौट जायेंगे। किन्तु वे इसके लिए भी किसी हालत में तैयार नहीं थे। अन्त में शंकरदेव ने रामराम को बरदोवा के हरि मन्दिर की सेवा-पूजा और देखभाल करने के बहाने और गुरु कन्दली को उनकी उम्र और स्वास्थ्य की बात समझाकर किसी तरह मनाया।

बिछड़ने की बारी आ गयी। वे एक दूसरे के गले मिले और अश्रुपूरित नेत्रों से अपने रास्ते पर चल पड़े। पुरी में रह गये चारों यात्री नित्य जगन्नाथ के दर्शन करते, भगवान् के भोग-भात का प्रसाद पाते।

शंकरदेव ने पुरी के कुछ विद्वानों से मुलाकात कर शास्त्र चर्चा की। एक बार उड़ीसा के भक्तकवि जयदेव पर बात चल पड़ी। उन्हें पता चला कि आज से लगभग तीन सौ साल पहले केन्दुविल्व (केन्दुलि) ग्राम में वे जन्मे थे। वे महाराजा लक्ष्मण सेन की राजसभा में श्रेष्ठ कवि थे। वे जातिगत भेदभाव को नहीं मानते थे। उनकी लिखे ग्रन्थों में गीतगोविन्द, रसना राघव और चन्द्रलोक प्रसिद्ध रचनाएँ हैं।

शंकरदेव ने उनका लिखा गीतगोविन्द लेकर पढ़ा। एक दिन उन्होंने साथियों से कहा, "कवि जयदेव द्वारा अत्यन्त सरल संस्कृत में लिखे इस ग्रन्थ में भक्ति एवं शृंगार का अद्भुत समन्वय किया गया है। इसके पद

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इतनी सरल संस्कृत में लिखे गये हैं कि यहाँ साधारण लोगों को भी लोकगीतों की तरह इन्हें गाते हमने सुना है। वे गीतगोविन्द का एक पद गाने लगे—

ललितलवंगलता परिशीलन कोमल मलय समीरे ।
मधुकर निकर करम्वित कोकिल कूजित कुञ्ज कुटीरे ।।

भगवान् श्रीकृष्ण के उपवन का कैसा सुन्दर वर्णन इस पद में किया है ! मैंने इसे पूरा पढ़ा है। यह बारह सर्गों का छोटा-सा किन्तु अति सुन्दर मनोहारी काव्य है। इसमें विभिन्न रागों की चौबीस अष्टपदियाँ हैं। शृंगार का इतना मधुर वर्णन सन्तकाव्य में दुर्लभ है। शृंगार के साथ-साथ कवि जयदेव ने मन की दुविधा को छोड़कर ब्रह्म में लीन होने का वर्णन किया है।''या

एक दिन चर्चा करते हुए शंकरदेव को ओड़िया भाषा के आदिकवि सारलादास के बारे में पता चला। उन्होंने कुछ वर्षों पहले ही ओड़िया में 'विलंकारामायण' लिखकर पूरी की थी। इस बीच उन्होंने उत्कल के ओड़िसी नृत्य को देखा। नृत्यांगना के पद-संचालन, भाव-भंगिमा को समझा।

शंकरदेव को गुरु महेन्द्र कन्दली और अपने साथियों का बार-बार ख्याल आ रहा था। उन्हें जगन्नाथपुरी से विदाई दिये दो मास हो गये थे। वे निश्चित ही सकुशल बरदोवा कब के पहुँच गये होंगे। उनके साथ मुझे नहीं आया देखकर दादी चिन्तित हुई होगी। दादी का स्वास्थ्य अच्छा ही होगा। उसका मुझ पर कितना नेह है। मनु क्या मुझे याद करती होगी ! मेरे पीछे नामघर का कामकाज रामराम सुचारु चला रहा होगा। वहाँ नित्य नाम-कीर्तन भी होता होगा।

फिर अपने मन में धीरज धर कर उन्होंने सोचा, यह मोह ही है जो मुझे बार-बार सबकी याद आ रही है। मोह के वशीभूत रहता तो इस दीर्घ यात्रा पर घर से निकलने का विचार ही नहीं करता। उन्होंने मन को आश्वस्त किया, वहाँ सब ठीक ही होगा। दादी की देखभाल करने के लिए चन्दरी है ही। दादी के रहते मनु और हरि के लिए चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं। परमब्रह्म श्रीकृष्ण दादी और सबकी रक्षा करेंगे। प्रार्थना में बड़ी शक्ति है। दादी भी मेरे लिए नित्य प्रार्थना करती होगी। अपने मन को मोह में भटकाये रखा तो आगे की यात्रा नहीं कर पाऊँगा। फिर अभी तो यह यात्रारम्भ है, न जाने और कितने दिन, कितने वर्ष मुझे घुमक्कड़ी करनी है। कुछ पाने के लिए कुछ छोड़ना भी पड़ता है। मैं इस यात्रा के अनुभवों से अपने कामरूपवासियों के लिए यदि कुछ कर सका तो मन को कितना सन्तोष मिलेगा।

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

काशी-अयोध्या होते हुए

जगन्नाथपुरी में रहते शंकरदेव को छह महीने हो गये। अब उनका मन आगे की यात्रा के लिए आकुल होने लगा। वे अपनी चार लोगों की टुकड़ी के साथ काशी के पथ पर निकल पड़े।

काशी

यात्रा सतत चल रही थी। कभी बैलगाड़ी में, तो कभी पैदल। बीच में आयीं नदियों को नाव से पार किया। कहीं-कहीं रास्ते हिंसक जानवरों से भरे बियावान वनों से होकर जाते थे। रात को किसी गाँव के मन्दिर या गृहस्थ के घर रुकते। उन्हें अधिकतर बने-बनाये भोजन से आतिथ्य करनेवाला कोई न कोई गृहस्थ मिल जाता, कहीं नहीं मिलता तो किसी स्थान पर ठहरकर अपने लिए भात बना लेते।

काशी पहुँच, चारों सर्वप्रथम गंगाघाट पर पहुँचे। सीढ़ीदार घाट की शोभा निराली थी। पैड़ियाँ ऊपर से नीचे गंगा तक गयी थीं। घाट पर तट-पुरोहित अपनी छतरीदार चौकियों पर बैठे श्रद्धालुओं को तिलक-चन्दन लगा रहे थे। सम्पूर्ण दृश्य नयनाभिराम था। घाट के चबूतरे पर बैठ कुछ लोग खँजरी की ताल पर सन्त कबीर के दोहे और पद सस्वर गा रहे थे। उनका मधुर गायन सुनकर शंकरदेव ठिठक गये, फिर वहीं बैठकर सुनने लगे। वे कबीर का कोई पद गा रहे थे—

साधो, सो सतगुरु मोंहि भावै ।
सत्त प्रेम का भर भर प्याला, आप पिवै मोंहि प्यावै ।
परदा दूर करै आँखिन का, ब्रह्म दरस दिखलावै ।
जिस दरसन में सब लोक दरसे, अनहद सबद सुनावै ।
एकहि सब सुख-दुख दिखलावै, सबद में सुरत समावै ।
कहैं कबीर ताको भय नाहीं, निर्भय पद परसावै ।

शंकरदेव ने साथियों से कहा, ''ऐसे ही गीत हमने पुरी में भी सुने थे। इनमें माधुर्य के साथ जीवन की कितनी सारगर्भित बातें छिपी हैं। मैंने सुना है कि कबीरदास यहीं काशी में रहते हैं। चलो, हम उनसे मिलने उनके घर चलते हैं।''

कबीर के घर जाने पर उनका बेटा कमाल मिला। सबका यथोचित सत्कार करते हुए कमाल ने कहा, ''बाबा तो लम्बी यात्रा पर बाहर गये हुए हैं।''

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यह सुनकर शंकरदेव थोड़े निराश हुए पर हताश नहीं। उन्होंने सुन रखा था कि कमाल भी अपने पिता की तरह सन्तवाणी लिखते रहते हैं। उन्होंने उन्हें अपनी कुछ रचनाएँ सुनाने का आग्रह किया। कमाल संकोच में पड़ गये। वे बोले, "मैं भला, आपको क्या पद सुनाऊँगा ! मेरे पदों में बाबा जैसा गाम्भीर्य नहीं, फिर मेरी भाषा भी सपाट है। बाबा होते तो उनसे सुनते। अन्ततः शंकरदेव के अति आग्रह को देखकर कमाल ने अपना एक पद सुनाया—

राम नाम भज निस दिन बंद, और मरम पाखण्डा ।
बाहिर के पट दे मेरे प्यारे, पिण्ड देख ब्रह्मण्डा ।।
अजर अमर अविनाशी साहिब, नर देही क्यों आया ।
इतनी समझ बूझ नहीं मूरख, आय जाय सो माया ।।

शंकरदेव की कमाल से कबीर के बारे में अनेक बातें हुईं। उनकी निर्गुण भक्ति और समाज में प्रचलित पाखण्ड पर तीखे प्रहार करने वाली अनेक रचनाएँ उनसे सुनीं। उन्हें मलाल रहा कि वे कबीर जैसे सन्त से नहीं मिल पाये। घर से निकलते समय अनायास शंकरदेव के मुँह से शब्द निकल पड़े—

उरेषा वाराणसी ठावे ठावे ।
कविर गीत शिष्ट सवे गावे ।।

सन्ध्याकाल में अपने साथियों से वार्तालाप के दौरान शंकरदेव ने बातों-बातों में उन्हें बताया, "काशी का नाम वाराणसी कैसे पड़ा ? पता है ? चलो, मैं वताता हूँ। यह प्राचीन नगरी वरुणा और असी नदियों के मध्य स्थित होने के कारण वाराणसी कहलाती है। इस नगरी का माहात्म्य स्कन्दपुराण में इस प्रकार वखाना गया है।" इतना कहकर शंकरदेव ने श्लोक सुनाया—

भूमिष्ठापि न यात्र भूस्त्रिदिवतोऽप्युच्चैरधःस्थापिता ।
या बद्धा भुवि मुक्तिदा यस्यामृतं यस्यामृता जन्तवः ।।
या नित्यं त्रिजगत्पवित्रतटिनी तीरे सुरैः सेव्यते ।
सा काशी त्रिपुरारिराजनगरी पायादपायाज्ञगत् ।।

अर्थात् जो पृथ्वी पर होने पर भी पृथ्वी से सम्बद्ध नहीं है, जो अधःस्थित (नीची होने पर भी) स्वर्गादि लोकों से भी अधिक प्रतिष्ठित एवं उच्चतर है, जो जागतिक सीमाओं से आवद्ध होने पर भी सभी का वंधन काटनेवाली मोक्षदायिनी है, जो सदा त्रिलोकपावनी भागीरथी गंगा के तट पर सुशोभित तथा देवताओं द्वारा

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सुसेवित है, वह त्रिपुरारि की राजनगरी सम्पूर्ण जगत को नष्ट होने से रक्षा करे।'' इतना बताकर उन्होंने आगे कहा, ''काशी सात पुरियों में से एक है। अन्य छह पुरियों के नाम अयोध्या, मथुरा, माया, कांची, अवन्तिका और द्वारिका हैं।''

परमानन्द ने सहज जिज्ञासी की, ''माया, कांची और अवन्तिका के नाम पहले कभी नहीं सुने !''

''हरिद्वार का दूसरा नाम माया है। अवन्तिका आम तौर पर उज्जैन के नाम से प्रसिद्ध है। कांची दक्षिण भारत में है।''

''क्या हम इन सब स्थलों पर जायेंगे !''

''बरदोवा से तो यही सोचकर निकला हूँ कि समस्त भारत का दर्शन करना है। शेष कृष्ण-कृपा पर है। इस लम्बी यात्रा में खानपान और स्वास्थ्य का हमें सदैव ध्यान रखना चाहिये।'' इतना कहकर शंकरदेव ने आगे बताया, ''काशी भारत की सांस्कृतिक राजधानी है। भारतीय पंचांग में इसे शून्य देशान्तर रेखा पर मानकर समय की गणना, सूर्योदय-सूर्यास्त का समय, ग्रहण, अधिक मास, त्योहार, कुम्भ आदि पर्वों कीं गणना ज्योतिषविद् और गणितज्ञ अनादि काल से करते रहे हैं। वैसे कुछ ज्योतिषाचार्य शून्य देशान्तर पर उज्जैन को मानते हैं।''

बलराम ने कहा, ''गुरुदेव ! आपके साथ नहीं आते तो ये बातें भला हमें कौन बताता ! हमारा आपके संग यात्रा करना बड़े सौभाग्य की बात है।''

विश्वमाथ मन्दिर पहुँचकर शंकरदेव को अपनी पत्नी सूर्यवती याद आ गयी। वह यहाँ आने के लिए कितनी व्यग्र थी। काश ! वह साथ आ पाती। मंदिर से शंकरदेव ने हरिश्चन्द्र घाट चलने की इच्छा की। इसी घाट पर हरिश्चन्द्र ने श्मशान के डोम के यहाँ काम किया। वहाँ पहुँचकर वे कल्पना में खो गये, कैसे हरिश्चन्द्र ने अपने मृत पुत्र रोहिताश्व का दाह-संस्कार करने के बदले अपने स्वामी डोम के आदेशानुसार अपनी ही पत्नी शैब्या से ही मरघट-कर मांगा होगा। उस क्षण राजा और उनकी पत्नी की कैसी मानसिक दशा हुई होगी। उन्हें अपने 'हरिश्चन्द्र उपाख्यान' में लिखीं सारी बातें याद आने लगीं। उनका मन भारी हो गया। वे ज्यादा समय वहाँ नहीं रुक पाये।

वहाँ से शंकरदेव अपने साथियों के संग स्वामी रामानन्द की तपोभूमि पंचगंगा घाट की ओर गये। रास्ते में एक स्थान पर उमड़े हुए जनसमूह का समवेत स्वर सुनकर शंकरदेव ठिठक गये। वहाँ स्थित हनुमान मन्दिर में सान्ध्य आरती हो रही थी। झाँझ-ढोल-मजीरे के साथ सस्वर गायन चल रहा था—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आरती कीजै हनुमान लला की । दुष्ट दलन रघुनाथ कला की ।।
जाके बल गरजे महि काँपै । रोग सोग जाके सिमाँ न चाँपै ।।
अंजनी-सुत महाबल दायक । साधु सन्त पर सदा सहायक ।।
बाएँ भुजा सब असुर सँघारी । दाहिन भुजा सब सन्त उबारी ।।
. . . .
जो हनुमानजी की आरती गावै । बसि बैकुण्ठ परम पद पावै ।।
लंक विध्वंस कियो रघुराई । रामानन्द स्वामी आरती गाई ।।

पंचगंगा घाट पर बैठी साधु-मण्डली के साथ शंकरदेव भी बैठ गये। उनसे परिचय कर उन्होंने कहा, 'महात्मन् ! सुना है कि स्वामी रामानन्द इसी घाट पर रहते थे। हम उनकी भक्ती के बारे में जानने के इच्छुक हैं। आप बताने की कृपा करें तो आभारी रहेंगे।''

साधु शंकरदेव के संस्कृत-उच्चारण को सुनकर बड़ा प्रभावित हुए। साधुओं के महन्त ने कहा, ''स्वामी रामानन्दजी (1299-1448) को स्वर्ग सिधारे चौंतीस-पैंतीस वर्ष हो गये। किन्तु उनके द्वारा शुरू की गयी भक्ति परम्परा को उनके हजारों शिष्यों में कबीर, रैदास, पीपाजी, सेना नाई, धन्ना जाट जैसे अनेक सन्त अपने-अपने क्षेत्रों में आज भी जीवित रखे हुए हैं। रामानन्दजी का जन्म तो प्रयाग में हुआ पर बारह वर्ष की उम्र में ही शिक्षा ग्रहण करने काशी आ गये। यहाँ स्वामी राघवानन्द से दीक्षा लेकर आजीवन ब्रह्मचारी रहकर इसी पंचगंगा घाट पर उन्होंने अपना तपोमय जीवन प्रारम्भ किया।

''उनकी मान्यता को संक्षेप में आप दो पंक्तियों में इस प्रकार कह समझ सकते हैं— 'सर्वे प्रपत्तेरधिकारणो मताः।' ईश्वर की शरणागति के लिए सभी समान अधिकारी हैं। या फिर लोक भाषा में कह सकते हैं, 'जाति-पाँति पूछै नहिं कोई, हरि को भजै सो हरि का होई।''

महन्त ने आगे कहा, ''स्वामी रामानन्दजी संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान थे, फिर भी उन्होंने लोकभाषा को ही भक्ति-प्रचार का माध्यम बनाया। विधर्मियों द्वारा देश में फैलाये अनाचार और अत्याचार का सामना करने के लिए लोगों में आत्मवल का संचार किया। मुसलमान बने हिन्दुओं की शुद्धि कर फिर से उन्हें अपने धर्म में लाने का अभिनव अभियान शुरू किया। उन्होंने स्थान-स्थान हनुमान-मूर्तियों की स्थापना की। लोकभाषा में उनकी आरती रची जो आपने रास्ते में आये हनुमान-मन्दिर में कदाचित सुनी हो।''

''तभी आरती में रामानन्द स्वामी नाम समाहित था !'' शंकरदेव ने

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इतना कहकर आगे कहा, "हम आपके पास दोबारा आयेंगे। यह स्थान हमें बड़ा रमणीक लगा। इस समय सबकी इच्छा नाव से गंगा-भ्रमण करने की हो रही है। आपकी आज्ञा हो तो हम घूम आएँ" नाव से सबने काशी के घाटों की शोभा को मन भर निहारा। गंगा किनारे बने घरों और देवालयों में जल रहे दीपक दूर से तारों जैसे झिलमिला रहे थे।

काशी-प्रवास में शंकरदेव ने साथियों के साथ अक्षयवट, अन्नपूर्णा, ढुण्ढिराज विनायक, दण्डपाणि, बिन्दुमाधव, कपालमोचन आदि अनेक स्थल देखे। इसके साथ ही उनका वहाँ के विद्वानों से मिलना-जुलना और शास्त्र चर्चा होती रही।

विन्ध्यवासिनी

काशी से सभी विन्ध्याचल-क्षेत्र में स्थित मिर्जापुर की ओर प्रस्थान कर गये। रास्ते में मार्कण्डेय क्षेत्र आया। वह गंगा-गोमती का संगम स्थल भी है। वहाँ स्थित मार्कण्डेश्वर महादेव की यात्रा करते हुए सभी मिर्जापुर पहुँचे। वहाँ सबने गंगा किनारे स्थित वामन भगवान् के मन्दिर में दर्शन किये। आधे कोस की दूरी पर स्थित विन्ध्यवासिनी पहुँचे। अब तक रात हो आयी थी। वहाँ रात्रि-विश्राम के लिए एक धर्मशाला में ठहर गये।

धर्मशाला में ठहरे प्रयाग से आये यात्रियों से पता चला कि चार महीने बाद प्रयाग में बारह वर्षीय कुम्भ मेला लगने वाला है। यह जानकर शंकरदेव ने साथियों से कहा, "यहाँ से प्रयाग होने को तो बहुत करीब है, परन्तु हम अभी वहाँ नहीं जाकर पहले अयोध्या, मथुरा, गोकुल, वृन्दावन आदि की यात्रा कर कुम्भ मेले के समय आकर कल्पवास करेंगे। रात का पहला प्रहर व्यतीत होने वाला है; अब सोना चाहिये।"

दूसरे दिन विन्ध्य क्षेत्र के मन्दिरों को देखते हुए यात्री अयोध्या की ओर अग्रसर हो गये। रास्ते में जहाँ रात्रि होती, वे किसी ग्राम-नगर के मठ-मन्दिर में आसरा ले लेते। वहाँ के पुजारी या प्रबन्धक आदि से चर्चा कर शंकरदेव स्थान-स्थान के रीति-रिवाज और ऐतिहासिक-सांस्कृतिक महत्त्व को भी जानते।

अयोध्या

अयोध्या पहुँचकर सभी यात्री सर्वप्रथम सरयू नदी के तट पर पहुँचे। वहाँ के घाटों की शोभा देखकर सब अभिभूत हो गये। सबने रुक्मिणीघाट पर स्नान-ध्यान किया। इसी स्थान पर श्रीकृष्ण की पटरानी रुक्मिणी ने स्नान किया था। वहाँ से सब क्षीरोदकुण्ड गये, जहाँ अयोध्या नरेश दशरथ ने पुत्रेष्टि यज्ञ किया था।

सरयू से सब राम जन्मभूमि मन्दिर की ओर चल पड़े। दूर से ही

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मन्दिर का शिखर दिखायी दे रहा था। विशाल मन्दिर में मूल्यवान कसौटी के पत्थरों के चौरासी स्तम्भों से बने सभा-मण्डप में प्रवेश कर, वहाँ के स्थापत्य को देखकर शंकरदेव मन्त्रमुग्ध हो गये। स्तम्भों पर विभिन्न देवी-देवता, नाग-किन्नर-गन्धर्वों के साथ ही स्वस्तिक-ओंकार-मंगलकलश और अपनी सूण्डों में कलशों को धारण किये हुए गजराजों के उत्कीर्ण शिल्प को देख सभी भावविभोर हो गये। गर्भगृह में विराजमान रामलला के दर्शन कर सबने दण्डवत प्रणाम किया। मन्दिर के एक कोने में वाल्मीकि रामायण का पारायण चल रहा था। पूरा सभागृह श्रद्धालुओं से भरा था। शंकरदेव अपने इष्ट विष्णु के राम स्वरूप को बाल्यावस्था में देखकर भावसागर में खो गये। पारायण के पश्चात् वहाँ हुए 'श्रीराम जय राम जय जय राम' कीर्तन में कुछ समय बिताया।

राम-जन्मभूमि मन्दिर के पास स्थित सीता रसोई, कोप भवन, रत्नसिंहासन, आनन्दभवन, चौबीस अवतार आदि मन्दिरों में दर्शन कर सभी मणि पर्वत के करीब दातौन कुण्ड गये।

अगले दिन बारह कोस दूर स्थित वाराह क्षेत्र की ओर चल दिये। रास्ता घने वन के बीच से होकर जनशून्य था। सरयू और घाघरा के संगम पर स्थित भगवान् वाराह के दर्शन कर रात्रि-विश्राम के लिए वहीं एक मठ में ठहर गये।

मठ की कोठरी में दीपक-प्रकाश के पास बैठे शंकरदेव कुछ लिखने लगे। लेखन पूरा कर उन्होंने अपने मन के विचार सहयात्रियों के समक्ष रखते हुए कहा, ''तुम लोग भी अनुभव करते आ रहे होगे की इधर की अवधी, मैथिली, व्रज, भोजपुरी आदि बोलियाँ हमारी कामरूपी से ज्यादा अलग नहीं। मैं कितने दिनों से विचार कर रहा था कि ऐसी कोई बोली होनी चाहिये जिसे सभी बोल-समझ सकें। यह विचार गुरुकुल से ही मेरे मन में चला आ रहा था। वहाँ आनेवाले साधु-संन्यासियों के साथ मैं तो संस्कृत में वार्तालाप कर काम चला लेता था। किन्तु साधारण लोगों से वे बात नहीं कर पाते थे। मेरे मन का विचार अब दृढ़ होता जा रहा है। उसी भापा में अपने काव्य-नाटकों की रचना करूँगा। पूरे भारत को परस्पर जोड़ने के लिए ऐसी भाषा की आवश्यकता है।

नन्दिग्राम

अयोध्या में कुछ दिन रहने के वाद एक दिन सुवह सरयू में स्नान-ध्यान कर सभी फैजावाद होते हुए नन्दिग्राम की ओर प्रस्थान कर गये। नन्दिग्राम में ही

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भरत ने राम-वनवास के समय चौदह वर्षों तक अपना समय व्यतीत किया था। वहाँ भरतकुण्ड सरोवर और भरत मन्दिर के दर्शन कर रात्रि-विश्राम के लिए एक मन्दिर में ठहर गये।

शंकरदेव ने साथियों से कहा, "अब मेरा मन श्रीकृष्ण की लीलास्थली व्रजभूमि चलने को लालायित हो रहा है। तुम लोग लम्बे समय से मेरे साथ यात्रा कर रहे हो। यदि कोई वापस बरदोवा लौटना चाहता हो तो निसंकोच बता दे। आगे की यात्रा मैं अकेला कर लूँगा।"

परमानन्द ने कहा, "गुरुदेव ! आप हमें वापस जाने के लिए न कहें। आपके कारण ही यह विलक्षण यात्रा करने का सुअवसर हमें मिला है। अन्यथा इस विषय पर न हम विचारते और न ही आने का साहस करते।"

गोमती के किनारे

नन्दिग्राम से मथुरा के पथ पर चलते हुए गोमती के किनारे बसे लखनपुर (लखनऊ) पहुँचे। कलकल बहती गोमती पर बने घाटों ने सबका मन मोहा। गोमती की शीतल धारा में स्नान कर सब के मन प्रफुल्लित हो गये। शंकरदेव का मन कृष्ण जन्मभूमि के दर्शन के लिए लालायित हो रहा था। किन्तु उन्होंने सोचा, मथुरा अभी दूर है। इसके पहले गोमती किनारे स्थित नैमिषारण्य की पावन भूमि पर जायेंगे। फिर अन्य स्थलों को देखते हुए व्रजभूमि चलेंगे।

घाट पर मिला एक नावरिया उन्हें गोमती के किनारे बसे नैमिषारण्य ले जाने को तैयार हो गया। मन के उत्साह के सामने यात्रा की दूरी दिन प्रति दिन घटती जा रही थी।

नैमिषारण्य

गोमती के किनारे बसे नैमिषारण्य पहुँचकर शंकरदेव अति प्रसन्न हुए। नदी में स्नान-ध्यान कर उन्होंने साथियों से कहा, "चक्र की बाहरी परिधि को 'नेमी' कहते हैं। यहाँ चक्र की नेमी ग़िरने के कारण इसे नैमिष कहा गया। यहाँ चारों ओर अरण्य होने से यह नैमिषारण्य कहलाया। यहीं पर महर्षि सूत ने शौनक आदि अट्ठासी हजार ऋषियों को अठारह पुराणों की कथा सुनायी थी।

नैमिषारण्य से दो कोस दूर मिश्रक (मिश्रिख) जाकर दधीचिकुण्ड में स्नान किया। उन्हें वताया गया, यहीं पर महर्षि दधीचि का आश्रम था। यहीं पर उन्होंने देवताओं द्वारा माँगने पर इन्द्र को वज्र नामक अचूक शस्त्र वनाने के लिए अपनी हड्डियाँ दान की थी।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कन्नौज

नैमिषारण्य से लम्बा रास्ता तय करते हुए कुछ दिनों में यात्रीदल कन्नौज पहुँचा। परमानन्द ने शंकरदेव से कहा, "आपके पूर्वपुरुष यहीं के रहने वाले थे, आपके वंश में से क्या अब कोई मिलेगा ?"

"कन्नौज छोड़े हुए दो सौ साल से ज्यादा हो गये। इस बीच किसी से कोई सम्पर्क नहीं रहा, भला उनके बारे में हमें कौन बतायेगा ! चलो, यहाँ गंगा में स्नान करते हैं।" बातों-बातों में उन्होंने बताया, "कन्नौज को पुराणों में 'अश्वतीर्थ' भी कहा गया है। यहाँ के राजा गाधि थे। उनके एक सुन्दर कन्या और एक तेजस्वी पुत्र था। यह पुत्र ही आगे जाकर विश्वामित्र कहलाया। महर्षि ऋचीक ने उस कन्या से विवाह करने की इच्छा राजा गाधि के सम्मुख प्रकट की। राजा इसके लिए मन से तैयार नहीं था। ऋषि के शाप के भय से उसने उनके सामने ऐसी शर्त रख दी जिसे पूरा करना सम्भव नहीं था। उन्होंने ऋचीक से कहा कि आप यदि शुल्क रूप में ऐसे एक हजार अश्व लाकर दें जिनके केवल कान काले हों तो मैं अपनी कन्या का विवाह आपसे कर दूँगा। ऋचीक ने वरुण का ध्यान कर ऐसे श्यामकर्ण हजार अश्वों की व्यवस्था कर गाधि को देकर उसकी कन्या से विवाह कर लिया। उस कन्या से महर्षि ऋचीक के पुत्र ऋषि जमदग्नि हुए और जमदग्नि के पुत्र ही परशुराम थे।"

घाट पर एक सम्भ्रान्त व्यक्ति से परिचय हुआ। उससे शंकरदेव ने अपने पुरखों के नाम बताकर पूछताछ की तो उसने कहा, "यहाँ अनेक कायस्थ परिवार रहते हैं। आप जिनके बारे में पूछ रहे हैं, लगता है कि उन्हें कन्नौज छोड़े लम्बा समय हो गया। अब किसी के बारे में कुछ भी बता पाना सम्भव नहीं। उस समय किन विषम परिस्थितियों में उन्होंने कन्नौज छोड़ा होगा, मैं अनुमान लगा सकता हूँ। बड़े-बूढ़ों से मैंने जो सुना है, आपको बताता हूँ।

"कन्नौज का राजा जयचन्द था। उसके मौसेरे भाई पृथ्वीराज का दिल्ली पर राज्य था। जयचन्द को पृथ्वीराज से सदैव ईर्ष्या रही। वह दिल्ली को अपने अधिकार में करना चाहता था। जयचन्द की पालिता पुत्री संयुक्ता के आमन्त्रण पर पृथ्वीराज ने स्वयम्वर से उसका हरण कर लिया। इससे जयचन्द और जल-भुन गया। पृथ्वीराज को नीचा दिखाने और उसका राज्य हड़पने का जयचन्द को बहाना मिल गया। उसने गजनी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के मोहम्मद गोरी को दिल्ली पर आक्रमण करने के लिए उकसाया। गोरी ने दिल्ली जीतकर पृथ्वीराज को बंदी बना लिया और अपने साथ गजनी ले गया। देशद्रोही जयचन्द के हाथ कुछ नहीं लगा। आखिर कुण्ठित होकर उसने आत्महत्या कर ली। सुना है, अब भी वह प्रेत बना यहीं कहीं भटक रहा है।''

वाराह क्षेत्र : सोरों

दिनों-दिन यात्रा मथुरा की ओर बढ़ रही थी। रास्ते में गंगा-तट पर बसा वाराह क्षेत्र आया। इसे सोरों भी कहा जाता है। गंगा के तट पर बने घाटों और मन्दिरों की शोभा देखकर सब मन्त्रमुग्ध हो गये। गंगा-स्नान कर वाराह भगवान् के मन्दिर में जाकर सबने दर्शन किये। चतुर्भुज श्वेतवाराह के वाम भाग में लक्ष्मी विराजमान थीं। कुछ दिन वहाँ ठहरकर यात्री मथुरा के लिए प्रस्थान कर गये।

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

व्रज-भूमि

पूर्वी दिशा अरुणाभ हो गयी। बालरवि उदित हुआ। सूर्य-रश्मियों से चारों ओर छितराया केसरियापन कुछ क्षणों के लिए जैसे यमुना की श्यामल आभा में घुल गया। तट पर बने सोपानयुक्त पक्के घाटों पर स्नानार्थी श्रद्धालुओं का तांता लगा था। वहाँ बैठे घटवार यजमानों के ललाट पर तिलक-चन्दन लगाकर दक्षिणा बटोरने के उपक्रम में लगे थे। यमुना की कलकल बहती धारा और वहाँ के घाट की अनुपम शोभा देखकर शंकरदेव मन्त्रमुग्ध हो गये। वह मथुरा का विश्राम घाट था। वहीं अपने मामा कंस को मारने के बाद श्रीकृष्ण ने विश्राम किया था। अयोध्या से मथुरा पहुँचने में उन्हें ज्यादा दिन नहीं लगे।

कालिन्दी में स्नान करने के पहले शंकरदेव ने सहयात्रियों को बताया, "यमुना का प्रादुर्भाव इस धरती पर गंगा से हजारों वर्ष पहले हुआ। तुम जानते हो, यमुना को सूर्यनारायण की पुत्री क्यों कहा गया है ? सूर्यदेव की प्रखर किरणों से कलिन्द पर्वत में दरारें पड़ गयीं, उनमें से यमुना जलरूप में पृथ्वी पर अवतरित हुई। इसलिए इसे कालिन्दी भी कहा जाता है। इसके जल में आयुर्वेदिक गुण हैं जो मृत्यु-मुख से मानव को बचाते हैं। कदाचित् इसीलिए यमुना को यमराज की बहन भी कहा गया है।" यमुना माहात्म्य बताकर सबके साथ शंकरदेव जल में उतर गये। यमुना की धारा में तैरते हुए वे परले पार जा पहुँचे। वापस इस पार आते समय स्वयं को शवासन में जल पर तिराने लगे जैसे कोई शिशु माँ की गोद में निश्चिन्त होकर सोया हो। नदी में कछुओं की भरमार देखकर शंकरदेव को बचपन में ब्रह्मपुत्र की सापरी पर देखे कछुओं की याद तरोताजा हो आयी। यमुना-स्नान कर तन के साथ मन भी प्रफुल्लित हो गया।

मथुरा

पुराणों में वर्णित मथुरा के माहात्म्य के बारे में साथियों को बताते हुए शंकरदेव ने कहा, "मथुरा क्षेत्र को अनादिकाल से परमपावन माना जाता है। इसका पौराणिक नाम मधुवन था। यहीं के बियावान वन में देवर्षि नारद के कहने पर बालक ध्रुव ने तपस्या कर भगवान् विष्णु के दर्शन किये। कालान्तर में मधुवन पर मधु नामक दैत्य ने अधिकार कर यहाँ मधुपुरी नामक नगर बसाया। उसके पुत्र लवण के अत्याचार से प्रजा दुःखी थी। श्रीराम के आदेश पर उनके अनुज शत्रुघ्न ने उसका वध कर इसे अपने

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अधिकार में किया। शत्रुघ्न के पुत्रों अरिघाती और सुबाहु ने इसे अपनी राजधानी बनायी। द्वापर में यह नगर राजा शूरसेन के अधिकार में आया। उनके पुत्र वसुदेव के यहाँ ही श्रीकृष्ण का जन्म हुआ। यादवराज शूरसेन ने इसका पुनरुद्धार कर अपने घनिष्ठ मित्र उग्रसेन को यहाँ का शासक बनाया। उन्हीं का पुत्र कंस था।''

उन्होंने आगे कहा, ''जानते हो, पद्मपुराण में भगवान् ने कहा है—

अहो न जानन्ति नरा दुराशयाः
पुरीम् मदीयां परमा सनातनीम् ।
सुरेन्द्रनागेन्द्रमुनीन्द्रसंस्तुतां
मनोरमां तां मथुरा पराकृतिम् ।।

अर्थात् दुष्ट हृदय के लोग मेरी इस परम सुन्दर सनातन मथुरा नगरी को नहीं जानते, जिसकी सुरेन्द्र, नागेन्द्र तथा मुनीन्द्रों ने स्तुति की है। यह परमपावन पुरी मेरा ही स्वरूप है।'' गुरु शंकर की बातें सुनकर सबको प्रसन्नता हुई।

विश्राम घाट पर हो रही यमुना की प्रातःकालीन आरती के घण्टानाद ने सबका ध्यान आकर्षित किया। उन्होंने देखा, तट पर खड़े पुजारी अपने हाथों में अनेक बत्तियों से प्रज्वलित बहुमुखी दीप थामे आरती उतार रहे हैं। घाट पर दर्शनार्थियों की भीड़ लगी है।

अब सभी घाट के पास स्थित मन्दिर में दर्शन कर श्रीकृष्ण जन्मभूमि के दर्शन करने केशव मन्दिर की ओर चल पड़े। घाट से ज्यादा दूर नहीं चलना पड़ा। दूर से ही विशाल मन्दिर का शिखर दिखायी देने लगा। पास पहुँचते-पहुँचते पूरा मन्दिर परिलक्षित होने लगा। मन्दिर के बाहर की तरह भीतर का शिल्प भी चित्ताकर्षक था। वहाँ अपने परम आराध्य के दर्शन कर शंकरदेव भावविभोर हो गये। मन्दिर प्रांगण में ही भण्डारा चल रहा था। पंगतों में बैठे दीन-धनी सभी समभाव से भगवान् का प्रसाद ले रहे थे। किसी कार्यकर्ता ने शंकरदेव और उनके साथियों से बैठकर प्रसाद ग्रहण करने का आग्रह किया।

विशाल कृष्ण-मन्दिर के एक प्रांगण में गायन चल रहा था। आसावरी राग शंकरदेव के कानों में पड़ी। वह सुर असम के सुर से अलग था। गीत में आयी मात्राओं का अन्तर वे समझ रहे थे। कुछ समय शंकरदेव श्रोता बने सुनते रहे। उनका मन गायन-वादन को मचल उठा। उन्होंने संचालक रमाकान्त

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

से परिचय कर एक गीत सुनाने की अनुमति ले मृदंग थामा और ताल देने लगे। फिर आलाप लिया। इसके पहले कभी न सुने सुरों वाले आसावरी में उनके मधुर गायन को सुन श्रोता 'साधु-साधु' कह उठे। अब तो सबका आग्रह रखकर धनश्री, गौरी, मल्लार, कल्याण आदि रागों में उनके गायन का लम्बा क्रम चलता रहा।

सहयात्रियों से शंकरदेव का पूर्ण परिचय जानकर आयोजक रमाकान्त ने उन्हें फूलों का हार और उत्तरीय पहनाकर सम्मानित किया। फिर श्रोताओं से उनका परिचय कराया, "ये श्रीमन्त शंकरदेव भूयाँ कामरूप के रहनेवाले हैं। वहाँ के बरदोवा ग्राम से चलकर गया, जगन्नाथपुरी, काशी, अयोध्या होते मथुरा पहुँचे हैं। तीर्थ-भ्रमण के बहाने सम्पूर्ण भारतवर्ष को देखना इनका अभीष्ट है। इनके साथियों से पता चला है कि ये केवल गायक ही नहीं, कवि भी हैं। आपने इनसे जो गीत अभी सुने, वे इनके ही रचे हुए है। संगीत की कोई भाषा नहीं होती। फिर इनके गीतों के शब्द तो हमारी बोलियों से काफी साम्य रखते हैं। यह हमारा अहोभाग्य है जो ऐसे मनीषी के दर्शन ही नहीं हुए, हमें इनका गायन सुनने का भी अवसर मिला। मेरी इनसे प्रार्थना है कि ये कुछ दिन यहाँ मथुरा में रहे ताकि इनके सान्निध्य से हम लाभान्वित हो सकें।"

सन्ध्या बेला में रासलीला का आयोजन हुआ। इसे देखने में शंकरदेव और उनके साथियों का मन खूब रमा। व्रज के छोटे-छोटे छोरों ने राधा-कृष्ण, गोप-गोपिकाओं के वेश धरे थे। उनकी वस्त्र-सज्जा, चेहरों पर किया गया रूप-विन्यास और राधा-कृष्ण के सिरों पर बंधे बांके मुकुटों की शोभा ने बरबस ही शंकरदेव को मोहा।

वंग प्रदेश से आते समय उन्होंने जात्रागान का मंचन देखा था। दोनों की मंचन-शैली के अन्तर को उन्होंने समझा। जात्रागान जहाँ दर्शकों के घेरे के बीच बने खुले मंच पर होता है, वहीं रासलीला में दर्शकों को सम्मुख बैठया जाता है। रासलीला में कथावस्तु केवल कृष्ण-लीलाओं से जुड़ी होती है। जात्रागान में ऐसा नहीं।

रासलीला देखते-देखते रात्रि का दूसरा प्रहर बीतने लगा। रासलीला में मन ऐसा रमा कि पूरी होने पर ही वे उठे। मन्दिर के पिछवाड़े बनी यात्रीशाला में मन्दिर के व्यवस्थापक ने उनके रहने के लिए दो कक्ष देकर बिछाने-ओढ़ने की समुचित व्यवस्था भी कर दी।

सुबह व्यवस्थापक ने आकर उनसे कुशलक्षेम पूछा। वह भी काफी पढ़ा-लिखा था, बातों-बातों में वह उन्हें मथुरा का इतिहास बताने लगा,

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"श्रीमान् ! यहाँ नन्द, मौर्य, कुषाण आदि वंशों ने शासन किया। कनिष्क ने इसे बौद्ध धर्म का केन्द्र बनाया। यह नगर कभी हर्षवर्धन के साम्राज्य के अन्तर्गत भी रहा है। सोमनाथ मन्दिर को लूटने के बाद महमूद गजनवी की क्रूर दृष्टि यहाँ के मन्दिरों की भव्यता और धन-सम्पदा पर पड़ी। उसने मन्दिरों को लूटा और ध्वस्त भी किया। फिर यह सिलसिला कुतुबुद्दीन ऐबक से अल्तमश, बलवन, अलाउद्दीन खिलजी तक चलता रहा। अभी भी यह लूट-खसौट थमी नहीं। लगता है कि इस मथुरा का अवश्य कोई दोष रहा है, नहीं तो यहाँ कंस जैसा दुराचारी क्यों जन्म लेता ! आप जैसे सद्पुरुषों के नित्य आगमन से यह नगरी अपनी अस्मिता आज भी बचाये हुए है परन्तु इसके भविष्य के गर्भ में क्या है, कौन जाने !" इतना बता, व्यवस्थापक ने कहा, "अब समय बहुत हो रहा है। मुझे चलना चाहिये। बाहर से आये यात्री मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। हाँ, आज के कीर्तन-प्रवचन में भी आपको गायन करना होगा। संस्कृत मिश्रित कामरूपी में दिया आपका प्रवचन सुनने को सब लालायित हैं।"

रमाकान्त नित्य शंकरदेव का प्रवचन सुनने आता था। वह उनके द्वारा की गयी नामधर्म की व्याख्या से पहले दिन ही प्रभावित हो गया। अन्ततः वह भी उनकी शरण ले नामधर्म के प्रचार में लग गया।

गोकुल

कुछ दिनों के मथुरावास के पश्चात् शंकरदेव का मन व्रज के अन्य स्थलों पर जाने का हुआ। एक सुबह विश्राम घाट पर जाकर यमुना के परले पार स्थित गोकुल जाने के लिए नाव पर सवार हुए।

नावरिया ने एक घाट पर नाव लगाकर कहा, "महात्माओं ! यह ब्रह्माण्ड घाट है। सभी यात्री यहाँ दर्शन करने आते हैं। यहीं बाल कृष्ण ने माँ यशोदा से छिपकर मिट्टी खायी थी। यशोदा मैया को पता चला तो वे माटी खाने की बात से मुकर गये। मैया ने उन्हें अपना मुँह खोलकर दिखाने को कहा। कन्हैया ने मुँह खोला तो माँ यशोदा को समस्त ब्रह्माण्ड के दर्शन हुए। तब से इसे ब्रह्माण्ड घाट कहा जाता है। आज भी यहाँ मिट्टी के पेड़े ही प्रसाद रूप में दिये जाते हैं। आप यह प्रसाद अवश्य लीजियेगा। मुँह में रखते ही पेड़ा घुल जाएगा। ऐसा प्रसाद और कहीं नहीं मिलेगा।"

उसकी बातों का आनन्द लेते शंकरदेव मुस्करा रहे थे। उन्होंने पूरी भागवत पढ़ी थी। उनसे भला क्या छिपा था। घाट पर उतर कर उन्होंने गोकुल की रज मस्तक पर लगायी। ब्रह्माण्ड घाट से थोड़ी दूरी पर स्थित

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नन्दबाबा के पुरातन घर, नन्दभवन में गये। अन्दर का दृश्य अलौकिक था। सुन्दर-सुन्दर सिंहासनों पर मथुरेश, विठ्ठलनाथ, द्वारकाधीश, गोकुलनाथ, बालकृष्ण, मदन मोहन और नवनीतप्रिय के नाम से श्रीकृष्ण के विग्रह विराजमान थे। एक-एक का शृंगार बड़े ही मनोयोग से किया गया था। विग्रहों के गले में शोभायमान पुष्प-मालाओं की सुगन्ध से पूरा वातावरण सुवासित हो रहा था। उन विग्रहों के पृष्ठभाग में कृष्ण-लीलाओं को दर्शातीं पिछवाइयाँ लगी थीं। उन पिछवाइयों को देख शंकरदेव का चित्रकार मन किन्हीं भावों में खो गया, कदाचित किसी भावी योजना में। अब शंकरदेव भाव-सागर में खो गये, आंगन में बाल-कृष्ण ऊधम मचा रहे हैं। उनके पाँवों में बंधी पैंजनियाँ रुनझुन कर रही हैं। घर के कोने में माता यशोदा से छिपकर कृष्ण अपने बाल सखाओं के साथ चुराया हुआ नवनीत खा रहे हैं। गोकुल की गोपियाँ नटखट बालकृष्ण के उलाहने लिये मैया यशोदा के पास खड़ी हैं। कृष्ण माँ की डाँट-फटकार से बचने के लिए बालसखाओं के साथ गायों को चराने के बहाने वन में निकल गये हैं। वे अपने भावों को समो नहीं पा रहे थे, उनकी वाणी से शब्द फूट पड़े— 'कालिन्दी पुलिन वन यतहु यदुनन्दन फिरत गौवा चराइ...'

उनकी भाव निर्झरणी बह रही थी। परमानन्द झट से अपनी झोली से भोजपत्र और कलम-दवात निकाल उनके शब्दों को लिपिबद्ध करने लगा।

नन्दभवन में बैठा एक साधु शंकरदेव के सारे कार्यकलाप देख रहा था। उसने शंकरदेव से परिचय कर कहा, "मेरा नाम होने को तो राधाकृष्ण है परन्तु सब मुझे राधा कहकर पुकारते हैं। मैं एकमेव भगवान् श्रीकृष्ण का नाम-जाप करता पिछले कई वर्षों से गोकुल में ही टिका हूँ। मैं आपकी कृष्णभक्ति देकर अभिभूत हूँ। आप यहाँ कितने दिन रहेंगे ?"

"कुछ नहीं कहा जा सकता। पहले रहने का कहीं ठौर-ठिकाना खोजना होगा। यहाँ मेरा मन खूब रम रहा है।" शंकरदेव ने कहा।

"अच्छा है। इस बहाने आपसे मिलना होता रहेगा। यहाँ ठहरने की चिन्ता मत कीजिये। कोई भी गृहस्थ आप लोगों को अपने घर आसरा दे देगा।"

सन्ध्या हो आयी थी। गोकुल में ही रात्रि-विश्राम करने के लिए एक गृहस्थ का द्वार खटखटाया। लम्बा घूँघट काढ़े गृहणी बाहर आयी, उसने सबका आदर-सत्कार कर एक कोठरी उनके लिए खोल, दीपक जला दिया। पानी की व्यवस्था कर बिछाने-ओढ़ने के कपड़े लाकर दिये। वहीं भोजन करने को कहा। भोजन में थोड़ी देरी थी। शंकरदेव कक्ष में बैठे थे कि गृहस्वामिनी फिर आ पहुँची। उसके साथ आयी बहुओं ने बारी-बारी सबके

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चरणों में प्रणाम किया। ऐसी आवभगत देखकर वे ठगे-से रह गये। भोजन कर विश्राम किया।

अन्धकार की चादर में लिपटा घर सुबह उजागर हुआ। घर में अनेक कमरे थे। प्रत्येक के द्वार पर गेरू और खड़िया से श्री, स्वस्तिक, कलश जैसे मांगलिक चिह्न बड़ी सुघड़ता से चित्रित थे। मुख्य द्वार के सामने बने उपवन में रंग-बिरंगे पुष्पों की क्यारियों के मध्य खड़े वृक्षों पर लताएँ लिपटी थीं। गोबर-मिट्टी से लिपे आंगन के बीच एक उँचे चबूतरे पर श्यामा तुलसी का विरवा हवा के झकोरों के साथ लहलहा रहा था। गौशाला में बंधीं गौवें रँभा रही थीं। बछड़े माँ का थन-पान कर रहे थे। गायों की गर्दन में घनघनातीं घण्टियों की ध्वनि के साथ होता पंछियों का कलरव जैसे अनुपम संगीत की सृष्टि कर रहा था।

यमुना-स्नान कर नन्दभवन में भगवान के दर्शन करना शंकरदेव का नित्यनियम बन गया था। गोकुल में रहते कई दिन हो गये तो उन्होंने वृन्दावन जाने का विचार किया। घाट पर उन्हें पता चला कि मथुरा होकर ही वहाँ जाया जा सकता है। किन्तु उन्होंने सोचा जब किसी भी हाल में यमुना पार करनी ही होगी तो गोकुल से ही नाव में चला जाये।

एक सुबह सभी वृन्दावन जाने को उद्यत हुए। गृहिणी और उसके पति उन्हें कलेऊ किये बिना घर से नहीं जाने दे रहे थे। उनका अतिआग्रह देखकर शंकरदेव ने कहा, "इतने दिनों से आपके यहाँ हैं। आपके आतिथ्य से हम अति प्रसन्न हैं। आपके आभारी हैं। कलेवा करने से भी मना नहीं करते। किन्तु हमारी इच्छा है कि वृन्दावन पहुँचकर गोविन्द के दर्शन करने के पश्चात् ही अन्न ग्रहण करेंगे। आप हमारी बात को अन्यथा न लें। यह मेरी आपसे प्रार्थना है।"

दम्पति उन्हें घाट तक छोड़ने आये। गृहस्थ ने नावरिया को समझाया, "देखियो, नये बटेउ हैं, इन्हें किसी तरह का कष्ट न हो।" गृहिणी ने अपने आंचल में छिपाकर साथ लायी कलेवे की पोटली और दही से भरी मिट्टी की हण्डिया उन्हें थमाकर मनुहार की, "इसे तो आपको रखना ही होगा। कृष्ण भगवान् के दर्शन कर हम गरीबों के इस प्रसाद को अवश्य ग्रहण कीजियेगा। क्या पता, आपके दर्शनों का कुछ पुण्य हमें भी मिल जाए।" इतना विनम्र आग्रह देखकर अब शंकरदेव कैसे मना करते।

वृन्दावन

नाव कालिन्दी की धारा में बही जा रही थी। थोड़ी दूर जाने पर नावरिया ने हाथ के संकेत से दूर दिखाकर कहा, "वह रहा वृन्दावन। हम तो यहीं के रहने

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वाले हैं। केवट जाति के अनपढ़ गँवार हैं। हम यहाँ के महत्त्व को क्या जानें। आप जैसे महात्माओं को पार लगाकर दो जून की रोटी चल जाती है, क्या पता हमें भी इसका थोड़ा पुण्य मिलता हो तो।''

शंकरदेव ने कहा, ''भइया ! ऐसा क्यों सोचते हो। ब्राह्मण, कायस्थ, केवट, स्पृश्य-अस्पृश्य क्या होता है ! परमब्रह्म कृष्ण को जो भजता है, वह उसी का हो जाता है। मेरी मानो तो आज से अपनी रोजी कमाने के साथ हरदम 'कृष्ण-कृष्ण' का जाप किया करो। और जो मिले उसे भी 'कृष्ण-कृष्ण' कहकर ही अभिभावदन किया करो। तुमने जिस तरह हमें इस पार उतारा है वे उसी तरह सबको भवसागर के पार उतारते हैं। बोलो, वे भी केवट हुए कि नहीं !''

घाट पर उतरकर शंकरदेव ने उसे गले लगाया। केवट भावविभोर होकर उनके पाँवों में पड़ गया। उसने हाथ जोड़कर कहा, ''आपके पहले भी न जाने कितने ही सन्त-महात्माओं को पार उतारा होगा। किन्तु आजतक आप जैसी मार्मिक और गूढ़ बात किसी ने नहीं बतायी। क्या पता, उन्होंने मुझे इस योग्य ही न समझा हो। मैं आप लोगों के दर्शन कर धन्य हो गया। आपकी कही बात मैं कभी नहीं बिसराऊँगा।''

वृन्दावन के घाट पर उतर कर शंकरदेव ने वृन्दावन की बालू पर पसर कर दण्डवत प्रणाम किया। फिर उस पावन स्थल की स्तुति करते हुए कहा—

वृन्दावनस्य संयोगात् पुनस्त्वं तरुणी नवा ।
धन्यं वृन्दावनं तेन भक्तिर्नृत्यति यत्र च ।।

फिर सहयात्रियों को इसका अर्थ समझाते हुए कहा, ''कलिकाल के आरम्भ में भक्ति अत्यन्त निराश थी कि अब उसे कौन पूछेगा ! वह अपने रोगी पुत्रों ज्ञान और वैराग्य के साथ जगह-जगह भटकती फिर रही थी। संयोग से वह वृन्दावन आ पहुँची। यहाँ की रज का स्पर्श पा भक्ति पुनः नवीन तरुणी की भाँति नाच उठी और उसके पुत्रों में भी नया उत्साह आ गया।

''यहाँ का कण-कण पवित्र है। न जाने कौन से बालू-कण पर श्रीकृष्ण के साक्षात चरण पड़े हों। वृन्दावन के बारे में ब्रह्मवैवर्त पुराण में कथा है, प्राचीन काल में महाराज केदार की पुत्री वृन्दा ने श्रीकृष्ण को पति रूप में पाने के लिए यहाँ तपस्या की थी। वृन्दा देवी ही यहाँ की अधिष्ठातृ देवी है। उसीके नाम पर इसे वृन्दावन कहा जाता है। तुम लोग भी यहाँ की

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भूमि को दण्डवत प्रणाम कर श्रीकृष्ण का आंशीर्वाद लो।''

वृन्दावन की धरती ने सबका मन मोहा। लोगों की रंग-बिरंगी वेशभूषा और लम्बे-लम्बे घूँघट निकाल कर आती-जातीं औरतों की चहल-पहल का दृश्य कामरूपवासियों को चित्ताकर्षक लगा। वहाँ की सँकरी गलियों से गुजरते समय उसके दोनों ओर बने छोटे-छोटे खोकों पर बेचने के लिए रखे गोरस-दही की महक से नासिकाएँ सुरभित हो गयीं। दुकानों में पेड़े, रबड़ी, मालपुआ आदि नाना प्रकार के मिष्टान्न और पुष्प विक्रेताओं के ठीहों पर सजे विविधरंगी सुगन्धित पुष्पों की महक उठ रही थी। भक्तों के ठेलम-ठेल से अपने को बचाते हुए चारों यात्री गोविन्द-मन्दिर पहुँचे।

वृन्दावन में कुछ दिन रुके रहने के लिए शंकरदेव ने गोविन्ददेवजी के मन्दिर में ही अपना डेरा लगाया। मन्दिर में विराजमान गोविन्ददेव के विग्रह के बारे में उन्हें बताया गया कि इसे स्वयं उद्धव ने अपनी देखरेख में बनवाया था। इसीलिए इसका मुखारविन्द स्वयं श्रीकृष्ण के मुखारविन्द के समान ही है। उस मन्दिर का निर्माण श्रीकृष्ण के प्रपौत्र वज्रनाभ ने करवाया था। मन्दिर काल के प्रभाव से जीर्ण भी हुआ। समय-समय पर इसका जीर्णोद्धार होता रहा। इसका महत्त्व व्रजभूमि में सदा बना रहा।

मन्दिर में श्याम सलोने गोविन्द का पुष्पों से भव्य शृंगार किया हुआ था। कृष्णवर्णी मूर्ति के गले में कमल और कदम्ब की मालाएँ शोभायमान थीं। साँवरे के हाथ की मुरलिया उनके अधर से लगी थी। सुगन्धित पुष्पों और केवड़े की महक से मन्दिर महमहा रहा था। शंकरदेव विभोर हो वहीं भाव-समाधि लगाकर बैठ गये। उनके नयनों से निरन्तर अश्रुधारा बह रही थी।

सर्वजय को आभास हुआ कि उनके मुखमण्डल के चारों ओर जैसे दिव्य ज्योति का एक वलय फैला है। उनके ध्यान में विघ्न भला कौन डालता ! एक प्रहर बीतने पर श्रद्धालुओं का जमघट बढ़ने के साथ कोलाहल भी बढ़ा। जनरव सुनकर या पता नहीं यों ही उन्होंने अपनी आँखें खोलीं और भगवान् को दण्डवत प्रणाम किया। भाव-समाधि से निकले तो वे मन्दिर के बाहर आये।

बाहर खड़े एक विशाल वृक्ष को देखकर शंकरदेव के मन में भाव जागे, इस वृन्दावन में तरुओं की भरमार है। वृक्ष जैसा कोई अतिथिवत्सल नहीं। अपनी घनी शाखा-प्रशाखाओं की स्नेह-छाँव और बयार से जीव मात्र का कल्याण करता है, पुष्प-फल-वल्कल से सब का प्रतिपालन करता है। सब का उपकार करने से सच्चे अर्थों में इसका जन्म सार्थक है। यह किसी में अन्तर नहीं

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

करता, कोई पार्थक्य नहीं रखता। उनके भाव शब्दों का रूप ले भोजपत्र पर उतरने लगे—

इटो वृन्दावन आछे यत तरुगण ।
देखा देखा केन महा साधुर लक्षण ।।
करे पर उपकार किनो कृपामय ।
परर जे अर्थे जीवे इटो वृक्षचय ।।
पर उपकारी तरु जनम सार्थक ।
अन्तर विमुख जेन नुहिके सार्थक ।।
बाकलि पल्लव मूल पत्र पुष्प-फल ।
सेइ सिरा चारे पाव वृक्षत सकल ।।

वृक्ष की छाँव तले बैठकर, मन्दिर में मिले प्रसाद और गृहिणी के दिये कलेवे को दही के साथ सबने ग्रहण किया। वहीं पेड़ तले दो व्यक्ति और बैठे थे। उनसे शंकरदेव ने निधिवन जाने का पथ पूछा तो आपस में परिचय हुआ। उन्होंने अपने नाम रूप गोस्वामी और सनातन गोस्वामी बताये। अध्यात्म पर चलती बातचीत प्रगाढ़ता में बदल गयी। सनातन शंकरदेव के नामधर्म के बारे में जानकर अति प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा, ''हमारा भी यही मानना है कि इस कलियुग में भगवान् के नामधर्म से बढ़ कर और कुछ नहीं। महानुभाव ! आपका क्या विचार है ?''

शंकरदेव ने इसका विश्लेषण करते हुए कहा, ''नामधर्म ही जीवन का सार है। यह तीर्थ यात्रा भी मैं कोई पुण्य कमाने की भावना से नहीं कर रहा। इसे भारत-भ्रमण कहना मैं ज्यादा उपयुक्त समझूँगा। मैं अपने विशाल देश की संस्कृति और लोगों को देखने-समझने के लिए इस लम्बी यात्रा पर घर से निकला हूँ। मेरे तो एक मात्र आराध्य श्रीकृष्ण या विष्णु या फिर उनके अवतार हैं। हमारे पथ में कई ऐसे तीर्थ आये और आगे भी आयेंगे, जहाँ के प्रति मेरी आस्था नहीं। किन्तु वहाँ दोबारा आ पाना तो सहज नहीं; इसलिए उन स्थलों की संस्कृति और वहाँ के स्थापत्य को देखने के लिए ही सही, उन्हें छोड़ा भी नहीं जा सकता। आपने नामधर्म के बारे में पूछा, उसके सार स्वरूप सरल कामरूपी में लिखा पद आपको सुनाता हूँ; आप समझ जायेंगे। सुनिये—

एक नामधर्म आन नाही कर्म
कहिछों एकशरण ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तयु आज्ञाचय धरि कृपामय
कहिलों निज बचन ।।

शंकरदेव की बातों से दोनों इतने प्रभावित हुए कि जितने दिन वे वृन्दावन में रहे, उनके साथ ही रहे। एक दिन उन्होंने शंकरदेव को प्रणाम कर उनसे अपने नामधर्म की दीक्षा देने की प्रार्थना की। अन्ततः उनके अति आग्रह को देखकर शंकरदेव ने उनका मान रखने के लिए अपनी शरण दी।

लताद्रुमों से हरिहर निधिवन में सब ने प्रवेश किया ही था कि एक बन्दर सर्वजय के हाथ की पोटली छीनकर ले भागा। उसकी असावधानीवश ही ऐसा हुआ। वृन्दावनवासियों ने पहले ही वानरों के उत्पात के प्रति चेता दिया था। सर्वजय एक लकुटी से बन्दर को डराने लगा। बन्दर पोटली देने के बदले गुर्राने लगा। यह तमाशा देख रहे एक व्रज गोप ने अपने पास के केलों में से एक उस ऊधमी वानर की ओर फेंका। बन्दर पोटली को दूर छिटकाकर केला लेने लपका और सर्वजय ने अपनी पोटली सँभाली।

शंकरदेव सेवाकुंज पहुँचकर कल्पनाओं में खो गये। यहीं तो श्रीकृष्ण गोपियों के संग रास रचाते थे। आज भी रात में यहाँ किसी का रहना वर्जित है। सांयकाल होते-होते पशु-पक्षी तक यहाँ से चले जाते हैं।

अगले दिन वे यमुना किनारे कालियादह गये। वहाँ पहुँचकर शंकरदेव उद्‌भावना में खो गये, बालगोपाल ने गैया चराते-चराते कालिया नाग के विषधर फणों पर नृत्य करना कब सीख लिया, कोई नहीं जानता। प्रभु की लीला प्रभु ही जाने। वही कृष्ण कुरुक्षेत्र की रणभूमि में अपने पांचजन्य से कैसी भयंकर हुंकार भरते हैं ! विषाद में खोये अर्जुन को गीता का उपदेश देते हैं और स्वयं बिना शस्त्र उठाये ही पाण्डवों को विजय दिला देते हैं !

इन्हीं भावों में खोये शंकरदेव यमुनाजल में उसी प्रकार कूद पड़े जैसे कभी गोविन्द अपनी गेंद लेने के बहाने कालिय का मान-मर्दन करने कूदे होंगे। शंकरदेव ने कितनी ही देर तक यमुना के इस पार से उस पार तक फेरे लगाये। वे जल में लोप होते तो साथियों के मन में भय का संचार होने लगता कि कहीं कोई अप्रिय घटना न घट गयी हो। किन्तु कुछ ही क्षणों में उनकी श्याम केश-राशि जल पर तैरती दिख जाती तो आश्वस्त हो जाते।

यमुना किनारे चीरघाट पर जाकर शंकरदेव फिर भाव-सागर में खो गये, नन्हें पाँच-छह वर्ष के कान्हा, मर्यादा को भुलाकर नग्नावस्था में यमुना-स्नान करती गोपियों का चीर हरण कर कदम्ब की डाल पर जा बैठे। कन्हैया

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

को तो चीर हरण के माध्यम से गोपियों को सामाजिक मर्यादा में रहने का पाठ पढ़ाना था। गोपियों ने क्षमा याचना कर ऐसी भूल भविष्य में कभी न करने का प्रण किया, तब बालकृष्ण ने उनके वस्त्र लौटाये। शंकरदेव ने तट पर खड़े उस कदम्ब की छाँह तले थोड़ी देर बैठ विश्राम किया, जिसे श्रीकृष्ण के समय का बताया जाता है।

गोवर्धन

वृन्दावन से यात्री गोवर्धन की ओर प्रस्थान कर गये। वहाँ कृष्णकुण्ड, कुसुमकुण्ड आदि में स्नान कर गिरिराज गोवर्धन के दर्शन किये। एक छोटी पहाड़ी के रूप में गोवर्धन का विस्तार सात कोस में है। शंकरदेव ने गोवर्धन परिक्रमा के साथ व्रजभूमि की चौरासी कोस की यात्रा का प्रस्ताव सबके सामने रखा।

व्रज-परिक्रमा में अनेक तीर्थों के साथ कामवन, बरसाना, गह्वर वन, प्रेम सरोवर, नन्दगाँव, चीरघाट, नन्दघाट, वत्सवन, गरुड़गोविन्द, अक्रूरघाट, वृन्दावन, भद्रवन, खेलनवन, वृहद्वन, बलदेवगाँव, ब्रह्माण्डघाट, महावन, गोकुल, मधुवन, तालवन, कुमुदवन, गिरिधरपुर, शान्तनुकुण्ड, दतियागाँव, बहुलवन, विहारवन, राधाकुण्ड आदि स्थल आये। कुछ स्थानों पर तो उन्हें फिर से आने का अवसर हाथ लगा। उन स्थानों पर दोबारा पहुँचकर सब को अपार आनन्द हुआ। परिक्रमा पूरी करने में डेढ़ महीने का समय लग गया।

व्रजभूमि की परिक्रमा कर शंकरदेव को अपार सन्तोष हुआ। उन्होंने अपने मन की बात सबके सामने रखते हुए कहा, ''अब मेरे विचार से हमें प्रयाग चलना चाहिये। काशी में पता चला था कि प्रयाग में अगले महीने से कुम्भ पर्व प्रारम्भ होगा। कुम्भ में कल्पवास करेंगे। फिर वहाँ से चित्रकूट होते हुए पहले हम दक्षिण भारत जायेंगे। पश्चिम भारत और देवभूमि उत्तराखंड की यात्रा बाद में करेंगे। यह बात मेरे मन में पहले से ही थी। इसीलिए काशी से प्रयाग न जाकर अयोध्या की ओर प्रयाण किया था। तुम लोगों का क्या विचार है !''

सर्वजय ने कहा, ''गुरुदेव ! आप हमारा विचार क्यों पूछ रहे हैं ? हम सभी आपके साथ हैं। स्कन्द पुराण, पद्म पुराण और न जाने कौन-कौन से पुराण और शास्त्रों में आपने सब तीर्थों के बारे में पढ़ रखा है। हम तो आपके अनुगामी हैं। आप जैसा आदेश देंगे, वैसा करेंगे। हम भला क्या राय देंगे !''

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संगम से नर्मदा तक

प्रयाग जाने के लिए यात्रीदल यमुना घाट पर आया। घाट पर खड़ी नावों के मल्लाहों से प्रयाग चलने के लिए पूछा। इतनी लम्बी यात्रा पर जाने को कोई तैयार नहीं हो रहा था। अन्ततः एक नावरिया उन्हें प्रयाग स्थित यमुना के आखिरी छोर संगम तक ले जाने को तैयार हो गया। उसकी नाव क्या बजरा ही थी। बजरे पर चार मल्लाह थे।

भोजन-विश्राम के लिए रास्ते में आये गाँवों के तटों पर बजरा किनारे लगाया जाता और फिर यात्रा आगे बढ़ जाती। शंकरदेव मन ही मन मुग्ध थे कि जिस यमुना के तटों पर श्रीकृष्ण ने बाललीलाएँ की थीं, उसी यमुना में वे यात्रा कर रहे हैं। प्रयाग में हो रहे अद्भुत कुम्भ पर्व को देखने की उत्सुकतावश सब के मन में दुगुना उत्साह था। कुछ दिनों की यात्रा के बाद नाव प्रयाग पहुँची।

प्रयाग

विस्तृत तट की बालू पर पसरे जनसमूह की अलग-अलग वेशभूषा का पता दूर से ही लग रहा था। स्त्रियों के पहनावे में किसी ने घाघरा-कंचुकी पहनी थी तो किसी ने साड़ी। कुछ ने मुख लम्बे घूँघट में छिपा रखे थे। किन्तु पुरुषों की भाँति लाँग लगा कर पहनी हुई साड़ियों में मराठी महिलाओं को देखना कामरूपवासियों के लिए एकदम नया अनुभव था। उन महिलाओं ने माथे पर सिन्दूर का बड़ा-सा बिन्दु लगा रखा था। उनके हाथों में हरे रंग की चूड़ियाँ शोभायमान थीं। उनकी नाक के बाँयें नथुने में लटकती बड़ी-सी नथ की ओट में उनके ओंठ आधे छिपे थे। दक्षिण भारत की महिलाओं ने बाँये के बदले दाँये नथुने में नथनियाँ पहनी थीं। उनके जूड़ों में फूलों की गूँथी वेणियाँ झूल रही थीं। उनके चेहरे हल्दी के हल्के आलेपन से दिप-दिप कर रहे थे।

यह परिवेश सुदूर पूर्व से आये आगन्तुकों के लिए एकदम अनूठा था। यह दृश्य देखकर शंकरदेव के मुँह से अनायास निकल पड़ा, "यह है भारत की अनेकता में एकता। पहनावा अलग, भाषाएँ अलग, खान-पान अलग, रहन-सहन अलग, लोक-परम्पराएँ अलग। कोई एक दूसरे को पहचानता तक नहीं। फिर भी अपने-अपने गाँवों से इतनी दूर तक की दुर्गम यात्रा कर सब यहाँ कुम्भ मेले में एकत्र हुए हैं।"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यात्रियों के ठहरने के लिए लकड़ी-बाँस-फूस की छोटी-छोटी झोपड़ियाँ बनी थीं। स्थान-स्थान पर नगर के श्रेष्ठियों द्वारा संचालित अन्नक्षेत्रों पर साधु-संन्यासी और बाहर से आये आगन्तुक भोजन ग्रहण कर रहे थे। कुम्भ में विभिन्न स्थानों से आये दशनामी, जूना, नागा आदि विभिन्न अखाड़ों के साधु-संन्यासियों के जत्थों के साथ मण्डलेश्वर, महामण्डलेश्वर, मठाधीश, शंकराचार्य, सन्त-महन्तों के प्रवचन के लिए मध्य में एक ऊँचा मंच बना था। उस दृश्य को देखकर शंकरदेव अपने देश भारतवर्ष की महिमा का अनुभव कर मन ही मन पुलकित होकर साथियों से बोले, "इसी कुम्भ मेले पर कामरूप नरेश भास्कर वर्मन दल-बल सहित अपने मित्र सम्राट हर्षवर्धन के निमन्त्रण पर प्रयाग पधारे थे। यहीं उनकी चीनी यात्री ह्वेनसांग से भेंट हुई। भास्कर वर्मन के आग्रह पर ही ह्वेनसांग कामरूप आये। उनका लिखा हुआ यात्रा-वृत्तान्त आज एक ऐतिहासिक धरोहर है। अब चलें, पहले हम संगम में स्नान कर आते हैं।"

गंगा, यमुना और अदृश्य सरस्वती के संगम पर उन्होंने देखा कि गंगा की उज्ज्वल धारा और यमुना की नीलाभ धारा दो ओर से आकर आपस में गलबाँही कर रही हैं, जैसे कब की बिछड़ी दो बहनें आपस में मिली हों। संगम में स्नान कर शंकरदेव ने उच्च स्वर में गायन आरम्भ किया—

ब्राह्मीनपुत्रीत्रिपथास्त्रिवेणी—
समागमेनाक्षतयोगमात्रान् ।
यत्राप्लुतान् ब्रह्मपदं नयन्ति
स तीर्थराजो जयति प्रयागः ।।
श्यामो बटोऽस्यगुणं वृणोति,
स्वच्छायया श्यामलया जनानाम् ।
श्यामः श्रमं कृन्तति यत्र द्रष्टः
स तीर्थराजो जयति प्रयागः ।।

उनके मुख से सुमधुर सस्वर पठन सुन सभी मुग्ध हो गये। शंकरदेव अपने सहयात्रियों को इसका अर्थ समझाते हुए बोले, "यह पाठ पद्म पुराण के उत्तर खण्ड का है। इसमें कहा गया है, सरस्वती, यमुना और गंगा के संगम में स्नान मात्र से ब्रह्मपद (मोक्ष) की प्राप्ति होती है। ऐसे संगम स्थल प्रयागराज की जय हो। जहाँ श्यामल अक्षयवट अपनी छाया मात्र से जन-जन को दिव्य सत्त्वगुण प्रदान करता है, जहाँ भगवान् श्यामसुन्दर अर्थात् श्रीकृष्ण अपने दर्शन मात्र से पाप-ताप काट डालते हैं, उस तीर्थराज प्रयाग की जय हो।"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इतना कहकर शंकरदेव पुनः बोले, "अब हम उस अक्षयवट का दर्शन करने चलेंगे, जहाँ मार्कण्डेय ऋषि को आनन्दकन्द श्रीकृष्ण ने अपने बाल रूप में दर्शन दिये थे।" तट से अक्षयवट तक जाने के लिए विशेष दूरी नहीं तय करनी पड़ी। अक्षयवट के दर्शन कर शंकरदेव भावों में खो गये। उन्होंने अनुभव किया, श्रीकृष्ण अथाह जलराशि में तैरते कमल के पत्ते पर अपने पाँव का अँगूठा मुँह में लिये आज भी वैसे ही लेटे हैं, जैसे उन्होंने मार्कण्डेय मुनि को दर्शन दिये थे।

अक्षयवट के पास स्थित पातालपुरी मन्दिर में विराजमान धर्मराज, अन्नपूर्णा, विष्णु, सत्यनारायण, महादेव, गंगा, यमुना, नृसिंह, राम-लक्ष्मण, हनुमान, बिन्दुमाधव, अनन्तमाधव, दत्तात्रेय, सूर्य, वरुण, पवन, अग्नि, कुबेर आदि अनेक देव विग्रहों के साथ मार्कण्डेय, वेदव्यास, अनसूया, गोरखनाथ, सिद्धनाथ, दुर्वासा आदि ऋषि-मुनियों की मूर्तियाँ भी स्थापित थीं।

शंकरदेव अपना सही परिचय किसी को जल्दी से नहीं देते थे। वे लोकैष्णा और प्रचार से अपने को बचाकर यात्रा कर रहे थे। वहाँ ठहरने के लिए उन्हें गंगा तट पर ही एक पर्णकुटी मिल गयी। दिन भर के थकेमांदे चारों जन रात्रि-विश्राम करने लगे। एक पहर भी नहीं बीता होगा कि एकाएक कोलाहल सुनकर सभी जाग उठे। कुटिया के बाहर आये। जगह-जगह सैनिक एक हाथ में मशाल और दूसरे में तलवार लिये किसी को तलाश रहे थे। उड़ती भनक उनके कानों तक भी आयी कि कुछ उपद्रवी यवन साधुवेश धरकर मेले में घूम रहे थे। आज अवसर देखकर उन लोगों ने यात्रियों पर जानलेवा हमले किये, जिनमें चार-पाँच लोग घटना-स्थल पर ही मारे गये। बीस-पच्चीस चिकित्साधीन हैं। हमलावर अपना कारनामा कर लोगों की भीड़ में विलीन हो गये। उन्हें ही खोजने में सैनिक लगे थे। इस घटना से सबका मन अत्यन्त दुःखी हुआ। सब फिर जाकर अपनी कुटी में सो गये।

कुम्भपर्व पर प्रयाग में एक मास तक उनका कल्पवास चला। संगम में स्नान करना उनका नित्य-नियम बन गया। कुम्भ पर्व पर अनेक सन्त-महात्माओं के प्रवचन सुनने को मिले। विद्वत जनों के साथ शास्त्र-चर्चा के दौरान शंकरदेव को दक्षिण भारत से आये कुछ विद्वान भी मिले। उनके सम्मुख उन्होंने दक्षिण के तीर्थों, किष्किन्धा, कांचीपुरम्, श्रीरंगम्, रामेश्वरम्, कन्याकुमारी आदि जाने की अपनी इच्छा प्रकट कर मार्गदर्शन माँगा। उन्होंने उन्हें उन तीर्थों के अतिरिक्त भी अन्य तीर्थ-स्थलों की जानकारी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

देते हुए वहाँ के रहन-सहन, खानपान आदि के बारे में विस्तृत जानकारियाँ दीं। इसी बीच समय निकालकर यात्रीगण आसपास के भारद्वाज आश्रम, प्रतिष्ठानपुर आदि अनेक तीर्थ-स्थलों के दर्शन कर आये।

चित्रकूट

अब उनका अगला गन्तव्य चित्रकूट था। कुछ दिनों की पैदल यात्रा के पश्चात् सब चित्रकूट पहुँचे। वहाँ शंकरदेव ने अपने सहयात्रियों को बताया, "पुराणों में वर्णित है कि चित्रकूट प्राचीनकाल से ऋषि-मुनियों की तपोभूमि रही है। यहाँ तपस्वी मुनियों का बड़ा समाज रहता था जिसके संचालक महर्षि अत्रि थे। श्रीराम, सीता और लक्ष्मण के साथ अपने वनवास के समय यहाँ दीर्घकाल तक रहे। यह स्थल श्रीराम की लीलाभूमि है। यहीं भरत अपने भ्राता से मिलने अयोध्या से चलकर आये और उनकी पादुका ले जाकर उनके लौटने तक चौदह बर्षों तक नन्दिग्राम में रहे। यहीं अत्रि-पत्नी महाविदुषी अनसूया ने राम-वनवास के समय सीता को नारी-धर्म की शिक्षा दी।

चित्रकूट में कुछ दिनों तक रहकर उन्होंने जानकीकुण्ड, सीता रसोई, स्फटिकशिला, अत्रि-आश्रम आदि देखकर गुप्त गोदावरी पहुँचे। वह अँधेरी गुफा के भीतर थी। गुफा के बाहर बैठा एक वनवासी यात्रियों को मशाल जलाकर देने के बदले उनसे कुछ प्राप्त कर अपनी जीविका चलाता था। सर्वजय ने उससे एक जलती मशाल लेकर उसे भी गुफा में साथ चलने की विनती की। उसने साथ चलते हुए बताया कि गुफा से निकली जलधारा बाहर आकर कुण्ड में गिरकर लोप हो जाती है। इसीलिए इसे गुप्त गोदावरी कहते हैं। भीतर बहती धारा ज्यादा गहरी नहीं थी। गुफा में और अन्दर जाने पर सीताकुण्ड मिला, जिसमें झरने का जल सतत गिर रहा था। आगे भरतकूप और रामशय्या के दर्शन किये। वहाँ से लौटकर उन्होंने कुछ दिन चित्रकूट में व्यतीत किये।

अमरकण्टक

नर्मदा के उद्‌गम स्थल वनों से आच्छादित अमरकण्टक के पथ पर यात्रीदल आगे बढ़ रहा था। कभी कोई नदी मिल जाती तो थोड़ी दूरी नाव से पार करते, फिर पैदल अपने गन्तव्य की ओर चल पड़ते। आगे अमरकण्टक पर्वत की चढ़ाई शुरू हो गयी। टेढ़ी-मेढ़ी पगडण्डी से ऊपर पहुँचने में एक प्रहर लग गया। दुर्गम-यात्रा कर जब वे लक्ष्य तक पहुँचे, तब तक सांयकाल हो गया। वहाँ वास कर रहे किसी साधु की कुटिया में सबको रात्रि-विश्राम के लिए आसरा मिल गया।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दूसरे दिन छोटा-सा मैदान पार कर थोड़ा उतरने पर कपिलधारा-प्रपात आया। नर्मदा तो जैसे प्रपातों की जननी है। कपिलधारा इसका पहला और सबसे ऊँचा प्रपात है। ऊपर से चट्टानों के बीच भागती नर्मदा की तेज धारा को देखकर सब पुलकित हुए। वहाँ के नैसर्गिक सौन्दर्य ने सबके मन को मोहा। वहाँ से सब नर्मदा-कुण्ड गये। नर्मदा के उद्गम पर पहुँचकर शंकरदेव भावविभोर हो गये। उन्होंने साथियों को नर्मदा का माहात्म्य बताते हुए कहा—

पुण्या कनखले गङ्गा कुरुक्षेत्रे सरस्वती ।
ग्रामे वा यदि वारण्ये पुण्या सर्वत्र नर्मदा ।।
त्रिभिः सारस्वतं पुण्यं सप्ताहेन तु यामुनम् ।
सद्यः पुनाति गाङ्गेयं दर्शनादेव नार्मदम् ।।

शंकरदेव ने श्लोकों का अर्थ समझाते हुए कहा, "स्कन्द पुराण में कहा गया कि गंगा हरिद्वार में तथा सरस्वती कुरुक्षेत्र में अत्यन्त पुण्यमयी कही गयी हैं। किन्तु नर्मदा तो, चाहे गाँव के बगल से बह रही हो या वनों के बीच, सर्वत्र पुण्यमयी ही है। यमुना का जल एक सप्ताह में, सरस्वती का जल तीन दिनों में तथा गंगा का जल तुरन्त छूते-न-छूते पवित्र कर देता है, परन्तु नर्मदा का जल तो दूर से भी दर्शन मात्र करने से ही पवित्र कर देता है।

उन्होंने आगे बताया, "यह अमरकण्टक उत्तर और दक्षिण भारत के ठीक मध्य में स्थित है। इसी अमरकण्टक से शोणभद्र नद का भी उद्गम हुआ है। हमारे ब्रह्मपुत्र की तरह नर्मदा भी पश्चिमवाहिनी है। नर्मदा आगे जाकर सिन्धुसागर में जा मिलती है, जबकि शोणभद्र नद उत्तराभिमुख हो, पूर्व की ओर बहता गंगा में जा मिलता है। अब चलो, यहाँ नर्मदा में स्नान करते हैं।"

परमानन्द ने पूछा, "गुरुदेव ! अपनी उत्तराखण्ड यात्रा में हम क्या यमुना और गंगा के उद्गम स्थलों पर भी चलेंगे ?"

"अभी कुछ नहीं कहा जा सकता। सुना है, वहाँ तक पहुँचना अत्यन्त दुर्गम है। किन्तु यहाँ आना उन पथों की तुलना में सहज है। अब हम शोणभद्र के उद्गम-स्थल और मार्कण्डेय आश्रम होते हुए विदिशा की ओर पैदल जायेंगे, क्योंकि नर्मदा में नौकायन करना बड़ा दुष्कर जान पड़ता है। इसकी धारा में जगह-जगह चट्टानें हैं। इसलिए इसके उत्तरी किनारे से आगे चलेंगे। वैसे भी नर्मदा-परिक्रमा का बड़ा माहात्म्य बताया गया है। हमें रास्ते में मिले साधु-संन्यासी और गृहस्थ इसी परिभ्रमण पर निकले हुए हैं। यह परिक्रमा करना तो हमारे लिए सम्भव नहीं, इसके किनारे कुछ दूर की यात्रा

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ही सही।''

पहाड़ों की भूलभुलैया में नर्मदा नीचे उतर रही थी। इसकी सहयात्री बनी यात्रा भी सतत साथ चल रही थी। रास्ते में मिली स्त्रियों के शरीर विभिन्न गुदनों से गुदे थे। रात को आगे आये एक गाँव में सब रुक गये। चौपाल पर मशालों के प्रकाश में पुरुष 'सैला' लोकनृत्य कर रहे थे। उनके बाद स्त्रियों ने 'रीना' नाचा। फिर दोनों ने मिलकर 'करमा' लोकनृत्य किया। एक ही स्थान पर शंकरदेव को तीन लोकनृत्य देखने को मिले।

यात्रा में युवा शंकरदेव अपने स्वास्थ्य के साथ साथियों का भी पूरा ध्यान रखते थे। किसी के बीमार पड़ जाने पर यात्रा में अनेक कष्टों का सामना करना पड़ता। योग विद्या के साथ-साथ वे आयुर्वेद के भी ज्ञाता थे। इसलिए कुछ आयुर्वेदिक औषधियाँ भी उन्होंने अपने साथ ले रखी थीं। वे सबको साथ बैठाकर नित्य आसन-प्राणायाम कराते। खान-पान का समुचित ख्याल रखने के लिए उन्हें सजग करते रहते। सम्भव होता वहाँ तक गरम ताजा बना भात ही खाते। अन्यथा अपने पास रखा चूड़ा-गुड़ या फल खाकर काम चला लेते।

विदिशा

नर्मदा का किनारा छोड़ अब सब उत्तर की ओर बढ़ चले। कुछ दिनों की पैदल यात्रा कर सभी बेतवा और वेस नदियों के बीच बसी विदिशा नगरी जा पहुँचे। संयोग अच्छा रहा कि जिस गृहस्थ के घर आसरा मिला, वह विद्वान और संस्कृत का ज्ञाता भी था। भोजनोपरान्त गृहस्थ बताने लगा, ''विदिशा कभी शुंग वंशियों की राजधानी थी। आज से करीब एक हजार वर्ष पूर्व शुंग, नाग और सातवाहन वंशियों के राजत्वकाल में यह एक बड़ी व्यापारिक नगरी थी। यहाँ से सुदूर विदेशों तक व्यवसाय होता था। इसका इतिहास बहुत लम्बा है, यह सब बताने लगा तो देरी हो जायेगी। चलिये, अब आप लोगों को यहाँ के विष्णु मन्दिर के दर्शन करा लाता हूँ।''

विष्णु मन्दिर के बाहर खड़े गरुड़ स्तम्भ को दिखाकर गृहस्थ ने कहा, ''जानते हैं, इसे यूनान निवासी हेलियोदोर ने स्थापित कराया था। वह भी आक्रमणकारी सिकन्दर के साथ भारत आया था। वह तक्षशिला का क्षत्रप था। हेलियोदोर धीरे-धीरे भारत के धर्म-संस्कृति की ओर आकर्षित होकर वैष्णव बन गया। उसकी भगवान् विष्णु में असीम भक्ति थी।''

गृहस्थ ने आगे कहा, ''यहाँ से पाँच-छह कोस की दूरी पर उदयगिरि है। वहाँ के गुफा मन्दिरों को देखने अवश्य जाइयेगा। मैं अपनी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वृद्धावस्था के कारण आप लोगों के साथ चलने में असमर्थ हूँ, अन्यथा मैं साथ चलकर सब दिखा लाता।''

शंकरदेव ने कहा, ''हे महाभाग ! इतना ही क्या कम है, जो आपने हमारे लिए किया। घर पर हमें आश्रय दिया; भोजन कराया। यहाँ के दर्शनीय स्थलों के वारे में न केवल बताया अपितु साथ चलकर दिखा भी लाये। हम आपका उपकार कभी नहीं भूलेंगे।'' इतना कहकर सभी उदयगिरि की ओर चल पड़े।

उदयगिरि

उदयगिरि की गुफाएँ देख सभी अभिभूत हुए। एक गुफा में शेषशायी विष्णु के दर्शन हुए। दूसरी गुफा के बाहर द्वारपाल की मूर्ति उत्कीर्ण थी। गुफा में शिवलिंग था। एक अन्य गुफा में वाराह भगवान् की विशाल मूर्ति उत्कीर्ण थी। भगवान् वाराह के कन्धे पर भूदेवी बैठी थी और भगवान् अपनी थूथन से उसे पुचकार रहे थे। इस शिल्प को देखकर शंकरदेव ने साथियों को बताया, ''ब्रह्मा के वरदान से हिरण्याक्ष ने भूमि को अपने अधिकार में कर लिया था। विष्णु ने वाराह का अवतार लेकर उसे मारकर पृथ्वी का उद्धार किया। उस समय भूमि खिन्नमना थी। दोनों के संयोग से नरकासुर का जन्म हुआ। वही नरकासुर कालान्तर में हमारे कामरूप का राजा बना जिसकी राजधानी प्राग्ज्योतिषपुर थी, यह कथा तुम सभी भली भाँति जानते हो।''

वहाँ स्थित अन्य गुफाओं का शिल्प देखने के बाद वे विदिशा लौट आये और अपने परिचित गृहस्थ से भेंट कर उसे दक्षिण भारत जाने की अपनी मंशा बतायी। उसने कहा, ''बेतवा नदी उत्तर से दक्षिण की ओर बहती है और आपका गन्तव्य भी दक्षिण भारत ही है। आप लोग नाव से इसके आखिरी छोर तक चले जाइये। वहाँ से कुछ कोस चलने पर नर्मदा नदी मिलेगी। उसे पार कर आप दक्षिण की ओर प्रयाण कर सकते हैं। यहाँ बेतवा के घाट पर आपके साथ चलकर मैं नाव की व्यवस्था करवा देता हूँ।''

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तुंगभद्रा के किनारे

कुछ दिनों का नौकायन कर सब बेतवा नदी के दक्षिणी छोर पर पहुँचे। वहाँ से और कुछ कोस दक्षिण की ओर चलकर नर्मदा-तट पर पहुँचे। नाव से नर्मदा पार कर किष्किन्धा की ओर प्रस्थान किया। इस क्षेत्र की भाषा-संस्कृति थोड़ी भिन्न थी। अब उन्हें भाषा की समस्या सताने लगी। खान-पान भी बदल चुका था। आगे रास्ते में आयी कृष्णा नदी को नाव द्वारा पारकर पैदल यात्रा करते हुए तुंगभद्रा नदी किनारे यात्रीदल पहुँचा।

किष्किन्धा

तुंगभद्रा के सौन्दर्य ने सबका मन मोहा। नदी के तीव्र प्रवाह में जगह-जगह शिलाएँ थीं। नदी के उस पार किष्किन्धा थी। उसे पार करना सरल नहीं था। नदी में नाव के बदले चमड़े से मढ़ी टोकरानुमी गोल डोंगियाँ थीं। ऐसी ही एक डोंगी में सब बैठ गये। केवट डोंगी को चट्टानों से बचाता हुआ चप्पू खेता नदी में आगे बढ़ रहा था। डोंगी में बैठे यात्रियों को हिचकोलों के साथ एक सिहरन-सी हो रही थी।

तट पर पहुँचकर केवट ने हाथ के संकेत से यात्रीदल को आगे जाने की दिशा बतायी जैसे वह पहले से ही जानता था कि उन्हें कहाँ जाना है। पाव कोस जाने पर अनागुंदी ग्राम आया। वही प्राचीन किष्किन्धा थी। सब एक पेड़ तले सुस्ताने बैठे। सर्वजय ने खाने के लिए झोली से गुड़-चिवड़ा निकाला। नजदीक खड़े एक गृहस्थ ने उन्हें नवागन्तुक जानकर अपने घर चलकर भोजन करने की बात संकेत से समझायी। पास में ही उसका घर था। भोजन के लिए थोड़ी देर प्रतीक्षा करनी पड़ी। इस बीच गृहस्थ के बेटे से वे हिलमिल गये। वह पास के ही किसी गुरुकुल का विद्यार्थी था। अब तक गृहिणी ने भोजन बनाकर केले के पत्तों पर परोस दिया। भात के साथ दी गयी दाल और सब्जी का स्वाद उन्हें अनोखा लगा। दाल-शाक में तेज मिर्चा और खट्टापन था। भोजन के पश्चात् दी गयी छाछ पीकर जिह्वा को चैन मिला। अनजान जगह ऐसा अपनापन देख सब अभिभूत हुए।

विरूपाक्ष-मन्दिर में

गृहस्थ के बेटे ने बताया कि ठहरने की व्यवस्था चार-पाँच कोस दूर स्थित विरूपाक्ष मन्दिर में हो सकती है। चारों ओर फैली पहाड़ियों के बीच रास्ता भी पथरीला था। मन्दिर तक पहुँचते-पहुँचते दिन का चौथा प्रहर आ गया। सामने

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कोई तीस-चालीस हाथ ऊँचा पत्थरों से बना भव्य द्वार खड़ा था, जिस पर नाना पौराणिक कथाओं को शिल्प-रूप में उत्कीर्ण किया हुआ था। ऐसा भव्य द्वार उनमें से किसी ने भी आज तक नहीं देखा था। इसे स्थानीय भाषा में गोपुर कहा जाता था। मन्दिर में भीतर प्रवेश करते ही वहाँ का स्थापत्य देखकर जैसे उनकी थकान उतर गयी।

गोपुर के आगे बड़े-बड़े दो आँगन थे जिसके चारों ओर यात्रियों के ठहरने के कक्ष बने थे। आँगन के बीच एक जलधारा बह रही थी। वहाँ स्थित छोटे गोपुर से भीतर जाने पर एक बड़ा आँगन और मिला। इसके चारों ओर बरामदे और भवन बने थे। जगह-जगह बने मण्डपों में विभिन्न देवी-देवताओं की मूर्तियाँ स्थापित थीं। आँगन के मध्य में सुविस्तृत सभामण्डप और उससे लगा हुआ विरूपाक्ष मन्दिर था। गर्भगृह में शिवलिंग स्थापित था। वहाँ के पुजारी और व्यवस्थापक राघवाचार्य ने कामरूपवासियों का परिचय प्राप्त कर उनके ठहरने के लिए एक बड़ा कक्ष दे दिया।

अपना काम निपटा कर पुजारी राघवाचार्य उनके पास आ बैठे। वे संस्कृत के ज्ञाता थे। शंकरदेव से कामरूप के बारे में विभिन्न बातें जानने के बाद उन्होंने अपने क्षेत्र के बारे में बताते हुए कहा, "त्रेतायुग में यह क्षेत्र दण्डकारण्य का भाग था। इस पूरे क्षेत्र को कर्नाटक कहा जाता है। इस वक्त आप प्राचीन किष्किन्धा-क्षेत्र में बैठे हैं। यहीं आसपास रामायण में वर्णित ऋष्यमूक पर्वत, माल्यवान पर्वत, स्फटिक-शिला, मतंग ऋषि आश्रम, गंधमादन पर्वत, पम्पा सरोवर आदि हैं। यही क्षेत्र श्रीहनुमान की क्रीड़ा-भूमि रहा।

"कालान्तर में इस क्षेत्र पर सम्राट अशोक का शासन हुआ। उसके दादा चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपने जीवन के अन्तिम दिन यहाँ से दूर स्थित श्रवणबेलगोला की चन्द्रगिरि पर विताये थे। फिर यहाँ सातवाहनों का राज्य हुआ। यहाँ गंग, शालवाहन, कदम्ब, चालुक्य, चोल आदि वंशजों का राज्य रहा है। आज से सौ वर्ष पहले चौदहवीं शताब्दी में अलाउद्दीन खिलजी और मलिक काफूर ने यहाँ के विजयनगर राज्य को लूट-खसोट कर तहस-नहस कर दिया।"

राघवाचार्य ने आगे कहा, "यह जानना आपको अरोचक लगेगा कि मलिक काफूर मूलतः गुजरात का रहनेवाला हिन्दू सोलंकी क्षत्रिय था। उसे अत्यन्त पराक्रमी जानकर गुर्जर-नरेश कर्णदेव ने अपने रनिवास का संरक्षण सौंपा था परन्तु नपुंसक बनाकर। अपनी नपुंसकता से चिढ़कर वह अलाउद्दीन से जा मिला और मुसलमान बन गया और मन्दिरों को नष्ट-भ्रष्ट कर हिन्दू धर्म पर अपनी खीझ निकाली। किन्तु आततायी जो भी करे, संस्कृति

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अपना कार्य करती है। हमारी सांस्कृतिक परम्परा इतनी सुदृढ़ है जिसे कोई आततायी आज तक नष्ट नहीं कर सका। इसी भारतीय परम्परा को शंकर, रामानुज, मध्वाचार्य, वासव जैसे सन्तों और कर्नाटक संगीत के जनक समझे जानेवाले सुविख्यात संगीतज्ञ पुरन्दरदास ने समृद्ध कर सजाया-सँवारा है। नृपतुंग, रण्ण, हरिहर, कुमारव्यास, तिरुमलराय आदि अनेक रचनाकारों का यहाँ के साहित्य में प्रशंसनीय योगदान रहा है।''

शंकरदेव ने राघवाचार्य से पूछा, ''कर्नाटक की सन्त-परम्परा के बारे में बताएँगे तो हमारा ज्ञान-वर्धन होगा।''

''आपके जिज्ञासु स्वभाव को समझ सकता हूँ। आप केवल धार्मिक भावना से यात्रा पर नहीं निकले हैं, यह बात आपसे पहली भेंट में ही समझ गया था। यों तो कर्नाटक ही क्यों, पूरा भारतवर्ष धर्म-प्रधान है। किन्तु पिछले तीन सौ वर्ष से तो पूरे देश में जैसे भक्ति-धारा बह रही है। उसी कालखण्ड में यहाँ सन्त-कवि श्रीअल्लम प्रभु हुए। सामाजिक समरसता तथा ऐक्य-भाव निर्माण करने के उनके द्वारा किये गये प्रयास आज भी प्रशंसनीय और अनुकरणीय हैं। उनका मानना था कि सम्पूर्ण प्रकृति में सुन्दरता तथा सामंजस्य के दर्शन से ही आनन्द की अनुभूति होती है। ऊपर से भिन्न तथा दूर दिखनेवाली वस्तुएँ भी जब निकट आती हैं तो उनके सामंजस्य से सुख की सृष्टि होती है। उन्होंने अपने कन्नड़ पद में जो कहा है, उसका भावार्थ है, आम के वृक्ष और कोयल का आपसी सम्बन्ध कैसे हो गया ? आँवला और समुद्री नमक कितनी दूर हैं, परन्तु जब दोनों मिल जाते हैं तो रुचिकर अचार बन जाता है। इसी प्रकार गुरु कहीं कन्दरा में बैठा होता है तथा शिष्य कहीं और; किन्तु जब दोनों का सामंजस्य होता तो कैसा अटूट सम्बन्ध बन जाता है।

''अल्लम प्रभु लिंगायत थे। उनका मानना था कि ईश्वर एक है तथा सभी के भीतर विद्यमान है। निर्विकार-निराकार ईश्वर सर्वत्र है। वे अपने पद में कहते हैं, शून्यलिंग मूर्ति न साकार है न निराकार, उसका न आदि है और न अन्त। वह न यह है और न वह, न सुख है और न दुःख, न पुण्य है और न पाप, न प्रभु है और न दास, न कर्म है और न कारण, न धर्म है और न कर्म, न पूज्य है और न पूजक। वह तो इन सबसे परे है। सन्त अल्लम प्रभु की मान्यता है कि सब समान हैं, किसी भी प्रकार के भेदभाव को वे नहीं स्वीकार करते।''

राघवाचार्य ने अपनी बात जारी रखी, ''यह समय मेरे अवकाश का है। सन्ध्या को मन्दिर खुलेगा, तब तक मैं आपको अल्लम प्रभु के ही समकालीन हुए सन्त बसवेश्वर के बारे में बताता हूँ। वे धार्मिक से ज्यादा

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

समाजसुधारक थे। उन्होंने सामाजिक समरसता के लिए अभिनन्दनीय कार्य किये। राजा बिज्जल के यहाँ मन्त्री रहते हुए भी उन्होंने 'अनुभव मण्डप' नामक एक लोकतान्त्रिक व्यवस्था का संघ खड़ा किया। उसमें किसी भी जाति के लोगों का प्रवेश वर्जित नहीं था। महिलाएँ भी इसकी सदस्य हो सकती थीं। किन्तु सदस्यों का चरित्रवान होना आवश्यक था। 'अनुभव मण्डप' का ऐसा नियम था कि व्यक्ति को जितना आवश्यक है उतना ही धन रखे, शेष धन समाज के काम में लगा दे। उस मण्डप की सदस्या अक्कमहादेवी नामक एक योग्य कवयित्री भी थी। उसके कुछ प्रसिद्ध सदस्यों में माचिदेव (धोबी), चान्दय्या (रस्सी बाँटनेवाला), मुड्डय्या (कृषक), रेम्मावी (बुनकर), कन्नय्या (तेली), बसप्पा (बढ़ई), कक्कय्या (रंगरेज), हरलय्या (चर्मकार) भी थे। इस प्रकार भक्त बसवेश्वर ने शारीरिक श्रम की महत्ता तथा जीवन निर्वाह हेतु विविध प्रकार के व्यवसाय करने पर भी जोर दिया। उनकी दृष्टि से 'कायकवै कैलास' अर्थात् शारीरिक श्रम ही कैलास है, वही ईश्वर है। कर्म से कोई नीच या श्रेष्ठ नहीं होता; सभी कर्म ईश्वर के तुल्य हैं। उन्होंने जाति-पाँति के भेदभाव को समाप्त कर महिलाओं समेत सभी को सम्मान दिया। अनुभव मण्डप के संस्कारों का ही असर था कि मधुवरसा ने ब्राह्मण होकर भी अपनी लड़की का विवाह चमार हरलय्या के लड़के से कर दिया। उस समय ही क्यों, आज भी जो जाति व्यवस्था है, उसमें यह बहुत साहसपूर्ण और आश्चर्यजनक घटना नहीं तो और क्या थी !

"सन्त बसवेश्वर एक पद में कहते हैं, शूद्र-बस्ती और देवालय के लिए भूमि एक ही होती है। उस भूमि में क्या अन्तर है ? शौच तथा आचमन हेतु जल तो एक ही है। उसी प्रकार सभी मनुष्य समान हैं। वे अन्य पद में कहते हैं, जाति को पकड़कर अपवित्रता को ढूँढ़ रहे हो, प्रकाश को पकड़कर अन्धकार ढूँढ़ रहे हो। अरे पागल मनुष्य ! यह सब क्यों चाहिये ? जाति में ऐसा क्या श्रेष्ठ है ?

"बसवेश्वर के पदों में ऐसे न जाने कितने विद्रोहात्मक सन्देश हैं, सबके बारे में बात करेंगे तो महीने भर में भी समाप्त नहीं होंगी। अब, मुझे चलना चाहिये। मन्दिर खुलने का समय हो गया।" इतना कहकर राघवाचार्य आसन से उठे।

शंकरदेव उनकी बातें बड़े ध्यान से सुन रहे थे। राघवाचार्य के अचानक उठ जाने से वे चौंके। उन्होंने कहा, "श्रीमान् ! एक क्षण आपका और लूँगा। हम कन्नड़ भाषा नहीं समझते। महाभाग ! आप तो संस्कृत के

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ज्ञाता हैं। किन्तु आगे हम वार्तालाप किस भाँति कर पायेंगे ?''

उन्होंने तत्काल उनकी समस्या का निदान करते हुए कहा, ''यहाँ के दर्शनीय स्थलों को देखने के लिए मन्दिर में चलने वाली संस्कृत पाठशाला के एक विद्यार्थी रामशंकर से आपका परिचय करा देता हूँ। आगे भी यात्रा में आपको जगह-जगह संस्कृत के जानकार मिलेंगे। आप चिन्तित न हों।''

दूसरे दिन रामशंकर को साथ लेकर सब उमंगपूर्वक आसपास के स्थलों को देखने निकल पड़े। विरूपाक्ष मन्दिर के पिछले दरवाजे से निकलने पर तुंगभद्रा का प्रवाह दिखायी दिया। शंकरदेव का मन नदी में नहाने का हुआ। उनके साथ सब ने दोबारा स्नान किया। स्नान से ज्यादा वह जल-कल्लोल ही था। वहाँ से आगे जाने पर ऊँची भूमि पर बने एक मण्डप में एक ही शिला-खण्ड से बनी गणेश की मूर्ति दिखी। शंकरदेव ने अनुमान लगाया कि उसकी उँचाई कोई आठ हाथ रही होगी। उसका शिल्प भी अद्भुत था।

आगे एक पहाड़ी मिली। ऐसा लगा जैसे बड़ी-बड़ी चट्टानों को उठाकर एक के ऊपर एक धर दिया गया हो। वहाँ बनी एक गुफा में प्रवेश किया। भीतर से वह विस्तृत थी। वहाँ एक वेदी को दिखाकर विद्यार्थी ने बताया कि यह रामशिला है, इसी पर प्रभु राम शयन करते थे। ऐसी गुफाएँ उन्हें आगे भी मिलीं। दरअसल ये गुफाएँ दो बड़ी चट्टानों के आपस में मिलने से बनी थीं। उन्हें बताया गया कि हनुमान तथा वानर सेना ने प्रभु राम के निवास के लिए चट्टानों को इस प्रकार रखकर ये गुफाएँ बनायी थीं।

रामशंकर ने बताया, ''यह हम्पी क्षेत्र कभी वैभवशाली राज्य विजयनगर की राजधानी हुआ करता था। यहाँ दक्षिण में पनपे मुसलमानी राज्यों के सम्मिलित आक्रमणों से यहाँ का बहुत कुछ तहस-नहस हो गया।''

आगे जाकर श्रीकृष्ण का मन्दिर आया। और आगे जाने पर एक घेरे के भीतर खुले आकाश तले बनी नृसिंह भगवान् की मूर्ति दिखायी दी। नृसिंह के मस्तक पर शेषनाग का फण छत्र की तरह छाया था। शेष के फण तक मूर्ति की दस हाथ ऊँचाई का अनुमान लगाकर सभी अचम्भित और आनन्दित हुए। वह शिल्प भी एक ही शिलाखण्ड से बना था।

रामशंकर का अनुगामी यात्रीदल दो कोस चलकर माल्यवान पर्वत पहुँचा। वह समझाता जा रहा था, ''इसके एक भाग को प्रवर्षणगिरि कहते हैं। श्रीराम-लक्ष्मण ने वर्षा-ऋतु के अपने चार महीने यहीं व्यतीत किये थे।'' आगे ले जाकर सबको 'स्फटिक-शिला-मन्दिर' के दर्शन कराये। आगे आये मन्दिर के गोपुर से प्रवेश कर सभी एक सुविस्तृत आँगन के मध्य बने सभामण्डप तक पहुँचे। पास

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

में ही बने मन्दिर में राम-लक्ष्मण तथा जानकी के दर्शन किये। मन्दिर की बड़ी-बड़ी मूर्तियों के अनुपात में ही सप्तर्षियों की मूर्तियाँ भी थीं। मन्दिर के एक कोने में राम-कचहरी नामक सभामण्डप देखा। आगे रामझरोखा और लक्ष्मणझरोखा देखा। वहाँ से आधा कोस आगे जाकर सुग्रीव का मधुवन देखा।

अब तक शाम ढल गयी थी। सबने मन्दिर में लौटकर रात्रि-विश्राम किया। अगले दिन वे लोग ऋष्यमूक पर्वत देखने निकल पड़े। तुंगभद्रा के पास से होकर रास्ता जाता था। रामशंकर का साथ हो जाने से उन्हें बहुत सुविधा हो गयी। आगे चक्रतीर्थ आया। वहाँ बने मन्दिर में राम, लक्ष्मण और सीता की दीर्घाकार मूर्तियाँ थीं। उसके पास ही मतंग पर्वत था, जहाँ मतंग ऋषि का आश्रम था। उसके आगे गन्धमादन पर्वत के नीचे एक मण्डप मिला, जिसकी भित्ति पर उत्कीर्ण विष्णु की मूर्ति के दर्शन हुए। उसके ऊपर एक गुफा में प्रवेश कर श्रीरंगजी (विष्णु) की शेषशायी प्रतिमा के दर्शन किये। वहाँ से नीचे उतरकर एक कुण्ड मिला जिसके बारे में रामशंकर ने बताया कि यह सीताकुण्ड है।

अगले दिन रामशंकर सबको विरूपाक्ष मन्दिर से दो कोस दूर विजयनगर-नरेश का राजभवन दिखाने ले गया। वहाँ से कुछ दूरी पर स्थित एक मन्दिर में गये। उसकी दीवारों पर राम-चरित्र, कृष्ण-लीलाओं तथा अन्य देवताओं की मूर्तियाँ अंकित थीं।

पम्पासर

तुंगभद्रा नदी पार कर अनागुंदी ग्राम से होते हुए पम्पा सरोवर की ओर यात्रीदल बढ़ रहा था। रास्ते में एक गुफा में श्रीरंगजी और सप्त ऋषियों की मूर्तियों के दर्शन करने को मिले। आगे पम्पा सरोवर आया। शंकरदेव ने साथियों को बताया, "पुराणों में पंच-सरोवर बताये गये हैं। पहला बिन्दु-सरोवर गुर्जर प्रदेश में है। दूसरा नारायण-सरोवर वहाँ से दूर कच्छ की मरुभूमि में बताते हैं। तीसरा यह पम्पा-सरोवर है। चौथा पुष्कर-सरोवर है जो राजपूताना में आयेगा। पांचवाँ मानसरोवर कैलास पर्वत पर है। वहाँ जाने के बारे में हम अपनी बदरीनाथ-यात्रा के समय विचार करेंगे।"

पम्पा सरोवर से आधा कोस दूर ऊँचा अंजनी पर्वत आया। रास्ता विकट होने पर भी साहस कर सब ऊपर चढ़े। वहाँ एक गुफा में माता अंजनी और उनके पुत्र हनुमान की मूर्तियों के दर्शन हुए। इसे ही अंजनी का निवास बताया गया।

रात का अन्धियारा घिरने में ज्यादा देर नहीं थी। इसके पहले सबका मन्दिर लौटना आवश्यक था।

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नये स्थलों की प्रेरणा

रात्रि में बातें करते हुए पुजारी राघवाचार्य ने शंकरदेव को नये स्थलों के बारे में बताते हुए कहा, ''बहुत-से यात्री बेलूर, हालेविद और श्रवणबेलगोला को देखे बिना ही लौट जाते हैं। उन्हें इन स्थानों के बारे में प्रायः पता ही नहीं होता। बेलूर और हालेविद में शिल्प का अकूत खजाना बिखरा पड़ा है। वहाँ विष्णु और शंकर के भव्य मन्दिर हैं। उन मन्दिरों की दीवारों पर उत्कीर्ण शिल्प को देखना मत चूकियेगा। उन्हें देखना आपकी यात्रा की उपलब्धि होगी।

''इसी तरह श्रवणबेलगोला में एक पहाड़ी पर छत-विहीन अहाते में बिना किसी पृष्ठ आधार के खड़ी एक ही शिलाखण्ड से बनी करीब उनचालीस हाथ(58 फुट) ऊँची बादामी रंग की बाहुबली की भव्य प्रतिमा है। यह अपने आप में एक आश्चर्य है।''

शंकरदेव ने पूछा, ''बाहुवली कौन थे ?''

''वाहुवली भगवान ऋषभनाथ के पुत्र थे। उन्होंने अपनी तपस्या से वैराग्य प्राप्त किया था। उन्हें जैन मतावलम्बी ईश्वर के रूप में पूजते हैं।''

''ऋषभनाथ कौन थे ? ये कहीं भागवत में वर्णित विष्णु के अवतार भगवान् ऋषभनाथ तो नहीं ?'' शंकरदेव ने फिर जिज्ञासा की।

''हाँ! ये भागवत में वर्णित ऋषभनाथ ही हैं। अयोध्या नरेश नाभिराज और उनकी पत्नी मेरुदेवी के पुत्र ऋषभनाथ को जैन अपना प्रथम तीर्थंकर मानते हैं। ऋषभनाथ के दो पत्नियाँ थीं– यशस्वती और सुनन्दा। यशस्वती के भरत आदि सौ पुत्र और एक पुत्री ब्राह्मी हुई तथा सुनन्दा से बाहुबली और सुन्दरी नामक कन्या का जन्म हुआ। कालान्तर में ऋषभनाथ को वैराग्य हो गया और अपने बेटे भरत को राज्य और छोटे पुत्र को युवराज पद देकर वन में चले गये। भरत को अयोध्या का और वाहुबली को पौदनपुरी का राज्य मिला। कालान्तर में राज्य को लेकर दोनों भाइयों में ठन गयी। बाहुबली की विजय हुई, परन्तु उसी क्षण वे विरक्त हो गये और अपना राज्य भी भरत को देकर तपस्या करने चले गये। उन्होंने खड़े रहकर घनघोर तप किया। उनके शरीर पर लताएँ चढ़ आयीं। बाहुवली को गोमटेश्वर भी कहते हैं, क्योंकि इस मूर्ति को वनाने वाले चामुण्डराय का दूसरा नाम गोम्मट भी था। गोम्मट के ईश्वर या आराध्य होने के कारण वे गोमटेश्वर कहलाये।''

शंकरदेव ने कहा, ''श्रीमद्भागवत में भगवान् ऋषभनाथ का वर्णन है। उनकी स्तुति करते हुए भागवत में लिखा है–

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नित्यानुभूतनिजलाभनिवृत्ततृष्णः श्रेयस्यतद्रचनया चिरसुप्तबुद्धेः ।
लोकस्य यः करुणयाभयमाप्तलोकमाख्यन्नमो भगवते ऋषभाय तस्मै ।।

(अर्थात् निरन्तर विषय-भोगों की अभिलाषा करने के कारण अपने वास्तविक श्रेय से चिरकाल तक बेसुध हुए लोगों को जिन्होंने करुणावश निर्भय आत्मलोक का उपदेश दिया और जो स्वयं निरन्तर अनुभव होनेवाले आत्मस्वरूप की प्राप्ति से सब प्रकार की तृष्णाओं मुक्त थे, उन भगवान् ऋषभदेव को नमस्कार है।)

यह श्लोक कहने के बाद शंकरदेव ने आगे कहा, ''भागवत में ऋषभनाथ के पुत्र का नाम जड़ भरत वर्णित है। वहाँ बाहुवली के बारे में कोई उल्लेख है, ऐसा मेरे ध्यान में तो नहीं आ रहा।

पुजारी ने कहा, ''इसके पीछे कोई कारण रहा होगा। जैन रामायण और वाल्मीकि रामायण में कथा एक होने के उपरान्त भी थोड़ा अन्तर है। कन्नड़ में अनेक रचनाकारों ने अपनी-अपनी जैन रामायण लिखी हैं। उसी प्रकार ऋषभनाथ कथा में भी अपने मतानुसार किंचित अन्तर हुआ होगा। जो भी हो, वहाँ जाकर आप लोगों को अपार सन्तोष और आनन्द मिलेगा।''

शंकरदेव ने कहा, ''हम आपके आभारी हैं, जो इतनी बातें बतायीं। अन्यथा हम यहाँ से तिरुपति होते हुए कांची की ओर प्रस्थान करने का विचार कर रहे थे। अब आप हमें वहाँ जाने का मार्ग भी बताने की कृपा करें।''

अगली सुबह शंकरदेव अपने साथियों के साथ राघवाचार्य के बताये मार्ग से हालेबिद के लिए निकल पड़े। वहाँ से पथ डेढ़-दो सौ कोस का था। रास्ते में जहाँ कहीं मठ-मन्दिर या किसी गृहस्थ का आसरा मिल जाता, रात्रि-विश्राम कर लेते। विरूपाक्ष से आते समय शंकरदेव ने स्थानीय कन्नड़ के कुछ आवश्यक शब्दों को अर्थ के साथ पुजारी से समझ लिया। रास्ते में मिले लोगों से उन्हीं शब्दों और सांकेतिक भाषा से वे अपना काम चला लेते थे।

हालेबिद

कई दिनों की यात्रा कर यात्रीदल हालेबिद पहुँचा। बस्ती के बीच एक घेरे में करीब ढाई हाथ ऊँचे चबूतरे पर खड़ा होयसलेश्वर मन्दिर दूर से दिखायी दिया। उसके पास बने मठ में उन्हें ठहरने की जगह मिल गयी। उसी मठ में उत्तर भारत का एक साधु कई वर्षों से रह रहा था। उससे शंकरदेव का परिचय हुआ। साधु ने बताया, ''आप लोगों को यहाँ किसी प्रकार का कष्ट नहीं होगा। मैं शिवभक्त हूँ। शिव-मन्दिर में जाकर पूजा करना मेरा नित्य का नियम है। अब धीरे-धीरे यहाँ की भाषा कन्नड़ भी सीख ली है। यहाँ से आठ कोस दूर स्थित वेलूर में विष्णु मन्दिर

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है। वहाँ भी अवश्य जाइयेगा। कहेंगे तो मैं आपके साथ चला चलूँगा।''

साधु से मिलकर सबको अपार सन्तोष और प्रसन्नता हुई। उसके साथ सबने मन्दिर में प्रवेश किया। मन्दिर दो भागों में विभाजित था। दोनों भागों के अपने-अपने कोष्ठ तथा नन्दी मण्डप थे। मण्डपों के आगे बरामदे थे। उत्तरी भाग में सन्तलेश्वर शिवलिंग और दक्षिणी भाग में होयसलेश्वर शिवलिंग स्थापित थे। दोनों शिवलिंगों के सम्मुख अलग-अलग सुसज्जित तथा पाषाण-आभूषणों से अलंकृत नन्दी की विशाल मूर्तियाँ थीं। एक प्राचीर पर उत्कीर्ण सात अश्वों के रथ पर आरूढ़ सूर्य की विशाल प्रतिमा ने सबको आकर्षित किया।

मन्दिर के बाहर की पाषाण-प्राचीरों पर उकेरी हुई शिव-सभा, गोवर्धन उठाते कृष्ण और उनकी बाललीलाओं के साथ ही गजेन्द्र-उद्धार, कर्ण-अर्जुन युद्ध, रावण का कैलास उठाना जैसी पौराणिक कथाओं को देखकर शंकरदेव अभिभूत हो गये। कुछ कलाकृतियाँ मन्दिर की छत को छूती हुई बनी थीं। इन्हें देखने के साथ ही शंकरदेव के मन में विचारों का अवगाहन चल रहा था।

साधु सबको भोजन कराने मठ ले गया। उसके एक कोने में उसने अपनी रसोई बना रखी थी। भोजनोपरान्त साधु ने कहा, ''थोड़ी देर विश्राम करते हैं, फिर केदारेश्वर शैव मन्दिर तथा पार्श्वनाथ जैन मन्दिर चलेंगे।''

विश्राम करते समय शंकरदेव ने साधु से मन्दिर का इतिहास जानने की जिज्ञासा प्रकट की। उसने बताया, ''मन्दिर का निर्माण राजा विष्णुवर्धन होयसलेश्वर के सेनापति केतुमल ने आज से करीब चार सौ बर्ष पहले करवाया था। आज आप जो देख रहे हैं यह तो इतिहास का एक पृष्ठ मात्र है। यहाँ के शिल्प वैभव को मलिक काफ़ूर ने नष्ट कर दिया और यहाँ की अपार सम्पदा को लूटकर अपने साथ ले गया। रही-सही कसर उसके बाद आये आक्रमणकारी मोहम्मद बिन तुगलक ने पूरी कर दी।''

केदारेश्वर मन्दिर में पहुँचकर साधु ने बताया, ''इसे बल्लाल द्वितीय और उसकी रानी अभिनव केतलीदेवी ने बनवाया था।'' मन्दिर एक ऊँचे चवूतरे पर बना था। उसकी प्राचीरों पर भी सैकड़ों देव-मूर्तियाँ उत्कीर्ण थीं।

बाहर आकर साधु ने कहा, ''यहाँ तीन जैन मन्दिर हैं। उनमें विशेष उल्लेखनीय पार्श्वनाथ-मन्दिर है।'' मन्दिर में स्थापित काले पत्थर की करीव दस हाथ ऊँची पार्श्वनाथ की मूर्ति को देखकर शंकरदेव भावविभोर हो गये। भगवान् के घुंघराले केश और उनके मस्तक पर छत्र-छाया किये सात फणों के नाग की कोरनी ने सहज ही उनके मन को मोहा। उन्हें लगा जैसे श्रीकृष्ण के बड़े भैया शेषावतार बलराम उनके सम्मुख उपस्थित हैं। मन्दिर के स्तम्भ किसी दर्पण की तरह चमक रहे थे, कोई चाहे तो उनमें अपना मुखड़ा देख ले।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बेलूर

दूसरे दिन तड़के सभी साधु के साथ बेलूर की यात्रा पर निकल पड़े। आठ कोस की दूरी तय कर वहाँ पहुँचते-पहुँचते शाम हो गयी। उनकी प्रथम दृष्टि मन्दिर के गोपुर पर पड़ी। मन्दिर में प्रवेश करते समय बाह्य शिल्प-स्थापत्य ने पहली दृष्टि में ही सबको आकर्षित किया। किन्तु भगवान् के दर्शन करने की भावना से वे भीतर प्रवेश कर गये। गर्भगृह में अपने आराध्य विष्णु की चतुर्भुजी प्रतिमा के दर्शन कर शंकरदेव आत्मविभोर हो गये। विष्णु के हाथों में शंख, चक्र, गदा और पद्म विभूषित थे। मूर्ति की ऊँचाई करीब पाँच हाथ थी। विष्णु वहाँ चेन्नकेश्वर के नाम से विराजते हैं। उनके बांये लक्ष्मीदेवी और दाहिने भूदेवी की लघु मूर्तियाँ थीं।

मन्दिर का भीतरी शिल्प सौन्दर्य अत्यन्त चित्ताकर्षक था। उन लोगों ने देखा कि विभिन्न आकृतियों और भंगिमाओं में नारियों की मूर्तियाँ बनी थीं।

एक नारी अपनी बांयी हथेली पर बैठे तोते से कदाचित् अपने मन की बातें करने के लिए व्याकुल थी, एक नारी के माथे पर झूलता हीरा स्पष्ट दिख रहा था, एक ओर गन्धर्व-कन्या के हाथों की चूड़ियाँ ऐसा आभास देती-सी लगीं जैसे कि वे अभी खनक उठेंगी। अन्य तरफ एक सद्यस्नाता अपने केशों से पानी झाड़ रही थी, जिसके बालों के किनारों से चिपकी जल-बूँदों को देखकर शंकरदेव के मुख से अनायास निकल पड़ा, "तुम लोगों ने देखा, शिल्पकार ने प्रतिमा को कितनी सूक्ष्मता से उकेरा है। लगता है जैसे सचमुच जल-बूँदें अभी नीचे गिर पड़ेंगीं।"

शंकरदेव ने पुजारी से मन्दिर का इतिहास जानने की जिज्ञासा प्रगट की। उसने संस्कृत और कन्नड़ मिश्रित भाषा में संक्षिप्त रूप से बताया, "यादव वंशी होयसल राजा विष्णुवर्धन ने अपने गुरु रामानुजाचार्य की प्रेरणा से इस मन्दिर का निर्माण करवाया था।" उसने आगे बताया, "इस मन्दिर के मुख्य द्वार को मोहम्मद बिन तुगलक के सेनापति गंजसालार ने जला दिया था। वह दक्षिण के राज्यों को जीतता हुआ यहाँ तक आ पहुँचा। उसने अपनी राज्यलिप्सा के लिए जो भी किया, परन्तु इस मन्दिर से उसकी क्या शत्रुता थी, यह मैं आज तक नहीं समझ पाया। वर्तमान गोपुर का निर्माण तो करीव नब्वे वर्ष पहले ही किया गया है।"

पुजारी ने सबके रहने-खाने की व्यवस्था कराने के लिए मन्दिर के एक कार्यकर्ता को साथ कर दिया। उसके साथ सब बाहर आये। बाहरी प्राचीरों पर बना शिल्प देखकर वे अपना ठौर-ठिकाना देखना भूल वहीं रम गये।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मन्दिर की प्राचीरों पर उत्कीर्ण राजा बलि द्वारा भगवान् वामन को दान देना, कालियमर्दन, नन्दी पर विराजित शिव, समुद्र-मंथन, प्रह्लाद-कथा, गरुड़ और हनुमान के साथ विष्णु, कंस वध, रावण का कैलास उठाना, चामुण्डी देवी, ब्रह्मा, सात घोड़ों के रथ पर आरूढ़ सूर्य, अर्जुन का मत्स्य-वेध जैसी अनेक पुराण कथाओं के साथ-साथ मन्दिर निर्माता विष्णुवर्धन की राजसभा का दृश्य भी देखा। ऐसे अद्भुत शिल्प को देखकर शंकरदेव को विरूपाक्ष के पुजारी राघवाचार्य याद आये जिन्होंने यहाँ आने के लिए उन्हें प्रेरित किया था।

शंकरदेव ने साथियों से कहा, "यहाँ सचमुच शिल्प का खजाना बिखरा पड़ा है, जितना समेटना चाहो, आँखों के दरवाजे खोल मन की कोठरी में समेट लो।" फिर आगे कहा, "अभी तो हम यहाँ का कुछ हिस्सा ही देख पाये हैं। तुम लोगों ने देखा नहीं, यहाँ चारों तरफ कितनी शिल्प-कृतियाँ बनी हुई हैं। इन्हें सूक्ष्मता से देखने-समझने के लिए हमें यहाँ कुछ दिन रुकना पड़ेगा।"

शिल्पकला के प्रति शंकरदेव की ललक और समझ देखकर साधु अत्यन्त प्रभावित हुआ। उसने कहा, "मैं पहले भी यहाँ कई बार आ चुका हूँ। इन कलाकृतियों को भी कई बार निहारा है। किन्तु आप जैसी गुणग्राहकता मुझ में भला कहाँ ! आज आपके साथ मेरा आना भी सार्थक हो गया। इनकी सूक्ष्मता को मैं भी समझ सका। इसका मुझे सन्तोष है।

"बाहर की कलाकृतियों में नृत्यांगना की त्रिभंगी मुद्रा के बारे में आपने नहीं बताया होता तो उसकी सूक्ष्मता को मैं कभी नहीं समझ पाता। ऐसी ही अन्य शिल्पकृतियों में केश सँवारती नारी, लक्ष्यवेध करती शिकारी महिला, नागवीणा वादन करती वादिका, हाथों में डोर थामे पतंग उड़ाती महिला के कानों में कुण्डलों का विश्लेषण आपके द्वारा ही जान पाया। आप आज्ञा दें तो अब मैं लौटना चाहूँगा। अपने इष्ट शिव से बिछुड़ कर और अधिक समय नहीं रह सकता।"

"अच्छी बात है। यहाँ तक हमारे साथ आप आये, यही क्या कम है ! रात विश्राम कर, कल सुबह निकल जाइयेगा।" शंकरदेव ने कहा।

बाहर प्रांगण में खड़े करीब अट्ठाइस हाथ ऊँचे पाषाण स्तम्भ को दिखाकर कार्यकर्ता ने रहस्योद्घाटन किया, "यह स्तम्भ भूमि में नहीं गाड़ा गया है, अपितु अपने सन्तुलन के सहारे ही स्थिर है।" इस पर सबकी दृष्टि मन्दिर में प्रवेश करते समय भी पड़ी थी। किन्तु इस रहस्य को भला वे कैसे जान पाते !

बेलूर में सप्ताह भर रहकर वहाँ के शिल्प का शंकरदेव ने अच्छी प्रकार अध्ययन किया। रात्रि-वेला में मन्दिर में और आसपास होने वाले नृत्यों को देखा, कर्नाटक संगीत के सुरों को आत्मसात किया।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्रवणबेलगोला

बेलूर से श्रवणबेलगोला की दूरी करीब चालीस कोस थी। पैदल यात्रा कर तीन दिन में यात्रीदल वहाँ पहुँचा, तब तक शाम का धुँधलका छा गया था। उन्होंने एक धर्मशाला में अपना डेरा लगाया। वहाँ अहाते में ही एक परिवार यात्रियों को भोजन देकर अपनी आजीविका चलाते हुए रहता था। कामरूपवासियों को अब तीखी-खट्टी दाल के साथ भात खाने का अभ्यास हो गया था। सब इतने थके थे कि उस समय खाकर शयन करने के सिवाय दूसरा कुछ नहीं सूझा।

भोर के उजास में वहाँ की रमणीयता देखकर सब अभिभूत हो गये। सामने इन्द्रगिरि और चन्द्रगिरि नामक दो पहाड़ियाँ खड़ी थीं। दोनों के मध्य विशाल सरोवर का जल हवा के थपेड़ों से लहरा रहा था। चारों ओर के प्राकृतिक दृश्य ने सबका मन मोहा। इन्द्रगिरि पर खड़ी बाहुबली की मूर्ति दूर से ही दिख रही थी। चट्टानी पहाड़ी पर बनी पाँच-छह सौ सीढ़ियाँ चढ़कर वे ऊपर गये। विशाल मूर्ति का अद्‌भुत शिल्प देखकर सब आश्चर्यचकित थे। मूर्ति के सिर, आँख, कान, कन्धे, छाती, कमर, पाँव आदि की लम्बाई-चौड़ाई एकदम अनुपातिक रूप में गढ़ी हुई थी। चारों ओर खड़ी दीवार की उँचाई मूर्ति के सामने बहुत बौनी लग रही थी। बाहुबली के चरणों में नारियल तथा पुष्प चढ़े थे।

ऊपर से चारों ओर दूर-दूर तक के प्राकृतिक दृश्य दिखायी दे रहे थे। उसके ठीक सामने चन्द्रगिरि दिख रहा था। दोनों पहाड़ियों के बीच स्थित सरोवर की विशालता का अनुभव हुआ।

इन्द्रगिरि से उतर कर सबने चन्द्रगिरि पर आरोहण शुरू किया। वहाँ अनेक जैन मन्दिर थे। एक में स्थापित 23वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ की दस हाथ ऊँची प्रतिमा शंकरदेव को हालेबिद जैसी लगी। उन्हें पता लगा कि इसी स्थान पर सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य ने निर्वाण प्राप्त किया था। मन्दिरों के पास ही सम्राट के गुरु भद्रबाहु की गुफा थी। वहाँ स्थित एंक मन्दिर की दीवार के दोनों ओर पत्थरों को काटकर जालियाँ बनी थीं।

चन्द्रगिरि से इन्द्रगिरि पर खड़ी बाहुबली की दीर्घाकार प्रतिमा का वक्ष के ऊपर का भाग देखकर शंकरदेव ने साथियों से कहा, "अर्धचन्द्रकार इन्द्रगिरि पहाड़ी पर बिना किसी सहारे के खड़ी यह प्रतिमा दूर से कैसी चित्ताकर्षक लग रही है ! ऐसा लगता है जैसे बाहुबली पर आकाश का छत्र तना हो।"

दोनों पहाड़ियों पर चढ़ने-उतरने में दिन पूरा हो गया। रात्रि-विश्राम के लिए नीचे बनी धर्मशाला में आश्रय लिया।

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तिरुपति

दूसरे दिन तड़के सब तिरुपति के लिए प्रस्थान कर गये। यात्रा लम्बी थी। लगातार कई दिनों तक चलता हुआ यात्रीदल आगे बढ़ता गया। अब भाषा के शब्द बदल चुके थे। विरूपाक्ष में सीखे कन्नड़ शब्दों को वहाँ समझनेवाला कोई न था। वे अपना काम संकेतों से चला रहे थे।

तिरुपति

तिरुपति पहुँचकर यात्रीदल कुछ क्षणों के लिए असंमजस में पड़ गया। न वहाँ की भाषा का ज्ञान, न ही कहीं ठहरने के ठौर-ठिकाने का पता। वे एक पेड़ के नीचे बैठ सुस्ताने लगे। संयोग से एक वैष्णव तिलकधारी व्यक्ति उनके पास से गुजरा। उसकी उन पर अनायास दृष्टि पड़ गयी। वह समझ गया कि ये लोग बाहर से आये तीर्थार्थी हैं। उसने उनका परिचय जाना। वैष्णव भक्त काम चलाऊ संस्कृत जानता था। उत्तर भारत की यात्रा भी कर आया था। इसलिए उधर की भाषा भी थोड़ी बहुत बोल-समझ लेता था। उससे मिलकर शंकरदेव को अपार सन्तोष हुआ कि चलो कोई तो मिला जिससे बात की जा सकती है।

उसने अपना नाम राम रेड्डी बताया। सबको ले जाकर निकट की धर्मशाला में ठहरा दिया। फिर उसने तिरुपति के बारे में बताया, "वेंकटेश्वर तिरुपति भगवान् का मन्दिर तिरुमलै पर्वत पर है। हमारी तेलुगु में 'तिरु' का अर्थ है श्री और 'मलै' का पर्वत, अर्थात् श्रीपर्वत। तिरुमलै पर जाने के लिए साढ़े तीन कोस की पहाड़ी चढ़ाई है। इस पर्वत पर सात चोटियाँ हैं। छह चोटियाँ पार करने पर सातवीं चोटी वेंकटाचल पर तिरुपति बालाजी का भव्य मन्दिर है। वेंकटाचल को साक्षात शेषनाग का रूप माना जाता है। इसलिए इसे शेषाचल भी कहते हैं। मन्दिर में पहुँचने के बाद आपको किसी प्रकार का कष्ट नहीं होगा। आप लोग निश्चिन्त रहिए, वहाँ ठहरने खाने की सारी व्यवस्था हो जाएगी।"

"तिरुपति मन्दिर कितना प्रचीन होगा ?" शंकरदेव ने जिज्ञासा की।

रेड्डी ने उत्साहित होकर कहा, "इस प्राचीन धाम की स्थापना को लेकर अनेक धारणाएँ हैं। लोकविश्वास है कि मन्दिर की उत्पत्ति वैष्णव सम्प्रदाय जितनी पुरानी है। छह सौ वर्ष पहले यहाँ कांचीपुरम् के पल्लव शासकों का आधिपत्य था, उससे पूर्व ही यह वैष्णव केन्द्र बन चुका था।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्य अनुश्रुति यह भी है कि चार सौ वर्ष पहले सन्त रामानुज को तिरुमलै की सातवीं पहाड़ी पर प्रभु श्रीनिवास के साक्षात दर्शन हुए और उनके आशीर्वाद से उनको एक सौ बीस वर्षीय दीर्घायु मिली। वर्तमान मन्दिर रामानुजाचार्य द्वारा बनवाया हुआ है। उन्होंने ही वेंकटेश्वर की ख्याति दूर-दूर तक फैलायी।''

रेड्डी ने आगे कहा, ''यहाँ से थोड़ी दूरी पर ही कपिल तीर्थ है। कल सुबह वहाँ स्थित सरोवर में स्नान कर फिर पर्वत पर आरोहण कीजियेगा। संध्या तक आप लोग तिरुमलै पर पहुँच जायेंगे। अब आप लोग खा-पीकर विश्राम कीजिये। सुबह आपके पास मैं फिर आऊँगा।''

सर्वजय ने शंकरदेव को बताया कि भोजन के लिए चावल आदि लाना पड़ेगा। उनकी समस्या जानकर राम रेड्डी उसे अपने साथ ले गया और सब सामान घर से दे दिया।

तड़के ही राम रेड्डी धर्मशाला में आकर सबको अपने साथ कपिल तीर्थ ले गया। वहाँ स्थित सरोवर में पक्की सीढ़ियाँ बनी थीं। शंकरदेव और उनके साथियों ने सरोवर में स्नानकर आसन-प्रणायाम किये। फिर वहाँ के कपिलेश्वर और नृसिंह मन्दिरों में दर्शन किये। राम रेड्डी ने अपने घर से लाये उत्तपम और नारियल की चटनी का सबको नाश्ता कराया। जलपान करते हुए शंकरदेव ने कहा, ''आपकी बातों से कल रात ही मुझे आभास हो गया था कि आप पढ़े-लिखे व्यक्ति हैं। आप भले ही संस्कृत के पण्डित न हों, परन्तु अपनी मातृभाषा तेलुगु का आपको सम्यक ज्ञान है। मुझे विश्वास है कि आन्ध्र के भक्ति-साहित्य के बारे में आप अवश्य जानते हैं, उसके बारे में हमें बताएँगे तो बड़ी कृपा होगी।''

राम रेड्डी ने कहा, ''ऐसा तो कुछ नहीं, फिर भी जितना मुझे मालुम है, आपको बताता हूँ। आज से डेढ़-दो सौ वर्ष पहले हुए श्रीकृष्णामाचार्य ने भक्ति-साहित्य को सर्वसुलभ बनाने के लिए तेलुगु भाषा में संकीर्तन-साहित्य की रचना प्रारम्भ की। उन्हें तेलुगु का आदिकवि माना जाता है। उन्होंने भक्त नम्माळवार (शठकोप) के 'द्राविड़वेद' (तिरुवायमोळी) का तेलुगु में अनुवाद किया।

उसी परम्परा में श्रीअन्नमाचार्यलु भक्ति-गीत लिख रहे हैं। आज उनकी उम्र कोई पचहत्तर की होगी, भगवान् उन्हें शतायु करें। उनके सरल तेलुगु में लिखे हजारों भजनों को घर-घर में गाया जाता है। वे अपनी छोटी अवस्था में ही तिरुपति जाकर बंस गये। अब वहीं रहते हैं। उन्होंने

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भगवान् विष्णु के स्वरूप तिरुपति बालाजी की स्तुति में अनेक कीर्तन लिखे हैं। अन्नमाचार्यलु का ऐसा सोचना है कि प्रभुभक्ति के कीर्तन तेलुगु में रचे जाने से सामान्य जन के लिए भी सुलभ होंगे। उनकी यह मान्यता भी है कि जातिगत भेदभाव निरर्थक है। राजा-सेवक, ब्राह्मण-चाण्डाल आदि सभी के भीतर एक ही ब्रह्म है।'' इतना कहकर रेड्डी उनकी एक रचना सस्वर गाकर सुनाने लगा—

ब्रह्ममु ओकटे, परब्रह्ममु ओकटे
निण्डारा राजु निन्द्रिचुनु ओकटे
अण्डने बण्टु निद्र आदियुनु ओकटे
मेण्डैना ब्राह्मणुडु मेट्टु भूमि ओकटे
छण्डालु डुण्डेटी सरिभूमि ओकटे ।

अर्थात् जैसी गहन निद्रा में राजा शयन करता है, वैसी ही निद्रा एक सेवक भी लेता है। एक ब्राह्मण मृत्यु के पश्चात् जिस मिट्टी (पंचतत्त्व) में मिलता है उसी मिट्टी में चाण्डाल भी तो मिल जाता है। जो ब्रह्म है वही परब्रह्म है। अतः आपस में भेदभाव क्यों करते हो।''

राम रेड्डी भी बताने के सुर में आ गया। उसने कहा, ''आज से सौ-सवा सौ वर्ष पहले हुई भक्तिन आतुकूरी मोल्ला तेलुगु में रामकाव्य की रचना करनेवाली प्रथम कवयित्री हैं। मोल्ला आजीवन ब्रह्मचारिणी रहीं। अत्यन्त पिछड़ी कुम्हार जाति में उनका जन्म हुआ। ध्वनिपूर्ण ठेठ तेलुगु के देशज शब्दों में उनकी काव्य रचना मन को मोह लेती है। आन्ध्र के लोक-जीवन में प्रभु श्रीरामचन्द्र से बढ़कर कोई और इष्टदेव नहीं। प्रभु श्रीराम ने अपने वनवास का अधिकतम समय दण्डकारण्य और गोदावरी के तट पर बिताया। तेलुगु में रामकाव्य की जितनी बहुलता है, उतनी कदाचित अन्य भाषाओं में नहीं होगी। संक्षेप में लिखी 'मोल्ला रामायण' का यहाँ बहुत प्रचार है।''

यह सुनकर शंकरदेव ने कहा, ''मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि तेलुगु में भी रामायण लिखने की परम्परा रही है। हमारे कामरूप में आज से करीब सवा सौ वर्ष पहले माधव कन्दली द्वारा रामायण लिखी गयी थी। प्रभु राम के चरित्र ने सभी को आकर्षित किया है।''

इस पर राम रेड्डी ने कहा, ''लगता है कि आप कामरूपी भाषा में रची गयी जिस रामायण की बात कर रहे हैं, उसका और तेलुगु में रची गयी 'रंगनाथरामायण' का रचनाकाल लगभग एक ही है। हाँ, इतना

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्तर अवश्य है कि आपकी भाषा उत्तर भारत की है और रंगनाथरामायण की भाषा दक्षिण के द्रविड़ परिवार की। किन्तु इससे क्या अन्तर पड़ता है। सभी रामायणों का मुख्य कथ्य तो एक ही है न !''

''आपने इतनी बातें बतायीं। हम आपके आभारी हैं। अब रंगनाथरामायण के बारे में भी थोड़ा बतायें तो हमारी ज्ञानवृद्धि होगी।'' शंकरदेव ने कहा।

''लगभग सौ साल पहले कविवर गोनबुद्धराज ने 'देशज' छन्दों में 'रंगनाथ रामायण' को रचा था। तेलुगु भी द्रविड़ परिवार की एक समृद्ध भाषा है। इसके सभी शब्द स्वरांत और उकारांत होने के कारण इसकी ध्वनि संगीतमय है। इस रचना में अनुप्रास अलंकारों तथा मुहावरों का प्रयोग है। रंगनाथरामायण में रावण की भर्त्सना के साथ उसके गुणों की प्रशंसा भी मुक्त कंठ से की गई है। इस रामायण का पात्र रावण अपने शत्रु राम की भी वीरोचित प्रशंसा करता है। तद्विषयक कुछ पंक्तियाँ, जो मुझे याद है, मैं आपको सुनाता हूँ। सुनिये–

नल्लवो रघुराम नयनाभिराम, विल्लविद्या गुरुव, वीरावतार ।
बापुरे, राम भूपाल लोकमुल नीपाटि विलकाडु नेर्चुनेकलुग ?

अर्थात् हे नयनाभिराम नीलवर्णी राम ! तुम वीरावतार हो, धनुर्विद्या में निपुण हो, तुम्हारे समान और कौन धनुर्धर इस धरती पर हो सकता है ?''

इतना कहकर राम रेड्डी ने कहा, ''महाशय ! यह विषय बड़ा विषद है। आप तिरुपति-दर्शन कर लौटेंगे तब यहाँ कुछ दिन ठहरिये। उस समय संस्कृत के किसी उद्भट विद्वान से मैं आपका साक्षात्कार करा दूँगा जो आपकी जिज्ञासाओं को शान्त कर सकेगा। अभी आप प्रयाण कीजिये। आगे का पथ पहाड़ी है और लम्बा भी।''

शंकरदेव ने रेड्डी से पूछकर तेलुगु भाषा के कुछ आवश्यक शब्दों को याद किया ताकि समय पर काम आयें। आरोहण द्वार तक उन्हें छोड़ने रेड्डी साथ आया। वहाँ पहुँचकर शंकरदेव उसका धन्यवाद कर आगे बढ़े। उत्साह से 'हरि बोल, गोविन्दा बोल' का जयघोष कर, सबने पर्वत पर आरोहण प्रारम्भ किया। पथरीले रास्ते एक कोस की खड़ी चढ़ाई चढ़ने के बाद वैकुण्ठ-द्वार नामक गोपुर आया। वहाँ एक छायादार पेड़ तले सब थोड़ी देर सुस्ताने बैठे। शंकरदेव आँखें बंद कर कुछ सोचने लगे। फिर सस्वर गाने लगे–

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्रीनिवासपरा वेदाः श्रीनिवासपरा मखाः ।
श्रीनिवासपरा सर्वे तस्मादन्यन्न विद्यते ।।
सर्वयज्ञतपोदानतीर्थस्नाने तु यत् फलम् ।
तत् फलं कोटिगुणितं श्रीनिवासस्य सेवया ।।
वेङ्कटाद्रिनिवासं तं चिन्तयन् घटिकाद्वयम् ।
कुलैकविंशतिं धृत्वा विष्णुलोके महीयते ।।

सभी उनके मधुर गायन में आत्मविभोर हो गये। कुछ क्षणों पश्चात् आँखें खोल शंकरदेव ने उक्त श्लोकों का अर्थ समझाते हुए कहा, ''स्कन्द पुराण में वेंकटाचल माहात्म्य में कहा गया है कि सभी वेद भगवान् श्रीनिवास का ही प्रतिपादन करते हैं। यज्ञ भी श्रीनिवास क़ी ही आराधना के साधन हैं। अधिक क्या, सभी लोग श्रीनिवास के ही आश्रित हैं, उनसे भिन्न कुछ नहीं। अतः सभी यज्ञ, तप, दान के अनुष्ठान तथा तीर्थों में स्नान का जो फल है, उससे करोड़गुणा अधिक फल श्रीनिवास की सेवा से होता है। उन वेंकटाचल निवासी भगवान् श्रीहरि का दो घड़ी चिन्तन करनेवाला मनुष्य भी अपनी इक्कीस पीढ़ियों का उद्धार करके विष्णुलोक में सम्मानित होता है।''

परमानन्द ने जिज्ञासा प्रकट की, ''इन श्लोकों में श्रीनिवास का नाम बहुत बार आया है। ये कौन थे ?''

''यह कथा स्कन्द पुराण में आती है। कृष्णावतार में माता यशोदा के मन में इस बात का बहुत मलाल था कि वह कृष्ण का विवाह न देख सकी। वृन्दावन से श्रीकृष्ण को द्वारिका गये अस्सी वर्ष हो गये थे। एक बार कुरुक्षेत्र में सूर्यग्रहण के समय दोनों की भेंट हुई। उस समय उन्होंने माता को वचन दिया कि कलियुग में तुम वकुलमालिका के नाम से जन्म लोगी और मैं श्रीनिवास के नाम से। उस समय युवावस्था में मेरा विवाह तुम्हारे हाथों ही सम्पन्न होगा।

''कालान्तर में चोलवंशी राजा आकाशराज हुआ। उसकी पत्नी का नाम धरणीदेवी था। उसका दूसरा नाम वकुलमालिका था। आकाशराज के तोण्डमान नामक एक छोटा भाई भी था। मगर दोनों भाइयों में से किसी के भी सन्तान नहीं थी। एक दिन यज्ञ करने के लिए भूमि का शोधन करवाते समय आकाशराज को एक कन्या मिली जिसे राजा ने अपनी पुत्री मानकर अपनी रानी को सौंप दिया। कन्या का नामकरण पद्मावती किया गया। पुत्री को पाकर धरणीदेवी (वकुलमालिका) के मन में वात्सल्य जागृत हुआ और नौ

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मास बाद उसने एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम वसुदान रखा गया।

पद्मावती ही त्रेता युग में वेदवती थी। पूर्वकाल में वेदवती को रावण ने स्पर्श कर दिया था, जिससे क्षुब्ध होकर उसने प्रज्जवलित अग्नि में शरीर त्याग दिया। कालान्तर में राम-लक्ष्मण की अनुपस्थिति में रावण सीता-हरण करने उनकी पर्णकुटी में आया। पर्णशाला के अग्निहोत्र में विद्यमान अग्निदेव ने भावी को जानकर सीता को अपनी पत्नी स्वाहा के सुपुर्द कर दिया। ब्रह्मा के वरदान से रावण अजेय था। किन्तु उसका संहार करने में वेदवती को निमित्त बनाने उसे सीता के रूप में प्रकट कर कुटी में छोड़ दिया। रावण उसी सीता रूपी वेदवती का हरण कर लंका ले गया था। तदनन्तर लंकाविजय के पश्चात् सीता की अग्नि-परीक्षा के समय सीता रूपी वेदवती ने अग्नि में प्रवेश किया और अग्निदेव ने सीता को पुनः लाकर राम को सौंप दिया। इस सत्य का पता राम के सिवाय किसी को नहीं था। अग्नि-परीक्षा तो एक बहाना मात्र थी ताकि सत्य किसी पर उजागर न हो। इसके लिए राम लोगों के कोपभाजन भी बने।''

शंकरदेव ने आगे बताया, ''सीता और पद्मावती दोनों भूमिपुत्री और अयोनिजा थीं। उस वक्त के उपकार का बदला कलियुग में पद्मावती के रूप में जन्मी वेदवती से विवाह कर श्रीनिवास के रूप में विष्णु ने चुकाया और वकुलमालिका के रूप में जन्मी माँ यशोदा की इच्छा भी पूरी की।''

पौराणिक कथा कह कर शंकरदेव ने आगे कहा, ''यह हमारा अहोभाग्य है जो कामरूप से इतनी दूर चलकर इस पावन स्थल पर आ सके। हरि बोल, गोविन्दा बोल के उद्‌घोष के साथ प्रयाण फिर प्रारम्भ हो गया। यात्रा-पथ में आये वैकुंठनाथ, राम-लक्ष्मण-सीता, कृष्ण, नरसिंह के मन्दिरों के दर्शन करते हुए सब छह चोटियाँ पार कर सातवीं चोटी वेंकटाचल पर पहुँचे।

तिरुमलै पर श्रद्धालुओं की अच्छी-खासी भीड़ थी। वहाँ छोटी-छोटी कई दुकानों की हाट लगी थीं। उन्होंने देखा कि पुरुषों के साथ कितनी ही महिलाओं ने भी मुण्डन करवाकर सिर पर चन्दन लेप रखा था। कामरूपवासियों के लिए वह नया अनुभव था। इसके पहले उन्होंने कभी सधवा स्त्रियों को सिर मुँड़वाते नहीं देखा। कुछ आगे जाकर सहज ही एक धर्मशाला में उन्हें ठहरने का स्थान मिल गया।

दूसरे दिन तड़के सब सर्वप्रथम तिरुपति मन्दिर के पास स्थित स्वामिपुष्करिणी नामक सरोवर पर स्नान करने गये। सरोवर विस्तृत था।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उसके मध्य स्थित मण्डप को देखने की इच्छा से शंकरदेव तैरकर वहाँ तक गये। मण्डप में दशावतारों की मूर्तियाँ थीं। सरोवर किनारे स्नान-ध्यान कर पास के वाराह मन्दिर में जाकर दर्शन किये। अब शंकरदेव का मन अपने आराध्य विष्णु के वेंकटेश्वर रूप के दर्शन करने के लिए व्यग्र हो रहा था।

दूर से मुख्य मन्दिर के स्वर्णमण्डित शिखर के दर्शन हो रहे थे। मन्दिर की विशालता और भव्यता देख सभी चकित थे। प्रातःकालीन दर्शनों के लिए भक्तों का मन्दिर में प्रवेश प्रारम्भ हो गया था। मन्दिर के भीतर ज्यों-ज्यों प्रवेश करते गये, उन्हें आभास होता गया कि गर्भगृह कई परकोटों के मध्य है। वे तिरुमहा-मण्डप, सहस्रस्तम्भ-मण्डप देखते हुए अन्य यात्रियों के साथ मन्दिर में आगे बढ़ रहे थे। आगे योगनृसिंह, विष्णु रूपी श्रीवरादराजस्वामी, श्रीरामानुजाचार्य, बकुलमालिका के मन्दिरों और गरुड़ के दर्शन करते हुए गर्भगृह तक पहुँचे।

गर्भगृह के सामने स्वर्णमण्डित स्तम्भ खड़ा था। द्वार पर जय-विजय की मूर्तियों के दर्शन हुए। भीतर चतुर्भुजी वेंकटेश्वर भगवान् के दर्शन हुए। पाँच हाथ ऊँची श्यामवर्णी विष्णु मूर्ति के हाथों में शंख, चक्र, गदा, पद्म थे। भगवान् के दोनों ओर श्रीदेवी और भूदेवी की मूर्तियाँ थीं। वेंकटेश्वर के शीश पर रत्नजड़ित स्वर्ण मुकुट और गले में पुष्पों के हार के साथ ही हरी तुलसी की माला शोभायमान थी। शंकरदेव कुछ क्षणों के लिए वहाँ भाव-समाधि लगाकर बैठ गये।

वेंकटेश्वर के दर्शन कर सब गर्भगृह से बाहर आये। शंकरदेव को अपार प्रसन्नता और सन्तोष हुआ। वहाँ भक्तों में वितरित हो रहा भोग लेकर सबने क्षुधा-तृप्ति की। वेंकटाचल पर स्थित अन्य मन्दिरों के दर्शनार्थ कुछ दिन ठहरने के लिए उन्होंने वहाँ एक यात्रीशाला में डेरा डाला। नित्य वेंकटेश्वर के दर्शन कर तिरुमलै पर स्थित तीर्थों के लिए निकल जाते। आकाशगंगा, पापनाशन, वैकुण्ठतीर्थ, पाण्डवतीर्थ आदि के दर्शन किये।

तिरुमलै पर कुछ दिन रहकर पर्वत से नीचे आकर राम रेड्डी की बतायी हुई धर्मशाला में जा टिके। नीचे स्थित विशाल गोविन्दराज मन्दिर में शेषशायी भगवान् नारायण के दर्शन किये। वहाँ स्थापित रामानुजाचार्य की गद्दी और कोदण्डराम मन्दिर में राम, लक्ष्मण और जानकी के दर्शन किये। कुछ कोस की दूरी पर स्थित पद्मावती मन्दिर भी हो आये।

कुछ दिन वहाँ रहे। नित्य कपिल तीर्थ के सरोवर में स्नान-ध्यान कर

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वे अपनी दिनचर्या प्रारम्भ करते। राम रेड्डी ने उनका कई विद्वानों से साक्षात्कार करवाया। इसी मध्य उन्हें आन्ध्र का कुचिपुड़ी नृत्य देखने का अवसर मिला। नृत्य-गुरु से बात कर उन्होंने उस नृत्य की विशेषताओं को समझा, जाना।

तिरुपति से शंकरदेव की यात्रा की दिशा कांची की ओर थी। रास्ते में झूमते नारियल के पेड़ और कदलीफल के वनों को देख शंकरदेव को अपना कामरूप याद आने लगा। एक स्थान पर रात्रि-विश्राम के समय उन्होंने अपने साथियों से कहा, ''तुम सब भी इस बात का अनुभव कर रहे होगे कि समस्त भारत का धर्म और संस्कृति एक है। हम उत्तर भारत से इतनी दूर दक्षिण में तिरुपति, कांची, श्रीरंगम, रामेश्वर आदि तीर्थों की यात्रा करने आये हैं, वैसे ही यहाँ के लोग उसी श्रद्धाभाव से मथुरा, वृन्दावन, प्रयाग, काशी, बदरीनाथ आदि तीर्थों की यात्रा करने जाते हैं। यहाँ दक्षिण में हुए आदिशंकराचार्य, रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य, मध्वाचार्य आदि के प्रति हमारे मन में क्या कम श्रद्धा है ! हमारे सभी आचार्य एक हैं। हम स्नान करते समय उत्तर और दक्षिण की नदियों में गंगा, यमुना, सरस्वती, नर्मदा, गोदावरी, सिन्धु, कावेरी का आह्वान करते हैं।''

परमानन्द ने कहा, ''कामरूप में तो केवल ब्राह्मणों को चन्दन-तिलक लगाते देखा। किन्तु यहाँ तो प्रायः हर पुरुष को अपने ललाट पर त्रिपुंड, वैष्णव तिलक या भस्मी लगाये हुए देखते हैं। स्त्रियाँ भी माथे पर कुंकुम के साथ भस्मी लगाती हैं और अपने चेहरे पर प्रसाधन के रूप में हल्दी का आलेपन करती हैं।''

सर्वजय ने कहा, ''इतना ही नहीं, अन्य प्रदेशों की भाँति दक्षिण में भी यहाँ पहुँचते-पहुँचते हमने गाँव-गाँव में गुरुकुल देखे हैं, जहाँ संस्कृत के साथ स्थानीय भाषा पढ़ायी जाती है।'' इस पर शंकरदेव ने कहा, ''यह हमारे लिए अच्छा है। इसी कारण हमें भाषा की समस्या नहीं आ रही। अब रात बहुत हो गयी है, विश्रांम करना चाहिये। तड़के ही आगे निकल पड़ेंगे, यहाँ दोपहर की धूप में चलना अत्यन्त कष्टकारी है।''

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कांचीपुरम्-महाबलीपुरम्

बीहड़ वनों से होती दुर्गम पथों पर यात्रा सतत चलती रही। वर्षाकाल चल रहा था। रास्ते में आयी नदियाँ अपने उफान पर थीं। भीगी हुई कच्ची मिट्टी की फिसलनदार पगडण्डियों पर चलना दूभर था। किन्तु यात्रीदल शनैः-शनैः अपना मार्ग तय कर रहा था। मूसलाधार बरसात से बचने के लिए जहाँ जैसा अवसर मिलता, किसी मठ-मन्दिर या फिर किसी सद्गृहस्थ के यहाँ बरसात रुकने तक आसरा लेना पड़ता। कई दिनों बाद शंकरदेव अपने गन्तव्य कांचीपुरम् पहुँचे।

कांचीपुरम्

अब भाषा फिर बदल गयी। यहाँ तमिल भाषा बोली जा रही थी। किसी तरह संकेतों के सहारे उन्होंने कांची की एक धर्मशाला में अपना डेरा लगाया। वहाँ धर्मशाला को 'सत्रम्' या 'छत्रम्' कहा जाता था। सत्रम् का व्यवस्थापक ज्यादा पढ़ा-लिखा नहीं था। वह अपनी मातृभाषा तमिल ही जानता था। संयोग से उत्तर भारत से आया एक यात्रीदल वहाँ कई दिनों से ठहरा था। उस दल के मुखिया रामचरण पाण्डेय ने उन्हें आश्वस्त करते हुए कहा, "आप लोग बहुत लम्बी यात्रा करके आये हैं। इस समय भोजन कर विश्राम कीजिये। कल मैं आप लोगों के साथ चलूँगा।"

दूसरे दिन पाण्डेय सबको सर्वतीर्थ नामक सरोवर पर स्नान कराने ले गया। स्नान कर सब वस्त्र धारण करने लगे तो पाण्डेय ने कहा, "आप लोग धोती के सिवाय शरीर पर और कुछ न पहनें। यहाँ दक्षिण में नियम है कि मन्दिर-प्रवेश के लिए पुरुष की कमर से ऊपर कोई वस्त्र नहीं होना चाहिये।"

वहाँ से शिवकांची के मुख्य मन्दिर एकाम्रेश्वर पहुँचे। दस मंजिले गोपुर से भीतर प्रवेश करने पर उन्हें मन्दिर की विशालता का आभास हुआ। मन्दिर के प्रांगण में खड़े एक आम-वृक्ष को दिखाकर रामचरण पाण्डेय ने कहा, "इस आम्र-वृक्ष को अति प्राचीन बताया जाता है। यहाँ के पण्डों का कहना है कि इस वृक्ष पर साल भर में आम का केवल एक ही फल लगता है। ऐसा भी कहा जाता है कि हर बारहवें वर्ष आम का जो फल लगता है, उसमें मीठा, खट्टा, खारा तीनों स्वाद अलग-अलग मिलते हैं। इसके नाम पर ही इस मन्दिर को एक्रामेश्वर कहते हैं। यह भी मान्यता है कि इसी वृक्ष तले

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बैठकर कामाक्षी देवी ने शिव की कामना से कठोर तप कर उन्हें पाया था।

इस प्राचीन आम्र-वृक्ष की अद्‌भुत कथा सुनकर यात्रीदल आगे बढ़ा। मन्दिर के पाषाण-स्तम्भों पर सुन्दर मूर्तियाँ बनी थीं। उसके परकोटे में सुब्रह्मण्यम् और गणेश मन्दिरों के बाद शिवगंगा सरोवर था। उन्हें पता चला कि दक्षिण में शिव-पुत्र स्वामी कार्तिकेय को ही सुब्रह्मण्यम् कहा जाता है। एकाम्रेश्वर के गर्भगृह में स्थापित बालुका निर्मित श्यामवर्णी शिवलिंग के बारे में शंकरदेव को एक नई बात पता चली कि उस पर जल के बदले चमेली का सुगन्धित तेल चढ़ाया जाता है।

मन्दिर प्रांगन में थोड़ी देर सब लोग बैठे। सर्वजय ने पाण्डेय से कहा, "श्रीमान ! गुरुदेव तीर्थयात्रा के बहाने भारत का समग्र-दर्शन करने निकले हैं। इनके साथ हमें भी आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। अन्यथा हम न तो ऐसा विचार करते और न ही साहस। अपनी यात्रा में हमने सात पुरियों में गिनी जाने वाली अयोध्या और मथुरा में विष्णु की तथा काशी में शिव की प्रधानता देखी, यह कांची भी क्या शिव-प्रधान ही है ?"

पाण्डेय ने कहा, "कांची हरि-हरात्मक है। इसके दो भाग हैं, विष्णुकांची और शिवकांची। मोक्षदायिनी सप्तपुरियों में अयोध्या, मथुरा, द्वारिका और विष्णुकांची को मिलाकर साढ़े तीन पुरियाँ भगवान् विष्णु की हैं। इसी प्रकार माया (हरिद्वार), काशी, अवन्तिका (उज्जैन) और शिवकांची को मिलाकर साढ़े तीन पुरियाँ भगवान् शंकर की हैं। इस समय हम शिवकांची के एकाम्रेश्वर मन्दिर के प्रांगण में बैठे हैं।"

पाण्डेय ने कहा, "एकाम्रेश्वर से थोड़ी दूर पर ही आदिशंकराचार्य द्वारा स्थापित कामाक्षी देवी का मन्दिर है। अब वहाँ चलते हैं।" इस पर शंकरदेव ने कहा, "हमारे कामरूप में भी कामाख्या-मन्दिर हैं। वहाँ भी मैं आजतक नहीं गया तो यहाँ जाकर क्या होगा !" विशाल कामाक्षी-मन्दिर के वाहरी स्थापत्य को देखते हुए सब आगे बढ़ गये।

पाण्डेय के साथ सब वामन भगवान् के मन्दिर में गये। गर्भगृह में मात्र एक दीपक जल रहा था। भीतर पर्याप्त प्रकाश के अभाव में पुजारी ने एक लम्बे बाँस में बंधी मशाल जलाकर भगवान् के दर्शन कराये। मूर्ति की ऊँचाई पन्द्रह हाथ से अधिक थी। वामन का एक चरण आकाशी लोकों को नापने के लिए ऊपर उठा हुआ था। दूसरे चरण के नीचे राजा वलि का मस्तक था। शंकरदेव समझ गये, पुजारी की सहायता के विना इतनी ऊँची मूर्ति के दर्शन नहीं होते।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दर्शन कर शंकरदेव ने पाण्डेय को बताया, "राजा बलि के पुत्र बाणासुर का हमारे कामरूप के शोणितपुर (तेजपुर) में राज्य था जिसकी पुत्री ऊषा से श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध का विवाह हुआ था। भागवत तथा अन्य पुराणों में वर्णित हरि-हर युद्ध वहीं हुआ था।"

पाण्डेय ने उत्सुकता से कहा, "कृपया बाणासुर और हरि-हर युद्ध की पूरी कथा विस्तार से बताइये !"

"इस समय नहीं, रात में बताऊँगा। अभी अन्य मन्दिरों में चलते हैं।"

वहाँ से थोड़ी दूर चलकर सुब्रह्मण्यम् मन्दिर में जाकर उनकी बड़ी भव्य मूर्ति देखी। वहाँ से निकलकर पाण्डेय ने बताया, "यहाँ सैकड़ों मन्दिर हैं। शिवकांची में ही सौ से अधिक मन्दिर होंगे, विष्णुकांची में हैं, सो अलग।"

कांची आकर शंकरदेव को अपार सन्तोष हुआ। उन्होंने सोचा, घरवालों की बात मानकर यदि बरदोवा में ही बैठा रहता तो अपने विशाल भारत के दर्शन कहाँ से कर पाता ! इन्हीं भावों में खोये, वे कोस भर की दूरी पार कर वरदराज मन्दिर पहुँचे।

मन्दिर की विशालता का आभास वहाँ का ग्यारह मंजिला गोपुर देखकर ही हो गया। भीतर 'अनन्तसर' नामक सरोवर था। पक्के बांध से घेरे तालाव के मध्य एक मण्डप शोभायमान था। सरोवर के स्वच्छ जल को देखकर शंकरदेव उसमें स्नान करने उतर गये। उन्हें डुबकी लगाते देखा तो उनके साथियों ने भी उनका अनुसरण किया। फिर सरोवर किनारे स्थित वाराह मन्दिर, सुदर्शन मन्दिर और योगनृसिंह-मूर्ति के दर्शन किये।

मन्दिर के प्रांगण में ऊँचा गरुड़ स्तम्भ खड़ा था। तीन परकोटों को पार करते हुए पथ में अन्य छोटे-छोटे मन्दिरों और देव-प्रतिमाओं के दर्शन करते हुए सब गर्भगृह तक वरदराज भगवान् के सम्मुख पहुँचे। भगवान् की विशाल मूर्ति करीब चार हाथ ऊँची थी। नारायण रूपी वरदराज की श्यामवर्णी चतुर्भुजी प्रतिमा के सम्मुख शंकरदेव ने दण्डवत प्रणाम किया।

मन्दिर की एक छत पर पत्थर से बनी जंजीर लटकती देखी। पत्थर को तराश कर बनाई गयी जंजीर की कड़ियाँ धातु से बनी कड़ियों की भाँति घुमायी जा सकती थी। पत्थर को बिना काटे एक कड़ी को दूसरी कड़ी में कैसे पिरोया गया होगा ! भारतीय शिल्पकला का ऐसा अद्भुत और उत्कृष्ट नमूना देख शंकरदेव बड़े विस्मित हुए।

इन मन्दिरों के दर्शन कराने के बाद पाण्डेय ने कहा, "यहाँ के मुख्य मन्दिरों के दर्शन आपको करा दिये हैं। आप लोग यदि यहाँ और कुछ दिनों

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के लिए रुक सकें तो अन्य मन्दिरों के दर्शन भी कर सकेंगे। तब तक आप यहाँ के पथ-वीथियों को भी पहचानने लगेंगे। अब हम सत्रम् चलते हैं।''

कांची में शंकरदेव कुछ दिनों के लिए टिक गये। अब वे रास्ते-घाट पहचानने लगे थे। तमिल भाषा के कुछ आवश्यक शब्दों को भी सीख लिया। नगर में भ्रमण करते समय उनके कानों में आयी किटिक-किटिक की ध्वनि उन्हें कुछ जानी-पहचानी-सी लगी। वह आवाज वहाँ घर-घर में लगे करघों की थी। उन पर रेशमी साड़ियाँ बुनी जा रही थीं। वे कुछ समय एक करघे के पास खड़े, रंग-बिरंगे रेशमी और स्वर्ण-रजत के धागों से हो रही बुनाई को देखते रहे। वहाँ का सारा वातावरण कामरूप जैसा लगा तो उनका मन रम गया।

मन्दिर में एक दिन नृत्योत्सव हुआ। 'भरत नाट्यम्' के पश्चात् 'उर्मीअट्टम्' नृत्य हुआ। शंकरदेव ने नर्तकियों की वेशभूषा, भाव-भंगिमा, पद-चालन का सूक्ष्मता से अध्ययन किया। मृदंग तथा अन्य वाद्यों की ताल में अपने मन की ताल मिलायी। इसके साथ वे अपने विचारों में खो गये।

कुछ ही दिनों में शंकरदेव वहाँ के 'ल्याल' (साहित्य), 'ल्साइ' (संगीत) और 'नाद्गम्' (नाटक) शब्द ही नहीं, उनकी बारीकियों को भी समझने लगे। उन्होंने वहाँ होनेवाले चमड़ा, लकड़ी और कपड़े से बनी 'बोम्मलापट्टम्' (कठपुतली) का खेल देखा। एक दिन पास के गाँव में जाकर 'कुम्मी' लोकनृत्य देखा, जिसमें बिना किसी साज-बाज के स्त्रियों को केवल हथेलियों की ताली की ताल पर नाचते देखा। इसी तरह पीले वस्त्रों में सजे पुरुषों को 'ओयिलअट्टम्' लोकनृत्य करते देखा। 'नाग-नृत्य' करनेवाली युवतियों को केंचुल जैसी पोशाक पहनकर थिरकते देखा।

एक बार वे साथियों के संग कांची से कुछ कोस की दूरी पर वन में गये। वहाँ वनवासियों का 'ओट्टण कोथु' लोकनृत्य देखा। भाषा तो वे नहीं समझ पाये, परन्तु भाव-भंगिमाओं से वे समझ गये कि किसी पौराणिक कथा पर आधारित नृत्य है। फिर उनके सामने स्त्री-पुरुषों ने सम्मिलित रूप में हास-परिहास और खेल की भावना से पूर्ण 'कलिअट्टमम' नृत्य किया। इसी तरह मोर, बैल, रीछ और दानव के मुखौटे लगाये विभिन्न वेशभूषा में 'मयीलअट्टम्' नृत्य का प्रदर्शन हुआ। उन सभी नृत्यों को शंकरदेव ने केवल एक सामान्य दर्शक की भाँति नहीं देखा, उनके मन में इसके साथ नयी-नयी कल्पनाएँ जन्म ले रही थीं। वे कुछ सोचकर उत्फुल्ल हो रहे थे। हृदय में कोई नयी योजना बन रही थी।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संयोग से एक दिन वहाँ उत्सव का दिन था। रास्ते पर एक शोभायात्रा जा रही थी। रंग-बिरंगे वस्त्रों से सजी नारियों के साथ चल रहे पुरुषों ने अपनी कमर में सफेद धोती लपेट रखी थी। एक बड़े भारी काष्ठ-रथ पर भगवान् की मूर्ति विराजमान थी। रथ क्या था, जैसे एक लघु भवन ही पहियों पर चल रहा था। रथ में बंधे मोटे रस्सों को श्रद्धालु खींच रहे थे। रथ के आगे स्त्री-पुरुष सिर पर अलंकृत कलशों को रखकर नृत्य करते चल रहे थे। उन्हें पता चला, उस नृत्य का नाम 'कावडी अट्टम्' है, जो ऐसे ही धार्मिक उत्सवों के समय किया जाता है।

शंकरदेव के हृदय पर सारे दृश्य अंकित हो रहे थे। दक्षिण का संगीत, वहाँ की राग-रागिनियाँ, वाद्यों की ध्वनियाँ उनके कानों में गूंज रही थीं। इसके साथ ही एक नयी परिकल्पना का अंकुरण उनके मस्तिष्क में प्रस्फुटित हुआ।

यात्रीदल कांची में काफी दिन रुका रहा। अब तक पाण्डेय अपने गाँव लौट गया। इसी बीच शंकरदेव का कांची के एक संस्कृत-गुरुकुल के आचार्य से परिचय हो गया। अब उससे वार्तालाप करने में सुविधा हो गयी। आचार्य से नित्य मिलने का उनका नियम-सा बन गया। आचार्य ने एक दिन बताया, "कांची की वीथिकाओं में इतिहास बिखरा पड़ा है। यहाँ की शिला-शिला पर उत्कीर्ण कलाकृतियाँ यहाँ हुए पल्लव राजाओं के कला-प्रेम की मूक साक्षी हैं। पल्लव राजाओं ने उत्तर में कृष्णा नदी से दक्षिण में कावेरी नदी तक के क्षेत्र पर इसी नगर को केन्द्र बनाकर शासन किया। पाँच-छह सौ वर्ष पूर्व पल्लव राजा अपराजित की मृत्यु के साथ ही पल्लव वंश का अन्त हो गया। उसके बाद हुए राजाओं ने भी अनेक निर्माण कार्य वहाँ करवाए। कोई सौ-डेढ़ सौ वर्ष पूर्व चोल वंश के उत्तराधिकारियों की कमजोरी का फायदा उठाकर कुछ समय के लिए मुसलमानों ने इस नगर को अपने अधिकार में रखा।"

आचार्य ने आगे बताया, "कांची से लगभग चालीस कोस दूर समुद्र तट पर महावलीपुरम् है। वहाँ आप लोग अवश्य जाइयेगा। वह पल्लव राज्य का पोताश्रय था। उस पोत से दूर-दूर तक पूर्वी देशों— स्याम (थाईलैण्ड), चम्पा (दक्षिणी वियतनाम), अनाम (उत्तरी वियतनाम), कम्बोज (कम्बोडिया), मलय (मलेशिया), जावा-सुमात्रा (इण्डोनेशिया) तक उनके जलयान जाया करते थे और आज भी जाते हैं। इससे भारत के धर्म-संस्कृति वहाँ प्रचारित हुए। यहाँ के कितने ही लोग वहाँ स्थायी रूप में बस गये। उन देशों में भी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अनेक मन्दिरों का निर्माण किया गया। वहाँ जाकर आनेवाले लोगों से मैंने सुना है कि कम्बोज देश के अंकुरबट में बड़ा भारी विष्णु मन्दिर है।''

आचार्य ने आगे कहा,''शंकरदेव ! मैं आपके जिज्ञासु स्वभाव को समझ सकता हूँ। आप केवल धार्मिक भावना से तीर्थयात्रा करने नहीं निकले। आप देश की कलाकृतियों को देखने के साथ संस्कृति, साहित्य, नृत्य-संगीत को भी समझना चाहते हैं। इसीलिए मैंने आपको महाबलीपुरम् जाने के लिए प्रेरित किया। वहाँ की कलाकृतियों का निर्माण छह-सात सौ वर्ष पहले महेन्द्र वर्मन, नरसिंह वर्मन प्रथम और नरसिंह वर्मन द्वितीय के राजत्वकाल में किया गया था। वहाँ आपको गुफाओं में बने शिल्प के अतिरिक्त अन्य कलाकृतियाँ भी देखने और समझने को मिलेगीं।

महाबलीपुरम्

कांची में रहते शंकरदेव को बहुत दिन हो गये। आचार्य की प्रेरणा पर वे महाबलीपुरम् के लिए प्रस्थान कर गये। गर्मी से सब के बदन पसीने से चुहचुहाने लगे। थोड़े समय किसी पेड़ या मठ-मन्दिर में बैठ सुस्ताते, रात्रि में कहीं विश्राम करते हुए कुछ दिनों में सब अपने गन्तव्य पर पहुँचे।

सामने सागर लहरा रहा था। तट पर मच्छीमारों की नावों के साथ दो बड़े जलयान भी लंगर डाले खड़े थे। वहाँ से थोड़ी दूरी पर स्थित गुफाओं में सर्वप्रथम उन्होंने 'कृष्णमण्डपम्' नामक एक गुफा-मन्दिर में पदार्पण किया। गुहा की प्राचीरों पर भगवान् श्रीकृष्ण को गो-दोहन और बाल-लीलाएँ करते हुए उत्कीर्ण किया हुआ था। आगे 'महिषासुर मण्डपम्' गुफा में उकेरी हुई सिंहारूढ़ दुर्गा को महिषासुर का वध करते हुए दर्शाया हुआ था। वहाँ से यात्रीदल अगली 'वाराह मण्डपम्' गुफा में पहुँचा। भगवान् वाराह हिरण्याक्ष दैत्य पर अपना एक पाँव रखे खड़े थे। सामने की दीवार पर भगवान् वामन ने स्वर्गादि लोक नापने के लिए अपना एक कदम उठा रखा था। अन्य दीवारों पर गंगा, लक्ष्मी, विष्णु आदि की मूर्तियाँ उकेरी हुई थीं।

वहाँ से सभी समुद्र किनारे जा बैठे। वहाँ एक युवक-दल से उनका परिचय हुआ। उन्होंने अपने आपको कांची के किसी गुरुकुल के विद्यार्थी बताकर परिचय दिया। वे उन्हें नवागन्तुक जानकर वहाँ से कोस भर की दूरी पर स्थित रथ-मन्दिरों तक ले गये। वहाँ पाँच लघु-मन्दिर अलग-अलग खड़े थे। विशाल शिलाओं को तराश कर उन्हें बनाया गया था। उनमें किसी देवी-देवता की मूर्तियाँ नहीं थीं। एक विद्यार्थी ने बताया कि इन्हें पाण्डव-रथ कहा जाता है, क्योंकि इनके लघु आकार रथों की तरह हैं और संख्या में भी ये पाँच ही हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पास में ही बने हाथी और सिंह की विशाल प्रस्तर मूर्तियों के शिल्प ने शंकरदेव के मन को मोहा।

विद्यार्थी-दल के अनुगामी बने कामरूपवासी वहाँ से एक दीर्घाकार चट्टान के सम्मुख पहुँचे। उसे देखकर सब ठगे-से रह गये। बीस हाथ ऊँची और साठ हाथ लम्बी उस विशाल शिला पर की गयी नाना प्रकार की शिल्प-कृतियों का नाम 'अर्जुन की तपस्या' बताया गया। उस पाषाण-चित्र में नीचे अर्जुन दोनों हाथ ऊपर उठाये शंकर भगवान् की तपस्या कर रहा था। उसके शीर्ष पर इन्द्र तथा अन्य देवी-देवताओं की मूर्तियाँ उत्कीर्ण थीं। उसी भित्ति-शिल्प में बहुत ही बारीकी से उकेरे हुए हाथी-हथिनी और उनके बच्चों का परिवार तथा बन्दरों के झुण्ड को देखकर शंकरदेव मुग्ध हो गये।

उस शिल्प को देखकर सब थोड़ा ऊपर गये। वहाँ एक विशाल गोल पाषाण-खण्ड किसी अदृश्य सन्तुलन के सहारे टिका था। शंकरदेव को उसके नीचे जाते देख, परमानन्द सहम गया। वह चिल्लाकर बोला, "यह आप क्या कर रह हैं ! इस विशाल चट्टान के नीचे जाना खतरनाक है। यदि यह लुढ़क गयी तो यहीं हमारी यात्रा का समापन हो जाएगा।" उसे अभय करते हुए शंकरदेव बोले, "यह प्रकृति प्रदत्त 'माखन-गेंद' है। न जाने कब से ऐसे ही यहाँ अडिग खड़ी है। यह भय तुम्हारे मन का भ्रम है। तुम लोग भी इसके नीचे आओ, तभी इस भ्रम से मुक्ति मिलेगी।"

अब अगला गन्तव्य श्रीरंगम् था। यह बात विद्यार्थी-दल को बतायी तो उन्होंने कहा, "कुछ कोस तक हम साथ चलेंगे। फिर हम कांची चले जाएँगे और आप लोग श्रीरंगम् की ओर प्रस्थान कर जाइयेगा। हम कल सुबह निकलेंगे।"

पक्षीतीर्थम्

रास्ते में शंखतीर्थ नामक सरोवर आया। वहाँ पहुँचकर विद्यार्थीदल में से एक ने कहा, "यहाँ के वेदाचल पर्वत पर पक्षीतीर्थम् है। आप लोग यदि वहाँ जाना चाहते हों तो यहीं रुक जाइये। वहाँ दर्शन कर, यहाँ से पाँच कोस दूर चेंगलपट्ट ग्राम है, वहाँ रात्रि-विश्राम कर अगले दिन यात्रा पर आगे निकल सकते हैं। नहीं तो हमारे साथ चेंगलपट्ट तक चल सकते हैं। वहाँ से हम कांची की ओर जायेंगे।

शंकरदेव ने उस विद्यार्थी से पूछा, "पक्षीतीर्थ से क्या तात्पर्य है ?"

"एकबार गुरुकुल में गुरुदेव ने एक पौराणिक कथा सुनायी थी। वह

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मैं आपको बताता हूँ। कथानुसार सतयुग में ब्रह्मा के आठ मानस पुत्र शिव के शाप से गिद्ध बन गये थे। उनमें से दो सतयुग के अन्त में, दो त्रेता के अन्त में, दो द्वापर के अन्त में शाप से मुक्त हो गये। शेष दो कलियुग के अन्त में मुक्त होंगे। लोगों में विश्वास है कि वे दोनों गिद्ध पक्षी यहाँ पुजारी के हाथ से प्रसाद ग्रहण करने आते हैं। इसी कौतुक को देखने के लिए अधिकांश यात्री यहाँ आते हैं।''

शंकरदेव ने अपने साथियों के मन को टटोला। वैसे तो उनका मन भी वहाँ रुकने का था। किन्तु वे अपने साथियों पर अपनी ओर से कोई बात कभी नहीं थोपते थे। सरोवर में स्नान कर, वहाँ पास में खड़े रुद्रकोटि लिंग के मन्दिर को देखकर वेदगिरि पहाड़ी पर आरोहण शुरू किया। पहाड़ी विशेष ऊँची नहीं थी। वहाँ भी उन्हें एक शिव-मन्दिर मिला। शिवलिंग का आकार कदली स्तम्भ जैसा था। उसे स्वयम्भूलिंग बताया गया। मन्दिर के पास थोड़ा नीचे उतर कर सब उस स्थान पर पहुँचे जहाँ पक्षी आते थे।

वहाँ खड़े दर्शनार्थी अपने साथ लाया प्रसाद पुजारी को देते। पुजारी उसे गिद्धों को खाने के लिए देता और उनकी झूठन को प्रसाद रूप में श्रद्धालुओं में वितरित कर देता। यह बात शंकरदेव को अन्धविश्वास के सिवाय कुछ नहीं लगी। उन्होंने अपने साथियों से कहा, ''किसी बात की सच्चाई समझे बिना गिद्ध जैसे सर्वभक्षी पंछियों की झूठन को प्रसाद समझ कर खाना सर्वथा अन्धविश्वास है। चलो, अब यहाँ से चलते हैं। कौतुकवश ही हमारा यहाँ आना हुआ।''

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्रीरंगम्-मदुरै

पक्षीतीर्थ से चेंगलपट्ट पहुँचते-पहुँचते सन्ध्या हो गयी। वहाँ एक धर्मशाला में रात्रि-विश्राम कर सुबह श्रीरंगम् के लिए सब निकल पड़े। रास्ता काफी लम्बा था। कुछ दिनों के बाद यात्रीदल कावेरी के तट पर पहुँचा। तट के इस पार त्रिशिरा:पल्ली (त्रिचिनापल्ली) थी और कावेरी के मध्य नौ कोस लम्बे और दो कोस चौड़े नदी-द्वीप पर श्रीरंगम्। रावण के भाई त्रिशिरा नामक राक्षस द्वारा बसाये जाने के कारण उसे त्रिशिरा:पल्ली कहा जाता था। इस त्रिशिरा का श्रीराम ने खर-दूषण के साथ वध किया था।

कावेरी में स्नान कर सब पास की एक ऊँची चट्टान पर बने मन्दिर में गये। ऊपर से चारों ओर के दृश्य दिखायी दे रहे थे। वह दृश्य देखकर शंकरदेव बोले, "दूर-दूर तक फैले कदली वनों और नारियल निकुंजों की छटा कैसी निराली लग रही है ! पिछली रात हुई बर्षा से इनकी हरियाली पर कैसा निखार आ गया !ऐसा लगता है कि सद्यस्नाता प्रकृति मन्दिर में पूजा करने निकली है !"

श्रीरंगम्

पहाड़ी से नीचे आकर नाव से सभी श्रीरंगम् द्वीप पर पहुँचे, तब तक शाम हो गयी। वहाँ एक सत्रम् में उन्हें ठहरने का स्थान मिल गया। सत्रम् में एक संस्कृत गुरुकुल था। उसके आचार्य रंगनाथ अय्यर से सबका परिचय हुआ। दूसरे दिन गुरुकुल में एकादशी का अवकाश था। इसलिए आचार्य अय्यर स्वत:स्फूर्त प्रेरणा से शंकरदेव को मन्दिर दिखाने साथ चलने तैयार हो गये।

सुबह स्नानादि कर श्रीरंगम् भगवान् के दर्शन करने निकले तब कामरूपवासियों को मन्दिर की भव्यता का आभास हुआ। परकोटे पर परकोटा पार करते हुए उन्होंने छह परकोटे पार किये। उन प्राकारों में छोटे-बड़े अठारह गोपुर मिले। तीसरे परकोटे में पण्डों और ब्राह्मणों के घर थे। चौथे में हजार स्तम्भों वाला एक विशाल सभा-मण्डप मिला। उसके स्तम्भों पर बने सुन्दर घोड़े, घुड़सवार तथा अनेकों मूर्तियाँ बनी थीं। पाँचवें घेरे में स्थित गरुड़-मण्डप में विशाल गरुड़-मूर्ति थी। उसके पास स्वर्णमण्डित गरुड़-स्तम्भ खड़ा था। उससे जरा-सी दूरी पर स्थित चन्द्रपुष्करिणी सरोवर देख शंकरदेव उसमें स्नान करने उतर गये। फिर उस परकोटे में स्थित कल्पवृक्ष, श्रीराम-मूर्ति तथा वैकुण्ठनाथ के दर्शन कर महालक्ष्मी-मन्दिर में गये। आचार्य अय्यर ने बताया, "यहाँ लक्ष्मी को श्रीरंगनायकी कहा जाता है।" मन्दिर के सामने एक मण्डप को दिखाकर अय्यर ने फिर से कहा, "यह 'कम्बन-मण्डप' है। इसी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्थान पर तमिल के महाकवि कम्बन ने अपनी कम्ब-रामायण प्रथम वार लोगों को सुनायी थी।''

शंकरदेव ने कम्ब-रामायण और कम्बन कवि के बारे में जिज्ञासा प्रगट की तो आचार्य अय्यर ने बताया, ''तमिल दक्षिण की प्राचीनतम भाषा है। इसकी अपनी एक समृद्ध परम्परा रही है। आज से कोई सात सौ वर्ष पहले दक्षिण भारत के चोल साम्राज्य के नवजागरण-युग में तंजवूर जिले में मयूरम के निकट थेरीजंदूर गांव में जन्मे तमिल के महाकवि कम्बन ने 'कम्ब रामायण' की रचना की थी। इस कथा में अयोध्या चारों ओर जल से घिरी हुई है और नगर में चारों वेदों के द्योतक चार ऊंचे गोपुर हैं। दशरथ की तीन के अलावा और भी साठ हजार रानियों की कल्पना कवि द्वारा की गई है। इस रामायण में लक्ष्मण की मूर्छा दूर करने संजीवनी लाने का विचित्र मार्ग केवल जाम्बवान को ही पता है। कम्बन की रचना में नारी शृंगार-वर्णन में 'कामिनी-केश-पाश' का विशद विश्लेषण मिलता है।'' इतना कहकर आचार्य ने कहा, ''ये बातें मैंने आपको संक्षेप में बतायी हैं। इस तमिल प्रदेश में तिरुवल्लुवर जैसे महान सन्त भी हैं। उन पर बाद में चर्चा करेंगे। आप तो यहाँ कुछ दिन रहने वाले हैं ही। चलिये, अभी श्रीरंगम् के दर्शन करने चलते हैं।''

छठा घेरा पार कर सब सातवें घेरे में स्थित श्रीरंगम् भगवान् के निज-मन्दिर तक पहुँचे। वहाँ के प्रांगण में बैठे ऊर्द्ध वैष्णव त्रिपुण्डधारी कुछ लोग उच्च स्वर में किन्हीं मन्त्रों का पठन कर रहे थे। शंकरदेव को उनकी भाषा तो समझ में नहीं आयी, परन्तु उनका स्वर वेद-पाठ जैसा लगा। उन्होंने अय्यर से इस बारे में पूछा तो उसने बताया, ''यहाँ तमिल वेद 'तिरुवायमोळी' का पठन चल रहा है। इसके रचयिता भक्त नम्माळ्वार शठ्कोप हैं। यह ग्रन्थ यहाँ वेद के सदृश्य समादृत है। तमिल भाषा में होने के कारण जनसाधारण भी इसे समझ सकता है।

मन्दिर का शिखर स्वर्णमण्डित था। इसके एक भाग में आचार्य रामानुज, विभीषण तथा हनुमान की मूर्तियाँ थीं। निजमन्दिर में शेषशय्या पर शयन किये हुए श्याम-वर्ण श्रीरंगनाथ भगवान् की विशाल चतुर्भुज मूर्ति के दर्शन कर शंकरदेव भावविभोर हो भाव-समाधि में चले गये। कुछ पलों पश्चात् उनकी आँखें खुलीं तो भगवान् के समीप बैठी लक्ष्मी पर दृष्टि गयी। वहीं पर श्रीदेवी, भूदेवी, विभीषण आदि की अन्य मूर्तियाँ भी विराजमान थीं।

शंकरदेव ने पूछा, ''यहाँ विभीषण की मूर्ति होने का क्या कारण है ?''

''श्रीरंगजी का यह विग्रह अयोध्यानरेश दशरथ के पास पीढ़ियों से था। लंका विजय के पश्चात् श्रीरामचन्द्र अपने राज्याभिषेक के उपलक्ष्य में

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सबको मुँहमांगी वस्तुएँ प्रदान कर रहे थे। उस समय विभीषण ने यह विग्रह लंका ले जाने के लिए प्रभु से माँग लिया। देवताओं को लगा कि यह दिव्य मूर्ति लंका चली गयी तो भारत भूमि अपनी अमूल्य सम्पदा से वंचित हो जाएगी। संयोग ऐसा हुआ कि लंका लौटते समय विभीषण कावेरी नदी के इस द्वीप पर कुछ समय के लिए रुके तो विग्रह को धरती पर रखा। उन्हें आकाशवाणी हुई, 'विभीषण ! यह द्वीप अत्यन्त पवित्र है। इसलिए इस विग्रह को यहीं स्थापित कर दो। यहाँ श्रीरंगनाथ भगवान् सदैव तुम्हारी लंका की ओर दक्षिणाभिमुख होकर विराजमान रहेंगे।' यह सुनकर विभीषण लंका लौट गये और हमेशा के लिए प्रभु यहीं विराज गये।''

आचार्य ने सबके रहने की समुचित व्यवस्था करवा दी। शंकरदेव कुछ दिनों के लिए वहीं टिके रहे। एक दिन वे आचार्य के साथ पास में ही स्थित जम्बुकेश्वर मन्दिर गये। उसे श्रीरंगम-मन्दिर से भी पुरातन बताया गया। विस्तृत क्षेत्र में फैले मन्दिर में तीन आँगन के सिवाय अनेक मण्डप और सरोवर थे। झूलन-मण्डप, शतस्तम्भ-मण्डप, सहस्रस्तम्भ-मण्डप, नवरात्रि-मण्डप, वसन्त-मण्डप, ध्वजस्तम्भ-मण्डप, सोमास्कन्द-मण्डप, नटराज-मण्डप और त्रिमूर्ति-मण्डप के भव्य शिल्प को देखकर शंकरदेव मन ही मन मुग्ध थे। अब सभी पाँचवें परकोटे में स्थित जम्बुकेश्वर मन्दिर में पहुँचे।

जम्बुकेश्वरलिंग के नीचे एक जलधारा निरन्तर प्रवहमान थी। मन्दिर के पीछे खड़े जामुन का प्राचीन वृक्ष था जिसके नाम पर ही वहाँ का नाम जम्बुकेश्वर पड़ा। उससे जुड़ी कथा बताते हुए आचार्य ने कहा, ''यहाँ पहले जामुन के वृक्षों से घिरा जम्बू-वन था। जामुन के एक पेड़ के नीचे शिवलिंग था। शिवलिंग पर जामुन पेड़ के पत्ते गिरा करते थे जिनसे बचाने के लिए एक मकड़ी उस पर जाला बना दिया करती थी। एक हाथी सूँड़ में जल भरकर नित्य अभिषेक किया करता था। मूर्ति पर जाला देखकर उसे बुरा लगता। उधर मकड़ी को भी बुरा लगता कि हाथी पानी डालकर बार-बार उसका बनाया जाला तोड़ जाता था। एक दिन वह हाथी की सूँड़ में घूस गयी। फल यह हुआ कि हाथी और मकड़ी दोनों मर गये। किन्तु दोनों के भाव शुद्ध थे।''

यह कथा सुनकर शंकरदेव ने कहा, ''आचार्यवर ! याद आया, मैंने किसी मण्डप के स्तम्भ पर इस कथा का चित्रांकन देखा है। किन्तु उसके साथ लगा शिलालेख तमिल में था, सो कैसे पढ़ पाता !''

शंकरदेव सन्त तिरुवल्लुवर के बारे में जानने को व्याकुल थे। वहाँ कुछ समय सुस्ताने सब बैठे तो शंकरदेव ने आचार्य अय्यर से सन्त तिरुवल्लुवर की बात छेड़ते हुए उनके बारे में जिज्ञासा प्रगट की।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आचार्य ने कहा, "आज से लगभग डेढ़ हजार वर्ष पहले महाबलीपुरम् के निकट एक गाँव में निम्न जाति के एक परिवार में तिरुवल्लुवर का जन्म हुआ। उनका पालन पोषण एक जुलाहे के घर हुआ। वे अध्ययन के साथ अपनी आजीविका चलाने के लिए कपड़ा बुनते थे। वे कविताएँ कर प्रसिद्ध हुए तो उनका नाम तिरुवल्लुवर ही लोगों के मुँह पर चढ़ गया। जुलाहे को तमिल में 'वल्लुवर' कहा जाता है। उसके साथ आदरसूचक शब्द 'तिरु' यानी 'श्री' लगाकर उनका नाम तिरुवल्लुवर हो गया। उनके रचे ग्रन्थ का नाम 'तिरुक्कुरळ' है। इसमें धर्म, अर्थ तथा काम की इतनी सुन्दर सूक्ष्मातिसूक्ष्म व्याख्या की गयी है जो काल और स्थान की सीमाओं को पार करती हुई सर्वकालीन तथा सर्वलौकिक श्रेष्ठ आदर्शों को स्थापित करने में सक्षम सिद्ध हुई है। तिरुवल्लुवर के इस ग्रन्थ को तमिल साहित्य में वही स्थान प्राप्त है जो संस्कृत साहित्य में वैदिक वाङ्मय अथवा भगवद्गीता को प्राप्त है।"

आचार्य ने आगे कहा, "तिरुवल्लुवर पर बात चल पड़ी है तो उनकी बड़ी बहन भक्तिन औवैयर के बारे में भी बताता हूँ। वे केवल भक्त ही नहीं, तमिल की प्रसिद्ध कवयित्री भी थीं। वे धर्म की सनातन मान्यताओं को ही स्वीकार करती थीं। वे यह मानती थीं कि मनुष्य-जन्म मिलना सहज नहीं है। विचारशक्ति और वाक्शक्ति दोनों मानव की विशेषताएँ हैं। मुक्ति पाना ही मनुष्य जीवन का परम लक्ष्य है। अरम् (धर्म), पोरुल (अर्थ), इन्बम् (काम) तथा वीडु (मोक्ष) ये चारों पुरुषार्थ केवल मनुष्य को सिद्ध हैं। इसलिए मानव जीवन महान है।"

वहाँ से सभी सत्रम् लौट आये। दक्षिण भारत शंकरदेव के मन को भा गया। वहाँ की भाषाएँ अब कोई व्यवधान नहीं डालती थीं, क्योंकि संस्कृत जानने वाले अनेक लोग थे। वहाँ खाद्य भी कामरूप की भाँति चावल प्रधान ही था। साहस और धीरज की उनके स्वभाव में कोई कमी नहीं थी। उनका जहाँ मन करता वहाँ कुछ दिन ठहर कर सारी बातों को समझते। इस तरह उन्हें दो सप्ताह श्रीरंगम में रहते हो गये। इस बीच वे आसपास के श्रीनिवास, समयपुरम्, ओरैयर आदि स्थलों में स्थित अनेक मन्दिर और देव-विग्रहों को देख आये।

एक दिन शंकरदेव की आचार्य रंगनाथ अय्यर से तमिल-क्षेत्र की भक्ति परम्परा पर चर्चा चल पड़ी। उन्होंने कहा, "यहाँ शैव और वैष्णव मतों को माननेवाले बहुत हैं। हमने यह सुना भी है कि दक्षिण से ही भक्ति का प्रवाह उत्तर भारत की ओर गया। हम इसके बारे में जानने के लिए उत्सुक हैं। आप इस विषय पर थोड़े विशद रूप में बतायें तो कृपा होगी।"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अय्यर ने कहा, "कहा तो ऐसा ही जाता है कि दक्षिण में हुए नायन्मारों तथा आळ्वारों ने भक्ति, प्रेम और समरसता की निर्मल त्रिवेणी प्रवाहित कर दी। तमिल में शैव-सन्तों को नायन्मार कहा जाता है। 'तिरुण्डोर पुराणम्' में तिरसठ नायन्मार भक्तों का विस्तृत वर्णन मिलता है। शिवभक्ति में लीन रहकर साधना करनेवाले नायन्मार व्यक्ति-व्यक्ति के मध्य किसी भेदभाव को नहीं मानते। इन सन्तों में अनेक ऐसे भी थे जो तथाकथित निम्न जातियों से आये थे। तिरुमूलर ग्वाले थे, कारिक्काल अम्मैयार जिन्हें पुनीतवती भी कहा जाता है, वैश्य परिवार की थीं, कण्णवार व्याध थे, मरुणीक्कियार अप्पर कृषक थे एवं नन्दनार शूद्र थे।

"नायन्मार शैव-भक्तों में हुए तिरुज्ञान सम्बन्धर की श्रेष्ठ भक्तों में गणना होती है। उन्होंने अल्प आयु में ही सभी शैवतीर्थों की तीन बार यात्रा कर ली। उनके रचे हजारों भक्तिपदों को 'तिरुप्पतिकम्' कहा जाता है जिनका कई राग-रागिनियों में गायन होता है। भजनों के सात ग्रन्थों के रचयिता इस महान भक्तकवि को 'द्राविड़-शिशु' कहकर गौरवान्वित किया जाता है। ब्राह्मण कुल में जन्मे सम्बन्धर का बीजमन्त्र 'ॐ नमः शिवाय' था। वे सभी नायन्मार शैवभक्त जनमानस में समान रूप से सम्मानित हैं।"

अय्यर ने आगे कहा, "हमारे यहाँ बारह वैष्णव भक्तों की एक मालिका 'आळ्वार' नाम से प्रसिद्ध है। आज से एक हजार वर्ष पहले धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक स्थितियाँ कोलाहलपूर्ण थीं। अनैतिकता, अराजकता एवं सामाजिक भेदभाव का बोलबाला था। कर्मकाण्डों के अतिरेक से सामान्य जनता असहाय थी। वैदिक साहित्य संस्कृत में होने के काण जनसामान्य का बड़ा वर्ग उससे दूर था। ऐसे समय में आळ्वार भक्तों ने लोकभाषा तमिल में कालजयी साहित्य का सृजन कर भक्ति की ऐसी सरिता प्रवाहित की, जिसमें समस्त दक्षिण भारत अवगाहन करने लगा।

"आळ्वारों ने वेद, उपनिषद और गीता के गूढ़ तत्त्वज्ञान को भक्ति के सरलतम स्वरूप के साथ जनसामान्य के लिए प्रस्तुत किया। क्लिष्ट कर्मकाण्डों के स्थान पर भजन, कीर्तन, नामस्मरण आदि को वैष्णव-भक्ति का आधार वनाया। वैष्णव-साहित्य में इसीको शरणागति या प्रपत्ति कहा गया; अर्थात् भगवान् की शरण में अपने आपको पूर्णरूप से समर्पित कर देने से ही प्रभु का अनुग्रह प्राप्त हो सकता है।

"आगे चलकर दक्षिण से चली भक्ति की ये उत्ताल तरंगें उत्तर भारत की ओर बढ़ीं। वैष्णव-भक्त आळ्वारों की इस अनमोल विरासत को लेकर श्रीरामानुज सम्पूर्ण भारत की यात्रा पर निकल पड़े। उनकी व्यापक शिष्य

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परम्परा में कुछ पीढ़ियों पश्चात् काशी के स्वामी रामानन्द जनसामान्य के बीच आये, जिन्होंने अपने विलक्षण क्षमतावान तेजस्वी शिष्यों के माध्यम से उत्तर भारत के ग्राम-ग्राम में भक्ति और दिव्यप्रेम को प्रचारित किया और शनैः-शनैः सम्पूर्ण राष्ट्र भक्ति के महासागर से सिक्त हो गया।

मदुरै

यात्रीदल सुबह-सुबह मदुरै के पथ पर चल पड़ा। वहाँ से सेतुबंध रामेश्वरम् जाना उनका अभीष्ट था। यात्रा पचास कोस लम्बी और बियावान वन के बीच होकर थी। मन के आत्मबल का सम्बल था। रास्ते में आये गाँवों में किसी के यहाँ टिकते-ठहरते आखिर मदुरै में उनका प्रवेश हुआ। संयोग अच्छा रहा कि नगर-प्रवेश करते ही उनका परिचय वहाँ के साहित्यानुरागी श्रेष्ठि रामनारायणन पिल्लै से हो गया। वह अपना व्यवसाय चलाने के साथ अपना ज्यादा समय पठन और साहित्य-चर्चा में व्यथित करता था, इसके साथ संस्कृत का भी अच्छा ज्ञाता था। उसने सबको अपने विशाल गृह में ठहरा लिया।

स्नानादि से निवृत होकर शंकरदेव का मन मदुरै के मुख्य मीनाक्षी-मन्दिर में जाने का हो रहा था। रामनारायणन उनके साथ चलने को सहर्ष तत्पर हो गया। उसे कहा, "महाशय ! पहले आप लोग कुछ खा लीजिये, फिर चलते हैं।"

भीतर से गृहिणी ने आकर सादर अभिवादन कर सबके सम्मुख केले के पत्तों से बनी पत्तल बिछा दी। इस बीच पिल्लै ने कहा, "महाभाग ! मन्दिर में चलने के पहले यहाँ का संक्षिप्त इतिहास आप लोगों को बताता हूँ।"

"यह तो हमारे लिए बहुत अच्छा रहेगा।" इतना कहकर शंकरदेव उसकी बातों को ध्यान से सुनने लगे।

रामनारायणन पिल्लै बताने लगा, "मदुरै को दक्षिण भारत के प्राचीनतम नगरों में माना जाता है। आज सांस्कृतिक दृष्टि से यह दक्षिण का प्रथम नगर है। मदुरै दो हजार वर्षों से भारतीय संस्कृति का केन्द्र है। पहले यहाँ के पाण्ड्य वंश का उल्लेख विभिन्न ग्रन्थों में मिलता है। यहाँ विदेशी आततायियों के अनेक आक्रमण हुए। ज्यादा दिन नहीं हुए, डेढ़-दो सौ वर्ष पहले दिल्ली के शासक अलाउद्दीन खिलजी के सेनापति मलिक काफूर ने इसे अपने अधीन ही नहीं किया, लूटा भी। पचास वर्ष उसके अधिकार में रहने के वाद विजयनगर के राजाओं ने इसे मुक्त करवाया।

"मीनाक्षी-मन्दिर को बनने में एक सौ बीस वर्ष लगे, जिसका लागत मूल्य तव एक करोड़ बीस लाख रुपये लगा बताते हैं। इस मन्दिर की

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भव्यता तो आप अभी कुछ पलों पश्चात् अपनी आँखों देखेंगे ही।''

"महाभाग ! मीनाक्षीदेवी कौन थीं ?'' शंकरदेव ने पूछा।

"कहा जाता है कि पहले यहाँ कदम्ब वन था। कदम्ब के वृक्ष तले देवताओं द्वारा पूजित भगवान् सुन्दरेश्वर का स्वयम्भूलिंग था। यहाँ के पाण्ड्य-नरेश मलयध्वज को इसका पता चला। उसने उस स्थान पर मन्दिर बनाकर नगर बसाने का संकल्प किया। पाण्ड्य-नरेश के कोई सन्तान नहीं थी। उसने अपनी पत्नी कांचनमाला के साथ दीर्घकाल तक स्वयम्भूलिंग के सम्मुख बैठकर तपस्या की। उनकी तपस्या-आराधना से प्रसन्न होकर भगवान् शंकर ने उन्हें दर्शन देकर एक कन्या प्राप्त होने का वरदान दिया। पार्वती ही अपने अंश से कन्या-रूप में राजा के यहाँ अवतीर्ण हुई। उसके विशाल सुन्दर मीन यानी मछली जैसे नेत्रों को देखकर माता-पिता ने उसका नाम मीनाक्षी रखा। मलयध्वज के कुछ समय पश्चात् स्वर्गवास हो जाने पर रानी ने राज्यभार सँभाला। मीनाक्षी युवती हुई तो भगवान् शंकर सुन्दरेश्वर के रूप में आये। रानी कांचनमाला ने बड़े समारोह के साथ दोनों का विवाह कर दिया।''

दूर से ही मीनाक्षी-मन्दिर के गोपुर दिखायी दे रहे थे। पिल्लै उन्हें पूर्वी द्वार 'नगर-मण्डप' से भीतर ले गया। वहाँ स्थान-स्थान पर पुष्प विक्रेताओं की सजीं दुकानों से गमक उठ रही थी। आगे आये 'अष्ट-शक्ति-मण्डप' में स्तम्भों के स्थान पर बनायी गयी आठ लक्ष्मियों की मूर्तियों ने छत का भार उठा रखा था। वहाँ मीनाक्षी के जन्म, बचपन और युवावस्था के चित्रांकन थे। मण्डप के स्तम्भों पर कलात्मक पौराणिक चित्र अंकित थे।

आगे जाकर स्वर्णकमल सरोवर आया। उसकी कथा बताते हुए रामनारायणन ने कहा, "वृत्रासुर-वध के कारण ब्रह्म हत्या का पाप लगने पर इन्द्र इस सरोवर में उगे कमल की नाल में बहुत दिनों तक छिपा रहा।'' सरोवर के चारों ओर बने मण्डपों की प्राचीरों पर भगवान् शंकर की लीलाओं के चित्र बने थे।

आगे आये 'किलिकुण्डु' मण्डप में पिंजरे में बंद तोते को दिखाकर पिल्लै ने कहा, "तोता मीनाक्षीदेवी का प्रिय पक्षी है।'' आगे आयी एक सिंह की मूर्ति दिखाकर पिल्लै ने कहा, "महाशय ! सिंह के मुँह में एक पाषाण-गेंद है। आप इसके जबड़े में हाथ डालकर इसे फिरा सकते हैं, परन्तु निकाल नहीं सकते।'' उस अद्भुत शिल्प को देखकर शंकरदेव ने शिल्पकार की प्रसंशा करते हुए कहा, "सचमुच, इसे बनाना बड़ा कठिन और श्रमसाध्य कार्य रहा होगा।''

आगे आये 'पुरुप-मृग मण्डप' में पंच पाण्डवों की मूर्तियों के अलावा एक ऐसी मूर्ति भी बनी थी जिसका आधा भाग पुरुष का और आधा भाग

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मृग का था। प्राचीरों पर अंकित नाट्य शास्त्र में वर्णित विभिन्न नृत्य-मुद्राओं को उन्होंने बड़ी सूक्ष्मता से देखा। वहीं पर मीनाक्षी देवी का निज-मन्दिर था। मन्दिर के द्वार पर पीतल से बनी द्वारपालों की मूर्तियाँ थीं। बहुत भीतर जाकर बहुमूल्य वस्त्राभरणों से सुशोभित श्याम-वर्णी मीनाक्षी देवी की मूर्ति स्थापित थी।

उस मन्दिर-परिक्रमा में अनेक देवी-देवताओं के छोटे-बड़े मन्दिरों को देखते हुए शंकरदेव सुन्दरेश्वर-मन्दिर पहुँचे। प्रवेश-द्वार पर प्रस्तर से बने द्वारपाल खड़े थे। मन्दिर में ताण्डव नृत्यरत नटराज की प्रतिमा थी। मन्दिर के बाहर जगमोहन के स्तम्भों पर भगवान् शंकर की विभिन्न लीलाओं की सजीव मूर्तियों के शिल्प-नैपुण्य को देखकर वे मोहित हो गये। वहाँ के द्वार के पास भी कांची के मन्दिर जैसी पत्थर से बनी जंजीर छत से लटकी हुई देखी।

सभी उस समय आश्चर्यचकित हो गये, जब पिल्लै ने उन्हें एक जगह बने पाषाण-स्तम्भों के पास ले जाकर कहा, "इन पर हाथ से ठोकने पर संगीत के सातों स्वर 'सा रे ग म प ध नि' निकलते हैं।" फिर उसने एक साथ खड़े गोल स्तम्भों पर अपने सधे हाथों से ताल देकर बजाया। यह किसी की कल्पना में कैसे होता कि पाषाणों से भी संगीत-लहरी निकल सकती है ! शंकरदेव भी थोड़े अभ्यास के बाद उन स्तम्भों से सप्त-स्वर निकालने में सक्षम हो गये। अब तक शाम का धुँधलका छा गया।

शंकरदेव रात्रि में लेटे हुए विचार कर रहे थे, इतने लम्बे समय से दक्षिण भारत की यात्रा कर रहा हूँ। यहाँ के साहित्य, नृत्य, शिल्प आदि को समझने का मैंने यथासम्भव प्रयास किया है। मैंने कामरूप में जो सांस्कृतिक-क्रान्ति लाने की बात मन में सोच रखी है, उसमें ये बातें मेरी सहायक होंगी। यहाँ बार-बार आना कठिन है। वैसे मुझे भी बरदोवा लौटने की कौन-सी शीघ्रता है ! पत्नी सूर्यवती अब इस संसार में रही नहीं, पुत्री मनु का विवाह कर आया। वह अपने पति हरि के साथ सुखी होगी। हाँ ! दादी की चिन्ता अवश्य है। किन्तु उनकी देखभाल करने के लिए जयन्त दादा, वनगंयागिरि आदि हैं ही। चन्दरी तो छाया की भाँति उसके साथ लगी रहती है। दादी के मोह में फँसा रहा तो आगे की यात्रा नहीं कर पाऊँगा। कुछ पाने के लिए कुछ छोड़ना भी पड़ता है। मदुरै में बहुत दिन हो गये, अब रामेश्वरम् की ओर प्रस्थान करना चाहिये।

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रामेश्वरम्-धनुष्कोटि

रामनारायणन पिल्लै को शंकरदेव ने धनुष्कोटि जाने का अपना मन्तव्य बताया। यह सुन, उसने अपने मन की बात कही, ''महाशय ! वहाँ जाने के लिए सर्वप्रथम रामेश्वरम् जाना होगा। मुझे भी वहाँ गये दीर्घकाल हो गया, परन्तु धनुष्कोटि कभी नहीं जाना हुआ। मेरा मन भी आपके साथ जाने का हो गया है। आप दो दिन और ठहर जाइये। यात्रा की तैयारी करने के लिए कुछ समय दीजिये।''

सेतुबंध रामेश्वरम्

वैलगाड़ियाँ बाहर तैयार खड़ी थीं। एक गाड़ी पर बिछाने-ओढ़ने के वस्त्रों के साथ प्रचुर मात्रा में खाद्य-सामग्री लाद दी गयी। पिल्लै ने सेवा के लिए दो भृत्य साथ ले लिये। कुछ दिनों की यात्रा के पश्चात् सागर तट पर बसे पाम्बन ग्राम तक गाड़ियाँ पहुँचीं। पिल्लै ने कहा, ''यहाँ से नौका से सागर पार कर रामेश्वरम् जाना होगा। कहते हैं कि रामजी के युग में यहाँ समुद्र नहीं था। रामेश्वरम् मुख्यभूमि से जुड़ा था। राम की माया रामजी ही जानें। कई कोसों में फैले रामेश्वरम् द्वीप का आकार शंख के समान है। इसके आसपास अनेक छोटे-छोटे और द्वीप भी हैं। रामेश्वरम् द्वीप के अन्तिम छोर पर धनुष्कोटि है जहाँ से लंका जाने के लिए प्रभु श्रीराम की वानर सेना ने सेतु बनाया था। आज इस द्वीप को रामनाथपुरम् के नाम से भी जाना जाता है।''

पाम्वन में रात्रि-विश्राम के बाद, सुबह नौका-यात्रा शुरू हुई। गाड़ियों को पाम्वन में ही एक भृत्य के आसरे छोड़ दिया। समुद्र की लहरों पर नाव हिचकोले खाती आगे बढ़ रही थी। सागर की लहरों पर बहती ठण्डी हवा के झकोरों के साथ शंकरदेव झूम-झूम कर हाथों पर ताल दे सुमधुर स्वर में गाने लगे—

अस्ति रामेश्वरं नाम रामसैतौ पवित्रितम् ।
क्षेत्राणामपि सर्वेषां तीर्थानामपि चोत्तमम् ।।
दृष्टमात्रे रामसेतौ मुक्तिः संसारसागरात् ।

शंकरदेव ने अपने साथियों का इसका अर्थ समझाते हुए कहा, ''स्कन्द पुराण में कहा है कि भगवान् श्रीराम द्वारा बनाए हुए सेतु के दर्शन से जो परम पवित्र हो गया है, वह रामेश्वर-तीर्थ सभी तीर्थों तथा क्षेत्रों में उत्तम है। उस सेतु के दर्शन मात्र से संसार-सागर से मुक्ति हो जाती है।''

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इतना बताकर वे अपनी तन्मयता में फिर गाने लगे—

गण्यन्ते पांसवो भूमेर्गण्यन्ते दिवि तारकाः ।
सेतुदर्शनजं पुण्यं शेषेणापि न गण्यते ।।
समस्तदेवतारूपः सेतुबन्धः प्रदर्शितः ।
तद्दर्शनवतः पुंसः कः पुण्यं गणितुं क्षमः ।।
सेतु रामेश्वरं लिङ्गं गन्धमादनपर्वतम् ।
चिन्तयन् मनुजः सत्यं सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।
सेतुसैकतमध्ये यः शेते तत्पांसुकुण्ठितः ।
यावन्तः पांसवो लग्नास्तस्याङ्गे विप्रसत्तमाः ।।
तावतां ब्रह्महत्यानां नाशः स्यान्नात्र संशयः ।

शंकरदेव का गायन शेष हुआ तो रामनारायणन ने कहा, "हे महाभाग ! आप जैसे विद्वान का सान्निध्य प्राप्त करने के लिए ही मैं इस यात्रा पर चला आया। यह मेरा परम सौभाग्य है। सत्संग बड़े भाग्य से मिलता है।"

"यह आपका बड़प्पन है जो ऐसा कहते हैं, गुरुकुल में पढ़े हुए पुराणों के कुछ श्लोक मुझे याद हो गये, जिनको समय पर गा लेता हूँ। इसमें मेरी कैसी महानता ! आप ऐसा कहकर मुझे संकोच में डाल रहे हैं।"

"गुरुदेव ! आपने इन श्लोकों का अर्थ अभी तक नहीं बताया !" परमानन्द ने बीच में कहा।

"ये श्लोक भी स्कन्द पुराण के ही हैं। इनमें कहा गया है, भूमि के रजकण तथा आकाश के तारे गिने जा सकते हैं, पर सेतुदर्शन-जन्य पुण्य को तो शेषनाग भी नहीं गिन सकता। सेतुबंध को समस्त देवताओं का रूप कहा गया है। उस सेतु के दर्शन करनेवाले पुरुष के पुण्य को भला कौन गिन सकता है ? सेतु तथा गन्धमार्दन पर्वत का चिन्तन करनेवाला मनुष्य भी वस्तुतः सारे पापों से मुक्त हो जाता है। जो सेतु की बालुका में शयन करता है, उसकी धूलि से वेष्टित होता है, उसके शरीर को बालू के जितने कण छूते हैं, उतनी ब्रह्महत्याओं के पापों का नाश हो जाता है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं।"

बातचीत में पता ही नहीं चला कि रामेश्वर द्वीप का तट कब आ गया। रामनारायणन पिल्लै सबको तंजौर के राजा द्वारा बनाये गये सत्रम् में ले गया। वहाँ सब के ठहरने की समुचित व्यवस्था हो गयी।

मन्दिर वहाँ से विशेष दूर नहीं था। गंगासागर (बंगोपसागर) किनारे खड़े मन्दिर के बाहर अनेक शिल्पकार और श्रमिक निर्माण-कार्य में लगे थे।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

छैनी पर पड़ती हथौड़ियों की लगातार चोट से निर्जीव पाषाण झंकृत हो रहे थे। पिल्लै शंकरदेव के कौतुहल को जान गया। उसने बताया, "महाभाग ! मन्दिर के गर्भगृह को पहले रामनाथपुरम् के राजा सेतुपति ने छोटे रूप में बनवाया था। फिर कोई पाँच सौ वर्ष पहले लंका के राजा पराक्रमवाहु ने इसका निर्माण कराया। तब से मन्दिर के शेष भागों का निर्माण सतत चल रहा है। निर्माता और निर्माणकर्ताओं की कई पीढ़ियाँ बीत गयीं परन्तु कार्य अभी तक पूरा नहीं हुआ। इस समय गोपुर पूर्ण होकर अब परकोटे के बरामदे और प्राचीरों का निर्माण-कार्य चल रहा है।"

रामनारायणन पिल्लै ने आगे कहा, "अभी रामेश्वरम् मन्दिर देख आते हैं। कल तड़के स्फटिकलिंग के दर्शन करने के बाद हम समुद्र-स्नान कर मन्दिर स्थित अन्य लघु तीर्थों के भी दर्शन करते हुए रामेश्वर के दर्शन करेंगे।"

गर्भगृह के सम्मुख बनी नन्दी की विशाल मूर्ति के स्थापत्य ने सबको अभिभूत किया। भीतर स्थापित रामेश्वरम् ज्योतिर्लिंग के ऊपर धातु से बने शेषनाग के फणों का छत्र शोभायमान था।

मन्दिर से लौटकर शंकरदेव ने वहाँ हो रहे निर्माण को देखा। बनाये गये बरामदे में स्वच्छ हवा और प्रकाश आने के लिए गवाक्ष बनाये गये थे। उसकी छत जमीन से कोई बीस हाथ ऊँची थी। खम्भों पर सुन्दर पच्चीकारी कर बेलबूटे आंके गये थे। बरामदे की लम्बाई भी काफी थी। शंकरदेव ने साथियों से कहा, "देखा, तुम लोगों ने। मानवी-धैर्य का यह अनुपम उदाहरण है। शताब्दियों से एक निर्माण कार्य को पीढ़ियों दर पीढ़ियाँ सतत चलाते रहना सांस्कृतिक भाव का एक विशिष्ट प्रमाण है।"

तड़के अन्धेरे-अन्धेरे सभी मन्दिर में स्फटिकलिंग देखने पहुँचे। अत्यन्त स्वच्छ और पारदर्शी स्फटिकलिंग पर पुजारी द्वारा जलाभिषेक के पश्चात् दुग्ध-धारा चढ़ाते समय सबको उसका रूप स्पष्ट दिखायी दिया। वहाँ से सब मन्दिर के बाहर लहराते सागर तट पर आये। सूर्योदय होने में कुछ ही क्षणों की देर थी। थोड़ी-सी प्रतीक्षा के बाद सूरज समुद्र के अनन्त छोर से झांकता दिखायी दिया, मानो कोई लजालू बालक झाँककर देख रहा हो। बालरवि की किरणों ने सागर के आंगन को केसरिया रंग से रँग दिया। धीरे-धीरे ललछौंहा सूर्य ज्यों-ज्यों क्षितिज से ऊपर उठता गया अपना रंग बदलकर सुनहरा होता गया। अब उसकी स्निग्धता में तेज समाता जा रहा था। उस अद्भुत दृश्य को आँखों में समेटने के बाद शंकरदेव का ध्यान सागर की लहरों पर गया। उन्होंने कहा, "सागर यहाँ कितना शान्त दिख रहा है। यहाँ इसके

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जल में न कोई आवेग और न ही उत्ताल तरंगें, बस शान्त स्थिर जलराशि का अथाह भण्डार है। लगता है, रामसेतु बनाते समय इसने श्रीराम के सम्मुख जो शान्त मुद्रा धारण की थी, कदाचित उसी मनोदशा में यह आज भी है। अब चलो, स्नान कर मन्दिर में चलते हैं।''

समुद्र में नहाकर शरीर चिड़पिड़े हो गये। पिल्लै ने कहा, ''मन्दिर चल रहे हैं, वहाँ अनेक कूप हैं जिन्हें तीर्थों के समान पवित्र माना जाता है; वहाँ निर्मल जल से फिर नहायेंगे।''

विशाल रामेश्वरम् मन्दिर में गवय-तीर्थ, नल-तीर्थ, नील-तीर्थ, गवाक्ष-तीर्थ, गन्धमादन-तीर्थ, गंगा-तीर्थ, यमुना-तीर्थ, शंख-तीर्थ, चक्र-तीर्थ आदि नामक इक्कीस कुँएँ थे। नहाकर सबने प्रफुल्लित मन से गर्भगृह में प्रवेश कर रामेश्वरम् ज्योतिर्लिंग के दर्शन किये।

मन्दिर परिसर के बाहर छोटी-छोटी दुकानें लगी थीं। उनमें शंख-सीपी के अलावा सीपियों से बने आभूषण तथा खिलौने जैसी आकृतियाँ बेचने के लिए सजी थीं। पिल्लै ने कहा, ''कुछ पसन्द है तो ले लीजिये।''

शंकरदेव ने विनम्रता से कहा, ''हम इन्हें कहाँ-कहाँ ढोते फिरेंगे। ऐसी वस्तुएँ तो सभी तीर्थों में मिलती हैं। मैं तो बस, इन तीर्थों की स्मृतियाँ ही अपने साथ ले जाना चाहता हूँ।''

दस दिन के प्रवास में यात्रियों ने रामेश्वरम् मन्दिर से गन्धमादन जाते, रास्ते में सुग्रीव-तीर्थ, अंग-तीर्थ, जाम्बवान-तीर्थ और अमृत-तीर्थ के अलावा रामझरोखा के दर्शन किये। फिर साक्षी-गोपाल, जटा-तीर्थ, एकान्त-राम मन्दिर, कोदण्डराम स्वामी, विल्लूरणि-तीर्थ आदि स्थलों को देखते हुए समुद्र-किनारे स्थित मीठे जल के कूप 'सीता-कुण्ड' पर गये। इसी स्थान पर सीता ने अपने पूर्व-जन्म में वेदवती के रूप में राम को पति रूप में पाने के लिए तपस्या की थी।

धनुष्कोटि

कुछ कोस दूर स्थित धनुष्कोटि जाने के लिए रामनारायणन पिल्लै ने बैलगाड़ियों की व्यवस्था सत्रम् के व्यवस्थापक को कहकर पहले से ही करवा रखी थी। वहाँ पहुँचकर यात्रीदल को लगा जैसे वे चारों ओर अथाह जल-राशि से घिरे हों। प्रायद्वीप के अत्यन्त सँकरे छोर की एक ओर गंगासागर और दूसरी ओर भारत-महोदधि की उत्ताल तरंगें उछल रही थीं। वहाँ दोनों सागरों का संगम था।

धनुष्कोटि के सामने लंका थी। लंका तो नहीं दिख रही थी, परन्तु सागर में बड़ी-बड़ी चट्टानें दृष्टिगोचर हो रही थीं। वहाँ के दृश्यों को देखकर शंकरदेव भावविभोर हो गये। तट की बालू पर पद्मासन लगा ध्यानस्थ हो कितनी ही देर

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वे बैठे रहे। फिर भाव-समाधि से निकलकर साथियों से कहा, "वाल्मीकि रामायण में ऐसा वर्णित है कि लंका-विजय के पश्चात् विभीषण ने शंका प्रकट की कि इस सेतु के चलते उनके राज्य पर भारत के राजाओं द्वारा आक्रमण होते रहने की सम्भावना सदैव बनी रहेगी। यह सुनकर प्रभु राम ने धनुष से राम-सेतु के इस ओर के भाग को भंग कर दिया। समुद्र में उभरी हुई दूर-दूर तक शिलाओं की जो शृंखला दिख रही है, यह उसी राम-सेतु की है।"

सागर की लहरें आ-आकर चट्टानों पर पछाड़ खातीं। इसमें संगीत जैसी एक ध्वनि थी, एक ताल थी। समुद्र में सब नहाने उतरे। काफी देर तक जल-कल्लोल चलता रहा। शंकरदेव तैरकर सागर में उभरी एक चट्टान पर पहुँचकर कुछ पलों तक ध्यानस्थ हो बैठ गये। फिर तट पर अत्यन्त प्रसन्न मुद्रा में लौटे। मन की मौज में वे एक श्लोक गुनगुनाने लगे—

दक्षिणाम्बुनिधौ पुण्ये रामसेतौ विमुक्तिदे ।
धनुष्कोटिरिति ख्यातं तीर्थमस्ति विमुक्तिदम् ।।

"गुरुदेव ! इसका अर्थ समझ में नहीं आया।" परमानन्द ने कहा।

"इसका अर्थ मैं समझाता हूँ, स्कन्द पुराण के इस श्लोक में कहा गया है कि दक्षिण-समुद्र के तट पर जो परम पवित्र रामसेतु है, वहीं धनुष्कोटि नाम से विख्यात एक परम उत्तम मुक्तिदायक तीर्थ है।" इतना कहकर उन्होंने आगे कहा, "यह हमारा परम सौभाग्य है जो अपने घरों का मोह छोड़कर इस दीर्घयात्रा पर आ पाये। स्कन्द आदि अनेक पुराणों में मैंने तीर्थों के बारे में पढ़ा है, परन्तु पढ़ने और देखने में बहुत अन्तर है। यहाँ आकर जो सुखानुभूति हमें हो रही है वह पुराणों को पढ़ने मात्र से नहीं होती। तीर्थाटन के बहाने अपनी भारतभूमि की भाषा, साहित्य, लोकनृत्य, संगीत, लोगों का रहन-सहन, न जाने कितनी बातों को हम जान-समझ पा रहे हैं। पुराण पढ़कर मात्र उनका धार्मिक माहात्म्य ही जाना जा सकता है परन्तु देश को समग्र रूप में देखने के लिए तो यह यात्रा आवश्यक है।"

तट के पास स्थित श्रीराम-मन्दिर में सबने राम-लक्ष्मण-जानकी के दर्शन किये। बाहर बरामदे की प्राचीर पर उत्कीर्ण हनुमान-प्रतिमा के सम्मुख बैठा एक साधु प्रसाद रूप में चने बाँट रहा था।

रामेश्वरम् में रहते एक पखवाड़ा हो गया। शंकरदेव ने रामनारायणन पिल्लै से कन्याकुमारी जाने की अपनी मंशा जतायी। इस पर पिल्लै ने कहा, "महाभाग ! पाम्बन तक तो हमें साथ चलना ही है। वहाँ से एक बैलगाड़ी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आपके साथ कर दूँगा। गाड़ीवान थम्बी कन्याकुमारी के आसपास के अन्य तीर्थों और वहाँ के रास्तों से भलिभाँति परिचित है और बड़ा समझदार भी है। यह कन्याकुमारी तक आप लोगों को पहुँचाकर वहाँ से मदुरै लौट आयेगा। हाँ, एक समस्या है कि यह तमिल के अलावा और कुछ नहीं समझता। वैसे तमिल के कुछ शब्द तो आप भी समझने लगे हैं। फिर भी आप चिन्ता मत कीजिये, मैं इसे सारी बातें समझा दूँगा, ताकि आपको यात्रा में किसी प्रकार का कष्ट न हो।''

''आप इतना कष्ट क्यों करेंगे ! आपसे मार्ग-दर्शन लेकर हम आगे की यात्रा कर लेंगे। आपने इतना साथ दिया, यह ही क्या कम है !''

नौका से पाम्बन पहुँचकर उन्होंने पिल्लै से फिर अनुमति माँगी। उसने आग्रपूर्वक कहा, ''आप इतना संकोच क्यों कर रहे हैं। थम्बी इस बहाने अपने गाँव श्रीबैकुण्ठम् भी हो आयेगा। आप भी वहाँ भगवान् विष्णु के दर्शन कीजियेगा। वहाँ से कन्याकुमारी ज्यादा दूर नहीं।'' आखिर पिल्लै के आग्रह के सम्मुख उनको नतमस्तक होना पड़ा। उससे गले मिलकर आगे की यात्रा प्रारम्भ हुई।

तिरुनल्वेली

यात्रा कोसों लम्बी थी। रास्ते में आनेवाले गाँवों में रात्रि-विश्राम करते हुए गाड़ी कुछ दिनों में ताम्रपर्णी नदी के किनारे बसे तिरुनल्वेली (तिन्नेवेली) पहुँची। पिल्लै गाड़ीवान को थम्बी कहकर पुकाराता था, वे भी उसे उसी नाम से पुकारने लगे। थम्बी सीधे उन्हें एक सत्रम् में ले गया। वहाँ रहने की व्यवस्था हो गयी।

ताम्रपर्णी नदी में स्नान किया। तट के पास ही एक शंकर-मन्दिर था। मन्दिर देखकर सब ग्राम के मध्य स्थित भगवान् विष्णु के वरदराज-मन्दिर में दर्शनार्थ गये। गाँव के दूसरे भाग में नीलप्पेश्वर महादेव का मन्दिर था। वह दो भागों में विभक्त था। एक भाग में शिव-मन्दिर और दूसरे में पार्वती-मन्दिर था। मन्दिर परिसर में स्थित सरोवर के पास सहस्रस्तम्भ मण्डप था। वहाँ के निज-मन्दिर के सम्मुख स्वर्ण-मण्डित स्तम्भ और आगे जाकर नन्दी की विशाल मूर्ति देखी। गर्भगृह में ताम्रेश्वरलिंग था। दूसरे मन्दिर में नीलप्पेश्वर का स्वयम्भू लिंग था। मन्दिर के वाहर स्थापित शेषशायी विष्णु की विशाल मूर्ति के सबने दर्शन किये। मन्दिरों का स्थापत्य और देव-विग्रहों को देखकर शंकरदेव ने स्वयं को धन्य माना।

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तीन सागरों के संगम पर

तिरुनल्वेली में रात्रि-विश्राम कर सुबह सब आगे की यात्रा पर चल पड़े। रास्ता ज्यादा लम्बा नहीं था। आठ-नौ कोस चलने पर थम्बी का गाँव श्रीवैकुण्ठम् आ गया। यह गाँव अपने विष्णु-मन्दिर के लिए भी प्रसिद्ध है।

श्रीवैकुण्ठम्

थम्बी आग्रहपूर्वक सबको अपने घर ले गया। कच्चे घर पर खपरैल छायी थी। वह उन्हें भीतर ले जाते संकोच कर रहा था। शंकरदेव उसके मन के भाव ताड़ गये। उसकी झिझक दूर करने उन्होंने उसके घर पर भोजन करने का संकेत किया। उसकी पत्नी ने आकर सबके हाथ-पाँव धुलाये। पत्नी को भोजन बनाने को कहकर थम्बी ने उन्हें हाथ जोड़कर 'कोइल' (मन्दिर) शब्द उच्चारकर अपने साथ चलने का संकेत किया। कोइल शब्द का अर्थ शंकरदेव समझते थे, वे उसके भावों को समझ गये कि भोजन बनेगा उतनी देर में मन्दिर में दर्शन कर आते हैं।

घर से थोड़ी दूरी पर ही विष्णु-मन्दिर था। वहाँ के पोखर में सबने दोबारा स्नान किया। गोपुर से प्रवेश करने पर स्वर्णमण्डित स्तम्भ मिला। निज-मन्दिर में प्रतिष्ठित शेषशायी भगवान् विष्णु के पास श्रीदेवी और भूदेवी की मूर्तियाँ थीं। मन्दिर-परिक्रमा में महालक्ष्मी-मन्दिर के दर्शन कर आगे बढ़ने पर उत्सव-भवन आया। उसके स्तम्भों पर आळ्वार भक्तों की मूर्तियाँ बनी थीं।

थम्बी के घर लौटे तो गाँव के गुरुकुल के आचार्य कृष्णमूर्ति मेनन वहाँ उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उनके साथ उनका विद्यार्थी और थम्बी का बेटा भी घर आया था। दरअसल घर से निकलते समय थम्बी अपनी पत्नी को सारी बातें समझा गया था। संस्कृताचार्य के आ जाने से बातचीत करने में सहजता आ गयी। थम्बी ने कुछ कहा। उसका आशय समझाते हुए आचार्य मेनन ने कहा, "इसका कहना है कि मैं गरीब आदमी हूँ, मेरे पास आपके रहने-सोने की योग्य व्यवस्था नहीं। यहाँ आपको कष्ट होगा। आप कहें तो यहाँ से डेढ़ कोस की दूरी पर ही आळ्वार तिरुनगरी है। वहाँ भी भगवान् विष्णु का विशाल कोइल है। वहाँ के विष्णु-मन्दिर में सारी व्यवस्था करवा दूँ। वहाँ सारी सुविधाएँ हैं। भोजन कर वहाँ चलते हैं। सुबह आपको वहाँ से लेकर तोताद्रि (नांगनेरी) के लिए निकल

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जाऊँगा, जहाँ से दो दिनों में कन्याकुमारी पहुँच जायेंगे।''

शंकरदेव ने कहा, ''यह ऐसा क्यों सोचता है ! हमारे लिए सुविधाएँ नहीं इसका प्रेमभाव महत्त्वपूर्ण है। यात्रा तो एक तपस्या है। यह भी क्या कम बड़ी बात है जो हमें गाड़ी में यहाँ तक लेकर आया है।''

इतना कहकर उन्होंने थम्बी को गले लगाया। थम्बी के आँसुओं से उनका कन्धा गीला हो गया। इस बीच उसकी पत्नी ने भोजन तैयार होने की सूचना दी। केले के पत्तों पर भात के साथ साँभर, रसम्, दही, दो प्रकार की तरकारी, लाल चटनी, अचार परोसा गया। इतनी आवभगत देखकर शंकरदेव भावुक हो उठे। उन्होंने सोचा, सच है, गरीब भोजन के साथ आत्मीयता भी परोसता है, धनी के षट्व्यंजनों में तो औपचारिकता का तड़का लगा होता है।

भोजनोपरान्त शंकरदेव और आचार्य के मध्य आळ्वार और रामानुज-सम्प्रदाय पर चर्चा चल पड़ी। आचार्य ने बताया, ''वैष्णव-मन्दिरों में सिद्ध भक्तों को आळ्वार कहा जाता है, जिन्हें कोई-कोई सूरि भी कहते हैं। इनमें बारह विशेष प्रसिद्ध हैं। हम अपनी द्रविड़-भाषा में इन्हें 'पन्निरुवर आळ्वार' भी कहते हैं।''

शंकरदेव ने कहा, ''आळ्वार या रामानुज-सम्प्रदाय के बारे में हमें श्रीरंगम् में आचार्य अय्यर ने भी बताया था। किन्तु इनकी भक्त-परम्परा के बारे में उस समय नहीं जान पाये। उस बारे में बता सकें तो बड़ी कृपा होगी।''

आचार्य कृष्णमूर्ति ने बताया, ''आचार्य रामानुज की परम्परा नारायण से प्रारम्भ होती है। प्रत्येक कल्प में नारायण से प्रवर्तित निवृत्तिप्रधान भागवत धर्म की परम्परा का अलग-अलग रूप रहा है। इस युग में इस परम्परा का पुनरुज्जीवन क्रमवार हुआ है। श्रीमद्भागवत महापुराण में लिखा है—

कलौ खलु भविष्यन्ति नारायणपरायणाः ।
क्वचित् क्वचिन्महाराज द्रविड़ेषु च भूरिशः ।।
ताम्रपर्णी नदी यत्र कृतमाला पयस्विनी ।
कावेरी च महापुण्या प्रतीची च महानदी ।।

अर्थात् इस कलियुग के आरम्भ में नारायणपरायण भक्तों की एक माला द्रविड़देश में ताम्रपर्णी, कृतमाला, पयस्विनी, कावेरी और प्रतीची महानदी के प्रदेशों में प्रादुर्भूत होगी।''

आचार्य ने आगे कहा, ''आळ्वार भक्तों का जन्म भी इन्हीं प्रदेशों में हुआ। ताम्रपर्णी भूमि में आळ्वार-शिरोमणि शठकोप और मधुरकवि का,

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कृतमाला के समीप सन्त विष्णुचित्त और भक्तिन गोदा का, पयस्विनी के प्रदेश में भक्त भूतयोगी, सरोयोगी, महायोगी और भक्तिसार का, कावेरी क्षेत्र में भक्त भक्ताङ्घ्रिरेणु, मुनिवाहन और परकाल का तथा महानदी के तट पर भक्त कुलशेखर का जन्म हुआ। इन आळ्वार भक्तों में आळ्वार-शिरोमणि शठकोप का नाम उस परम्परा में आता है, जो नारायण से आरम्भ होकर आचार्य रामानुज तक पहुँचती है।''

शंकरदेव ने जिज्ञासा प्रगट करते हुए कहा, ''आळ्वार भक्तों के बारे में जानने की हमारी ललक बलवती हो रही है। कृपया बताएँ।''

आचार्य ने बताया, ''आळ्वार-भक्त अपनी मातृभाषा तमिल के साथ-साथ संस्कृत के भी प्रकाण्ड विद्वान थे। तमिल प्रदेश में ये अपने तमिल नामों से ही ज्यादा प्रसिद्ध हैं। जनसामान्य की भाषा भी तमिल है। इसलिए उन्होंने अपना साहित्य तमिल में ही रचा।

''आळ्वार-शिरोमणि शठकोप का तमिल नाम नम्माळ्वार था, वे जाति के शूद्र थे। गुरु परम्परा के ग्रन्थों के अनुसार उनका जन्म कलियुग प्रारम्भ होने के 43वें वर्ष में आज से 4500 वर्ष पूर्व हुआ था। किन्तु विद्वानों के अभिमत से वे एक हजार वर्ष पहले हुए थे। भक्त नम्माळ्वार स्वयं शूद्र थे परन्तु उनकी विद्वता तथा भक्ति से प्रभावित होकर अनेक ब्राह्मण भी उनके शिष्य बने। वे अविवाहित रहे, सांसारिक वस्तुओं में उनका कोई आकर्षण नहीं था। उनके रचे प्रमुख ग्रन्थों में 'तिरुविरुत्तम', 'तिरुवाचिरियम', 'पेरिय तिरुवत्तादि', 'तिरुवायमोळी' हैं। तिरुविरुत्तम को तो ऋग्वेद का सार ही माना जाता है।''

आचार्य मेनन ने आगे कहा, ''कल ही गुरुकुल में शिष्यों को इस विषय पर पढ़ाया था। इसलिए आपको बताने में सहजता हो गयी। हाँ, तो मैं बता रहा था, मधुरकवि आळ्वार का जन्म ब्राह्मण परिवार में हुआ था। आपको यह जानकर आश्चर्य भी होगा कि उन्होंने अपनी 137 वर्ष की वयोवृद्ध अवस्था में शूद्र कुलोत्पन्न 16 वर्षीय नम्माळ्वार शठकोप का शिष्यत्व ग्रहण किया। कहा जाता है कि उन्होंने 171 वर्ष की दीर्घायु में अपनी इहलीला समाप्त की। मधुरकवि आळ्वार की एकमात्र रचना 'कण्णिनुल चिरुताम्बु' है जिसमें अपने गुरु नम्माळ्वार को ईश्वर के तुल्य मानकर उनकी स्तुति की गयी है।''

शकंरदेव ने कहा, ''मधुरकवि आळ्वार के बारे में जानकर अचरज हुआ। अपने से इतनी छोटी उम्र के गुरु के प्रति भी इतना

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्रद्धाभाव रखा जा सकता है ! अन्य भक्तों के बारे में जानने के लिए हमारी जिज्ञासा बढ़ती जा रही है।''

मेनन ने कहा, ''इसी प्रकार भक्त विष्णुचित्त का तमिल नाम पेरियाळ्वार था। आज से करीब सात सौ वर्ष पहले ब्राह्मण कुल में जन्मे पेरियाळ्वार ने सभी भेदभाव का विरोध कर भक्ति को ही प्रमुख माना। विष्णु के अनन्य भक्त पेरियाळ्वार दिनभर विष्णुसहस्रनाम का स्मरण करते थे। उनकी प्रधान रचनाओं में 'तिरुपल्लाण्डु' और 'पेरियाळ्वार तिरुवायळी' प्रमुख हैं। पेरियाळ्वार तिरुवायळी में श्रीकृष्ण की बाललीलाओं का बड़ा ही मनोरम वर्णन किया गया है। उनके पदों को सैकड़ों वर्षों से तमिल माताएँ घर-घर लोरी के रूप में गाती आयी हैं।''

आचार्य ने कहा, ''आळ्वार भक्त-परम्परा में हुई एकमात्र नारी भक्तिन गोदा तमिलभाषियों में भक्तिन आण्डाल के नाम से जानी जाती हैं। वे नन्ही नवजात कन्या के रूप में फूलों पर लेटी हुई भक्त पेरियाळ्वार को एक बगीचे में मिलीं। उन्होंने कन्या का प्रेमपूर्वक पालन कर उसके मन में भक्ति के संस्कार डाले। आण्डाल श्रीरंगनाथ भगवान् की अनन्य भक्त थीं। उन्होंने श्रीरंगजी को ही अपना पति मान लिया। वे नित्य सुगन्धित पुष्पों की माला बनाकर श्रीरंगजी को पहनाती थीं जिससे उनका नाम गोदा (पुष्प-गुच्छ) पड़ गया। आण्डाल के रचे 'तरुप्पावै' तथा 'नाच्चियार तिरुमोळी' बड़ी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। इन ग्रन्थों के पद तमिल परिवारों में विवाह के अवसर पर अवश्य गाये जाते हैं।

''पयस्विनी प्रदेश में जन्मे चार भक्तों में भूतयोगी को तमिल में भूतत्ताळ्वार कहते हैं। भूतयोगी महाबलीपुरम् में जन्मे थे। भूतत्ताळ्वार ने विष्णु के अवतारों का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। दूसरे भक्त सरोयोगी को तमिल में पोयगै आळ्वार कहते हैं। अपने वेद-उपनिष्दों के ज्ञान के आधार पर वे वैष्णव-भक्ति का घूम-घूमकर प्रचार करते रहे। उनके सौ पद 'मुखल तिरुवन्तादि' के नाम से प्राप्य हैं। तीसरे भक्त महायोगी को कुछ लोग भ्रान्तयोगी भी कहते हैं। इनका तमिल नाम पैयाळ्वार है। वे भक्ति के आवेश में रोते थे, हँसते थे, गाते थे। इस कारण लोग उनको पागल भी समझ लेते थे। वे सादा जीवनयापन करते हुए, निरन्तर भ्रमणशील रहकर लोगों में भक्ति का प्रचार करते रहे।''

मेनन ने आगे बताया, ''अगले भक्त भक्तिसार को तमिल में तिरुमलिसाई आळ्वार कहते हैं। भक्तिसार कांचीपुरम् के निकट तिरुमलिसाई

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गाँव में एक व्याध के परिवार में जन्मे थे। उन्हें रामायण, महाभारत, पुराण आदि का व्यापक ज्ञान था। संस्कृत और तमिल के महाविद्वान होने के साथ वे सिद्ध योगी भी थे। आपकी 'नानमुखन' और 'तिरु चन्दविरुत्तम' रचनाओं में विष्णु को परमात्मा मानकर दर्शन के गूढ़ तत्त्वों का व्यापक विवेचन किया गया है।''

मेनन ने कहा, ''अब मैं आपको कावेरी क्षेत्र के भक्तों के बारे में संक्षेप में बताता हूँ। भक्त भक्ताङ्घ्रिरेणु को तमिल में तोण्डरडीपोडी आळ्वार कहते हैं। भक्ताङ्घ्रिरेण का जन्म चोल राज्य के कावेरी-तट पर एक ब्राह्मण परिवार में हुआ। उनका विश्वास था कि भागवतों की सेवा भगवत्सेवा से भी श्रेष्ठ है। इसलिए वे श्रीरंगम-मन्दिर में आनेवाले समस्त भक्तों की चरणरज को धारण करते हुए भजन-कीर्तन में रत रहते थे जिससे उनका नाम ही भक्ताङघ्रिरेणु पड़ गया। उनके लिखे 'तिरुमालै' और 'तिरुपल्ली एलुच्ची' में प्रभु-भक्ति और प्रातः जागरण के मनोरम गीत हैं।

''भक्त शिरोमणि मुनिवाहन को तमिल में तिरुप्पान आळ्वार कहते हैं। मुनिवाहन का जन्म पैरिया यानी चाण्डाल वंश में हुआ। वे सर्वदा वीणा बजाते तथा श्रीहरि का गुण-कीर्तन करते थे। एक बार वे श्रीरंगनाथ मन्दिर के सम्मुख कावेरी तट पर संकीर्तन करते हुए भावविभोर थे, तभी कावेरी से जल लेकर आते हुए लोकसारंग नामक मुनि ने उन्हें अपने मार्ग में देखा। उन्हें चाण्डाल समझकर पत्थर मारकर दूर हटाया। लोकसारंग मुनि मन्दिर में पहुँचे तो गर्भगृह के कपाट बंद मिले। उन्हें लगा जैसे भीतर से कोई कह रहा है, तुमने जिसे पत्थर मारा वह मेरा ही स्वरूप है। तुम उसे कन्धे पर बिठाकर मन्दिर की प्रदक्षिणा करोगे, तभी कपाट खुलेंगे। लोकसारंग ने तिरुप्पान को कन्धों पर बिठाकर मन्दिर-परिक्रमा की। इस कारण उन्हें मुनिवाहन कहा जाने लगा। उनकी एकमात्र रचना 'आमलनादिपिरान' में विष्णु की विभिन्न लीलाओं का वर्णन है।''

आचार्य ने आगे बताया, ''आळ्वार परम्परा में अन्तिम भक्त माने जाने वाले परकाल को हम तमिल में तिरुमंगै आळ्वार कहते हैं। उनके सजातीय 'कल्लर' लूटमार कर अपनी आजीविका चलानेवाले थे। तिरुमंगै संस्कृत और तमिल के प्रकाण्ड विद्वान होने के साथ नृत्य, नाट्य, काव्य-कलाओं में भी पारंगत थे। आळ्वार भक्तों में सर्वश्रेष्ठ साहित्य मर्मज्ञ आप ही थे। उनके 'प्रबन्धम्' में भक्ति की महत्ता गाई गयी है। प्रबन्धम् को पाकर जनता को लगा जैसे तमिल वेद ही उन्हें प्राप्त हो गया।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

''भक्त कुलशेखर को तमिल में कुलशेखराळवार कहते हैं। चेरवंशीय क्षत्रिय कुलशेखर, राजा पेरुमाल के नाम से भी प्रसिद्ध थे। वे राम तथा कृष्ण के अनन्य भक्त थे। उनके लिखे 'पेरुमाल तिरुमोळी' में राम-कृष्ण की लीलाओं का वर्णन तमिल में किया गया है, वहीं संस्कृत में रची गयी 'मुकुन्दमाला' में भगवान् विष्णु की स्तुति के श्लोक हैं।''

इतना बताकर आचार्य कृष्णमूर्ति मेनन ने कहा, ''आळवार भक्तों के बारे में मैंने आपको संक्षिप्त में बताया है। इस विषय पर कई दिन चर्चा की जा सकती है। किन्तु अभी आळवार तिरुनगरी जाने में विलम्ब हो रहा है। थम्बी गाड़ी तैयार किये आप लोगों की प्रतीक्षा कर रहा है।'' फिर कुछ सोचकर कहा, ''चलिये, मैं भी आप लोगों के साथ तिरुनगरी चलता हूँ। कल आप तोताद्रि अवश्य जाइयेगा। वहाँ रामानुज-सम्प्रदाय का प्रधान पीठ है।''

आळ्वार तिरुनगरी

श्रीवैकुण्ठम् से आळ्वार तिरुनगरी पहुँचने में विशेष समय नहीं लगा। विशाल मन्दिर में चतुर्भुज महाविष्णु की श्याम वर्णी भव्य प्रतिमा के सम्मुख सबने साष्टांग प्रणाम किया। भगवान् के समीप लक्ष्मी तथा अन्य मूर्तियाँ थीं। मन्दिर-परिक्रमा में अनेक देवी-देवताओं के दर्शन कर श्रीवैकुण्ठम् लौटने तक अन्धेरा घिर आया।

भोजन के बाद थम्बी की पत्नी ने सबके सोने के लिए बाहर आंगन में बिछोने लगा दिये। गरमी का मौसम था। खुले में सोना सब को सुखकर लगा। सुबह गरम इडली-उत्तप्पा का जलपान कर सबने तोताद्रि की ओर प्रस्थान किया।

तोताद्रि

तोताद्रि पहुँचते शाम हो गयी। सब एक सत्रम् में टिक गये। सुबह शंकरदेव सबके साथ सर्वप्रथम रामानुजाचार्य के मूल पीठ पर गये। वहाँ आचार्य का उपदण्ड, बैठने का काष्ठासन तथा शंख-चक्र अंकित मुद्राओं के दर्शन हुए। थम्बी वहाँ से उन्हें क्षीराब्दी पुष्करिणी दिखाता हुआ मन्दिर ले गया।

मन्दिर में स्वर्णमण्डित ऊँचा गरुड़-स्तम्भ था। भीतर कई मण्डप थे। निज-मन्दिर में शेष-फणों के छत्र के नीचे विराजमान भगवान् विष्णु की मूर्ति के साथ श्रीदेवी तथा भूदेवी की सुन्दर मूर्तियाँ थीं। भगवान् की मूर्ति पर किसी तैलीय पदार्थ का आलेपन देखकर शंकरदेव ने पुजारी से इसका रहस्य पूछा।

पुजारी ने बताया, ''श्रीमान ! यह विग्रह अनेक वनौषधियों के

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संयोग से बना है। इसका तैलाभिषेक होता है। अभिषेक का तेल नाली द्वारा बाहर बने कुण्ड में जाकर जमा होता है। यह तेल चर्मरोगों और वायु-दर्द में अति लाभकारी है। यह जितना पुराना होगा, उतना ज्यादा असरकारी है। इसलिए श्रद्धालु चाहे तो उसके द्वारा चढ़ाये गये तेल के बदले कुण्ड से पुराना तेल ले जा सकता है।''

शंकरदेव ने इसके पहले विष्णु-मूर्ति पर तेल चढ़ाने की बात कभी नहीं सुनी। फिर याद आया, कांची के एकाम्रेश्वर शिवलिंग का भी तैलाभिषेक ही होता है। उन्होंने सोचा, हो सकता है, यह दक्षिण की कोई लोक-परिपाटी होगी।

तोताद्रि से सुबह कन्याकुमारी की ओर प्रस्थान किया। रास्ता करीब पच्चीस कोस लम्बा रहा होगा। दो दिनों की यात्रा के बाद समुद्र किनारे बसी कन्याकुमारी पहुँचे तब तक शाम ढल गयी। समुद्र किनारे बने एक सत्रम् में उन्हें आश्रय मिल गया। समुद्र का गर्जन करता संगीत वहाँ तक सुनायी दे रहा था। कुछ देर सब सागर किनारे जा बैठे। सागर अन्धेरे की चादर में लिपटा था। वहाँ जगन्नाथ पुरी जैसी अनुभूति हो रही थी। सत्रम् लौटने पर थम्बी ने शंकरदेव के सोने से पहले उनसे तड़के मदुरै लौट जाने की आज्ञा ले ली।

कन्याकुमारी

सूर्योदय देखने की अभिलाषा से सभी गंगासागर किनारे मुँह अन्धेरे जा खड़े हुए। धीरे-धीरे पूर्वी क्षितिज अरुणाभ हो गया। धुँधलका छँट गया। सागर के छोर से उदित हो रहे बालरवि की आभा से सागर की सतह केसरिया हो गयी। धीरे-धीरे सूर्य अपना रंग परिवर्तित कर क्षितिज की अटारी पर चढ़ गया।

कन्याकुमारी पहुँचकर शंकरदेव की मन में वर्षों से संजोयी साध पूरी हुई। उन्होंने सागर के सम्मुख खड़े होकर अपने दोनों हाथ बायें-दायें फैलाकर साथियों से कहा, ''हम भारतवर्ष के अन्तिम छोर पर खड़े हैं। मेरे सम्मुख तरंगित भारत-महोदधि में बाँये हाथ की ओर पूर्वी दिशा से पतितपावनी गंगा को अपने में समाये गंगासागर और दाहिने हाथ की पश्चिम दिशा से सिन्धु नद को अपने अंक में समेटे हिल्लोरें मारता सिन्धुसागर आकर ऐसे मिल रहे हैं, मानों त्रिदेव गलबहियाँ कर रहे हों।''

''गुरुदेव ! मुझे तो लग रहा है कि तीनों सागर मानों यहाँ भारतमाता के पद-प्रक्षालन कर रहे हैं।'' परमानन्द ने अपने मन की भावना बतायी।

पहले प्रहर के प्रारम्भ में ही सूरज की प्रखर किरणें बदन को झुलसाने लगीं। सागर को छूकर बहता शीतल समीर तन के साथ मन को भी राहत दे रहा था। शंकरदेव ने सागर-तट की बालू को हाथ में लेकर कहा, ''यहाँ की बालू

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

देखो, इसमें कितने रंग हैं। यह चावल के दानों जैसी मोटी है। अन्य समुद्री-तटों पर तो ऐसी बालू नहीं देखी !'' तीनों महोदधियों के संगम में स्नान कर रही-सही थकान भी जाती रही। शंकरदेव तट से दूर गंगासागर में उभरी हुई दीर्घाकार चट्टान को बहुत देर से निहार रहे थे। उनका मन वहाँ जाने के लिए मचलने लगा। फिर मन में सोचा, अभी तो यहाँ कुछ दिन रहना ही है, कल देखा जाएगा।

दक्षिण के मन्दिरों के नियम से सभी परिचित थे। धोती के सिवाय किसी ने कोई वस्त्र नहीं पहना। समुद्र के पास ही वहाँ की अधिष्ठात्री देवी 'कुमारी' का मन्दिर था। वहाँ एक स्थानीय वेदपाठी ब्राह्मण से उनका परिचय हुआ। उसके साथ बतियाने सब प्रांगण में बैठ गये। बातों-बातों में शंकरदेव ने उससे कन्याकुमारी की पौराणिकता व ऐतिहासिकता पूछी।

ब्राह्मण चाव से पूरी कथा बताने लगा, ''पौराणिक और ऐतिहासिक कथाओं के आधार पर कन्याकुमारी प्राचीनकाल से महत्त्वपूर्ण स्थल रहा है। पौराणिक कथानुसार पराशक्ति देवताओं की सहायता के लिए यहाँ देवी 'कुमारी' के रूप में जन्मी। युवावस्था में कुमारी ने भगवान् शंकर से विवाह करने की इच्छा से पूजा की। किन्तु शिवजी से उसका विवाह नहीं हो पाया। इस पर पूजा की सभी सामग्री, तिल, अक्षत, रोली आदि समुद्र में डलवा दी। कहते हैं, उसी कारण यहाँ सागर की रेत में अनेक रंग तथा बालू-कण चावल जैसे मोटे हैं। उसके पश्चात् कुमारी वापस तपस्या में लीन हो गयी।

''जनश्रुति यह भी है कि हनुमानजी लक्ष्मण के लिए जब संजीवनी बूटी-पर्वत लेकर लंका जा रहे थे, तब उसका एक अंश यहाँ गिर गया जिसे आज मरुत्त्वमला पहाड़ी कहा जाता है। लोगों का विश्वास है, वहाँ कुछ समय व्यतीत करने पर बड़ी-बड़ी व्याधियाँ और रोग ठीक हो जाते हैं।

''कथा ऐसी भी है कि गोमान्तक (गोवा) से कन्याकुमारी (वर्तमान केरल भी) तक का क्षेत्र ऋषि परशुराम के प्रभाव से सागर द्वारा छोड़ी हुई भूमि है। ऐतिहासिक दृष्टि से कन्याकुमारी पाण्ड्य राजाओं के अधीन रहा। यहाँ की आराध्यदेवी कुमारी ही उनकी कुलदेवी थी।'' सारी कथाएँ ब्राह्मण एक सांस में कह गया।

शंकरदेव ने अपनी जिज्ञासा उसके सामने रखते हुए कहा, ''महाशय ! आपने इतनी बातों से हमें अवगत कराया। एक बात और बताइये। सागर में दूर दिखती दीर्घाकार चट्टान मुझे बहुत आकर्षित कर रही है। तैरकर वहाँ जाने का मन कर रहा है। उसके प्रति मेरे मन में इतना आकर्षण क्यों है ! मैं

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नहीं जानता !''

''उस विशाल शिला-खण्ड का पौराणिक नाम 'श्रीपादशिला'[1] है। उसी पर देवी 'कुमारी' ने तपस्या की थी। कोई देव-कृपा है जो आपके मन में वहाँ जाने का विचार आया। किन्तु वहाँ तैरकर जाना सहज नहीं। भगवत-कृपा विना वहाँ तक तैरकर जाना सम्भव नहीं। अब मुझे चलना चाहिये, विद्यार्थियों को वेद-पाठ का अभ्यास कराने का समय हो गया। बातों में मुझे समय का ध्यान ही नहीं रहा।''

शंकरदेव ने अगले दिन पादशिला पर जाने का निश्चय किया। प्राचीन शंकर-मन्दिर को देखने के बाद वहाँ से तीन कोस दूर वट्टकोट्टाई किला देखने में दिन पूरा हो गया। मार्तण्ड वर्मा के शासनकाल में उसके प्रधान सेनापति द्वारा निर्मित किला प्राचीन दुर्ग-निर्माण कला का अनुपम उदाहरण था।''

वहाँ से लौटे तव अन्धेरा हो गया। सब इतने थक चुके थे कि भोजनोपरान्त विस्तरों में चले गये। किन्तु शंकरदेव की दृष्टि यकायक दूर दिख रहे सागर पर गयी तो कुछ पलों के लिए ठिठक गये। सागर के ऊपर वितान की तरह तने आकाश में झिलमिल करते तारे और उनके मध्य शोभायमान चन्द्रमा कलावत्तू की भाँति टँके थे। सामने पसरे सागर की लहरों के साथ चन्द्र-किरणें अठखेलियाँ कर रही थीं। उन्हें लगा मानो चन्द्र-ज्योत्सना की तारों-जड़ी चादर ओढ़े प्रकृति के शान्त-कक्ष में गहरी नींद सोये सागर के गर्जन करते खर्राटे रात्रि की निस्तब्धता में एक संगीत-सा घोल रहे हैं।

तड़के शंकरदेव अपने साथियों के साथ सागरतट पर जा पहुँचे। स्नान के समय उन्होंने पादशिला की ओर तैरना शुरू किया। सागर की लहरें उनके ऊपर से गुजरतीं तो किनारे खड़े साथियों के कलेजे मुँह को आने लगते। किन्तु सवको उनकी तैराकी पर विश्वास था। परमानन्द ने उनको याद दिलाया, ''भाद्र महीने में उफनते ब्रह्मपुत्र को दो बार तैरकर पार करना किसी सागर-मंथन से कम थोड़े ही था !''

कुछ समय पश्चात् शंकरदेव दूर दिखायी दिये। वे पादशिला पर पद्मासन लगाये किसी मुनि की तरह ध्यानस्थ वैठे थे। अव साथियों के पास

---

1 श्रीपादशिला : इसी श्रीपादशिला पर स्वामी विवेकानन्द सन् 1890 में तैरकर पहुँचे और ध्यान लगाकर बैठे थे। यही श्रीपादशिला आज 'विवेकान्द शिला' के नाम से विख्यात है, जिस पर भव्य विवेकानन्द स्मारक वना हुआ है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रतीक्षा करने के अलावा कोई चारा न था। न उनकी आवाज वहाँ पहुँचती थी और न ही उनमें से कोई वहाँ तक जा सकता था। वे टकटकी लगाये देखते रहे। एक प्रहर बीतने के बाद उन्होंने देखा कि शंकरदेव फिर से सागर में उतर गये। अब उन्हें सन्तोष हुआ कि थोड़ी देर में वे लौट आयेगे। कुछ घड़ियों बाद वे किनारे आये तो सबने उनके चरणों में प्रणाम कर आशीर्वाद लिया। उनके मुख पर स्निग्ध मुस्कान के संग अपार सन्तोष और शान्ति झलक रही थी।

कल उस ओर उनका ध्यान नहीं गया जिधर सीप-शंख से बनी विभिन्न वस्तुओं की हाट लगी थी। हाट में लगीं छोटी-छोटी दुकानों पर तीर्थार्थियों की भीड़ लगी थी। ज्यादातर लोग दक्षिणावर्त्ती शंख खरीदने के लिए लालायित थे।

भोजनोपरान्त विश्राम कर सन्ध्या को सूर्यास्त देखने सब सिन्धुसागर के तट पर आ बैठे। तेजोमय सूर्य धीरे-धीरे अपनी प्रखरता कम करता हुआ क्षितिज की ओर झुक रहा था। लग रहा था कि थोड़ी ही देर में जल में डुबकी लगायेगा। लजालु बालक की भाँति उसका चेहरा लाल हुआ जा रहा था। इसके साथ सागर और क्षितिज भी अरुणाभ हो उठे। कुछ क्षणों में सूरज ने जल को छुआ। फिर देखते-देखते अपना सम्पूर्ण अस्तित्व सागर की गहराइयों में विलीन कर दिया।

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तिरुअनन्तपुरम् की ओर

कुछ दिन कन्याकुमारी में व्यतीत करने के बाद यात्रियों का अगला गन्तव्य शेषशायी विष्णु के दर्शन करने हेतु तिरुअनन्तपुरम् यानी श्रीअनन्तपुरम् (आज का त्रिवेन्द्रम) था। वहाँ के लिए निकलने के पहले कन्याकुमारी में ही उन्हें यात्रा-पथ में आने वाले अन्य तीर्थों शुचीन्द्रम्, नागर-कोइल और तिरुवट्टार के बारे में ज्ञात हुआ। सबका विस्तृत ब्यौरा लेकर एक सुवह अपने रास्ते शंकरदेव निकल पड़े। चार कोस चलने पर सर्वप्रथम शुचीन्द्रम् आया।

शुचीन्द्रम्

हरे-भरे खेतों और नारियल एवं केले के गाछों से घिरे शुचीन्द्रम्-मन्दिर के पास स्थित प्रज्ञाकुण्ड में सबने सर्वप्रथम अपने पद-प्रक्षालन किये। फिर गोपुर से मन्दिर में प्रवेश किया। प्रांगण में विष्णु और शंकर के विशाल मन्दिर थे। विष्णु-मन्दिर में मनोहर चतुर्भुज नारायण के पास श्रीदेवी तथा भूदेवी खड़ी थीं और उनके सम्मुख गरुड़ की उच्चाकृति मूर्ति थी। शंकर-मन्दिर में स्थापित शिवलिंग के ऊपर मुखाकृति बनी थी। सामने नन्दी की दीर्घाकार मूर्ति थी। दोनों ही वहाँ के प्रमुख मन्दिर थे। उसी परिसर में ब्रह्मा का पृथक मन्दिर और था। तीनों मन्दिरों की परिक्रमा में पार्वती, नटराज, सुब्रह्मण्य तथा गणेश की प्रतिमाएँ थीं।

वहाँ का अनुपम कलात्मक सौन्दर्य देख सब अभिभूत हो गये। शंकरदेव ने मीनाक्षी-मन्दिर की तरह वहाँ भी संगीत-स्तम्भ देखे तो उनका मन उन्हें ध्वनित करने के लिए मचल उठा। मृदंग की भाँति उन पर ताल देकर बजाया तो 'सा रे ग म प ध नि' के सप्त-स्वरों की लयमय ध्वनि कानों में निनादित होने लगी। एक जगह वने सिंह के खुले मुँह में शिल्पकार द्वारा वनायी हुई पत्थर की गेंद को उसके जवड़े में हाथ डालकर घुमाया।

एक प्राचीर पर उत्कीर्ण खड़ी-मुद्रा में वारह हाथ ऊँची हनुमान-मूर्ति को देखकर शंकरदेव के मुँह से निकल पड़ा, "सचमुच बड़ी दुर्लभ और दर्शनीय प्रतिमा है।" श्रद्धालु उन्हें मक्खन का भोग लगा रहे थे।

उन्होंने अपनी यात्रा में पहली वार ब्रह्मा-मन्दिर के दर्शन किये। वे सोचने लगे कि यहाँ त्रिदेवों के मन्दिर एक साथ होने का कोई कारण तो

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अवश्य है !

आखिर वे अपनी जिज्ञासा का शमन नहीं कर पाये तो मन्दिर में दोबारा जाकर पुजारी से पूछा। उसने बताया, "पौराणिक उपाख्यान है कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों देवता अपनी पत्नियों के अति आग्रह पर अत्रि-पत्नी सती अनसूया के पातिव्रत्य की परीक्षा लेने साधु रूप में भिक्षा लेने आये। अनसूया ने भोजन करने का निवेदन किया तो उन्होंने शर्त रखी कि वह निर्वसना हो उन्हें भोजन कराये तभी भोजन करेंगे अन्यथा नहीं। सती असलियत समझ गयी। अतिथियों का दुराग्रह पूरा करने के लिए उसने सतीत्व के प्रभाव से उन्हें दुधमुँहे शिशु बनाकर अपना स्तनपान कराया।

"देवताओं की पत्नियाँ अपने-अपने पति वापस माँगने आयीं। अनुग्रह कर सती अनसूया ने उन्हें वास्तविक रूप में लौटा दिया। त्रिदेवों ने सती को माँ के रूप में सम्मान दिया।" पुजारी ने संक्षिप्त में बताया।

"महाभाग ! अब कृपया शुचीन्द्रम् नाम का भी कृपया खुलासा करें।" परमानन्द ने कहा।

"यह शब्द शुचि और इन्द्र को जोड़कर बना है, अर्थात् इन्द्र की शुद्धि का स्थान। एक बार इन्द्र ने गौतम ऋषि की पतिव्रता पत्नी अहिल्या का उसके पति गौतम के छद्मवेश में सतीत्व भंग कर दिया। ऋषि द्वारा मिले शाप से इसी स्थान पर इन्द्र की शुचि हुई। अहिल्या भी पति के शाप से पत्थर बन गयी थी जिसका उद्धार श्रीराम द्वारा हुआ।"

कथा बताकर पुजारी ने पूछा, "यहाँ से आप चारों लोग कहाँ जा रहे हैं ?"

शंकरदेव ने सबका परिचय देकर कहा, "हम कन्याकुमारी से आ रहे हैं। अब हम तिरुअनन्तपुरम् भगवान् विष्णु के दर्शन करने जा रहे हैं।"

पुजारी ने कहा, "आगे नागर-कोइल आयेगा। वहाँ से दस कोस की दूरी पर तिरुवट्टार है। वहाँ के आदिकेशव-मन्दिर में शेषशय्या पर लेटी विष्णु की भव्य मूर्ति के दर्शन अवश्य करते हुए आगे जाइयेगा। वहाँ जैसी विष्णु-मूर्ति के ही तिरुअनन्तपुरम् में भी आपको दर्शन होंगे।"

नागर-कोइल

पुजारी को धन्यवाद देकर यात्री वहाँ से डेढ़ कोस दूर स्थित नागर-कोइल नामक ग्राम में पहुँचे। वहाँ शेषनाग और नागेश्वर महादेव के देवालयों को देखते हुए आगे बढ़ गये। रास्ते में किसी ग्राम में एक गृहस्थ के यहाँ आश्रय मिला तो वहीं ठहर गये। सभी थके थे, रात्रि के भोजनोपरान्त सोते ही गहरी नींद आ गयी।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तिरुवट्टार

नागर-कोइल से तिरुवट्टार पहुँचते-पहुँचते दिन का दूसरा प्रहर बीत गया। सूरज सिर से पश्चिम ओर की ढलान पर था। ग्राम के पास ताम्रपर्णी नदी कलकल बह रही थी। उसी के किनारे आदिकेशव का भव्य मन्दिर था। सबके शरीर पसीने से लथपथ थे।

परमानन्द ने कहा, ''गुरुदेव ! तिरुनल्वेली में भी यही ताम्रपर्णी नदी बहती थी। आपकी आज्ञा हो तो इसमें स्नान कर लें !''

शंकरदेव भी यही चाहते थे। स्नान कर सबने अपनी थकान दूर की।

मन्दिर में प्रवेश किया तब भगवान् की आरती हो रही थी। शेषशय्या पर लेटे नारायण की ग्यारह हाथ लम्बी मूर्ति के दर्शन के लिए तीन द्वार बने थे। पहले से भगवान् का श्रीमुख, दूसरे से वक्षःस्थल और तीसरे से चरणों के दर्शन हुए। विष्णु का ऐसा भव्य रूप देखकर शंकरदेव अभिभूत हो गये, तभी उनकी दृष्टि शेषशय्या के नीचे दबी एक राक्षसाकृति पर गयी।

आरती पूर्ण होने पर उन्होंने पुजारी से इसका रहस्य पूछा। उसने बताया, ''कथा है कि एक बार ब्रह्माजी से वरदान-प्राप्त एक राक्षस ऋषियों को त्रसित करने लगा। ऋषियों की करुण-पुकार पर भगवान् विष्णु ने उसका वध किया। मरते समय उसने अपनी अन्तिम इच्छापूर्ति का वरदान माँगा कि 'आप मेरे शरीर पर स्थित हों।' भगवान् ने उसे तथास्तु कह दिया। इसीसे उस राक्षस के शरीर पर शेषनाग को स्थिर कर भगवान् नारायण स्वयं शेषशय्या पर शयन कर रहे हैं।''

रात्रि में मन्दिर-प्रांगण में भक्ति-संगीत का आयोजन था। भोजनोपरान्त सभी वहाँ आ बैठे। इसी बीच सर्वजय ने आयोजक को शंकरदेव का परिचय देकर उनके गायन-वादन के बारे में बताया।

कार्यक्रम के मध्य में यकायक शंकरदेव का नाम पुकारा गया, तो वे अचम्भित हुए कि उन्हें जानने वाला यहाँ कौन आ गया ? अन्ततः आयोजक के आग्रह पर उन्होंने मृदंग हाथों में थामा। मृदंग की ताल के साथ उनके मधुर कण्ठ से निकली स्वरों की गंगा में श्रोता अवगाहन करने लगे। कार्यक्रम समाप्त हुआ तो आयोजक ने सबके रात्रि-विश्राम के लिए सारी व्यवस्था करवा दी।

प्रातःकाल आदिकेशव के पुनः दर्शन कर यात्रीदल आगे की यात्रा पर निकलने के लिए तत्पर हुआ। मन्दिर में अनेक लोग अब उन्हें पहचानने लगे थे। उन्होंने आग्रह कर उनकी यात्रा स्थगित करवाकर रोक लिया। शंकरदेव का

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संगीत-प्रेमी मन भी वहाँ कुछ ऐसा रमा कि देखते-देखते पाँच दिन बीत गये। गायन-वादन करना जैसे उनका नित्य-नियम बन गया। सन्ध्या होते ही प्रांगण के दीप-स्तम्भों पर दीपमालिका प्रकाशित हो जाती। सुधी श्रोता तन्मय हो देर तक बैठे रहते। शंकरदेव गायन के मध्य अपने गीतों के अर्थ संस्कृत में बताते जिसका स्थानीय भाषा में अनुवाद करने की व्यवस्था आयोजक ने कर दी।

तिरुअनन्तपुरम्

तिरुवट्टार के पश्चिम में छह कोस चलकर यात्रीदल तिरुअनन्तपुरम् के समुद्र तट पर पहुँचा। सामने उत्ताल तरंगें उछालते सिन्धुसागर की लहरें ऐसी लग रही थीं जैसे सिर के ऊपर से निकल जायेंगी। किन्तु क्या सागर कभी अपनी मर्यादा छोड़ता है ! वहाँ से थोड़ी दूरी पर ही पद्मनाभ-भगवान् का विशाल मन्दिर था और उसके पास ही सत्रम्। वहाँ आश्रय ले, सबने समुद्र-स्नान किया।

मन्दिर के गोपुर से भीतर प्रवेश करने पर बहुत बड़ा प्रांगण आया। दक्षिण के अन्य मन्दिरों की भाँति वहाँ भी स्वर्णमण्डित गरुड़स्तम्भ खड़ा था। प्रांगण के चारों किनारों पर मण्डप बने थे और उनके मध्य काले कसौटी के पत्थरों से निर्मित पद्मनाभ-मन्दिर था। विशाल निजमन्दिर में आदिकेशव जैसी अपितु उससे बहुत बड़ी शेषशय्या पर शयन किये भगवान् पद्मनाभ की प्रतिमा थी।

भगवान् के दर्शन कर शंकरदेव भावविभोर हो गये। उस विशाल मूर्ति के पूर्ण दर्शन करने के लिए वे एक द्वार से दूसरे-तीसरे द्वार पर कितनी ही बार आये-गये। भगवान् के श्रीमुख के दर्शन एक द्वार से, वक्षःस्थल और नाभि के दर्शन मध्य द्वार से और चरणों के दर्शन तीसरे द्वार से किये जा सकते थे। भगवान् की नाभि से निकले कमल पर ब्रह्मा विराजमान थे। भगवान् का दाहिना हाथ शिवलिंग के ऊपर स्थित था।

ऐसे अपूर्व दर्शन कर यात्री-मण्डली वहाँ बैठ गयी। शंकरदेव भाव-समाधि में चले गये। उनकी आँखों से प्रेमाश्रु की धारा प्रवाहित होने लगी। कुछ समय बाद वे बाह्य जगत में लौटे। अब तक दोपहर हो गयी।

मन्दिर के पश्चिम भाग में श्रीकृष्ण-मन्दिर था। वहाँ दर्शन कर बाहर आने लगे तो पता चला कि सन्ध्या वेला में वहाँ नृत्य होगा, जिसकी तैयारी अभी से चल रही है। उन्होंने देखा, प्रांगण के एक कोने में लेटे दो कलाकारों के चेहरों को अनेक गहरे रंगों से रँगा जा रहा था। दो व्यक्ति नारियल के खोलों में रखे नीले, हरे, लाल, काले, सफेद रंगों को कूचियों

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

से उनकी साज-सज्जा बड़ी तल्लीनता से कर रहे थे।

शंकरदेव ने ऐसा रूप-विन्यास पहले कभी नहीं देखा। उनका कौतूहल बढ़ा और वे वहीं खड़े होकर देखने लगे। उन्होंने साथियों को भोजन कर आने के लिए भेज दिया। बहुत कहने पर भी वे स्वयं वहाँ से हिलने के लिए तैयार नहीं हुए।

कलाकारों को चेहरों पर रंग-सज्जा करने में ही एक प्रहर बीत गया। फिर उन्हें पात्र के अनुरूप वस्त्र पहनाये गये। यह भी बड़ा कठिन काम था। इसके पश्चात् उनके ठुड्डियों और कानों पर विशिष्ट मुखौटे लगाये गये। सिरों पर भारी-भरकम मुकुट पहनायये गये। पूरा रूप-विन्यास होने पर पता लगा कि उनमें एक पुरुष और दूसरा नारी पात्र था। अब तक प्रांगण में दर्शकों की भीड़ आ जुटी थी।

नृत्य प्रारम्भ हुआ। नृत्य का नाम 'कुट्टु नृत्य'[1] था। इस बीच सब साथी भोजन कर आये। कलाकारों की भाव-भंगिमा, उनकी आँखों में उभरा लाल रंग बता रहा था कि रौद्र रस की कोई नाटिका का मंचन चल रहा था।

दर्शकों में बैठे संस्कृतज्ञ उल्लूर जगदीश्वर अय्यर से उनका परिचय हुआ। वे उन्हें नृत्य-नाटिका के भाव समझाते रहे। कार्यक्रम पूरा होते-होते रात्रि का पहला प्रहर ढल गया। अय्यर से दूसरे दिन मिलने का वचन ले सब सत्रम् लौट आये। थकान इतनी हो चुकी थी कि बिस्तरों पर जाते ही नींद आ गयी।

पद्मनाभ-मन्दिर में ही निश्चित समय पर जगदीश्वर से भेंट हो गयी। शंकरदेव द्वारा मन्दिर के बारे में पूछने पर अय्यर ने बताया, "वर्तमान मन्दिर पाँच सौ वर्ष पुरातन है। यहाँ स्थापित पद्मनाभ-श्रीविग्रह शास्त्रीय विधि के अनुसार बारह हजार शालग्राम भीतर रखकर 'कटुशर्करयोग' नामक मिश्रण विशेष से निर्मित किया हुआ है। इस विग्रह के पहले दिवाकर नामक मुनि ने यहाँ मन्दिर बनाकर उसमें लकड़ी से बनी ऐसी ही अनन्तशायी मूर्ति स्थापित की थी। कालान्तर में वह मन्दिर और काष्ठ-मूर्ति भी जीर्ण हो गयी तो उनका पुनरुद्धार कर वर्तमान रूप दिया गया। पहले इस स्थान का नाम ही 'अनन्तवनम्' था।"

इतनी जानकारी के लिए अय्यर को धन्यवाद देकर शंकरदेव ने उससे मलयालम भापा-साहित्य के विषय में जानने की जिज्ञासा की। अय्यर ने

---

1. कुट्टु नृत्य : इस नृत्याभिनय को आगे चलकर 'कुदियाट्टम्' कहा जाने लगा। इसी से विख्यात 'कथकली' नृत्यशैलि विकसित हुई।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बताया, ''मलयालम बड़ी समृद्ध भाषा है। आज से पाँच सौ साल पहले से लेकर आज तक भक्ति और शृंगार रस की अनेक रचनाओं का सृजन हुआ है। दो सौ साल पहले हुए चीरामन नामक कवि की रचना 'रामचरितम्' का स्थान सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। लगभग उसी काल में हुए दामोदर चाक्यार द्वारा 'उण्णियाटीचरितम्' लिखा गया। भक्ति प्रधान रचनाओं में अनन्तपुरवर्णनम्, श्रीकृष्णस्तवम्, दशावतारचरितम् आदि रचे गये। उसी प्रकार माधव पणिक्कर ने श्रीमद्भगवद्गीता का अनुवाद किया। राम पणिक्कर ने रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत के संक्षिप्त अनुवाद किये। इसके अतिरिक्त भी राम और कृष्ण पर अनेक ग्रन्थ तथा नाटिकाएँ लिखी गयीं। आज भी विभिन्न रचनाकारों द्वारा लेखन निरन्तर चल रहा है।''

कथकली नृत्य पर बात आयी तो जगदीश्वर ने कहा, ''इस नृत्य की विभिन्न भाव-भंगिमाएँ हैं जो बड़ी जटिल हैं। इसके माध्यम से पुराण-कथाओं को मंचित करने के लिए बारह-तेरह बर्ष की उम्र से ही बड़ी कठिन साधना करनी पड़ती है। इसका प्राचीन रूप 'कुडियाट्टम्' है। इसके अतिरिक्त यहाँ का मोहनीअट्टम् नृत्य भी बड़ा प्रसिद्ध है। आप भाग्यवान हैं जो मन्दिर में चल रहे नृत्योत्सव के अवसर पर यहाँ पधारे हैं। आज रात इस नृत्य का प्रदर्शन आप देखेंगे।''

अय्यर अपनी रौ में कहते जा रहे थे, ''मलयाली मानस उत्सव-मना है। मन्दिर-उत्सवों में 'पुरम्' उत्सव का विशेष स्थान है। उसमें देव-विग्रहों की राजसी साज-सज्जा में सजे-सँवरे हाथियों की पंक्ति के साथ दर्शनीय शोभायात्रा निकलती है। इसी प्रकार हमारे नववर्ष का पर्व 'ओणम्' है। उस अवसर पर विभिन्न स्थानों पर नौका-दौड़ होती है। उन लम्बी सर्पीली नौकाओं को देखना आपको एक कौतूहल जैसा लगेगा। यह समय नौका-दौड़ का नहीं, अन्यथा आप देखते कि एक दूसरे से आगे निकलने की स्पर्धा में नावों के वेग से समुद्री-नहरों का जल कैसा उथल-पुथल हो उठता है !''

बातें करते-करते अय्यर सबको घर ले आये। उनकी पत्नी प्रतीक्षा कर रही थी। अय्यर घर पर सबके लिए अल्पाहार बनाने को पहले ही कह आये थे। केले के पत्ते पर चटनी के साथ पोंगल परोसा गया। उससे उठती सौरभ सबके नथुनों में समायी। पोंगल में काली मिर्च, इलायची, दालचीनी, जायफल, जावित्री आदि विभिन्न मसाले डाले हुए थे। उसका नमकीन स्वाद सबकी रसना को खूब भाया।

मसालों पर बात चल पड़ी तो अय्यर ने उत्साहपूर्वक कहा, ''महाभाग !

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हमारे क्षेत्र को आप विश्व की मसाला-राजधानी भी यदि कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। क्योंकि यहाँ पैदा होने वाली उपज काली मिर्च, इलायची, दालचीनी, जायफल, जावित्री, अदरक, हल्दी आदि विभिन्न मसालों के साथ, यहाँ के घने वनों में प्रचुर मात्रा में मिलनेवाला चन्दन-काष्ठ और हाथी-दाँत भी पश्चिमी देशों अर्वस्थान (अरब), कृष्णद्वीप (अफ्रीका) तक जाता है। सुना है कि वहाँ से वह बहुमूल्य सामान आगे गोरों के देशों तक जाता है। उनके जलयान यहाँ के समुद्र-तटों पर आकर मुँहमाँगे मूल्य पर ये वस्तुएँ खरीदकर कर ले जाते हैं। पहले हमारे जलयान भी उन देशों तक सामान लेकर गये थे। किन्तु उन्हें वापस आते समय खाली लौटना पड़ता था। वहाँ ऐसा कोई उत्पादन ही नहीं था जिसे लेकर वे लौटते। इसलिए अब उन्हीं देशों के लोग यहाँ आकर अपने जलयानों में मसाले ले जाते हैं।''

पोंगल खा भी नहीं पाये कि अय्यर की पत्नी तीन प्रकार की चटनियों के साथ उत्तपा परोस गयी। सरसों के तेल की अभ्यस्त कामरूपसासियों की जिह्वाओं को अब नारियल-तेल में पके व्यंजनों के स्वाद की आदत पड़ चुकी थी।

अय्यर का सान्निध्य पाकर शंकरदेव वहाँ दस दिन टिके रहे। उनके साथ नित्य पद्मनाभ-मन्दिर में दर्शन कर विभिन्न विषयों पर चर्चा करना उनका नित्य-नियम बन गया। इस बीच सब तिरुअनन्तपुरम् से डेढ़ कोस दूर स्थित मत्स्यतीर्थ हो आये। वहाँ एक घेरे के भीतर बने छोटे-छोटे कई मन्दिरों में भगवान् के मुखारविन्द, मत्स्यावतार, ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा परशुराम की मूर्तियाँ स्थापित थीं।

समय किसी के लिए नहीं रुकता। बरदोवा छोड़े पाँच वर्ष हो रहे थे। अभी पूरे देश का भ्रमण शेष था। अब शंकरदेव ने भारत के पश्चिमी भाग की ओर जाने का मन बनाकर उल्लूर जगदीश्वर अय्यर से आगे जाने की आज्ञा माँगी। इतने दिनों में पनपी आपसी आत्मीयता के बाद बिछुड़ना दोनों के लिए ही कष्टकारी था। किन्तु चरैवेति-चरैवेति का जाप करने वाला साधक इस मोह में ज्यादा कहाँ फँसता है ! यात्रीदल आगे के लिए चल पड़ा।

कोळत्तूर

रास्ते में आये कोळत्तूर में एक दिन ठहरे। वहाँ के धर्माधर्मकुण्ड नामक तीर्थ के पास एक लघु मन्दिर में नारायण के श्रीचरणों के दर्शन किये। वहाँ का पुजारी शंकरदेव का परिचय जानकर अत्यन्त प्रसन्न होकर बोला, ''कामरूप से इतनी दूर यात्रा पर आये हैं, यह मेरे लिए सुखद अचरज है। यहाँ से आठ-

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दस कोस की दूरी पर वरकला ग्राम है। वहाँ से कोस भर की दूरी पर भगवान् जनार्दन का मन्दिर है। आगे पूर्णत्रयी आयेगा, जहाँ विष्णु और शिव के मन्दिर हैं। उनके दर्शन करते हुए आप लोग आगे निकलिएगा।'' पुजारी को धन्यवाद दे, शंकरदेव अपनी टोली के साथ उसके बताये पथ पर निकल पड़े।

वरकला के जनार्दन

वरकला छोटा-सा गाँव था। वहाँ सबके नथुनों में धूप की तीव्र गन्ध समायी, कानों में समुद्र की गर्जना सुनायी दी। उस क्षेत्र में धूप की खदानें थीं, जिनकी गन्ध नासिकाओं को भा रही थीं। थोड़ी ही दूरी पर सिन्धुसागर की लहरें गरज रही थीं। वहाँ एक छोटे-से यात्री-विश्रामालय में सबने अपना डेरा लगाया।

सुबह समुद्र-स्नान के लिए तैयार होकर सब जाने लगे तो विश्रामालय के व्यवस्थापक श्रीनिवास अय्यंगार ने उन्हें समुद्र में नहाने से मना करते हुए कहा, ''आप लोग समुद्र में मत उतरियेगा।। यहाँ लहरों का वेग अति तीव्र है। आप बाहर से आये हुए यात्री हैं, कुछ ऐसी-वैसी घटना हो गयी तो आपके साथ हम भी बड़ी कठिनाई में पड़ जायेंगे। समुद्र में पास की ही एक छोटी नदी आकर मिलती है, आप लोग उसमें स्नान कर लें। मेरी कही बात का पूरा ध्यान रखियेगा।'' कुछ सोचकर अय्यंगार ने फिर कहा, ''आप लोग यहाँ नये हैं। ठहरिये, मैं भी आप लोगों के साथ चलता हूँ।''

शंकरदेव कुशल तैराक थे, उन्होंने सोचा कि इतनी चेतावनी सुनने के बाद भी समुद्र में उतरना उनका हठ कहलायेगा। तट पर नदी का मुहाना था। उस दृश्य ने सबको अभिभूत किया। तट से थोड़ी दूरी पर एक कगार पर मीठे पानी के पाँच झरने थे। अय्यंगार ने बताया, ''इन पाँचों को पापमोचन, ऋणमोचन, सावित्री, गायत्री और सरस्वती तीर्थ कहा जाता है। आप लोग यहाँ स्नान कीजिये।''

नदी-समुद्र का संगम देखा तो शंकरदेव अपने को नहीं रोक पाए। अय्यंगार ने उनकी मनस्थिति को भाँप लिया। उसने सावधान करते हुए कहा, ''अच्छी बात है, यहाँ समुद्र-स्नान कर लीजिए, परन्तु किनारे से आगे न जाएँ।'' वहाँ नहाने के वाद झरने के स्वच्छ जल में फिर से स्नान कर सव मन्दिर की ओर अभिमुख हुए।

जनार्दन-मन्दिर ऊँचाई पर था। पत्थरों की सीढ़ियाँ बनी थीं। नीचे उनके पास चक्रतीर्थ नामक कुण्ड था। ऊपर जाने पर एक वड़े घेरे में स्थित

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मन्दिर दिखायी दिया। गर्भगृह में भगवान् जनार्दन की चतुर्भुज श्यामवर्ण सुन्दर मूर्ति के दर्शन कर शंकरदेव भावसमाधि में चले गये। कुछ समय पश्चात् उन्होंने आँखें खोलीं। अय्यंगार मन में समझ रहा था कि अवश्य ये कोई महान विभूति हैं।

शंकरदेव ने अय्यंगार को पूछा, ''यहाँ से जुड़ी कोई पौराणिक कथा अवश्य होगी। आप जानते हों तो कृपया बताइये !''

अय्यंगार ने जनार्दन विषयक कथा बताते हुए कहा, ''सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी यहाँ के समुद्र-तट पर यज्ञ कर रहे थे। उस यज्ञ में स्वयं विष्णु साधु-वेश में पधारे और उन्होंने भोजन चाहा। ब्रह्माजी उन्हें भोजन देते गये, परन्तु अतिथि तृप्त नहीं हुआ। अन्ततः सारी भोजन-सामग्री समाप्त हो गयी। अब ब्रह्माजी सजग हुए। उन्होंने वास्तविकता को जाना तो साधु के चरणों में गिर पड़े। भगवान् अपने चतुर्भुज रूप में प्रकट हो गये। ब्रह्माजी ने प्रार्थना की, 'आप मेरे इस यज्ञ-स्थल पर इसी रूप में सदैव के लिए स्थिर रहें।' भगवान् उनकी प्रार्थना स्वीकार कर श्रीविग्रह रूप में यहाँ स्थित हो गये।'' इतना बता उसने आगे कहा, ''आप लोगों ने यहाँ आने पर धूप की जो गन्ध अनुभव की, वह यहाँ स्थित धूप-खदान की है। उसी स्थान पर ब्रह्माजी ने यज्ञ किया था।''

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सागर के किनारे-किनारे

रात्रि में शयन करते समय शंकरदेव विचार कर रहे थे, यात्रा दीर्घ होती जा रही है। किन्तु पथ में आये महत्त्वपूर्ण स्थलों को छोड़ा भी तो नहीं जा सकता। परिव्राजक का धर्म है, वह चरैवेति-चरैवेति का जाप करता अपने पथ पर आगे बढ़ता रहे। केवल यात्रा ही करनी होती तो स्थलों के दर्शन मात्र कर अग्रसर होता जाता। मुझे तो स्थान-स्थान के गीत-संगीत के साथ लोक परम्पराओं और भाषा-साहित्य को यथसम्भव आत्मसात भी करना है। तभी मैं अपने कामरूप के जन-साधारण के लिए किसी नवीन विचार और योजना के साथ नया कुछ कर पाऊँगा। फिर भी भारत के सभी तीर्थों तक पहुँच पाना सम्भव नहीं होगा। वैसे मुझे भी बरदोवा लौटने की कौन-सी शीघ्रता है ! अभी तो देश का बड़ा भूभाग देखना शेष है। सुबह यात्रा पर आगे निकल पड़ेंगे।

वरकला-जनार्दन से आगे का रास्ता लम्बा था, पर यात्रा तो तय करनी ही थी। अब उन्हें समुद्र-दीर्घिकाएँ मिलने लगीं, जो प्राकृतिक रूप से समुद्र से निकली खारे पानी की नहरें थीं। उनके दोनों किनारों पर खड़े नारियल के पेड़ों की लम्बी कतार जैसे यात्रियों के साथ चल रही थी। उन सीधे खड़े पेड़ों पर बन्दर की तरह छलांगें लगाते नारियल तोड़ने के लिए ऊपर चढ़ते आदमियों के करतब कुछ देर ठहर कर देखे। नहरों में चल रहीं नावों का दृश्य कामरूप जैसा लगा। नावरियों द्वारा गाये जा रहे नावरिया गीत के स्वर बरबस ही मन को खींचते थे। भाषा अलग हो सकती है, पर भाव एक ही रहे होंगे !

पूर्णत्रयी

अर्नाकुलम् होते हुए पूर्णत्रयी (त्रिपुणित्तुरै) पहुँचकर वहाँ के शेषशायी विष्णु-मन्दिर में सभी गये। वहाँ एक भक्त उच्च स्वर में प्रार्थना कर रहा था–

सव्यां संसारयादस्पतितरणितरिम् पादयष्टिम् प्रसार्य
व्याकुञ्च्यान्यां च पाणिं निदधदहिपतौ वाममन्यं च जानौ ।
पश्चादाभ्याम् दधानो दरमरिदमनम् चक्रमुद्यद्विभूषः
श्रीमान् पीताम्वरोऽस्मान्नमदमरतरुः पातु पूर्णत्रयीशः ।।

सर्वजय ने शंकरदेव से कहा, "गुरुदेव ! इन श्लोकों के अर्थ बताने

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

की कृपा करें तो बड़ा अनुग्रह होगा।''

शंकरदेव ने उसका शब्दार्थ समझाते हुए कहा, ''भक्त भगवान् विष्णु की प्रार्थना कर रहा है, संसारसिन्धु को पार करने के लिए नौका-तुल्य जिन्होंने अपने वामपद को फैला रखा है तथा जो अपने दाहिने पदकमल को मोड़े हुए हैं, जिनका दाहिना हाथ शेषनाग पर तथा बाँया अपने घुटने पर स्थित है, जिन्होंने अपने शेष दोनों निचले हाथों में शंख तथा शत्रुदमनकारी चक्र धारण कर रखा है, वे श्रीमान् पीताम्बरधारी, भक्तकल्पतरु पूर्णत्रयीश हमारी रक्षा करें।''

पास के शंकर-मन्दिर में किरात रूप में शिव विराजमान थे। वही वैष्णव वहाँ शैव भक्त के रूप में अभ्यर्थना कर रहा था—

धाराधरश्यामलाङ्गम्   छुरिकाचापधारिणम् ।
किरातवपुषम्   वन्दे   परमात्मानमीश्वरम् ।।

शंकरदेव इसका भावार्थ स्वयं ही बताने लगे, ''भक्त प्रार्थना कर रहा है, बादल के समान श्याम अंग-कान्तिवाले, छुरिका-चाप से सुसज्जित किरात रूपधारी भगवान् शंकर की मैं प्रार्थना कर रहा हूँ।''

गुरुवायूर

पूर्णत्रयी में रात्रि-विश्राम कर, सुबह सब अगली राह पर निकल पड़े। उनके बाँये हाथ की ओर लहराता सिन्धुसागर जैसे उनके साथ चल रहा था। अन्ततः कई दिनों की यात्रा कर गुरुवायूर पहुँचे।

सामने हिलोरें लेता सिन्धुसागर, उसके किनारे खड़े नारियल के हजारों पेड़ हवा के झकोरों के साथ झूम झूम कर जैसे उनका स्वागत कर रहे थे। सामने मन्दिर के निर्माण में सैकड़ों श्रमिक और शिल्पकार लगे थे। उन्हें रहने का आश्रय सहज ही मन्दिर के सत्रम् में मिल गया।

स्नानादि से निवृत हो मन्दिर में प्रतिष्ठित भगवान् विष्णु के दर्शन किये। वहाँ सींग-लगे नारियल देखकर शंकरदेव को अचरज हुआ। उन्हें कौतूहलपूर्वक उन नारियलों को निहारते देख, उनके पास खड़ा व्यक्ति बात को ताड़ गया। वह सबको अपने साथ मन्दिर के प्रांगण में ले गया। वहाँ बैठकर सबका परिचय हुआ। व्यक्ति ने अपना नाम कृष्ण अय्यर बताया। वह गाँव की वेद पाठशाला का आचार्य था। अय्यर ने सींग-लगे नारियल का रहस्य बताते हुए कहा, ''एक किसान अपनी पहली फसल के नारियलों को लेकर भगवान् गुरुवायूरप्पन् को चढ़ाने आ रहा था कि मार्ग में वह एक

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

डाकू के चंगुल में फँस गया। किसान ने डाकू से प्रार्थना की कि वह उसका सब कुछ लूट ले, परन्तु भगवान् के निमित्त लाये हुए नारियलों को छोड़ दे। इस पर डाकू ने ताना मारते हुए कहा, क्या गुरुवायूरप्पन् के नारियलों में सींग लगे हैं ! इतना कहना था कि सचमुच उनमें सींग उग आये। डाकू इस चमत्कार को देखकर घबराकर कुछ भी लिये बिना चला गया। तभी से ये नारियल मन्दिर में हैं।''

यह सुनकर शंकरदेव ने कहा, ''श्रीमान् ! मैंने सुना है कि यहाँ प्रतिष्ठित विष्णु-मूर्ति श्रीकृष्ण-जन्म के पहले की है ! आप इस विषय में अवश्य जानते होंगे। विस्तार से बताएँ तो कृपा होगी।''

कृष्ण अय्यर ने कहा, ''मैंने अपने बड़े-बूढ़ों से जो सुना है, आपको बताता हूँ। भगवान् विष्णु ने अपनी साक्षात मूर्ति ब्रह्मा को प्रदान की। स्वायम्भुव मन्वन्तर की बात है, प्रजापति सुतपा और उनकी पत्नी पृश्नि ने उत्तम पुत्र-प्राप्ति के लिए ब्रह्मा की तपस्या की। ब्रह्मा ने विष्णु प्रदत्त मूर्ति उन्हें देकर उसकी उपासना करने को कहा। बहुत काल की आराधना के बाद भगवान् प्रकट हुए तथा अगले जन्म में उनके यहाँ स्वयं पुत्र रूप में जन्म लेने का वरदान दिया। दूसरे जन्म में सुतपा कश्यप बने और पृश्नि अदिति। उनके यहाँ विष्णु ने वामन रूप में जन्म लिया। तीसरे जन्म में वे वसुदेव और देवकी के रूप में जन्मे जिनके यहाँ श्रीकृष्ण ने जन्म लिया। यह मूर्ति धौम्य ऋषि द्वारा वसुदेव को मिली जिसे उन्होंने द्वारका में प्रतिष्ठित कर पूजा-आराधना की।''

''फिर वह मूर्ति द्वारका से यहाँ कैसे आ गयी ?''

''श्रीकृष्ण ने अपने परम मित्र उद्धव को एक बार देव-गुरु बृहस्पति के पास एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सन्देश देकर भेजा कि द्वारका समुद्र में डूबे उसके पूर्व ही दिव्य-मूर्ति को किसी सुरक्षित और पवित्र स्थान में ले जाकर प्रतिष्ठित करा दें। उद्धव को यह भी समझाया कि वह मूर्ति कलियुग आने पर भक्तों के लिए अत्यन्त कल्याणदायक और वरदान रूप सिद्ध होगी। बृहस्पति द्वारका गये तब तक समुद्र उसे अपने में विलीन कर चुका था। उन्होंने वायु की सहायता से मूर्ति को समुद्र में से निकाला और उपयुक्त स्थान खोजते हुए इधर आये। यहाँ कभी कमल पुष्पों से युक्त एक झील थी, जिसके तट पर विराजमान शिव-पार्वती जैसे उसी मूर्ति कीं प्रतीक्षा कर रहे थे। शिव की आज्ञा से गुरु वृहस्पति ने उस मूर्ति की यहाँ प्रतिष्ठा कर दी। तभी से इस स्थान का नाम गुरुवायूर हो गया।''

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अय्यर ने आगे बताया, "यहाँ पास में ही ममीयूर नामक स्थान पर शिव-मन्दिर है। वहाँ भगवान् शिव की ममीयूरप्पन् के नाम से पूजा होती है।"

शंकरदेव ने जिज्ञासा की, "महोदय ! मन्दिर का नव-निर्माण चल रहा है। किन्तु इसके पहले भी तो मन्दिर रहा होगा !"

"मन्दिर का मूलतः निर्माण देव-शिल्पी विश्वकर्मा द्वारा किया गया था। उसके ध्वस्त हो जाने पर पाण्ड्य-नरेश यह नव-निर्माण करवा रहे हैं।"

गुरुवायूर शंकरदेव के मन को भा गया। कुछ दिन वहाँ व्यतीत कर एक सुबह सब अगली राह पर निकल पड़े। ऊँचा-नीचा रास्ता बियावान वनों से होकर गुजर रहा था। पथ काफी लम्बा था। कहीं पहाड़ी, कहीं समतल रास्ते पर यात्रा चल रही थी। उनके बायीं ओर लहराता सिन्धुसागर कभी-कभार साथ चलने लगता, फिर दृष्टि से ओझल हो जाता। उनके दूसरी ओर पर्वतों की शृंखला सिर उठाये साथ चल रही थी। वनों में हिंसक पशुओं का भय था, सो अलग। बीच में कहीं-कहीं मानव-बस्ती मिल जाती। जहाँ कहीं आश्रय मिलता, बनाते-खाते, रात में रुकते-रुकाते कई दिनों की कष्टकर यात्रा कर यात्रीदल उदीपी (उड़िपी) पहुँचा, तब तक शाम हो गयी। वहाँ एक धर्मशाला में आश्रय लिया।

उदीपी

धर्मशाला का व्यवस्थापक कृष्णन शेट्टी संस्कृत में स्नातक था। उसने कहा, "द्वैतमत का प्रतिष्ठापन करनेवाले श्रीमध्वाचार्य की कर्मस्थली यहीं है। उनका जन्म यहाँ से तीन कोस दूर वेल्ले ग्राम में हुआ था। श्रीमध्वाचार्य ने उदीपी में शास्त्रों का अध्ययन कर श्रीअनन्तेश्वर-मन्दिर के अच्युतप्रकाशाचार्य को अपना गुरु बनाया। श्रीमध्वाचार्य के पश्चात् उनके शिष्यों ने उदीपी के आसपास मुख्य आठ मठों के अलावा और भी कई मठ स्थापित किये।" मठ-परम्परा को देखने-समझने के लिए शंकरदेव उदीपी में कुछ दिनों के लिए रुक गये।

उदीपी में अनेक मन्दिर थे। सर्वप्रथम वे श्रीअनन्तेश्वर मन्दिर गये। उसके पूर्व में चन्द्रमौलिश्वर का मन्दिर था। बताया गया कि उसी स्थान पर भगवान् शंकर ने तपस्यारत चन्द्रमा को साक्षात दर्शन दिया था। रथयात्रा के दिन श्रीअनन्तेश्वर और चन्द्रमौलिश्वर की प्रतिमाएँ एक ही रथ में विराजती हैं।

अब वे श्रीकृष्ण मठ गये। मठ में प्रवेश करने पर सरोवर दिखायी पड़ा। मन्दिर की प्राचीरों पर भगवान् विष्णु के अवतारों के चित्र अंकित थे। एक स्थान पर श्रीमध्वाचार्य की मूर्ति स्थापित थी। पास में उनका काष्ठपीठ,

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रजत का अक्षयं-पात्र, दीप-पात्र, घण्टी आदि वस्तुएँ रखी थीं।

वहाँ स्थित एक लघु मन्दिर में गरुड़ विराजमान थे। मुख्य मन्दिर में शालग्राम-शिला से निर्मित श्रीकृष्ण की अत्यन्त सुन्दर मूर्ति के दर्शन हुए। दाहिने हाथ में मक्खन बिलोने की मथनी और बायें हाथ में मन्थन-रज्जु (नेत) धारण किये श्रीकृष्ण का ऐसा स्वरूप शंकरदेव ने पहली बार देखा। वहाँ जल रहे दीपों में से एक अखण्ड दीपक श्रीमध्वाचार्य द्वारा प्रज्ज्वलित बताया गया।

उदीपी के अनेक छोटे-बड़े मन्दिरों के अतिरिक्त शंकरदेव ने श्रीमध्वाचार्य के शिष्यों द्वारा स्थापित पालीमार मठ, श्रीअडमार मठ, पुत्तिगे मठ, सोड़े मठ, कणियूर मठ, पेजावर मठ, राघवेन्द्रस्वामी मठ, श्रीव्यासराय मठ आदि को जाकर देखा, वहाँ की परम्पराओं और व्यवस्था को समझा।

एक दिन शंकरदेव ने शेट्टी को माधव कन्दली रचित रामायण के बारे में बताया तो उसने भी अपने यहाँ हाल ही में कन्नड़ भाषा में रची गयी रामायण के बारे में बताते हुए कहा, ''श्रीमान ! कन्नड़ के एक प्रसिद्ध काव्य छन्द का नाम 'भामिनी-षट्पदी' है, जिसमें महाकवि बतलेश्वर तोरवे 'कुमार वाल्मीकि' ने 'तोरवे-रामायण' की रचना की है। 'कुमार वाल्मीकि' बतलेश्वर का उपनाम है और तोरवे उनके गांव का नाम है। चूँकि कन्नड़ भाषियों में दिगम्बर जैन भी होते हैं, इसलिए इसमें जैन-रामायण भी लिखी गई है। किन्तु सर्वमान्य 'तोरवे-रामायण' ही है। वाल्मीकि रामायण पर आधारित इस काव्य में भक्ति तथा राज-मर्यादा का भी विश्लेषण है। श्रीराम एक जगह राजा के कर्तव्यों बताते हुए कहते हैं–

धुरदोलिदिरादवरनिरि् वुदु शरणुहोक्कर सलहुवुदु
पति करिसुवुदु धर्मवन्धर्मवन्लिवुदवनियलि ।
अरसुगलिगिदु नयविनितु गोचरिसदिरे हगरणद
नाटकदरसरेनिसरे जगदलेंदनुनगुत रघुनाथ ।।

(युद्ध में सामना करनेवाले को मारना, शरणागत की रक्षा करना, पृथ्वी से अधर्म दूर कर धर्म-प्रतिष्ठा करना राज-कर्तव्य हैं। ऐसा न कर व्यर्थ प्रलाप करने वाला क्या जगत में राजा कहलाने योग्य है ? राम ने यह वचन मधु हास्य से कहे।)

कृष्णन शेट्टी ने शंकरदेव का उदीपी के अन्य विद्वानों से भी परिचय करा दिया। उनके साथ विभिन्न विषयों पर चर्चा करते हुए दस दिन कैसे निकल गये, पता ही नहीं चला। वहीं उन्हें पंचवटी जाने के पथ में मिलनेवाले

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गोकर्ण तीर्थ और उसके आगे आने वाले गोमान्तक प्रदेश के बारे में पता चला।

पथ लम्बा था। हरि बोल, कृष्ण बोल के समवेत उद्घोष और मन की उमंग के सहारे रास्ता तय हो रहा था। शंकरदेव पूरी यात्रा में अनुभव करते आ रहे थे कि भारत के लोगों की वेशभूषा, भाषा, खानपान और रहन-सहन भले अलग-अलग हों, परन्तु अतिथिपरायणता का भाव सब में एक है। ग्रामवासी अपने गाँव आये यात्री का समुचित सत्कार करना अपना धर्म समझते हैं।

गोकर्ण

परिव्राजक-टोली छोटी पहाड़ियों से घिरे पथ पर चलती समुद्र-तट पर पहुँची। वह गोकर्ण ही था। वहाँ के सुरम्य दृश्य देखकर सब अभिभूत थे। गोकर्ण ग्राम के मध्य श्रीवेंकटरमण नाम से विष्णु मन्दिर था। चारों ओर सुदृढ़ प्राचीरों की भाँति खड़ीं पहाड़ियों में ताम्राचल पर्वत और शतशृंग पर्वत का अपना महत्त्व था।

तैयार होकर सब सर्वप्रथम वहाँ के प्रमुख महाबलेश्वर मन्दिर की ओर आमुख हुए। उसका सौन्दर्य दूर से ही आकर्षित कर रहा था। मन्दिर के पीठ-स्थान पर भगवान् शंकर के आत्मतत्वलिंग का केवल शीर्षभाग ही दिख रहा था। शंकरदेव ने अपने पास खड़े एक पण्डित को इसका कारण पूछा तो उसने बताया, "आप प्रांगण में चलिए। वहाँ बैठकर बात करेंगे।"

गर्भगृह से बाहर आने पर सभा मण्डप में गणेश तथा पार्वती की मूर्तियों के मध्य नन्दी की प्रतिमा देखी।

पण्डित के साथ मन्दिर प्रागंण में बैठकर आपस में परिचय हुआ। पण्डित ने बताया, "कहा जाता है कि पाताल में तपस्या करते हुए भगवान् रुद्र गोरूपधारिणी पृथ्वी के कर्णरन्ध्र से यहाँ प्रकट हुए। इसीसे इस क्षेत्र को गोकर्ण कहा जाता है। मन्दिर में जो आत्मतत्त्वलिंग है, उसे महाबल भी कहते हैं। इसके स्पष्ट दर्शन बीस वर्ष पर यहाँ मनाये जाने वाले 'अष्टबंध महोत्सव' के समय ही केवल होते हैं। उस समय इसके सप्तपीठों और अष्टबंधों को निकालकर नवीन अष्टबंध बैठाये जाते हैं। यह मूर्ति मृगशृंग के समान है जो सदैव अष्टबंधों से आच्छादित रहती है।"

शंकरदेव ने जिज्ञासा की, "महाशय ! मृगशृंग से शिवलिंग का क्या सम्बन्ध है ?"

उनकी जिज्ञासा शान्त करने के लिए पण्डित ने बताया, "कथा है कि भगवान् शंकर एक बार मृग स्वरूप बनकर कैलास से अन्तर्हित हो गये।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शंकर को ढूँढ़ते हुए विष्णु, ब्रह्माजी और इन्द्र उस मृग के पास पहुँचे। तीनों ने मृग के सींग पकड़े। मृग तो अदृश्य हो गया, परन्तु देवताओं के हाथों में सींग के तीन टुकड़े रह गये। विष्णु और ब्रह्मा के हाथों में सींग का मूलभाग और मध्यभाग रह गये जिन्हें क्रमशः गोला-गोकर्णनाथ तथा शृंगेश्वर में स्थापित किया गया। इन्द्र ने अपने हाथ में आये अग्रभाग को स्वर्ग में स्थापित किया। रावण-पुत्र मेघनाथ ने जब इन्द्र पर विजय प्राप्त की, तब वह स्वर्ग से उसे लेकर लंका की ओर चला।''

पण्डित ने आगे कहा, ''कुछ विद्वानों का ऐसा मत भी है कि रावण की माता कैकसी समुद्र किनारे बालू का पार्थिवलिंग बनाकर पूजन कर रही थी कि समुद्र की लहरें बालुकालिंग को बहाकर ले गयीं। इससे वह दुखी हो गयी। माता को सन्तुष्ट करने के लिए रावण कैलास गया। वहाँ तपस्या कर उसने भगवान् शंकर से आत्मतत्त्वलिंग प्राप्त किया।

''दोनों कथाओं में विद्वानों के अपने-अपने मत हैं। किन्तु उस दिव्य लिंग को, स्वर्ग से या फिर कैलास से लेकर रावण जब इस क्षेत्र गोकर्ण में पहुँचा तो सन्ध्या हो गयी। रावण को दिव्य आत्मतत्त्वलिंग लंका ले जाते देख देवताओं को चिन्ता हो गयी। उनकी माया से रावण को शौचादि की तीव्र आवश्यकता हुई। देवताओं की प्रार्थना पर गणेश रावण के पास ब्रह्मचारी के रूप में उपस्थित हुए। उस ब्रह्मचारी के हाथों में लिंगविग्रह देकर रावण नित्य-कर्म से लौटा तो मूर्ति को पृथ्वी पर रखे पाया। इससे रावण कुपित हो गया। ब्रह्मचारी ने कहा, मूर्ति अत्यन्त भारी थी। मैं उसका वजन नहीं सँभाल पाया तो तीन बार तुम्हें पुकारा। निरुपाय होकर मुझे इसे धरती पर रखना पड़ा। रावण ने अथक प्रयास किये, परन्तु वह उसे नहीं उठा पाया।''

यह कथा बताकर पण्डित ने आगे कहा, ''यहाँ आसपास अनेक तीर्थ हैं। थोड़ी दूरी पर ही मन्दिर के अग्निकोण में कोटितीर्थ है। वहाँ से दक्षिण में अगस्त्य मुनि की गुफा है। आप पहले ग्राम के मध्य स्थित श्रीवेंकटरमण मन्दिर में जाकर भगवान् विष्णु के दर्शन कीजिये।''

श्रीवेंकटरमण मन्दिर में विष्णु का चक्रपाणि रूप था। वहाँ से बाहर आकर शंकरदेव ने गोकर्ण में कुछ दिन रहकर सब स्थलों को देखने का विचार किया। एक दिन कोटितीर्थ पहुँचे। वहाँ सप्तकोटिश्वर लिंग तथा नन्दी-मूर्ति थी। वहाँ पास के एक छोटे मन्दिर में हरि-हर की मूर्ति थी जिसका आधा भाग विष्णु का और आधा भाग शंकर का था। समीप ही वैतरणी तीर्थ था।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अगस्त्य मुनि गुफा के आगे वे ब्रह्मतीर्थ, भीमगदातीर्थ और विश्वामित्र तीर्थ में गये। वहाँ विश्वामित्रेश्वर लिंग-मूर्ति थी।

ताम्राचल पर्वत की चढ़ाई कठिन नहीं थी। वहाँ ताम्रपर्णी नदी का उद्‌गम और उसके पास ताम्रगौरी का छोटा-सा मन्दिर था। इसी तरह शतशृंग पर कमण्डलु तीर्थ, गरुड़ तीर्थ, अगस्त्य तीर्थ थे।

गोकर्ण की परिक्रमा में सबने रुद्रपाद, पट्टविनायक, उमावन, उमाह्रद, ब्रह्मकुण्ड, श्रीनृसिंह, श्रीकृष्णक्षेत्र सिद्धेश्वर, सुब्रह्मण्य, मार्कण्डेय तीर्थ, चक्रतीर्थ, सूर्यतीर्थ, चन्द्रतीर्थ आदि-आदि अनेक तीर्थों का भ्रमण किया। उनमें से अधिकतर समुद्र तट पर अवस्थित थे।

सात दिन कब निकल गये पता ही नहीं चला। अब शंकरदेव का अभीष्ट पंचवटी की ओर प्रस्थान करना था। वे ज्यों-ज्यों उत्तर की ओर बढ़ रहे थे, लोगों की भाषा और पहनावे में आये बदलाव का सबने स्पष्ट अनुभव किया। मन्दिरों के द्वारों पर बने गोपुरों की शृंखला शेष हो गयी थी। अब वे समुद्र तटवर्ती गोमान्तक क्षेत्र में पहुँच गये।

गोमान्तक

सह्याद्रि पर्वत शृंखला की गोद में सागर किनारे बसे छोटे-छोटे गाँवों का सिलसिला साथ चल रहा था। आगे कोशी गाँव आया। रात्रि-विश्राम के लिए यात्रीदल को एक गृहस्थ के यहाँ आसरा मिल गया। वह एक संस्कृतज्ञ ब्राह्मण का गृह था। उसने बातों-बातों में बताया, ‘‘यहाँ शान्तादुर्गा का मुख्य मन्दिर है। मन्दिर में स्थापित शान्तादुर्गा की प्रतिमा का मूल स्थान मिथिलांचल का तिरहुत था। परशुराम ने जब इस क्षेत्र से लेकर कन्याकुमारी तक के भूभाग को सागर से खाली कराया और यज्ञ करने के लिए तिरहुत से सारस्वत ब्राह्मणों को बुलाकर यहाँ बसाया, तब ब्राह्मण अपनी इस आराध्य मूर्ति को भी अपने साथ ले आये थे।’’

‘‘यहाँ के बारे में कुछ और बताएँ तो बड़ी कृपा होगी !’’ शंकरदेव ने गृहस्थ से जिज्ञासा प्रगट की।

‘‘गोमान्तक को गोमन्त, गोपाकपट्टण या फिर गोवापुर भी कहा जाता है। सूत संहिता में गोपापुरी नाम का उल्लेख मिलता है। हरिवंश, स्कन्दपुराण और महाभारत के भीष्मपर्व में भी गोमन्त का उल्लेख है। पूरा इतिहास तो मैं नहीं बता सकता परन्तु करीब पाँच सौ वर्ष पहले यहाँ कदम्बों का शासन था जिनकी राजधानी चन्द्रपुर थी। बाद में उन्होंने जुहारि नदी के किनारे स्थित गोवापुरी को अपनी राजधानी बनाया। उनके बाद यहाँ विजयनगरम् का

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शासन रहा। पन्द्रह-बीस वर्ष पहले यहाँ का शासन बहमनी राज्य के हाथों में चला गया था। पाँच-छह वर्ष से बीजापुर के बादशाह युसूफ आदिलशाह ने उन्हें हराकर इस पर अपना अधिकार कर रखा है।''

यात्रा उत्तरोत्तर आगे बढ़ रही थी। आगे कुशस्थल (कुडाल) ग्राम आया। वहाँ के विशाल मन्दिर में मंगेश महादेव का स्वयम्भूलिंग स्थापित था। वहाँ से आगे आये चिपलूण ग्राम में परशुराम का मन्दिर मिला। उस क्षेत्र को परशुराम-क्षेत्र भी कहा जाता था। मन्दिर में भार्गवराम, परशुराम और कालाराम– नामों की परशुराम की तीन मूर्तियाँ स्थापित थीं। उसके पास ही परशुराम की माता रेणुका का छोटा-सा मन्दिर था।

बलराम ने शंकरदेव से पूछा, ''गुरुदेव ! अपने कामरूप में भी परशुराम-क्षेत्र है और यहाँ भी। इसका क्या कारण होगा ?''

शंकरदेव ने उसकी शंका का समाधान करते हुए कहा, ''यह क्षेत्र परशुराम का कर्मक्षेत्र रहा होगा। कामरूप स्थित परशुरामकुण्ड में तो वे मातृहत्या के पाप से अपने हाथ में चिपके परशु को छुड़ाने गये थे।''

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पंचवटी-त्र्यम्बकेश्वर

यात्रीदल रास्ते में आये स्थलों को देखते हुए पंचवटी की ओर बढ़ रहा था। सागर का किनारा कब का छूट चुका था। रास्ता पथरीला और ऊबड़-खाबड़ था। आगे जाकर पथ वनीय हो गया। वन गहराता जा रहा था। अब वे दण्डक वन में प्रवेश कर चुके थे। अरण्य में खड़े पीपल, वट, शिरीष, कदम्ब, अशोक, देवदारु, बेल, महुआ, पलास, आँवला, हरड़, इमली के वृक्षों को देखकर शंकरदेव के मुँह से अनायास निकल पड़ा, ''परमानन्द ! सर्वजय ! बलराम ! इन पादपों को तुम लोग ध्यान से देखो। क्या पता प्रभु राम सीता की खोज में अपने भाई लक्ष्मण के साथ इन्हीं वृक्षों के पास से होकर गुजरे हों। देखो, यह वन कहीं लाल आभा दे रहा है, कहीं श्वेत तो कहीं पीली और कहीं हरी। इसके रास्ते कहीं घुमावदार हैं, कहीं सीधे। यह अरण्य कहीं निस्तब्ध लगता है और कहीं गुंजित। कहीं यह सघन लगता है और कहीं विरल। इसकी सुन्दरता का क्या बखान करें। इसका हरा-भरापन मानो इसकी तरुणाई का द्योतक है।''

आगे गाँवों में मिली स्त्रियों को गहरे हरे, लाल, बैंगनी, नीले रंग की चौड़ी सुनहरी किनारीदार; पुरुषों की भाँति लाँग लगाकर पहनी हुई साड़ियों में देखा। उन्होंने अपने आंचल कंचुकी के ऊपर से कमर में खोंस रखे थे। उनकी माँग में गहरा सिन्दूर, माथे पर दमदमाती हुई बड़ी-सी लाल बिन्दिया, कण्ठ में काले मनकों के सुनहले-रुपहले मंगलसूत्र, केश के जूड़ों में फूलों की वेणियाँ सजी थीं। कुछ ने बड़ी-बड़ी नथें अपने बायें नथुनों में पहन रखी थीं।

ग्रामीण घरों के बाहरी भाग गोबर-मिट्टी से लिपे थे। वे जिस गाँव से गुजरते, वहाँ के लोग 'राम-कृष्ण-हरि' कहकर उनका अभिवादन करते। उनकी भाषा के कुछ शब्दों में शंकरदेव को अपनी कामरूपी से साम्यता लगी। उन्होंने साथियों से कहा, ''तुम लोगों ने ध्यान दिया, इनके 'इकड़े-तिकड़े' हमारे 'इयाते-ताते' के कितन निकट है। ये भी हमारी तरह माँ को 'आई' कहते हैं।''

बलराम ने कहा, ''हममें इतनी समझ कहाँ है ! आपके बताने पर अब हमारा ध्यान इस ओर गया। हम भी यह अनुभव करते आ रहे हैं कि जगह-जगह हमारी भाषाएँ भले अलग हों, परन्तु पूरे भारत की संस्कृति तो एक है।

''गुरुदेव ! हमारा अहोभाग्य है जो जगन्नाथपुरी से वापस बरदोवा नहीं लौटना पड़ा। आप अनुग्रह कर हमें अपने साथ यात्रा पर ले आये।''

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नासिक-पंचवटी

महीने भर की यात्रा कर अन्ततः वे गोदावरी किनारे पहुँचे। गोदावरी-धारा के मध्य अनेक चट्टानें थीं। जल का बहाव तीव्र था। उसमें नहा रहे लोगों की कमर तक पानी देखकर सहज ही अनुमान लगाया जा सकता था कि नदी ज्यादा गहरी नहीं है। नदी के अनुपम सौन्दर्य ने सबके मन को लुभाया। शंकरदेव को ब्रह्मपुराण में पढ़ा गोदावरी का माहात्म्य याद हो आया। उन्होंने कहा, "गोदावरी को गौतमी भी कहा जाता है। ब्रह्मपुराण में गौतमी-माहात्म्य पर कितने ही अध्याय होंगे, जिनमें इसकी अपार महिमा बतायी गयी है। महर्षि गौतम ने इसे पृथ्वी पर अवतरित किया था, जिससे इसे गौतमी कहा गया।"

गोदावरी में उतर कर कितनी ही देर उनका जल-कल्लोल चलता रहा। स्नान कर जल से बाहर आये तो शंकरदेव ने सस्वर गाया–

अमृतं जाह्नवीतोयममृतं स्वर्णमुच्यते ।
अमृतं गोभवं चाज्यममृतं सोम एव च ।।
गङ्गाया वारिणाऽज्येन हिरण्येन तथैव च ।
सर्वेभ्योऽप्यधिकं दिव्यममृतं गौतमीजलम् ।।

फिर साथियों को अर्थ समझाते हुए शंकरदेव ने कहा, "ब्रह्मपुराण में इसकी अपार महिमा बताते हुए कहा गया है, गंगाजल अमृत है, सोना अमृत है, गाय का घी अमृत है तथा सोमरस भी अमृत है। किन्तु गौतमी अर्थात् गोदावरी का जल तो गंगाजल, घी, सुवर्ण और सोमरस से भी अधिक दिव्य अमृत है।"

घाट पर खड़ा पण्डा उनकी भाषा तो नहीं समझ पाया, परन्तु शंकरदेव का सस्वर संस्कृत श्लोक सुनकर समझ गया कि वे कोई विद्वान पुरुष हैं। उसने सबसे परिचय कर अपना नाम पण्डित भालचन्द्र विनायक मुलेशास्त्री बताया। शंकरदेव ने उसे पथ-प्रदर्शक के रूप में अपना पण्डा नियुक्त कर वहाँ के बारे में अधिक जानने की इच्छा प्रकट की।

पण्डे ने कहा, "श्रीमान् ! यह गोदावरी का दक्षिणी किनारा है। इसके उत्तरी किनारे मेरा घर है। आप लोग जितने दिन चाहे वहाँ ठहर सकते हैं। यह मेरा भी अहोभाग्य है जो कामरूप-कामाख्या क्षेत्र से आये आप जैसे विद्वानों की यजमानी करने का मुझे अवसर मिलेगा।"

पण्डित भालचन्द्र ने आगे कहा, "इस पवित्र गोदावरी का उद्‌गम

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यहाँ से आठ-नौ कोस की दूरी पर स्थित त्र्यम्बकेश्वर है जो द्वादश ज्योतिर्लिंगों में एक गिना जाता है। गोदावरी की वसिष्ठा, कौशिकी, वृद्धा-गौतमी, गौतमी, भारद्वाजी, आत्रेयी और तुल्या नामक सात धाराएँ प्रसिद्ध हैं। इनके बारे में महाभारत के वनपर्व में कहा गया है—

सप्तगोदावरीं स्नात्वा नियतो नियताशनः ।
महापुण्यमवाप्नोति देवलोकं च गच्छति ।।

अर्थात् इन सप्तगोदावरी धाराओं में स्नान का अद्‌भुत माहात्म्य है। यहाँ नियत आहार-विहार से रहकर स्नान करनेवाले को महापुण्य की प्राप्ति होती है और अन्त में वह देवलोक को जाता है।''

इतना बताकर पण्डा बोला, ''आप पहले यहाँ के तीर्थों के दर्शन करिये, दो-तीन दिनों में आपको त्र्यम्बकेश्वर भी ले चलूँगा। यहाँ गोदावरी के दोनों तटों पर रामकुण्ड, सीताकुण्ड, लक्ष्मणकुण्ड, धनुषकुण्ड आदि कई तीर्थ हैं।''

पण्डा सबको अपने साथ रामकुण्ड घाट के वायव्यकोण में ले गया। वहाँ प्राकृतिक रूप से बने गोमुखाकार पर्वतीय मुँह से एक धारा आकर गोदावरी में गिर रही थी। पण्डे ने बताया, ''यह अरुणा नदी की धारा है, जो गोदावरी में समाहित हो जाती है। यहाँ लोग अपने पितरों का तर्पण करते हैं। इसके समीप ही शाप-विमोचन तीर्थ है। अहिल्या को छलने के कारण गौतम ऋषि द्वारा शापग्रस्त इन्द्र ने शाप से मुक्त होने के लिए यहाँ स्नान किया था। किन्तु उसका पाप इतना भयंकर था कि एक तीर्थ में स्नान करने मात्र से कैसे दूर होता। वह जगह-जगह पवित्र तीर्थों में अपने पाप-विमोचन के लिए भटकता फिरा था।''

पण्डित मुलेशास्त्री तट पर बने एक छोटे मन्दिर के पास सबको ले गया। मन्दिर के द्वार वंद थे। उसने बताया, ''यह गोदावरी मन्दिर है। इसके द्वार प्रति बारहवें वर्ष जव बृहस्पति सिंह राशि में होते हैं, तब यहाँ कुम्भपर्व होता है, उस समय ही खोले जाते हैं।'' उन्हें पास के विट्ठल मन्दिर में ले जाकर पण्डा ने बताया, ''मराठा प्रदेश में भगवान् श्रीकृष्ण को विट्ठल कहा जाता है। यहाँ दर्शन कर मेरे घर चलकर पहले जलपान करिये।''

पण्डा का घर गोदावरी के पास ही था। दोपहर बाद वह उन्हें कपालेश्वर शिव मन्दिर, कालाराम मन्दिर के दर्शन करता हुआ आगे पंचवटी ले गया। वह दण्डकारण्य का भाग था।

घने वन से घिरे उस स्थल पर पाँच वट वृक्ष खड़े थे। उनकी घनी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

छाँव तले बैठकर शंकरदेव भावों में खो गये— यहीं राम ने अपने वनवास का अधिक समय व्यतीत किया था। यहीं सीता स्त्री-सुलभ स्वभाव के वशीभूत होकर माया के स्वर्ण मृग पर रीझी थीं। मायामृग के पीछे मायापति राम गये, वह भी उनकी ही माया थी। सीता की भूल के कारण रावण उसका हरण कर लंका ले गया था।

पंचवटी आकर शंकरदेव अति प्रसन्न थे। उन्होंने कहा, ''दण्डकारण्य भारतवर्ष में राक्षसों का प्रमुख केन्द्र था। रावण जैसे बलवान क्रूर आक्रान्ता के अधीन खर-दूषण, मारीच, ताड़का और कामुक शूर्पणखा ने इस क्षेत्र में अपना आतंक फैला रखा था। राक्षस के कोई सींग नहीं होते। अपने मतानुसार चलनेवालों को जो त्रसित कर अपने मत पर चलने के लिए आतंकित करे, निरपराधों का बिना कारण ही वध करे, वही राक्षस है। ऐसे दुष्ट प्रवृत्ति वाले राक्षसों को मारने के लिए ही भगवान् विष्णु ने रामावतार लिया।''

पंच-वटों के पास ही सीतागुफा थी। सीढ़ियों से भूगर्भ में प्रवेश कर राम-लक्ष्मण-सीता की मूर्तियों के दर्शन किये। भालचन्द्र ने बताया, ''श्रीराम भावी को जानते थे। उन्हें तो मर्यादा में रहकर अपनी लीला कर राक्षसों का वध करना था। उन्होंने इस गुफा में सीता को अग्निदेव के सुपुर्द कर दिया और उसकी जगह छाया-सीता को ले आये जिसका रावण ने हरण किया। वह छाया-सीता पूर्वजन्म की वेदवती थी जिसने राम को पति रूप में पाने के लिए तपस्या की थी। रावण ने एक बार तपस्यारत वेदवती का शीलभंग करने का प्रयास किया तो उसने उसे शाप दिया कि वही उसकी मृत्यु का कारण बनेगी।''

पंचवटी से पण्डा उन्हें कोस भर दूर तपोवन ले गया। वहाँ गोदावरी और कपिला का संगम था। पण्डा ने बताया, ''गोदावरी-कपिला के इस संगम पर महर्षि गौतम की तपःस्थली थी। यहाँ ब्रह्मतीर्थ, शिवतीर्थ, विष्णुतीर्थ, अग्नितीर्थ, सीतातीर्थ, मुक्तितीर्थ, कपिलातीर्थ और संगमतीर्थ नामक आठ तीर्थ हैं। इसी क्षेत्र में लक्ष्मण ने शूर्पणखा की नाक काटी, जिससे इसे नासिक कहा जाने लगा।'' पण्डा ने शंकरदेव से आगे कहा, ''सन्ध्या हो रही है, अब घर चलते हैं।''

दूसरे दिन सुबह पण्डा तीन कोस दूर स्थित पहाड़ी पर रामशय्या गुफा ले गया। वहाँ दो-तीन गुफाएँ और थीं। पण्डा ने बताया, ''यहीं से रावण ने सीता का अपहरण किया। इन्हीं गुफाओं में से एक में राम शयन किया करते थे।''

पण्डे की पत्नी ने दोपहर के भोजन के लिए रसोई में ही सबको बिठा लिया। थाली में दो-तीन तरकारियों के साथ मीठी पूरणपोली परोसी गयी।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कामरूपवासियों को उसका स्वाद अपने यहाँ माघबिहू पर बननेवाले पीठा जैसा मीठा लगा। उसके साथ भात-दाल खाकर सब बड़े तृप्त हुए।

त्र्यम्बकेश्वर

पण्डे ने पहले से ही बैलगाड़ियों की व्यवस्था करवा रखी थी। पहाड़ की तलहटी में बसे त्र्यम्बकेश्वर ग्राम पहुँचते-पहुँचते सन्ध्या हो गयी। गाँव में खपरैल छाये ज्यादातर घर पण्डों या फिर कुछ किसानों के थे। भालचन्द्र ने सबको एक धर्मशाला में ले जाकर ठहराया। फिर मन्दिर की सान्ध्य-आरती में ले गया। विशाल प्रांगण के मध्य काले पत्थरों से बने त्र्यम्बक मन्दिर में प्रवेश किया। गर्भगृह में स्थित त्र्यम्बकेश्वर लिंग पुष्पों के शृंगार में छिपा था। आरती के पश्चात् गर्भगृह से स्वर उभरा—

> सह्याद्रिशीर्षे विमले वसन्तं गोदावरी तीर पवित्र देशे ।
> यद्दर्शनात्पातकमाशु नाशं प्रयाति तं त्र्यम्बकमीशमीडे ।।

इसके साथ पूरा वातावरण 'ॐ नमः शिवाय, ॐ नमः शिवाय' से गूँज उठा। परमानन्द ने सस्वर गाये गये श्लोक का अर्थ जानना चाहा तो भालचन्द्र ने बताया, "भक्त कहता है, जो गोदावरी तट के पवित्र सह्याद्रि पर्वत के शिखर पर वास करते हैं, जिनके दर्शन मात्र से समस्त पाप तुरन्त नष्ट हो जाते हैं, उन त्र्यम्बकेश्वर का मैं स्तवन करता हूँ।"

अगले दिन सुबह सब पण्डे के संग सर्वप्रथम मन्दिर से थोड़ी दूरी पर स्थित कुशावर्त सरोवर गये। विस्तृत पक्के सरोवर के चारों तरफ छतदार पक्का बरामदा बना था। स्नान कर लेने के बाद पण्डे ने बताया, "इसी कुशावर्त से गोदावरी का उद्गम माना गया है। वैसे मूल रूप में इसका उद्गम-स्थल ब्रह्मगिरि पर है, परन्तु वहाँ यह गुप्त हो जाती है।"

कुशावर्त सरोवर के पास के गंगा मन्दिर और श्रीकृष्ण मन्दिर में शंकरदेव ने दर्शन किये। वहाँ से त्र्यम्बकेश्वर मन्दिर के मार्ग में आये संगमेश्वर, कुणकेश्वर, कपोतेश्वर, सन्ध्यादेवी और त्रिभुवनेश्वर स्थलों को दिखाता हुआ पण्डा उन्हें लेकर मुख्य मन्दिर पहुँचा। वहाँ दक्षिण भारत जैसी गर्भगृह में प्रवेश करने की मनाही नहीं थी। शिवलिंग के रूप में केवल अर्घा दिखायी दिया। पण्डे ने कहा, "आप लोग ध्यान से देखिये, यहाँ छोटे-छोटे तीन शिवलिंग हैं। ये ब्रह्मा, विष्णु और महेश के प्रतीक माने जाते हैं।"

प्रातःकालीन पूजा करने मन्दिर में आये भक्तजन अपने साथ लाये घृत, मधु, दूध, दही, शर्करा और शुद्ध जल से भगवान् त्र्यम्बक का अभिषेक

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कर चन्दन, कुंकुम आदि का विलेपन कर नाना प्रकार के सुगन्धित पुष्पों के साथ आक, धतूरा, बिल्वपत्र चढ़ा रहे थे। विभिन्न रंगी अबीर और अभ्रक चढ़ाकर त्र्यम्बकलिंग का शृंगार करने के पश्चात् पुजारी ने उस पर चाँदी से बना पंचमुख चढ़ा दिया। पण्डे ने कहा, ''अब मूल लिंग की जगह भक्तों को यही दर्शन होंगे। आपका अहोभाग्य है, आज सोमवार है। यहाँ सोमवारी दर्शन विशेष फलदायी माना जाता है।'' बात पूरी भी नहीं हुई कि घण्टा-नाद के साथ कर्पूरी आरती होने लगी।

आरती होने के पश्चात पण्डे ने शंकरदेव से पूछा, ''आपने भगवान् त्र्यम्बक का न अभिषेक किया और न पूजा !''

शंकरदेव ने कहा, ''हम वैष्णव हैं। हमारा विश्वास है कि विष्णु का नाम मात्र लेने से सब देवता तृप्त हो जाते हैं।'' शंकरदेव की बात सुनकर पण्डा मुस्करा दिया।

त्र्यम्बकेश्वर स्थित अनेक पवित्र स्थानों को दिखाता हुआ भालचन्द्र उन्हें निवृत्तिनाथ की समाधि पर ले गया। वह शंकरदेव के जिज्ञासु स्वभाव को समझने लगा था। वह बताने लगा, ''सन्त निवृत्तिनाथ के दो छोटे भाई ज्ञानेश्वर और सोपान तथा छोटी वहन मुक्तावाई भी यहाँ की सन्त-माला के अनमोल मोती हैं। ज्ञानेश्वर और उनके भाई-बहन ने बड़े भाई निवृत्तिनाथ को ही अपना गुरु बनाया। ज्ञानेश्वर ने जनभाषा मराठी में श्रीमद्भगवद्गीता पर 'ज्ञानेश्वरी' नाम से भाष्य लिखा। ज्ञानेश्वर ने मात्र बाइस वर्ष की अवस्था में समाधि ले ली। उनकी समाधि यहाँ से दूर आलन्दी में है।''

शकंरदेव ने जिज्ञासा प्रकट की, ''महानुभाव ! यहाँ की भक्त परम्परा के बारे में हमें और बताइये, हम कृतज्ञ रहेंगे।''

भालचन्द्र ने कहा, ''मराठा प्रदेश में वारकरी सम्प्रदाय हुआ है। वारकरी का अर्थ पैदल तीर्थयात्री होता है। इस मत को माननेवाले 'विट्ठल-विट्ठल' कहकर कृष्णभक्ति में भावविभोर रहते हैं। पण्ढरपुर के भगवान् पाण्डुरंग के दर्शन कर अन्यान्य वैष्णव तीर्थों की भी यात्राएँ करते हैं।''

पण्डा ने आगे कहा, ''इस प्रदेश में भक्तों की लम्वी परम्परा रही है। इन भक्तों ने किसी तरह के जाति-भेद को नहीं माना। सन्त नामदेव दर्जी परिवार में जन्मे थे। नामदेव के चारों पुत्र और उनकी पुत्रवधुएँ और तो और उनके यहाँ काम करनेवाली नौकरानी जनावाई तक सन्त हुए हैं। नामदेव बाद में पंजाव चले गये। वहीं उन्होंने जीवन के वीस वर्ष व्यतीत किये।

''जनावाई के लिखे अभंग यहाँ का जन-जन गाता है। इसी प्रकार

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भक्त चोखा मेला हुए, वे महार जाति के थे। महार जाति का काम बस्तियों में मरे पशु उठाने का था। शूद्रों में भी महाशूद्र होकर भी चोखा मेला अपनी हरि-भक्ति के कारण किसी भी ब्राह्मण से उच्च थे। चोखा काशी गये तो उन्हें सन्त कबीर और शूद्र जाति में जन्मे सन्त रैदास के बारे में पता चला। वे दक्षिण गये तो वहाँ हुए सन्त नन्दवार के बारे में पता चला कि वे भी शूद्र हैं।''

''शूद्र कोई जन्म से नहीं, अपने कर्मों से होता है। वास्तव में यह जाति-विभाजन एक सामयिक व्यवस्था थी। लेकिन कालान्तर में इसीसे 'अस्पृश्यता' पनपी, जो हमारे समाज के लिए अभिशाप है। मुझे यहाँ के सन्तों के बारे में जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। अन्य सन्तों के बारे में भी बताइये।'' शंकरदेव ने जिज्ञासा से कहा।

भालचन्द्र ने पुनः बात का सूत्र पकड़ा, ''चोखा मेला की तरह ही सन्त त्रिलोचन, नरहरि सुनार, गोरा कुम्हार, कुर्मदास, सावता माली आदि भक्तों की लम्बी परम्परा यहाँ रही है। इनमें महार, सुनार, कुम्हार, माली, दर्जी, चाण्डाल से लेकर ब्राह्मण और स्त्रियाँ तक शामिल हैं।''

शंकरदेव ने कहा, ''यह अच्छी बात है, जाति की ओर ध्यान नहीं दिया गया। मनुष्य का कर्म ही प्रधान है। हरि-भक्ति ही सर्वोपरि है।''

धर्मशाला में लौटकर पण्डे ने बताया, ''त्र्यम्बकेश्वर के समीप ब्रह्मगिरि, नीलगिरि और गंगाद्वार नामक तीन पर्वत हैं। यहाँ पग-पग पर अनेक तीर्थ हैं जिन्हें देखने के लिए आप लोगों को कुछ दिन यहाँ रुकना पड़ेगा।''

पण्डे द्वारा बताये गये तीनों पर्वतों पर जाने के बाद वहाँ से तीन कोस दूर चक्रतीर्थ भी शंकरदेव सबके साथ हो आये। त्र्यम्बक में रहते उन्हें दस दिन हो गये। अब उनका मन द्वारिका की ओर प्रस्थान करने का हो गया। पथ बहुत लम्बा था।

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गुजरात

यात्रा ज्यों-ज्यों आगे बढ़ रही थी त्यों-त्यों लोगों की वेशभूषा-भाषा भी बदलती गयी। अब पुरुषों की तरह लाँग लगी साड़ियों में दिखनेवाली महिलाओं के बदले घाघरा या फिर सीधे पल्लु की साड़ियाँ पहने स्त्रियाँ मिलने लगीं। भात खाने के अभ्यस्त कामरूपियों को रोटी और बेसन से बनी खाद्य वस्तुएँ खाने का अभ्यास नहीं था। यह तो उनके लिए अच्छा रहा कि वहाँ चावल हर जगह मिल जाता था।

सूर्यपुर-भृगुकच्छ-स्तम्भतीर्थ

ताप्ती नदी के किनारे बसा सूर्यपुर (सूरत) आया। इसके नजदीक ही समुद्र में ताप्ती समा जाती है। आगे यात्री भृगुकच्छ (भड़ौच) के पास स्तम्भतीर्थ (खम्बात की खाड़ी) पहुँचे। इसी स्तम्भतीर्थ में अमरकण्टक पर्वत से निकलकर सहस्रार्जन की राजधानी मँडला होती हुई, माहिष्मतीपुरी के ओंकार क्षेत्र में ज्योतिर्लिंग ओंकारेश्वर के समीप कलकल बहती, हरी झाँई की चुनरिया ओढ़े नर्मदा अपने प्रीतम सागर से आ मिलती है। नर्मदा में स्नान कर सबने उसके संगम में भी डुबकी लगायी। डग-डग नापते और मन में द्वारकाधीश का ध्यान कर शंकरदेव आगे बढ़ते जा रहे थे।

यात्रा करते एक माह हो गया। एक गाँव में पहुँचे। शाम ढल चुकी। अन्धेरा घिरने लगा। अब रात्रि-विश्राम लेना आवश्यक था। आसपास ऐसा कोई मठ-मन्दिर नहीं मिला, जहाँ ठहर पाते। वे उधेड़बुन में थे कि किसे अपनी समस्या बतायें। अन्ततः एक गृहस्थ का द्वार खटखटाया। उसके यहाँ आसरा मिला। गृहस्थ की भाषा के कुछ शब्दों को शायद वे समझ पाते, परन्तु शब्दों के उच्चारण बाधा बन रहे थे। अन्ततः शंकरदेव ने गृहिणी को संकेतों से समझाया कि वे भात खाना चाहते हैं। भात के साथ आयी दाल में गुड़ की मिठास थी। मूँगफली तेल में बनी तरकारी पर तेल तैर रहा था। इन स्वादों को चखने का कामरूपवासियों ने अब तक अभ्यास कर लिया था।

वड़ोदरा

सुबह सब आगे के लिए निकल पड़े। एक बड़ा गाँव वड़ोदरा आया। वहाँ के विठ्ठल मन्दिर में आसरा मिल गया। उसके परिसर में ही एक गुरुकुल था। शंकरदेव ने वहाँ के आचार्य के पास जाकर आगे का पथ बताने का आग्रह

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

किया। उन्होंने बताया, "आप लोग दूर से आये हैं। आज यहाँ विश्राम कीजिये। कल सुबह यहाँ से चलकर सन्ध्या तक आप लोग डाकोर पहुँच जायेंगे। वहाँ श्रीकृष्ण का रणछोड़राय के नाम से बड़ा भव्य मन्दिर है। वहाँ दर्शन कर आपको द्वारका जैसी अनुभूति होगी। वहाँ से पश्चिम दिशा में बढ़ने पर सागर किनारे वसी द्वारकापुरी मिलेगी। आप लोग चाहें तो वहाँ सीधे न जाकर सोमनाथ और उसके पास के तीर्थों के दर्शन कर सुदामापुरी (पोरबन्दर) होते हुए भी द्वारका जा सकते हैं।"

शंकरदेव आचार्य की भाषा से बड़े प्रभावित हुए। वे समझ गये कि ये वयोवृद्ध बड़े विद्वान हैं। अब तक उनका औपचारिक परिचय धीरे-धीरे घनिष्ठता में परिवर्तित होने लगा। अपना पूर्ण परिचय देकर शंकरदेव ने उनका नाम पूछा।

"मुझे रेवाशंकर व्रजलाल दवे कहते हैं। काशी में रहकर मैंने संस्कृत पढ़ी है। यह गुरुकुल मेरे पिता का आरम्भ किया हुआ है। आसपास के गाँवों के विद्यार्थी यहाँ रहकर शिक्षा ग्रहण करते हैं।" इसी बीच आचार्य दवे ने सबके भोजन की व्यवस्था करने के लिए गुरुकुल की रसोई में कहलवा दिया।

शंकरदेव ने सोचा कि आचार्य के पास रुककर गुर्जर प्रदेश के बारे में अनेक बातें जानी जा सकती हैं। उन्हें अपना मन्तव्य बताया। वे सहर्ष तैयार हो गये।

अवकाश के क्षणों में आचार्य दवे शंकरदेव के कक्ष में आये। वार्तालाप में शंकरदेव ने उन्हें अपने यहाँ की भक्ति-धारा के बारे में बताने के लिए विनती की। आचार्य उनका जिज्ञासु भाव देखकर प्रसन्न हुए।

आचार्य ने बताया, "गुर्जर प्रदेश की धर्मप्राण धरती पर जातिगत भेदभाव से ऊपर उठकर भक्तिभाव जगानेवाली आध्यात्मिक मालिका में सिद्ध, नाथ, भक्त तथा सन्त– चारों की ही प्रभावी भूमिका रही है। यहाँ सैकड़ों भक्त सिद्धों के नाम मिलते हैं।

"रामानन्द सम्प्रदाय के शिष्यों ने भी यहाँ भक्ति का व्यापक प्रचार किया। काशी के स्वामी रामानन्द तो जैसे जाति, वर्ण, सम्प्रदाय आदि सभी प्रकार के भेदभाव दूर करने के लिए ही अवतरित हुए थे। रामानन्द की मान्यता थी कि प्रभु दयालु हैं, उनके सम्मुख धनी-निर्धन, बली-निर्बल, ऊँच-नीच, जाति-पाँति महत्त्वहीन है। वे भेदभाव विहीन समाज-निर्माण के लिए दृढ़ संकल्पित थे। इसीलिए उन्होंने प्राचीन चातुर्वण्य के सिद्धान्त पर आधारित सामाजिक-व्यवस्था में जो विसंगतियाँ आ गयी थीं, उनका डटकर विरोध किया। उनके

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शिष्यों में योगानन्द, सुरसुरानन्द, सन्त पीपा, अनन्तानन्द एवं सन्त कबीर आदि सभी ने रामानन्द सम्प्रदाय का प्रचार किया।''

शंकरदेव ने कहा, ''हमने भी सन्त कबीर के पद-गीत जगह-जगह सुने। अपने काशीवास में उनसे भेंट करने उनके घर भी गये। किन्तु वे काशी से बाहर गये हुए थे। इसलिए उनसे भेंट नहीं हो सकी।''

आचार्य दवे ने बात आगे बढ़ाते हुए कहा, ''एक लोहार परिवार में जन्मी लीरलबाई तो साक्षात भक्तनिधि ही थीं। उनके नाथपन्थी पिता वीरभक्त अपना लुहारी का काम करते समय सन्तवाणी गाया करते थे। एक बार उनके यहाँ पधारे सन्त देवायन के साथ लीरलबाई की आध्यात्मिक चर्चा हुई। देवायन की अनेक शंकाओं का लीरलबाई ने समाधान किया तो वे उनकी विलक्षण प्रतिभा से बड़े प्रभावित हुए। लीरलबाई का कहना था कि मनुष्य-देह अखिल ब्रह्माण्ड की छोटी-सी आवृत्ति मात्र है, तभी इसे पिण्ड कहा गया है। अपने पिता के साथ लोहारी के काम में हाथ बँटाते हुए भी उन्होंने अनेक भजन तथा ग्रन्थ रच डाले।''

दवे ने आगे कहा, ''अभी कुछ वर्ष पहले ही नरसी मेहता का देहावसान हुआ है। वे जूनागढ़ में पिता कृष्णदामोदर दास और माता दया कुंवर के यहाँ जन्मे थे। कृष्ण के अनन्य भक्त होने के कारण वे नरसी भगत के नाम से विख्यात हो गये। नरसी भगत ने कृष्णभक्ति का गुजरात में व्यापक प्रचार ही नहीं किया, अपितु गुजराती में भक्ति-साहित्य की रचना कर सामान्य जन को भक्ति के प्रवाह में भी अवगाहन कराया।

''गुजरात के भक्त-कवियों में अभी से नरसी मेहता की गणना होने लगी है। उनकी रचनाओं में सगुण-निर्गुण दोनों रूप हैं। उन्होंने संसार के सभी जीवों को समान मानते हुए सम्पूर्ण जगत को ब्रह्ममय माना। उनका कहना है कि इस विराट जगत में ईश्वर अपने विविध स्वरूपों में व्याप्त है। उन्होंने लिखा—

अखिल ब्रह्माण्ड मां एकं तु श्रीहरि, जूजये रूपे अनन्त भासे ।
देहमा देव तुं तंजमां तत्व तुं, शून्य मां शब्द थह वेदवेसे ।।

अर्थात् अखिल ब्रह्माण्ड में तू श्रीहरि ही है जो लघु से लेकर अनन्त तक सर्वत्र दिखलाई देता है। श्रीहरि सभी शरीरों में आत्मा रूप से, तेज में तत्त्व रूप से, शून्य में शब्द रूप से विद्यमान हैं; ऐसा वेद कहते हैं। वे जाति-पाँति के भेदभाव को भी नहीं मानते थे और अति निम्न कहे जानेवाले मेहतरों के वीच जाकर भी कीर्तन किया करते थे। अस्पृश्य कही जाने वाली जातियों के

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

घर जाकर भजन-कीर्तन करने के कारण गुजरात के नागर ब्राह्मणों ने उन्हें ब्राह्मण जाति से बहिष्कृत कर दिया। किन्तु वे अपनी धुन में हरि-भक्ति करते रहे। प्राणीमात्र के दुःख को अपना दुःख समझने वाले नरसी का करुणाभाव से परिपूर्ण यह भजन अभी से पूरे गुजरात में प्रसिद्ध हो गया है–

वैष्णव जन तो तेणे कहिये, जे पीर पराई जाणे रे ।
पर दुःखे उपकार करे पण, मन अभिमान न आणे रे ।।

भजन पूरा कर दवे ने कहा, ''आप लोग सोमनाथ-द्वारका जा ही रहे हैं, नरसी भगत की जन्मभूमि जूनागढ़ भी अवश्य जाइयेगा। वहाँ गिरनार पर्वत के शिखरों पर अनेक तीर्थ हैं। जूनागढ़ में नरसी भगत का घर है, वहाँ उनकी विधवा पुत्रवधू जूठीबाई मिलेगी। वे अच्छी गायिका हैं। नरसी के एकमात्र पुत्र श्यामलदास हुए। वे अपने विवाह के कुछ वर्ष बाद ही निःसन्तान स्वर्गलोक सिधार गये। उनकी पत्नी माणिकबाई ने भी पुत्रशोक में अपने प्राण त्याग दिये। इस प्रकार नरसी भगत ने जीवन में अनेक दुःख भोगे।''

दवे ने आगे कहा, ''नरसी ने अपने जीवन में एक ही सुख भोगा। दीन-हीन अवस्था में जी रहे नरसी के पास अपनी ब्याही बेटी नानीबाई (कुँवरीबाई) की सन्तान के विवाह पर मायरा भरने के लिए फूटी-कौड़ी नहीं थी। फिर भी श्रीकृष्ण पर अटूट विश्वास कर वे बेटी की ससुराल चले गये। उनकी करुण पुकार पर श्रीकृष्ण ने स्वयं साँवरिया सेठ के रूप में पधारकर बड़े ठाठबाठ से छप्पन करोड़ का भात भरा जो 'भूतो न भविष्यति' है। दुःख-सुख तो जीवन के हिस्से हैं।''

मही-सागर संगम

इतना कहकर आचार्य उन्हें बताने लगे, ''यहाँ से कुछ कोसों की दूरी पर मही-सागर संगम है। मेरा परामर्श है कि आप लोग वहाँ जाकर फिर डाकोर के लिए प्रस्थान कीजिये। इस तीर्थ का बड़ा माहात्म्य है। मही नदी मालवा के पहाड़ों से निकल कर वहाँ के क्षेत्र को हराभरा करती हुई यहाँ से नजदीक ही खम्भात की खाड़ी में आ समाती है। ऐसा कहा जाता है कि मही के किनारे नौ नाथ और चौरासी सिद्ध रहते हैं। मही-सागर संगम के बारे में स्कन्दपुराण में कहा गया है–

प्रभासदशयात्राभिः सप्तभिः पुष्करस्य च ।
अष्टाभिश्च प्रयागस्य तत्फलं प्रभविष्यति ।।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पञ्चभिः कुरुक्षेत्रस्य नकुलीशस्य च त्रिभिः ।
अर्बुदस्य च यत् षड्भिस्तत्फलं च भविष्यति ।।
वस्त्रापथस्य तिसृभिर्गङ्गायाः पञ्चभिश्च यत् ।
कूपोदर्यश्चतुर्भिश्च तत्फलं प्रभविष्यति ।।
काश्याः षड्भिस्तथा यत्स्याद्गोदावर्याश्च पञ्चभि ।
महीसागरयात्रायां भवेत्तच्चावधारय ।।"

स्तवन पूरा कर आचार्य इसका भावार्थ समझाने लगे, "प्रभास की दस बार, पुष्कर की सात बार और प्रयाग की आठ बार यात्रा करने से जो फल प्राप्त होता है, वही फल मही-सागर संगम तीर्थ की एक बार यात्रा करने से मिल जाता है। जो कुरुक्षेत्र की पाँच बार, नकुलीश की तीन बार, आबू की छह बार, वस्त्रापथ (गिरनार) की तीन बार, गंगा की पाँच बार, कूपोदरी की चार बार, काशी की छह बार तथा गोदावरी की पाँच बार यात्रा करने का फल है, वही महीसागर की एक बार यात्रा करने मात्र से प्राप्त होता है।" इतना कहकर उन्होंने आगे कहा, "आप सौभाग्यवान हैं। दो दिनों बाद ही शनिवारयुक्त अमावस्या आ रही है। उस दिन वहाँ यात्रा करने और स्नान करने का शतगुण फल है।"

आचार्य की बातें सुनकर शंकरदेव को स्कन्दपुराण के कुमारिकाखण्ड में पढ़ा महीसागर तीर्थ-माहात्म्य स्मरण हो आया। आचार्य दवे का दो दिनों आतिथ्य ले, उन्हें प्रणाम कर वे निकल पड़े।

शंकरदेव और उनके साथी मही-सागर पहुँचे। सामने सिन्धुसागर हिलोरें मार रहा था। लम्बी यात्रा से थकी-माँदी मही नदी उसके अंक में समा रही थी। मही-सागर संगम में स्नानकर शंकरदेव ने मन ही मन आचार्य दवे को धन्यवाद दिया। वे नहीं बताते तो यहाँ आने से हम लोग चूक जाते।

सागर किनारे लोगों का मेला-सा लगा था। अब सन्ध्या हो गयी। पश्चिमी क्षितिज अरुणाभ था। सूरज धीरे-धीरे ढलता सागर में गोता लगा गया। वहाँ का रम्य वातावरण उनके मन कुछ ऐसा भाया कि कुछ दिन वहाँ रहकर आसपास के तीर्थ, वासदगाँव में विश्वनाथ, वेरा में धारनाथ, सारसा में वैजनाथ, खानपुर में कामनाथ, वाँकानेर में त्र्यम्बकनाथ तथा शिली में सिद्धनाथ नामक नौ शिव मन्दिरों को देखा।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

डाकोर

मही-सागर से अपने साथियों के साथ शंकरदेव डाकोर की ओर निकल पड़े। कुछ दिनों की पैदल यात्रा कर सब गन्तव्य पर पहुँचे। सामने रणछोड़राय का बड़ा मन्दिर दिखायी दिया। पास में ही गोमती तालाब था। स्नान-ध्यान कर मन्दिर में प्रवेश किया। सामने खुले चौक के मध्य ऊँची बैठक पर बने गर्भगृह में रणछोड़राय की चतुर्भुज मूर्ति पश्चिमाभिमुख विराजमान थी। अपने आराध्य श्रीकृष्ण का रणछोड़ रूप देखकर शंकरदेव भावविमुग्ध हो गये।

धर्मशाला में शंकरदेव का नदियाद से यात्रा पर आये एक गृहस्थ हंसमुखभाई पटेल से परिचय हुआ। हंसमुखभाई का जब मन करता वर्ष में दो-तीन बार अपने गाँव से भगवान् के दर्शन करने डाकोर चला आता। उससे शंकरदेव ने पूछा, "रणछोड़राय का मन्दिर तो हमने द्वारका में सुन रखा है ! यहाँ कैसे ?"

गृहस्थ ने वताया, "यह विग्रह पहले द्वारका में ही विराजमान था। भक्त के आगे भगवान् की भी नहीं चलती। सवा तीन सौ वर्ष पहले की बात होगी, डाकोर के अनन्य भक्त विजयसिंह बोडाणा और उनकी पत्नी गंगाबाई वर्ष में दो वार रणछोड़राय को तुलसीदल चढ़ाने द्वारका जाया करते थे। वृद्धावस्था तक उनका यही क्रम चलता रहा। उनमें चलने की शक्ति नहीं रही तो भगवान् ने उन्हें स्वप्न में कहा, अब तुम्हें आने की आवश्यकता नहीं, मैं स्वयं ही तुम्हारे यहाँ आऊँगा। यह विग्रह यहाँ बड़े चमत्कारी रूप से पहुँच गया। द्वारका के पुजारी ने मन्दिर में मूर्ति नहीं देखी तो वह जगह-जगह ढूँढ़ता हुआ डाकोर आ पहुँचा। किन्तु पुजारी को वहाँ से लौट जाने का आदेश मिला। फिर द्वारका में इस मूर्ति का प्रतिरूप गढ़कर स्थापित किया गया। आज डाकोर गुजरात का मुख्य वैष्णव तीर्थ है।"

शंकरदेव ने कुछ दिन वहाँ रहकर आसपास के उमरेठ, सीमलज, लसुन्द्रा तीर्थों का परिभ्रमण कर प्रभास और सोमनाथ के लम्बे पथ पर निकल पड़े।

जूनागढ़-गिरनार

जूनागढ़ पहुँचकर शंकरदेव सर्वप्रथम नरसी मेहता के घर गये। घर के कोने में नरसी के आराध्य भगवान् श्यामसुन्दर का छोटा-सा मन्दिर और नृसिंह-चवूतरा था। सवने वहाँ दण्डवत प्रणाम किया। आंगन में गाँव के लोग वैठे थे और उनके बीच बैठी प्रौढ़ा जूठीवाई मधुर-स्वर में गा रही थीं—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भूतल भगति पदारथ मोटूं, ब्रह्मलोक माँ नांहीं रे।
पुण्य करी अमरातुरि पाम्या, अन्ते चौरासी मांही रे।
हरिना जन तो मुकति ना मांगे, मांगे जनम-जनम औतार रे।
नित सेवा, नित कीर्तन उच्छब, जोवा नन्दकुमार रे।
भरतखण्ड भूतल माँ जन्मी, जिण गोविन्द ना गुण गाया रे।
धन-धन रे एना मात-पिता ने, सफल करी एने काया रे।
धन वृन्दावन, धन ए लीला, धन ए व्रजना वासी रे।
रिधि-सिधि-निधि आंगणिए रे ऊभी, मुकति एमनी दासी रे।
ए रसना स्वाद शंकर जाणे, के जाणे शुक जोगी रे।
कोइ इक जाणे व्रजनी गोपी, भणे 'नरसैयो' भोगी रे।

जूठीबाई का गायन सुन शंकरदेव भावविभोर हो गये। भजन के तद्भव शब्दों का भावार्थ वे समझ रहे थे। कुछ ऐसी ही भाषा वे भी गढ़ना चाहते थे जो कामरूप से लेकर कच्छ तक सब लोग समझ सकें। गायन पूरा हुआ तो 'श्यामलसाह बिहारी, हे म्हारा साँवरा गिरधारी। मोहन मदन मुरारी, आँख्या रा तारा बनवारी।' भजन के साथ भगतों ने गरबा नाचना आरम्भ किया। औरों के साथ शंकरदेव तथा उनके साथी भी तालियों से ताल देने लगे।

गायन-नर्तन की समाप्ति हुई तो जूठीबाई का ध्यान नवागन्तुकों की ओर गया। वे उन्हें कामरूप जैसे दूरस्थ अंचल से आया जानकर अति प्रसन्न हुईं। गुजराती-कामरूपी भाषाएँ एकाकार हो गयीं। शब्दों से ज्यादा महत्त्वपूर्ण तो मन के भाव हैं। जूठीबाई ने आग्रहपूर्वक उन्हें भोजन कराया और रात्रि-विश्राम की व्यवस्था अपने घर पर ही कर दी।

प्रातःकाल स्नान-ध्यान से निवृत्त होकर जूठीवाई को 'जय श्रीकृष्ण' कहकर शंकरदेव ने जाने की आज्ञा माँगी। जूठीवाई उन्हें कलेवा कराये बिना कैसे जाने देतीं। अब उनका गन्तव्य गिरनार था। गिरनार की तलहटी में स्वर्णरिखा नदी के तट पर बने दामोदर कुण्ड और उसके पास के दामोदर मन्दिर आदि के दर्शन करते हुए गिरनार पर आरोहण आरम्भ किया। ढाई हजार सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर जाने पर भर्तृहरि गुफा मिली। गिरनार के शिखरों पर स्थित शैव-वैष्णव-जैन सम्प्रदायों के अनेक मन्दिरों के दर्शन करने वहाँ दो दिन रुके रहे। अव यात्रीदल प्रभास क्षेत्र की ओर चल पड़ा।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गुप्त प्रयाग (तलाला)

रास्ते में तलाला ग्राम आया तो शंकरदेव को वहाँ के लोगों से पता चला कि वे अनायास ही गुप्त प्रयाग पहुँच गये हैं। उन्हें स्कन्दपुराण में पढ़ा गुप्त प्रयाग का माहात्म्य याद हो आया। वहाँ उन्होंने माधव मन्दिर में दर्शन किये। गंगा, यमुना, सरस्वती, त्रिवेणी संगम, ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र नामक अनेक कुण्डों के जल का आचमन किया। नृसिंह मन्दिर के अतिरिक्त बलदेव, सप्तमातृका, सिद्धेश्वर, गन्धर्वेश्वर, उरगेश्वर के मन्दिरों को देखा।

वहाँ से कुछ कोस की दूरी पर ऊना गाँव बताया गया, जहाँ पर नरसी मेहता की पुत्री कुँवरीबाई का भगवान् श्रीकृष्ण ने साँवरिया सेठ के रूप में भात भरा था। वहाँ से प्रभास क्षेत्र ज्यादा दूर नहीं रह गया था।

प्रभास-सोमनाथ

सुवह आरम्भ हुई यात्रा को शाम तक किसी गाँव या अपने गन्तव्य पर पहुँचकर रात्रि-विश्राम मिलता। अन्ततः कई दिनों चलकर वे समुद्र किनारे स्थित सोमनाथ पहुँचे। वहाँ बिखरे पड़े बड़े-बड़े पाषाण-खण्डों के बीच अपने अतीत पर आंसू बहाते सोमनाथ मन्दिर को देखकर सबके मन खिन्न हो गये।

परमानन्द ने जिज्ञासा की, "गुरुदेव ! यहाँ खँडहर ही खँडहर दिख रहे हैं। लगता है, कभी यहाँ भव्य मन्दिर रहा होगा; यह खँडहर कैसे हुआ होगा ?"

"चलो, पहले आश्रय की व्यवस्था करते हैं, फिर यहाँ किसी विद्वान से मिलकर तुम्हारे प्रश्न का उत्तर खोजेंगे।"

शंकरदेव ने वात की दिशा बदलकर कहा, "यह प्रभास-क्षेत्र है। यही वह भूखण्ड है जहाँ गर्वोन्मत्त यादवों के विनाश का कारण एक मूसल बना। भगवान् श्रीकृष्ण को तो माता गान्धारी से मिले शाप को पूरा करना था और साथ ही यादववंश में छायी उद्दण्डता के लिए उन्हें दण्ड भी देना था।"

सर्वजय ने पूछा, "गुरुदेव ! माता गान्धारी ने श्रीकृष्ण को कैसा शाप दिया। हम जानने को उत्सुक हैं।"

शंकरदेव ने कहा, "महाभारत युद्ध में अपने सभी पुत्रों के मारे जाने पर कौरव माता गान्धारी अति दुःखी और क्षुब्ध थी। उसे श्रीकृष्ण पर अपार क्रोध था। वे उससे मिलने गये तो उसने उन्हें शाप दिया, तुम्हारे कारण ही मैं आज निपूती हो गयी। मैं जिस तरह अपने पुत्र-परिजनों की मृत्यु का शोक झेल रही हूँ, उसी तरह तुम्हारे देखते-देखते पूरा यदुवंश मृत्यु को प्राप्त

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

होगा और तुम कुछ नहीं कर सकोगे।''

मन्दिर के समीप की धर्मशाला में उन्हें आश्रय मिल गया। प्रातःकाल समुद्र-स्नान कर सब सोमनाथ मन्दिर में गये। कोई भक्त उच्च स्वर में शिवपुराण के श्लोकों का गायन कर रहा था—

> सोमलिङ्गं नरो दृष्ट्वा सर्वपापात् प्रमुच्यते ।
> लब्ध्वा फलं मनोऽभिष्टं मृतः स्वर्गं समीहते ।।
> यद्यत्फलं समुद्दिश्य कुरुते तीर्थमुत्तमम् ।
> तत्तत्फलमवाप्नोति सर्वथा नात्र संशय ।।
> प्रभासं च परिक्रम्य पृथिवीक्रमसम्भवम् ।
> फलं प्राप्नोति शुद्धात्मा मृतः स्वर्गे महीयते ।।

सोमनाथ मन्दिर के प्रांगण में एक त्रिपुण्डधारी पण्डित से शंकरदेव का परिचय हुआ। उसने अपना नाम श्रीकान्त शुक्ल बताया। उनका परिवार पीढ़ियों से सोमनाथ में बसा था। शुक्ल सबको अपने घर ले गये। पण्डिताइन अतिथियों को आया देख भोजन-व्यवस्था में लग गयी। अवसर देख शंकरदेव ने परमानन्द का प्रश्न उनके सम्मुख रखा।

प्रश्न सुनकर श्रीकान्त के चेहरे पर विषाद की रेखाएँ उभर आयीं। कुछ देर शान्त रहकर वे बोले, ''मैं आपको प्रभास की पौराणिक कथा बताने जा रहा था, परन्तु आपके प्रश्न ने मुझे विचलित कर दिया है। वह कथा बाद में बताऊँगा, पहले आपके प्रश्न का उत्तर देता हूँ। सोमनाथ का मन्दिर अत्यन्त प्राचीन है। विक्रमादित्य के शासन में आने के सात वर्षों पहले इसका जीर्णोद्धार हुआ था। किन्तु विगत सात सौ वर्ष से यह मन्दिर कई बार ध्वस्त हुआ और पुनर्निर्मित होकर खड़ा हो गया। मैं जितना जानता हूँ, वह आपको बताता हूँ, ''गुप्त साम्राज्य की शक्ति क्षीण हुई तो उसके क्षत्रपों ने यहाँ अपने राज्य की स्थापना की। उनके समय अर्वस्थान (अरब) के समुद्री दस्यु सोमनाथ मन्दिर पर जब-तब आक्रमण कर यहाँ की सम्पदा लूटते रहे। क्षत्रप भारशिव और वाकाटक शैव थे। उन्होंने लगभग आठ सौ वर्ष पहले नये मन्दिर का निर्माण करवाया। वह भी दस्युओं द्वारा ध्वस्त कर दिया गया। उसके स्थान पर लाल पत्थरों से बनाये गये मन्दिर को भी आततायियों ने तोड़ डाला।''

इतना कहकर श्रीकान्त ने आगे कहा, ''पाँच सौ वर्ष पहले यहाँ के चावड़ा राजाओं ने चौथे मन्दिर का निर्माण कराया। मन्दिर के छप्पन स्तम्भों

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

को अमूल्य नीलम, हीरे-मोतियों और नाना रत्नों से अलंकृत किया। ज्योतिर्लिंग पर विशाल स्वर्ण-छत्र चढ़ाया। भारत आनेवाले अर्वस्थान के प्रवासियों द्वारा इस सोमपट्टण की भव्यता और दिव्यता की ख्याति फैलती हुई गजनी के दुर्दान्त लुटेरे महमूद गजनवी तक पहुँची। वह अपनी लुटेरी सेना को लेकर रास्ते में लूटपाट करता निरीह लोगों की हत्याएँ करता यहाँ तक आ पहुँचा। उसने न केवल सोमनाथ मन्दिर की धन-सम्पदा को लूटा, अपितु ज्योतिर्लिंग को भी नष्ट-भ्रष्ट किया, यहाँ की जनता तथा मन्दिर के पुजारियों और ब्राह्मणों की हत्याएँ की गयीं या फिर उन्हें मुस्लिम वनने के लिए विवश किया गया।

"महमूद गजनवी के जाने के बाद राजा भीमदेव ने पुनः इसे प्रतिष्ठापित करवाया, जिसमें सोलंकी राजा सिद्धराज जयसिंह ने भी भरपूर सहयोग दिया। उस मन्दिर को भी लगभग तीन सौ वर्ष पहले अलाउद्दीन ने नष्ट कर दिया। रही-सही कसर गुजरात के सुलतान मुजफ्फरशाह और उसके बाद सुलतान अहमदशाह ने पूरी कर दी। यह वही अहमदशाह था जिसने अस्सी-नब्वे वर्ष पहले अपने उस्ताद फकीर अहमदखटूगंज के कहने पर कर्णावती पर अधिकार कर उस नगर का नाम बदल कर अहमदाबाद रख दिया था।"

परमानन्द ने वात का रुख बदलते हुए श्रीकान्त से कहा, "महाशय ! आप हमें यहाँ की पौराणिक कथा भी बताने वाले थे !"

श्रीकान्त ने कहा, "इस पवित्र तीर्थ की दुर्दशा के बारे में बताते हुए मैं विषाद में खो गया। पुराणों के अनुसार यह ज्योतिर्लिंग जगतोत्पत्ति जितना प्राचीन है। यह तीर्थ वैदिक काल में भी सर्वप्रसिद्ध था। इसकी प्रसिद्धि महाभारत में भी लिखी मिलती है।

"पुराण कथानुसार दक्ष प्रजापति के सत्ताईस कन्याएँ थीं, जिन्हें हम सत्ताईस नक्षत्रों के नाम से जानते हैं। दक्ष ने उन कन्याओं का विवाह चन्द्रमा से कर दिया। किन्तु चन्द्रमा अन्य पत्नियों की उपेक्षा कर अपना विशेष अनुराग रोहिणी पर ही रखता था। अन्य छब्बीस बहनों ने इसकी शिकायत पिता से कर दी। इससे कुपित हो दक्ष ने चन्द्रमा को क्षय रोग हो जाने का शाप दे दिया। शाप से सुधाकर का सुधावर्षण रुक गया। ब्रह्मा के आदेश पर कलाहीन-कलाधर ने इसी प्रभास क्षेत्र में सोमनाथ (चन्द्रमा के इष्ट) ज्योतिर्लिंग की तपस्या की। दक्ष के शाप क्षय से तो पूर्क्ष मुक्ति नहीं मिल सकी, परन्तु सोमनाथ के वरदान से पुनः पूर्णत्व पाने में चन्द्र को सफलता मिली। इसके बाद से चन्द्र पन्द्रह दिन शाप के तौर पर क्षय और पन्द्रह दिन वरदान के तौर पर पूर्णत्व के रूप में कृष्णपक्ष अमावस्या और शुक्लपक्ष पुर्णिमा के रूप

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

में घटने-बढ़ने लगा। इस प्रकार चन्द्र पुनः कलायुक्त होकर अपनी सुधा-किरणों से सारी वनस्पति और प्राणी जगत में प्राण संचार करने लगा।

श्रीकान्त शुक्ल का साथ मिल जाने से शंकरदेव और उनके साथियों को सुविधा हो गयी। वैसे भी वे जहाँ भी जाते वहाँ किसी गुरुकुल या मन्दिर के पुजारी-महन्त से प्रगाढ़ता कर लेते थे। अब वे सभी सोमनाथ से प्राची त्रिवेणी गये, जहाँ हिरण्या, सरस्वती और कपिला नदियाँ समुद्र में मिलती हैं। प्राची-त्रिवेणी-संगम से थोड़ी ही दूरी पर स्थित सूर्य मन्दिर देखा। पास में ही बलदेवजी का मन्दिर था। यहीं से शेषावतार बलराम अपने लोक गये थे।

हिरण्या नदी के किनारे यादव-स्थली थी, जहाँ वारुणी के मद में यादवों ने परस्पर एक-दूसरे पर घात-प्रत्याघात किया था और समूल नष्ट हो गये। कुछ दूरी पर भालक-तीर्थ था। वहाँ एक पीपल वृक्ष के नीचे भालेश्वर शिव का छोटा-सा मन्दिर मिला। उस पीपल को मोक्ष-पीपल बताया गया। इसी पीपल के नीचे बैठे हुए श्रीकृष्ण के चरण में जरा नामक व्याध ने बाण मारा था।

माधवपुर से पोरबन्दर

शंकरदेव द्वारका पहुँचने के लिए व्याकुल हो रहे थे। किन्तु यात्रा तो अपने पथ पर ही चलती है, इस बात को भी समझते थे। कदम-कदम चलते द्वारका की दूरी कम हो रही थी। समुद्र किनारे माधवपुर आया। तट पर अनेक नावें और दो जलयान खड़े थे। वहीं मलुमती नदी आकर सागर के अंक में समाती है। वहाँ के रुक्मिणी-कृष्ण के मन्दिर में सबने दर्शन कर वहाँ आसरा ले, रात्रि-विश्राम किया। सुबह वे लोग वहाँ से बीस कोस दूर स्थित सुदामानगरी जो अब पोरबन्दर कहलाने लगी थी— की ओर प्रस्थान किया।

सुदामानगरी के सुदामा मन्दिर में सुदामा और उनकी पत्नी की मूर्तियाँ स्थापित थीं। उस मन्दिर के पास केदार-कुण्ड था। वहाँ के श्रीराम मन्दिर, श्रीराधाकृष्ण मन्दिर, जगन्नाथ मन्दिर में दर्शन करते हुए पंचमुखी महादेव और अन्नपूर्णा के मन्दिर देखे। शंकरदेव को बताया गया कि वहाँ से आठ कोस की दूरी पर विसवाड़ा गाँव है जिसे मूल-द्वारका कहा जाता है। किन्तु अब वहाँ कुछ छोटे मन्दिरों के अलावा देखने जैसा कुछ नहीं।

द्वारका पुरी

दूर से ही रणछोड़राय के उन्नत मन्दिर के शिखर पर आकाश में फहराती लम्बी पताका के दर्शन होने लगे। द्वारका की ओर जा रहे लोगों के जत्थे 'जय रणछोड़राय, जय द्वारकाधीश' के जयकारे लगा रहे थे। शंकरदेव अपने

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

को द्वारका में आया जानकर भावुक हो उठे। वे मन ही मन कुछ बुदबुदाने लगे। आँखों से अश्रुधारा बह चली। अब उनकी चाल तेज हो गयी। साथियों को उनके साथ चलने के लिए दौड़-सी लगानी पड़ रही थी।

द्वारकाधीश रणछोड़राय के मन्दिर के सम्मुख पहुँचकर शंकरदेव ने वहाँ की रज में साष्टांग दण्डवत किया। फिर गाने लगे–

द्वारकावासिनं दृष्ट्वा स्पष्ट्वा चैव विशेषतः ।
महापापविनिर्मुक्ताः स्वर्गलोके वसन्ति ते ।।
पांसवो द्वारकाया वै वायुना समुदीरिताः ।
पापिनां मुक्तिदाः प्रोक्ताः किं पुनर्द्वारकाभुवि ।।

वे पता नहीं कितनी देर और गाते, यदि परमानन्द ने इसका अर्थ पूछने के लिए उन्हें न टोका होता। शंकरदेव का मन शान्त हुआ। वे सहज होकर बताने लगे, "स्कन्दपुराण के द्वारका माहात्म्य में कहा गया है, द्वारकावासी का दर्शन और स्पर्श करने मात्र से मनुष्य बड़े-बड़े पापों से मुक्त हो स्वर्गलोक में निवास करता है। वायु द्वारा उड़ायी हुई द्वारका की रज भी पापियों को मुक्ति देनेवाली कही गयी है; फिर साक्षात द्वारका की तो बात ही क्या है !" इतना कहकर वे बोले, "अब तुम लोग भी इस धराधाम को साष्टांग प्रणाम कर अपने को धन्य करो।"

विशाल सात मंजिले मन्दिर की भव्यता देखकर सब अवाक् रह गये। मन्दिर के चारों ओर सुगढ़ पाषाणों की ऊँची-ऊँची प्राचीरों के घेरे पर सुदृढ़ गढ़ जैसे कंगूरे निकले थे। मन्दिर बहुत ऊँचे चबूतरे पर बना था। 'जय रणछोड़राय'-'जय द्वारकाधीश' के जयघोष करते हुए छप्पन सीढ़ियाँ चढ़कर शंकरदेव सदल मन्दिर के विशाल आँगन से होते हुए भीतर पहुँचे। द्वारकानाथ रणछोड़राय के भव्य रूप-शृंगार के दर्शन कर सब मुग्ध हो गये।

द्वारकाधीश के दोनों ओर खड़े सेवक उन पर चँवर ढुला रहे थे। काली कजरारी मेघमाला जैसा साँवरे का वर्ण था। कटि पर पीताम्बर, कन्धों पर केसरिया उत्तरीय, माथे पर रत्नजटित कलगी लगी इन्द्रधनुषी सतरंगी पगड़ी शोभायमान हो रही थी। मस्तक पर किये कस्तूरी-चन्दन के ऊर्ध्व त्रिपुण्ड के मध्य लाल बिन्दिया उदीयमान सूर्य जैसी चमक रही थी। शंकरदेव ऐसे भावसागर में खोये थे कि उन्हें लगा, प्रभु की कमल सदृश्य आँखें उनको ही ताक रही हों। माणिक-पन्ना-हीरा जड़े मीनाकृत कुण्डलों से शोभायमान दोनों कान जैसे उनके मन के भावों को ध्यान से सुनने में तल्लीन हों।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नासिका से अधरों पर लटकते मोती तले अबोध शिशु जैसी मन्द मुस्कान उनके मन को खींच रही थी। चिबुक पर लगे हीरक को तो कहना ही क्या, शंकरदेव को लगा जैसे नक्षत्र-मण्डल का शुक्र टूटकर वहाँ आ समाया हो।

द्वारकानाथ के गले में नाना रत्नों से जड़ित स्वर्णमालाओं के साथ नवल-हरित तुलसीदल युक्त सुरभित मंजरियों का हार उनके चरणों को छू रहा था। प्रातःकालीन आरती के शंख-घण्ट-घड़ियाल की समवेत ध्वनि से मन्दिर गूँज उठा। कर्पूरी आरती की लहरातीं ज्योतियों में भगवान् का मुखमण्डल और दिप-दिप करने लगा। शंकरदेव अपनी सुधबुध खोकर पूर्ण रूपेण भाव-समाधि में कब चले गये, उनके साथियों को भी नहीं पता चला।

हर सांसारिक भक्त भगवान् से स्वयं के लिए धन-ऐश्वर्य, सुख-शान्ति का वरदान माँगता है। किन्तु शंकरदेव मन ही मन प्रभु से कामरूप और वहाँ के वासियों के सर्वोत्थान की प्रार्थना कर रहे थे– "हे प्रभु ! मुझे इतनी शक्ति, साहस और समय दो कि अपने लोगों के लिए कुछ कर सकूँ, उन्हें नयी दिशा दिखाकर तुम्हारी अनन्य भक्ति की ओर उन्मुख कर सकूँ। किसी प्रलोभन या बहकावे में आकर मैं अपने जीवन के इस ध्येय से कभी न भटकूँ। इतने तीर्थों में अनेक देवों के दर्शन किये, पर मेरा मन तो तुम्हारे ही साँवरे रूप में अटका है।"

मन्दिर के अर्चकों का शंकरदेव की ओर ध्यान गया। उनका परिचय जान अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने सबके लिए ठहरने-खाने की समुचित व्यवस्था कर दी। ऐसी आवभगत देख शंकरदेव ने उनसे कहा, "हम तो वधूपक्ष वाले हैं। आपका आतिथ्य लेते संकोच हो रहा है। किन्तु इस समय ऐसा ही सही।"

एक अर्चक ने विस्मित होते हुए पूछा, "आप श्रीकृष्ण के वधूपक्ष वाले क्यों कर हुए ? आपकी बात सुनकर कौतूहल हो रहा है।"

शंकरदेव ने कहा, "कदाचित् आपको पता नहीं कि श्रीकृष्ण की पटरानी रुक्मिणी हमारे कामरूप स्थित विदर्भ के राजा भीष्मक की पुत्री थीं। उन दोनों के प्रद्युम्न नामक पुत्र हुआ। श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध में वर्णित है कि प्रद्युम्न का विवाह उसके मामा रुक्मी की पुत्री रुक्मवती से हुआ। प्रद्युम्न-रुक्मवती के पुत्र अनिरुद्ध का पाणिग्रहण भी अपने नाना रुक्मी की पौत्री रोचना से हुआ। अनिरुद्ध का एक और विवाह हमारे यहाँ ही शोणितपुर नरेश वाण की राजकन्या उपा से हुआ। इस तरह कामरूप की चार पुत्रियाँ वहाँ से व्याह कर द्वारका आयीं। अव बताइये, वे हमारे जमाई हुए कि नहीं !

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्रीकृष्ण ने ही नरकासुर के अत्याचारों से कामरूप को मुक्ति दिलायी। श्रीकृष्ण ही मेरे इष्ट हैं। उनके भक्त होने के नाते भी हम उनका प्रसाद पाने के हकदार तो हो ही जाते हैं।''

यह जानकर अर्चकों की शंकरदेव तथा उनके दल के प्रति श्रद्धा और बढ़ गयी। एक अर्चक मन्दिर दिखाने उनके साथ हो लिया।

रणछोड़राय मन्दिर के पूर्वी घेरे में स्थित भण्डार गृह के पास जगद्गुरु शंकराचार्य द्वारा स्थापित शारदापीठ में सब गये। फिर रुक्मिणी मन्दिर और प्रद्युम्न मन्दिर के दर्शन किये। वहाँ अनिरुद्ध की मूर्ति भी थी। इसके अतिरिक्त अनेक मन्दिरों और तीर्थ तुल्य माने जानेवाले सरोवरों में उन्होंने स्नान-ध्यान किया। इसी मध्य समय निकाल कर एक दिन नाव से समुद्र में थोड़ी दूर स्थित बेट-द्वारका की यात्रा भी कर आये।

पाटण

पन्द्रह-बीस दिन द्वारका में रहकर वहाँ से सबने आगे के लिए प्रस्थान किया। कई स्थानों पर रुकते-ठहरते, कई दिनों वाद वे सन्ध्या समय पाटण पहुँचे। पाटण कभी सोलंकी राजाओं की राजधानी के रूप में बड़ा समृद्ध नगर था। वहाँ चारों ओर प्राचीन भग्नावशेष विखरे पड़े थे। अलाउद्दीन खिलजी ने गुजरात पर आक्रमण किया तव इस नगर को भी नष्ट-भ्रष्ट कर डाला था।

हाटकेश्वर

पाटण से आगे एक गाँव में पहुँचे। सन्ध्या हो चुकी थी। एक गृहस्थ को आश्रय देने के लिए पूछा तो वह सहर्ष सबको घर के भीतर ले गया। उनके हाथ-पाँव धुलवाये। वे थोड़े आश्वस्त हुए तो गृहस्थ ने कहा, ''आप लोग बड़े भाग्यवान हैं जो अनायास ही इस पुण्य-स्थल हाटकेश्वर में आप सबका आना हुआ। वोलचाल की भाषा में आज इसे वडनगर कहा जाता है। पहले सबका भोजन वनाने के लिए भीतर ब्राह्मणी को कह आता हूँ। सुबह यहाँ के मन्दिरों के दर्शन कराने मैं आपके साथ चलूँगा।''

ब्राह्मण आकर शंकरदेव के पास फिर बैठ गया। वह वताने लगा, ''हम नागर ब्राह्मण हैं। हाटकेश्वर हम नागर ब्राह्मणों के आराध्य हैं। स्कन्दपुराण में इनकी वहुत महिमा वतायी गयी है। एक श्लोक इस प्रकार है—

आनर्तविषये रम्यं सर्वतीर्थमयं शुभम् ।
हाटकेश्वरजं क्षेत्रं महापातकनाशनम् ।।

अर्थात् आनर्त क्षेत्र में परम मनोहर एवं सर्वतीर्थमय हाटकेश्वर है

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जो महापातकों का भी नाश करनेवाला है।''

हाटकेश्वर नाम सुनकर शंकरदेव को कुछ स्मरण हो आया। उन्होंने ब्राह्मण से कहा, हमारे कामरूप में भी ब्रह्मपुत्र के उत्तरी किनारे स्थित शोणितपुर में हाटकेश्वर है। आज से कोई सात सौ वर्ष पहले वहाँ के यशस्वी राजा हर्जर वर्मन की राजधानी का नाम ही हारुपेश्वर या हाटकेश्वर था। तद्विषयक संस्कृत में एक शिलालेख ब्रह्मपुत्र किनारे भैरवपद देवालय के पास एक चट्टान पर उत्कीर्ण है।'' ब्राह्मण विस्मित हो शंकरदेव की बातें ध्यान से सुन रहा था।

कुछ दिन हाटकेश्वर में रहकर सप्तर्षि आश्रम, विश्वामित्र तीर्थ, गौरीकुण्ड, नृसिंह मन्दिर आदि अनेक मन्दिरों और पुण्य स्थलों के दर्शन किये। शंकरदेव ने गृहस्थ को बिन्दुसरोवर होते हुए आगे पुष्कर जाने का अपना मन्तव्य बताया तो उसने रास्ते की जानकारी देते हुए कहा, ''आगे सिद्धपुर आयेगा। वहीं पर बिन्दुसरोवर है। यहाँ से ज्यादा नहीं चलना पड़ेगा। आपकी चाल तेज रही तो सुवह के चले सन्ध्या तक वहाँ पहुँच जायेंगे।'' फिर उसने कहा, ''आप जैसे युवक परिव्राजकों से मिलने का अवसर कम ही मिलता है। मैंने अनुभव किया है कि लोग साधारणतया अपनी जर्जर वृद्धावस्था में ही पुण्य अर्जित करने की भावना से तीर्थ-यात्रा पर निकलते हैं।''

शंकरदेव ने कहा, ''तीर्थ-भ्रमण से क्या पुण्य मिलता होगा, मैं नहीं जानता। मैंने मन में बहुत दिनों से अपने भारतवर्ष को समग्र रूप से देखने का सपना संजो रखा था। श्रीकृष्ण-कृपा से अव यह साकार हो रहा है। इससे मुझे एक आत्मिक सन्तोष मिल रहा है। अपने देश के लोगों और उनके रहन-सहन को देखने और समझने के लिए भ्रमण से अच्छा और क्या हो सकता है ! कदाचित् इसीलिए हमारे यहाँ तीर्थाटन करने का नियम बनाया गया होगा। अस्तु। अब हमें सोना चाहिये। कल तड़के ही हम यात्रा पर निकल पड़ेंगे। वार्तालाप में और रमे रहे तो कल सूरज निकलने के पहले आगे की यात्रा पर नहीं निकल पायेंगे।''

बिन्दुसरोवर (सिद्धपुर)

सिद्धपुर पहुँचने में ज्यादा समय नहीं लगा। संयोग से उनकी भेंट वहाँ के निवासी मनुभाई दवे से हो गयी। दवे वेदपाठी ब्राह्मण था। उसने सबके रहने की समुचित व्यवस्था कर कहा, ''भारत में पितृश्राद्ध के लिए गया-तीर्थ प्रसिद्ध है, वैसे ही मातृश्राद्ध के लिए यह सिद्धपुर प्रसिद्ध है। इसे मातृगया क्षेत्र भी कहा जाता है। इसका प्राचीन नाम श्रीस्थल है। किन्तु पाटणनरेश सिद्धराज

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जयसिंह ने अपने पिता गुर्जरेश्वर मूलराज सोलंकी द्वारा प्रारम्भ किये गये रुद्रमहालय को पूरा किया; तभी से यहाँ का नाम सिद्धराज के नाम पर सिद्धपुर प्रसिद्ध हो गया।''

दवे ने आगे बताया, ''यह सिद्धपुर प्राचीन काम्यक वन में पड़ता है। महर्षि कर्दम का यहीं आश्रम था और यहीं उनके घर उनकी पत्नी देवी देवहूति के गर्भ से सांख्य शास्त्र के प्रणेता महर्षि कपिल का जन्म हुआ था। औदिच्य ब्राह्मणों की उत्पत्ति यहीं से मानी जाती है। उनके कुलदेवता भगवान् गोविन्दमाधव हैं। यहाँ की महिमा पुराणों में वर्णित करते हुए कहा गया है—

धर्मारण्यं हि तत्पुण्यमाद्यं च भरतर्षभ ।
यत्र प्रविष्टमात्रो वै सर्वपापै प्रमुच्यते ।।

सर्वजय बीच में ही शंकरदेव से बोल पड़ा, ''गुरुदेव ! आप इसका अर्थ भी हमें समझाते जाइये।''

शंकरदेव ने धीरता से कहा, ''ये जो कह रहे हैं, पहले उसे पूरा सुनो। इतना अधीर क्यों हो रहे हो !'' फिर दवे से कहा, ''आप आगे कहिये।''

''इस श्लोक का अर्थ है, भरतश्रेष्ठ ! यह धर्मारण्य पुण्यमय आदितीर्थ है, जहाँ व्यक्ति प्रवेश करते ही सभी पापों से मुक्त हो जाता है।'' इतना वताकर दवे ने कहा, ''चलिये, भोजन तैयार है। भोजन कर विश्राम कीजिये।''

सुवह सब दवे के साथ सरस्वती नदी किनारे पहुँचे। वहाँ बने पक्के घाट से दूर पतली-सी जलरेखा देखकर शंकरदेव का मन उदास हो गया। उन्होंने दवे की ओर जिज्ञासाभरी आँखों से देखा। वह उनका तात्पर्य समझ गया। उसने वताया, ''सरस्वती नदी समुद्र में नहीं मिलती। यह आगे जाकर कच्छ की मरुभूमि में लुप्त हो जाती है। समुद्र को समस्त नदियों का पति माना जाता है। पति प्राप्ति के पूर्व प्रत्येक कुमारी ही कहलाती है। इसलिए यहाँ सरस्वती व्रह्माणी होते हुए भी कुमारिका कही जाती है। अब चलिये, इसमें जितना भी जल है उसमें ही स्नान कीजिये, फिर तट पर बने सरस्वती मन्दिर में चलेंगे।''

वहाँ आधा कोस की दूरी पर स्थित विन्दुसरोवर जाते समय मार्ग में गोविन्द और माधव के मन्दिर आये। विन्दुसरोवर के चौरस कुण्ड के चारों ओर पक्के घाट बने थे। वहाँ पहुँचकर शंकरदेव ने सहयात्रियों से कहा, ''मैंने पम्पा सरोवर में तुम लोगों को वताया था कि पुराणों में पंच-सरोवर का वर्णन है। उनमें पहला विन्दु-सरोवर है, जहाँ हम उपस्थित हैं। दूसरा

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नारायण-सरोवर यहाँ से दूर कच्छ की मरुभूमि में वताते हैं। तीसरा है, पप्मा-सरोवर जहाँ हम हो आये हैं। चौथा पुष्कर-सरोवर ही हमारा अगला गन्तव्य है। पांचवा मानसरोवर कैलास पर्वत पर है। वहाँ जाने के बारे में अपनी बदरीनाथ-यात्रा के समय विचार करेंगे।''

बिन्दुसरोवर के पास बने मन्दिरों में महर्षि कर्दम, माता देवहूति, महर्षि कपिल और गदाधर की मूर्तियाँ थीं। आगे ज्ञानवापी वावली के पास बनी मसजिद दिखाकर दवे ने बताया, ''यहाँ कभी अद्भुत और विशाल रुद्रमहालय था। उन्नत शिखरदार उस मन्दिर में विशाल सभामण्डप और सूर्यकुण्ड था। वह सव अलाउद्दीन खिलजी द्वारा नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया। अव यह हमारे अधिकार में नहीं है।''

बिन्दुसरोवर से शंकरदेव का दल आगे की यात्रा पर चल पड़ा। अव वे पुष्कर होते हुए पश्चिमोत्तर भारत में कलकल वहते सिन्धु नद में अवगाहन करना चाह रहे थे। वे विश्व-विख्यात विद्यालय तक्षशिला की भूमि को प्रणाम करना चाहते थे। कैकेय तथा कुरुक्षेत्र होते हुए भारत की राजधानी दिल्ली होते हुए हस्तिनापुर, हरिद्वार होते हुए हिमालय की गोद में वसे बदरीनाथ जाकर भगवान् विष्णु के दर्शन करना चाहते थे।

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

राजस्थान-सिन्ध-पंजाब

शंकरदेव अपने विचारों में खोये साथियों के साथ यात्रा पर आगे बढ़ते जा रहे थे। यात्रा कभी नहीं थकती, भले यात्री थक कर इसे छोड़ दे। रास्ता कण्टकाकीर्ण था। किन्तु कुछ जानने की प्रबंल इच्छाशक्ति और मन के उत्साह के साथ वे सारे कष्टों को बिसरा आगे बढ़ते गये।

अर्बुदाचल (आबू)

यात्रीदल पुष्कर की ओर बढ़ता अर्बुदाचल जा पहुँचा। अर्बुदाचल के बारे में सिद्धपुर में ही दवे ने बताया था कि, "अर्बुदाचल को बोलचाल में आबू भी कहा जाता है। वहाँ आप लोग अवश्य जाइयेगा। आबू को द्वारका का द्वार कहा गया है। भगवान् श्रीकृष्ण मथुरा से द्वारका जाते समय अपने वड़े भैया बलराम के साथ वहाँ एक रात रुके थे।

"श्रीकृष्ण के गोलोकधाम पधारने पर जब अर्जुन यादवों की स्त्रियों को लेकर हस्तिनापुर जा रहा था, तब भीलों ने वहीं उस पर आक्रमण कर उसके साथ की स्त्रियों और धन-सम्पदा को लूटा था। श्रीकृष्ण के गोलोक जाने के वाद अर्जुन का गाण्डीव और उसकी वीरता निस्तेज हो चुकी थी।"

अर्वुदाचल की सुरम्य पहाड़ियों पर चढ़ते हुए यात्रीदल के सदस्य कोई थकान अनुभव नहीं कर रहे थे। रास्ते में आयीं चट्टानें प्रकृतिक रूप से विविध आकृतियों में वनी थीं। वहाँ के वसिष्ठ, गौतम, भृगु आदि ऋषियों के आश्रमों को देखते हुए वे दत्तात्रेय पहाड़ी, अचलेश्वर आदि, गये।

वहाँ के देलवाड़ा जैन मन्दिरों का अनुपम सौन्दर्य देखकर सब अभिभूत हो गये। पाँच सौ वर्ष पहले वने इन मन्दिरों को गुजरात के राजा भीमदेव के मन्त्री एवं सेनापति विमलशाह ने (सन् 1031 में) साढ़े अठारह करोड़ रुपयों की लागत से बनवाया था। मन्दिर में अलंकृत कमल, पंच कल्याणक जैन-पर्व के दृश्य, नेमीनाथ भगवान् की वारात, गणेश, गजलक्ष्मी, अम्विका माता, सिंहवाहिनी दुर्गा, हंसवाहिनी सरस्वती के साथ ही श्रीकृष्ण की विभिन्न लीलाओं में जल-क्रीड़ा, कालिया नाग-मर्दन, होली खेलना, बलराम तथा अन्य गोप बालकों के साथ गेंद-डण्डा खेलना आदि को शिल्पकारों ने अथक परिश्रम और बड़े मनोयोग से चिकने श्वेत पाषाणों पर उत्कीर्ण किया था।

उन्हें देखकर शंकरदेव ने साथियों से कहा, "मन्दिर के इस अद्भुत

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शिल्प को देखकर अचरज होता है। तुम लोगों ने देखा, कुछ प्रतिमाओं के हाथ-पाँव की अंगुलियों और नाखूनों की बनावट कितनी स्पष्ट है। इन्हें देखकर आश्चर्य होता है। इनका रेखांकन करना ही जहाँ अति श्रमसाध्य है, वहाँ इन्हें पत्थरों पर उत्कीर्ण करना कितना कठिन रहा होगा। धन्य हैं वे शिल्पकार।''

पुष्कर

आबू में कुछ दिन रहकर वे पुष्कर की ओर चल पड़े। रास्ता लम्बा था। यहाँ कामरूपवासियों को भात के अभाव में बाजरे की रोटी या खिचड़ी से काम चलाना पड़ा। परिव्राजक के लिए अपनी आदतों और रसना के स्वाद से बढ़कर अपना ध्येय है। शंकरदेव इस बात को भलीभाँति समझते थे कि क्षुधा-तृप्ति तो पंचभौतिक देह को चलाने का माध्यम मात्र है।

वे कुछ दिनों में पुष्कर पहुँच गये। अपने साथियों को शारीरिक और मानसिक रूप से थोड़ा क्लान्त देखकर शंकरदेव ने एक श्लोक सुनाया—

दुष्करं पुष्करं गन्तुं दुष्करं पुष्करे तपः ।
दुष्करं पुष्करे दानं वस्तुं चैव सुदुष्करम् ।।
त्रीणि शृंङ्गाणि शुभ्राणि त्रीणि प्रस्रवणानि च ।
पुष्कराण्यादिसिद्धानि न विद्मस्तत्र कारणम् ।।

फिर इसका अर्थ समझाते हुए कहा, ''पद्मपुराण में कहा गया है, पुष्कर में जाना बड़ा कठिन है, यहाँ बड़े सौभाग्य से आना होता है। पुष्कर में तपस्या दुष्कर है। पुष्कर का दान भी दुष्कर है और यहाँ वास करना तो और भी दुष्कर है। आगे कहा है, पापों के नाशक, देदीप्यमान तीन पुष्कर क्षेत्र हैं, जिनमें सरस्वती बहती है। ये आदिकाल से सिद्धतीर्थ हैं। इनके तीर्थ होने के किसी लौकिक कारण के बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता।'' इतना बताकर शंकरदेव ने पुनः कहा, ''तुम लोग अपनी खाद्य रुचियों को स्थान के अनुरूप बनाओ। पूर्ण आहार बिना शरीर नहीं चल सकता। शरीर ऊर्जावान रहेगा तो मन में भी उत्साह रहेगा। अभी तो हमें वहुत लम्वी यात्रा करनी शेष है। पता नहीं, हमें कहाँ-कहाँ और कैसे-कैसे समझौते करने पड़ेंगे। यात्रा के कष्ट तो तात्कालिक हैं। किन्तु इससे हम जो प्राप्त कर रहे हैं, वह हमारे जीवनभर काम आयेगा।''

शंकरदेव की बातों से सभी में नये उत्साह का संचार हुआ। उन्हें आश्रय ढूँढ़ते देख पुष्करनिवासी भँवरसिंह शेखावत ने अपने घर ठहरा लिया।

आपसी संवाद करने में थोड़ी अड़चन हुई तो शेखावत ने अपने

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पड़ोसी और संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान पण्डित गोपीनाथ को बुलाया। गोपीनाथ आध्यात्मिक प्रवृत्ति के थे। उनसे बात करते-करते राजपूताने की सन्त परम्परा पर बात चल पड़ी तो उन्होंने शंकरदेव को वहाँ हुए सन्त पीपाजी के बारे में बताया, "पीपाजी होने को तो राजा के पुत्र थे, पर उन्होंने वैराग्य लेकर काशीवास ले लिया। वहाँ वे स्वामी रामानन्द के शिष्य होकर भक्तिभाव में लग गाँव-गाँव घूमकर भगवद्भक्ति का प्रचार करने लगे। उनका जीवन इतना सादा था कि वे फटे कपड़े सिलकर अपनी आजीविका चलाते थे। पीपाजी राम-भक्ति में लीन होकर कहते हैं–

राम-रंग लाग्यो जणां, भाग्यो भव भय घोर ।
पीपा परतापी घणो, रघुवर मारग तोर ।।

गोपीनाथ ने फिर आगे कहा, "पीपाजी की तरह यहाँ बाबा रामदेव हुए। वे जाति-व्यवस्था को अव्यवहारिक मानते थे। उनका कहना था कि हरिजन तो हमारे गले के हार में जड़े हीरा-मोती और मूँगे की तरह हैं। वे कहते थे 'हरिजन म्होर हार हार हियेरा, मोत्यो मूँगा कहावे म्हारा लाल।"

गोपीनाथ ने आगे कहा, "इसी तरह इस भूमि पर जाट बिरादरी में धन्ना भी हुए। वे भी स्वामी रामानन्द के शिष्य बन गये। सगुण ब्रह्म के उपासक सन्त धन्ना ने लिखा है कि नामदेव छोटी जाति के थे, कबीर जुलाहा थे, भक्त रविदास मरे हुए ढोर (जानवर) के चमड़े से जूते गाँठते थे, सन्त सेना नाई घर-घर जाकर बाल काटते थे परन्तु भक्ति के अनन्य भाव के कारण सभी सन्त कहलाये।" इतना बताकर गोपीनाथ ने कहा, "इसी बात को सन्त धन्ना जाट ने अपने गीत में इस प्रकार लिखा है।" फिर भावविभोर होकर गाने लगे–

गोविन्द गोविन्द गोविन्द संगि नामदेउ मनु लीणा ।
आठ दाम को छीपरो होइओ लाखिणा ।।
बुनना तनना तिआगि कै प्रीति चरन कवीरा ।
नीच कुल जोलाहरा भइयो गुनीय गहीरा ।।
रविदास ढुँवता ढोर नीति तिन्ह तिआगी माया ।
परगटु होआ साध संगि हरि दरसनु पाइआ ।।
सेन नाई बुतकारिआ ओहु घरि घरि सुनिआ ।
हिरदे वसिआ पारब्रह्म भगता महि गनिआ ।।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इति विधि सुनि कँ जाटरो उठि भगति लागा ।
मिले प्रताखि गुसाईआ धन्ना बड़ भागा ।।

सन्तों पर बात चलती हुई शेखावत के परिवार पर चल पड़ी। गोपीनाथ ने बताया कि शेखावत के पुरखे पृथ्वीराज चौहान की सेना में रहे हैं।

दूसरे दिन पुष्कर सरोवर पर जाते समय शंकरदेव ने आग्रहपूर्वक गोपीनाथ को भी अपने साथ ले लिया। सरोवर की शोभा अनुपम थी। उसके चारों ओर गौघाट, ब्रह्मघाट, रामघाट, बदरीघाट आदि विभिन्न पक्के घाट बने थे। सब सरोवर में नहाने को उतरने लगे तो गोपीनाथ ने सबको सावधान करते हुए कहा, ''जल में मगरमच्छों का राज्य है। किनारे रहकर ही चारों ओर मगरमच्छों पर दृष्टि रखकर ही आप लोग स्नान कीजियेगा।''

स्नान-ध्यान के पश्चात् गोपीनाथ सबको पुष्कर सरोवर से कुछ ही दूरी पर स्थित ब्रह्मा मन्दिर में ले गया। मन्दिर लाल गुलाबों की सुगन्ध से महक रहा था। चतुर्मुखी ब्रह्मा के दायें सावित्री और बायीं ओर गायत्री विराजमान थीं।

वहाँ कुछ दिन रहकर पुष्कर के अन्यान्य मन्दिरों को देखा। गोपीनाथ बहुत समय से साथ में था। वह शंकरदेव के नामधर्म के बारे में समझने लगा था। एक दिन उसने शंकरदेव से अपने मत में दीक्षित करने का आग्रह किया। उन्होंने कहा, ''नामधर्म देखने में तो बड़ा सरल है, परन्तु इसके नियमों पर चलना पड़ता है।'' गोपीनाथ ने उन्हें प्रणाम कर कहा, ''मैं आपके बताये सभी नियमों पर जीवनभर चलूँगा। अब आप मुझे अपनी शरण में ले लीजिये।''

पुष्कर से शंकरदेव सिन्धु के तट पर जाना चाहते थे। इसके लिए उन्हें विस्तृत मरुभूमि को लाँघना था। किन्तु जहाँ चाह होती है, वहाँ राह अपने आप मिल जाती है। शेखावत ने मरुभूमि पार कराने के लिए ऊँटों की व्यवस्था करवा दी। वह सवारी कामरूपवासियों के लिए अनोखी होने के साथ बड़ी रोमांचकारी भी थी। ऊँटों की ऊबड़-खाबड़ पीठ पर बैठना उन्हें जहाँ असहज लग रहा था, वहीं उनकी चाल के साथ लगते हिचकोलों से कामरूप में यदाकदा आने वाले भूकम्प के झटकों की याद हो आती। ऊँटों के गले में बंधीं घण्टियों की ध्वनि के नाद में शंकरदेव अपने मन के स्वरों की ताल मिला रहे थे।

मरुभूमि को पार करना इतना सहज नहीं था। सूरज की तपस और

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हवा में उड़ती गर्म रेत सबके लिए अत्यन्त पीड़ादायी वन गयी। यात्रियों ने अपने सिर और मुख कपड़ों से कस कर बांध लिये। रात में ठण्ड हो जाती, परन्तु अन्धेरे में चलना सम्भव नहीं था। ऊँट दिन के उजियारे में ही अपने जाने-पहचाने रास्ते पहचान पाते। ऊँटों के साथ आये लोग भी निःसहाय थे। धूप से बचने के लिए पौ फटते ही वे यात्रा पर आगे निकल पड़ते। भीषण गरमी में प्यास भी अधिक लगती। यह तो अच्छा रहा कि शेखावत ने पानी भरी मशकें ऊँटों पर लदवा दी थीं। किन्तु साथ का पानी आखिर कब तक साथ निभाता।

सिन्ध

मरुभूमि पार कर सिन्ध प्रदेश का हरियाला क्षेत्र दिखायी देने लगा। कुछ कोस चलने पर सिन्धु नद आया। उसके कलकल करते जल पर कुछ नावें चल रही थीं, कुछ किनारे खड़ी थीं। सिन्धु की नीलाभ काया देख, सबका मन उसमें नहाने के लिए मचल उठा। स्नान-ध्यान कर सब नाव से नद को पार कर सिन्धु के पश्चिमी किनारे पर बसे एक गाँव में पहुँचे।

ग्राम में घूमते-घामते उनका विद्वान पुरुष लालकृष्ण कृपलानी से परिचय हुआ। कृपलानी ने सबको आग्रहपूर्वक अपने घर पर ठहरा लिया। शीतकाल चल रहा था। रात में आग सेंकने सब अलाव के पास बैठे थे। वातों-वातों में कृपलानी वताने लगा, "इस क्षेत्र को प्राचीन काल में निषाद प्रदेश कहा जाता था। यहाँ के राजा नल और उनकी रानी दमयन्ती की कथा प्रसिद्ध है। इसी सिन्धु नद के किनारे उनका विशाल साम्राज्य था।

"अव हम सिन्धवासी बड़ी विकट परिस्थितियों में जी रहे हैं। भारतवर्ष में जव तक शक्तिशाली सम्राट का शासन रहा, तव तक सिकन्दर जैसा विश्वविजयी भी पराजय की कड़ुवाहट झेलकर, सिन्ध की ड्योढ़ी पार कर नहीं जा सका। यहीं उसकी मृत्यु हो गयी।

"अकसर विदेशी आक्रमणकारी यहाँ लूटखसोट करते रहते हैं। सम्राट हर्षवर्द्धन के राजकाल के अन्तिम दिनों में अपने ही लोगों के विश्वासघात के कारण कोई आठ सौ वर्ष पहले अरव के मोहम्मद बिन कासिम ने धोखे से सिन्ध नरेश महाराज दाहिर की हत्या कर डाली। पूरा सिन्ध प्रदेश धू-धू कर धधक उठा। सिन्ध की हिंगलाज भवानी का मन्दिर तक उजाड़ दिया गया। उस भीषण नरसंहार को देखकर महाराज दाहिर की महारानी ने सिन्ध को स्वतन्त्र कराने का संकल्प लिया। किन्तु अकेली नारी कहाँ तक उससे लड़ पाती !" इतना कहकर कृपलानी थोड़ी देर चुप

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हो कुछ सोचने लगा। फिर कहा, "आप लोग कामरूप से इतनी दूर आये हैं और मैं अपनी ही दुःखगाथा सुनाने लगा। चलिये, भोजन कर विश्राम कीजिये।"

सुबह शंकरदेव ने कृपलानी से कहा, "श्रीमान्! सिन्धु में स्नान करने की हमारी अभिलाषा पूरी हुई। हमें कामरूप छोड़े छह वर्ष से ऊपर हो गये। अब हम भारत के इस पश्चिमोत्तर का भ्रमण कर बदरीनाथ जाने के इच्छुक हैं। इसके पहले यहाँ से तक्षशिला, पुष्कलावती (पेशावर), लवपुर (लाहौर), कुरुक्षेत्र, हस्तिनापुर आदि होते हुए हरिद्वार और फिर वहाँ से बदरीनाथ जायेंगे। आप कृपया हमें आगे जाने के लिए उचित निर्देश दीजिये।"

कृपलानी ने कहा, "आपका यात्रा-मार्ग बहुत लम्बा है। आप लोग अपना घर छोड़ इतने वर्षों से पूरे दक्षिण भारत सहित लगभग पूरे भारतवर्ष की यात्रा कर आये हैं। मैं आपके साहस को नमन करता हूँ। पुष्कलावती का मार्ग कठिन होने के साथ लम्बा भी है। किन्तु मुझे विश्वास है कि आप अपने ध्येय में सफल होंगे। आप लोगों का यहाँ से नाव में जाना ज्यादा सुगम रहेगा। सिन्धु के पश्चिमी तट पर कुछ कोस चलने पर पुष्कलावती है। वहाँ से सिन्धु को फिर पार कर पूर्वी तट पर आ जाइयेगा। कुछ कोस की दूरी पर ही तक्षशिला मिलेगी।"

पुष्कलावती (पेशावर)

सिन्धु के बहाव की विपरीत दिशा में नाव जा रही थी। कुछ दिनों की यात्रा के बाद सिन्धु के पश्चिमी तट पर नाव लगाकर नावरिया ने कहा, "यहाँ से सीधे जाने पर आप पेशावर पहुँच जायेंगे।"

सिन्धु में यात्रियों ने स्नान कर अपना पाथेय निकाल कर खाया। फिर यात्रा पश्चिम की ओर चल पड़ी। सन्ध्या होते-होते सब अपने गन्तव्य पर पहुँच गये। पेशावर अच्छी-खासी मण्डी थी। दुकानें बादाम, अखरोट, किशमिश आदि विभिन्न प्रकार के सूखे मेवों के अलावा खाद्य वस्तुओं और वस्त्रों से अटी थीं। यात्रीगण इस उधेड़बुन में थे कि रात्रि में कहाँ ठहरा जाये ? थोड़ा भटकने के बाद उन्हें एक गृहस्थ के यहाँ आसरा मिल गया। गृहस्थ ने उनके लिए एक कोठरी खोल दी। गृहिणी ने दीपक जला सबको जल लाकर दिया और ओढ़ने-बिछाने के कपड़ों की समुचित व्यवस्था कर भोजन बनाने रसोई में चली गयी।

गृहस्थ सबका पूर्ण परिचय पाकर प्रसन्न हुआ। वह समझ गया कि उसके घर धवल कपड़ों में कोई सन्त पधारे हैं। शंकरदेव और उनके साथी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भारतवर्ष की इसी अतिथि-परायणता के चलते इतने वर्षों से यात्रा कर रहे थे। उन्होंने इस अतिथि-वत्सलता को मन ही मन प्रणाम किया।

भोजन बनने तक गृहस्थ उन्हें बताने लगा, "पेशावर का पौराणिक नाम पुष्कलावती है। इस नगर को श्रीराम के भाई भरत के पुत्र पुष्कल ने बसाया था। शकों-हूणों के आक्रमणों को विफल करने के लिए यहाँ विशाल सैन्य शिविर स्थापित किये गये तो यह नगरी पौरुष का प्रतीक बनकर पौरुषपुर कहलाने लगी जो कालान्तर में पुरुषपुर होता हुआ पेशावर कहलाने लगा।"

दो दिनों बाद शंकरदेव ने वहाँ से तक्षशिला जाने का मन बनाया। उनके मन में भारतवर्ष के तीर्थों के अलावा उन स्थलों को देखने का भी संकल्प था जहाँ से पूरे देश में शिक्षा का प्रचार-प्रसार हुआ।

तक्षशिला

यात्रीदल ने फिर से सिन्धु को पार किया और पूर्व की ओर चल पड़े। तक्षशिला पहुँचकर शंकरदेव और उनके साथियों को वहाँ एक गुरुकुल की अतिथिशाला में आश्रय मिल गया। वहाँ के आचार्य ने वार्तालाप करते हुए उन्हें बताया, "पुष्कलावती की तरह तक्षशिला को भी भरत के एक अन्य पुत्र तक्षक ने बसाया था।"

दूसरे दिन गुरुकुल के एक विद्यार्थी के साथ सभी तक्षशिला देखने गये। वहाँ के जीर्ण-शीर्ण अवशेष देखकर सभी के मन क्षुब्ध हुए। विद्यार्थी उन्हें बताने लगा, "इस अवशेषों के स्थान पर कभी विशाल तक्षशिला विश्वविद्यालय था। उसमें सुदूर देशों के विद्यार्थी आयुर्वेद, व्याकरण, दर्शनशास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीति, ज्योतिष विद्या के साथ ही मूर्तिकला, चित्रकला, स्थापत्य कला, प्रस्तर-शिल्प अर्थात् पाषाणों पर उत्कीर्णन कला, धातु शास्त्र, लौह और वंग (रांगा) के मिश्रण से कांस्य धातु बनाना, रसायन शास्त्र जैसे अनेक वैज्ञानिक-शिक्षण लेने आते थे।"

उसने आगे कहा, "यहाँ का विशाल पुस्तकालय विश्व में नामी था। भारत की राष्ट्रीय राजनीति के शलाकापुरुष चाणक्य की वह कर्मस्थली थी। यूनानी आक्रान्ता सिकन्दर को अपने देश वापस लौटने के लिए बाध्य करनेवाले, सत्तामद में चूर अहंकारी नन्द के शासन से भारत को मुक्त करानेवाले, चन्द्रगुप्त मौर्य को प्रशिक्षित कर उसके द्वारा सेल्यूकस को पराजित करानेवाले चाणक्य ही थे।

"कोई चार सौ वर्ष पहले महमूद गजनवी ने यहाँ की सम्पदा को ही नहीं लूटा, वह इस विश्वविद्यालय के अति दुर्लभ ग्रन्थों को भी लूटकर अपने

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

साथ गजनी ले गया।''

पश्चिमोत्तर भारत की यात्रा में जगह-जगह विदेशियों द्वारा नष्ट किये गये ध्वंसावशेषों को देखकर यात्रीदल वड़ा क्षुब्ध हुआ। लेकिन साथ ही शंकरदेव के यह भी अनुभव किया कि अपनी आँखों देखे विना इतिहास को समझा भी कैसे जा सकता था ! कुछ दिन वहाँ रहकर उन्होंने गुरुकुल के आचार्य से लवपुर जाने की आज्ञा माँगी।

कैकेय

यात्रा-पथ में चलते-चलते झेलम नदी आयी। उसे नाव से पार कुछ कोस चले होंगे कि चिनाव नदी आ गयी। नदियों से हरेभरे प्रदेश को देखकर शंकरदेव ने साथियों से कहा, ''अव हम पाँच नदियों से सिंचित पांचाल प्रदेश में पहुँच गये हैं। अभी हमने सिन्धु, झेलम और चिनाव नदियाँ पार की हैं, आगे रावी तथा सतलज और आयेंगीं।''

सर्वजय ने पूछा, ''गुरुदेव !इतनी वातें आपने कौन-से पुराणों में पढ़ीं ?''

''वैसे तो रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थों में भी भारतवर्ष का भौगोलिक वर्णन जगह-जगह मिलता है, परन्तु इससे ज्यादा जानकारी मुझे गुरुवर कन्दली के गुरुकुल में यदाकदा आनेवाले साधु-सन्तों से मिलती रहती थी। उनसे यात्रा-वृत्तान्त सुनने में बड़ा आनन्द आता था। इस दीर्घ यात्रा में भी जगह-जगह लोगों से हमें नयी-नयी सूचनाएँ मिलती रहती हैं। ज्ञान को बढ़ाने के लिए घुमक्कड़ी से अच्छा और कौन-सा विद्यालय हो सकता है ? महात्मा बुद्ध, महावीर, शंकराचार्य आदि हमारे पूर्व पुरुषों ने अपनी घुमक्कड़ी से ही अपने भारत को जाना। सभी अपनी युवावस्था में अपने घरों से भ्रमण पर निकल पड़े थे। हमारे लिए यह सौभाग्य की वात है जो अपनी युवावस्था में हमें भारत-भ्रमण का अवसर मिला। बुढ़ापे में शरीर के जर्जर हो जाने पर यात्रा की भी जाये तो वह कितनी कष्टप्रद होती होगी !''

जगह-जगह ठहरता यात्रीदल कुछ दिनों में रावी नदी के किनारे वसे लवपुर (लाहौर) पहुँचा। श्रीराम के पुत्रों लव और कुश ने अपने नामों पर लवपुर और कुशपुर (कसूर) वसाये थे। लवपुर से सतलज नदी के पास वसे कैकेय प्रदेश में जा पहुँचे। वहाँ कभी भरत माता कैकेयी के पिता और भरत के नाना महाराज कैकेय का राज्य था।

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कुरुक्षेत्र-इन्द्रप्रस्थ-हरिद्वार

सतलज को पार कर यात्रा ज्यों-ज्यों आगे बढ़ रही थी, लोगों की भाषा, खानपान और पहनावे में आया अन्तर भी साफ दिखायी दे रहा था। कामरूपवासियों को इस वात का सन्तोष था कि उस क्षेत्र में उनके प्रिय खाद्य चावल की कोई कमी नहीं थी। अब उनका यात्रा-लक्ष्य कुरुक्षेत्र था।

कुरुक्षेत्र

रास्ते में आये पृथूदक (पेहेवा) से कुरुक्षेत्र का पवित्र क्षेत्र प्रारम्भ हो गया। महाराज वेन के पुत्र पृथु के नाम पर यह पृथूदक के नाम से विख्यात हुआ। वहाँ सरस्वती नदी के तट पर स्थित पृथूदक, ब्रह्मयोनि, बृहस्पतितीर्थ, पापान्तकतीर्थ आदि अनेक पवित्र स्थलों का अवलोकन करते हुए यात्रीदल ने वहाँ से सात कोस दूर स्थाण्वीश्वर (थानेसर) पहुँचकर स्थाण्वीश्वर (स्थाणु-शिव) के प्राचीन मन्दिरों को देखा। पुराण-कथा है कि यहाँ स्थित पवित्र सरोवर में स्नान कर महाराज वेन का कुष्ठ रोग दूर हो गया था।

स्थाण्वीश्वर से कुरुक्षेत्र पहुँचकर शंकरदेव अत्यन्त प्रसन्न हो अपने साथियों को वताने लगे, "कुरुक्षेत्र में देखा जाये तो पूरा भारतीय इतिहास समाया हुआ है। इस पावन भूमि में सरस्वती के तटों पर ऋषियों ने सर्वप्रथम वेद-मन्त्रों का उच्चारण किया, महर्षि वसिष्ठ तथा विश्वामित्र ने ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त किया। यजुर्वेद में इसे इन्द्र, विष्णु, शिव तथा अन्यान्य देवताओं की यज्ञभूमि वताकर वर्णित किया गया है।

"वामन पुराण में कहा गया है, कौरवों-पाण्डवों के पूर्वज महाराज कुरु ने इस क्षेत्र को तप, सत्य, क्षमा, दया, शुचि, दान, योग व ब्रह्मचर्य जैसे अष्टांग धर्म का प्रचार करने के लिए आध्यात्मिक शिक्षा का बड़ा केन्द्र बनाया था। इसी कुरुक्षेत्र को कौरवों-पाण्डवों ने महाभारतीय समर का युद्धांगण बनाया। यहीं श्रीकृष्ण ने विश्व को श्रीमद्भगवद्गीता का अमर सन्देश सुनाया, जिसे महर्षि वेदव्यास ने अपने महाभारत ग्रन्थ में संकलित किया। वामन पुराण में यहाँ सात पवित्र वन और सात ही पवित्र नदियाँ मानकर इस प्रकार का वर्णन मिलता है—

काम्यकं च वनं पुण्यं तथादितिवनं महत् ।
व्यासस्य च वनं पुण्य फलकीवनमेव च ।।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तथा सूर्यवनं स्थानं तथा मधुवनं महत् ।
पुण्यशीतवनं नाम सर्वकल्मषनाशनम् ।।
सरस्वती नदी पुण्या तथा वैतरणी नदी ।
आपगा च महापुण्या गङ्गा मन्दाकिनी नदी ।।
मधुस्रवा अम्लुनदी कौशिकी पापनाशिनी ।
दृषद्वती महापुण्या तथा हिरण्वती नदी ।।

अर्थात् काम्यकवन, अदितिवन, व्यासवन, फलकीवन, सूर्यवन, मधुवन और शीतवन नामक सात वनों के अलावा यहाँ सरस्वती, वैतरणी, आपगा, मधुस्रवा, कौशिकी, दृषद्वती और हिरण्वती नामक सात पवित्र नदियों के नाम मिलते हैं।"

वहाँ के विशाल ब्रह्मसर नामक सरोवर में आकण्ठ डूबे शंकरदेव को महाभारत में पढ़ा हुआ युद्ध के पहले का प्रसंग याद आने लगा, सूर्यग्रहण के अवसर पर कुरुक्षेत्र में भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कुरु सम्राट धृतराष्ट्र-गांधारी अपने सौ पुत्रों के परिवार के साथ, विदुर, पाँचों पाण्डव पुत्रों के साथ कुन्ती, विराट, द्रुपद, शल्य, कर्ण, शकुनि, प्राग्ज्योतिषपुर नरेश भगदत्त अपनी महारानियों के साथ और दूसरी ओर द्वारका से महाराज उग्रसेन, वसुदेव, अक्रूर, उद्धव, कृतवर्मा, सात्यकि आदि सहित स्वयं श्रीकृष्ण-बलराम अपने पुत्र-पौत्रों और विशाल रनिवास को लिये, उधर व्रज से नन्दराय-यशोदा मैया और श्रीकृष्ण के बालसखा श्रीदामा आदि गोप-गोपियाँ वहाँ एकत्रित हुए थे। व्रज छोड़ने के पश्चात् श्रीकृष्ण का गोकुल वासियों से वह प्रथम मिलन था। मैया यशोदा अपने कन्हैया को देखकर कैसी भावविह्वल हो गयी थीं। कैसा अद्भुत प्रसंग था।

इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली)

कुरुक्षेत्र से निकलकर शंकरदेव अपने साथियों के साथ दिल्ली पहुँचे। दिल्ली कभी इन्द्रप्रस्थ के नाम से जानी जाती थी। पाण्डवों ने इसे आज से लगभग साढ़े चार हजार वर्ष पहले बसाया था। यमुना किनारे पत्थरों की लम्वी दीवारों के बीच दिल्ली वसी थी। उस दीवार में छह दरवाजे और अनेक खिड़कियाँ थीं। दीवार की ऊँचाई लगभग अठारह हाथ और मोटाई आठ हाथ रही होगी। एक ओर लाल पत्थरों से बने किले के सम्मुख विस्तृत मैदान था। वहाँ से पुराने किले में जाकर सवने पाण्डव माता कुन्ती का मन्दिर तथा अन्यान्य मन्दिर देखे। इसी स्थान पर किसी जमाने में पाण्डवों की राजधानी इन्द्रप्रस्थ थी।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अब दिल्ली पर मुसलिम शासक लोदी वंशजों का पूर्ण अधिकार था। शंकरदेव अपने साथियों के साथ घूमते-घामते नगर से दूर विश्वविख्यात ज्योतिषशास्त्री वराह मिहिर के नाम पर बसी मिहिरावली (महरौली) जा पहुँचे। वराह मिहिर ने अपने सहायकों, गणितज्ञों तथा तकनीक विशेषज्ञों से साथ वहाँ खगोल सम्बन्धी अनुसन्धान करने के लिए एक वेधशाला बनवायी थी। अब यह वेधशाला कुतुबमीनार के नाम से जानी जाती थी। सात मंजिली उस मीनार की उँचाई दो सौ हाथ होने का अनुमान लगाया। पहली मंजिल की बाहरी दीवारों पर पुष्प वन्दनवार और घण्टियों के साथ कुरान की आयतें उत्कीर्ण की हुई थीं।

कुतुबमीनार के पास के घेरे में मस्जिद में बदला जा चुका विष्णु मन्दिर और उसके पास ही खड़े प्राचीन लौह-स्तम्भ को देखा। लौह-स्तम्भ की उँचाई कोई पच्चीस हाथ थी। उसे देख सबको कोतूहल हुआ कि इतने भारी स्तम्भ को कैसे गाड़ा गया होगा ! स्तम्भ पर संस्कृत में उत्कीर्ण पंक्तियाँ शंकरदेव ने पढ़ी—

यस्मोद्वर्तयतः प्रतीपमुरसा शत्रून्समेत्यागतान् ।
वंगेष्वाहववर्तिनोभिलिखिता खड्गेन कीर्तिभुजे ।।
तीर्न्वा सप्तमुखानि येन समरे सिंहोर्जिता वाह्लिका ।
यस्याद्याप्यवास्यते जलनिधिर्वीर्यानिलैर्दिक्षिण ।।
खिन्नस्येव विसृज्य गां नरपतेर्गामाश्रितस्येतराम् ।
मूर्त्या कर्मजितावर्नि गतवतः कीर्त्या स्थितस्य शितौ ।।
शान्तस्येव महावने हुतभुजो यस्य प्रलापो महान् ।
आद्यापुत्सृजति प्रंणाशितरिषपोर्यत्नस्य शेष क्षितिम् ।।
प्राप्तेन स्वभुजार्जित च सुचिरं चैकाधिराज्यं क्षितौ ।
चन्द्रान्हेन समग्रचन्द्रसदृशीं वक्त्रश्रियं विभ्रता ।।
तेनातं प्रणिधाय भूमिपतिना धावेन विष्णौ मतिं ।
प्राशुर्विष्णुपदे गिरौ भगवतो विष्णुर्ध्वज स्थापितः ।।

शंकरदेव ने साथियों को इन श्लोकों का भावार्थ समझाते हुए कहा, "यह स्तम्भ मानो उस चन्द्र नामक सम्राट की भुजा है, जिसने बंग देश में एकता स्थापित करके, आक्रमणकारी शत्रुओं का दमन करके, खड्ग से अपनी कीर्ति लिख रखी है। उस राजा ने सिन्धु नद के सप्तमुखों को पार कर वाह्लिक को जीता। दक्षिणी समुद्र तो उसकी प्रताप वायु से अभी तक सुवासित है। जिस प्रकार वन में प्रज्वलित प्रचण्ड दावानल समस्त वंन को

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भस्मीभूत करके शान्त हो जाने पर भी, उसका कुछ अवशिष्ट अवश्य रह जाता है, उसी प्रकार शत्रुओं की चेष्टाओं को पूर्ण रूप से विफल करके, यद्यपि वह राजा इस पृथ्वी को त्याग कर, स्वपुण्यों से उपार्जित स्वर्गलोक को चला गया है, तथापि कीर्ति रूप में वह यहाँ अवश्य उपस्थित है। अपने भुजा-पराक्रम से प्राप्त चक्रवर्तित्व जिसने चिरकाल तक भोगा, जिसके मुख की कान्ति चन्द्रमा के समान है, उस चन्द्रराज ने, भगवान् विष्णु के प्रति अपने चित को भक्तिपूर्वक अर्पण करके, विष्णुपद नामक गिरि पर भगवान् विष्णु का यह ध्वज स्थापित किया है।''

''गुरुदेव ! यह चन्द्र राजा कौन था ?'' परमानन्द ने पूछा।

''मेरी समझ में तो गुप्त वंशीय चन्द्रगुप्त के सिवाय और कौन हो सकता है ! उसका सम्पूर्ण भारतवर्ष पर साम्राज्य रहा है।''

कुतुवमीनार से जरा-सी दूरी पर बने योगमाया मन्दिर में सव गये। श्रीमद्भागवत पुराण के अनुसार योगमाया भगवान् श्रीकृष्ण की वहन थीं, जो पापी कंस के हाथों से छूटकर आकाश में चली गयीं। उन्हें वताया गया कि इस मन्दिर को सर्वप्रथम युधिष्ठिर ने बनवाया था।

अव दिल्ली से शंकरदेव हस्तिनापुर पहुँच कर विदुर आश्रम के दर्शन करते हुए हरिद्वार की ओर निकल पड़े। कई दिनों में लम्वी यात्रा कर हरिद्वार के रास्ते में आये शुकताल पहुँचे।

शुकताल

शुकताल में एक टीले पर अत्यन्त प्राचीन कहा जानेवाला वट वृक्ष था। उसे प्रणाम कर शंकरदेव ने साथियों को वताया, ''यह वही पवित्र स्थान है जहाँ श्री शुकदेव ने महाराज परीक्षित् को सात दिनों तक श्रीमद्भागवत पुराण सुनाया था। लोगों का विश्वास है कि इसी वट वृक्ष के नीच शुकदेवजी और नीचे श्रोता के रूप में महाराज परीक्षित् वैठे थे।

हरिद्वार

शंकरदेव मोक्षदायिका सप्तपुरियों में गिनी जानेवाली मायापुरी अर्थात् हरिद्वार के गंगा तट पर पहुँचे। घाट की शोभा अनुपम थी। घाट पर बनी पैड़ियों पर जगह-जगह अपने तख्त लगाये वैठे घटवार स्नानार्थियों के स्नान के वाद चन्दन-तिलक कर रहे थे। पास ही वने छोटे-छोटे देवालयों से वहाँ के सौन्दर्य में और निखार आ गया था। उन्होंने अपने साथियों के साथ गंगा में डुवकी लगायी। जल वर्फ जैसा ठण्डा था, गंगा का प्रवाह भी अति तीव्र। उन्होंने अनुभव किया कि जल में डूवे उनके पाँवों को कोई छेड़ रहा है। गंगा का जल पारदर्शी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

था। उन्होंने देखा, मछलियों का झुण्ड उनके पाँवों से टकरा रहा था।

एक तीर्थ पुरोहित के यहाँ उनकी रात में रहने-खाने की व्यवस्था हो गयी। वहाँ कुछ दिन रहकर उन्होंने कुशावर्त्त घाट, गऊघाट, विष्णुघाट आदि हरिद्वार के अन्य स्थलों का अवलोकन किया।

सान्ध्य बेला में होने वाली गंगा की आरती का अद्‌भुत दृश्य देखना, उनका नित्य नियम बन गया। गंगा की धारा में तैरते पुष्पों से सजे पत्तों से बने असंख्य दौनों में जलते दीपकों के दृश्य देखकर सब अभिभूत हो गये। दूर से ऐसा लग रहा था जैसे आकाश की नक्षत्रावली गंगा-धारा पर उतर आयी हो।

ऋषिकेश

हरिद्वार से ऋषिकेश ज्यादा दूर नहीं था। ऋषिकेश में ही देवदत्त नामक ब्राह्मण ने तपस्या की थी; किन्तु शिव-विष्णु में भेदबुद्धि होने से इन्द्र उसकी तपस्या प्रम्लोचा नामक अप्सरा से भंग कराने में सफल हो गया। पुनः तप करने पर भगवान् शंकर ने प्रकट होकर उससे कहा, "तुम मुझे ही विष्णु समझो। हम दोनों को एक ही भाव से देखने पर तुम्हें शीघ्र सिद्धि मिलेगी। पहले तुम्हारी हम दोनों में भेदबुद्धि थी, इसीसे तुम्हारे महान तप में विघ्न हुआ।"

ऋषिकेश से रास्ता धीर-धीरे पहाड़ी होता गया। उत्तरोत्तर पहाड़ी चढ़ाई आने लगी। इसके साथ मौसम भी ठण्डा होता गया।

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मन मेरि राम चरणहि लागु

ऋषिकेश से यात्रीदल बदरीनाथ के पथ पर निकल पड़ा। रास्ता बड़ा भयावह था। पहाड़ों को काटकर बनायी गयी पतली पगडण्डी जैसा पथ था। रास्ते के एक ओर पहाड़ तो दूसरी ओर गहरी खाई में गंगा बह रही थी। यात्री की जरा-सी चूक उसके लिए प्राणलेवा हो सकती थी। यात्रियों के विश्राम और रात्रि में ठहरने के लिए रास्ते में स्थान-स्थान पर कुछ कोसों की दूरी पर चट्टियाँ बनी थीं। चट्टियों पर आसपास के गाँववाले अपने खेतों में उपजे अनाज को बेचकर जहाँ अपनी आजीविका चलाते, वहीं यात्रियों को भी कहीं भटके बिना अपनी आवश्यकता का सामान मिल जाता।

देवप्रयाग में गंगोत्री से चली आयी भागीरथी गंगा और बदरीनाथ से आनेवाली अलकनन्दा के संगम का दृश्य देख सब अभिभूत हो गये। संगम पर बने मन्दिरों के अलावा पास में ही स्थित गृद्धाचल, नरसिंहाचल और दशरथाचल नामक तीन पर्वत शृंगों से वहाँ की शोभा और मनमोहक लग रही थी।

थकेमाँदे यात्रियों ने श्रीनगर पहुँचकर एक धर्मशाला में विश्राम लिया। वहाँ सत्यनारायण के अलावा अन्य मन्दिरों में भी गये। दुर्गम पथ पर रुकते-ठहरते, रात्रि-विश्राम लेते हुए सतत चल रही यात्रा में आगे रुद्रप्रयाग आया।

रुद्रप्रयाग में केदारनाथ से आनेवाली मन्दाकिनी और अलकनन्दा के संगम के सौन्दर्य को यात्रीदल टकटकी लगाकर निहारता रह गया। उस रास्ते में आने वाले प्राकृतिक दृश्यों की तो जैसे भरमार थी। आगे कर्णप्रयाग होते हुए वे चमोली पहुँचे। वहाँ लोगों की अंच्छी चहल-पहल मिली। वहाँ से एक रास्ता केदारनाथ की ओर जा रहा था। शंकरदेव अपने इष्ट विष्णु का ध्यान करते हुए बदरीनाथ के पथ पर आगे बढ़ते गये।

पहाड़ की उत्तरोत्तर चढ़ाई के साथ ठण्ड भी बढ़ती गयी। जोशीमठ पहुँचने पर वहाँ विराजमान नृसिंह भगवान् की पूजा-अर्चना की। आगे विष्णुप्रयाग में गंगा और अलकनन्दा के संगम में स्नान कर अपनी थकान दूर की। रात्रि-विश्राम करते हुए वहाँ के एक तीर्थ-पुरोहित से पास में ही स्थित पाण्डुकेश्वर के बारे में पता चला। दूसरे दिन यात्रीदल ने वहाँ के लिए प्रस्थान किया। मान्यता है कि इसी स्थान पर पाँचों पाण्डवों का जन्म हुआ। वहाँ से वापस विष्णुप्रयाग आये। अव शंकरदेव अपने दल के साथ शेपधारा-हनुमान चट्टी पहुँचे। वहाँ से बद्रीनाथ नजदीक ही था। दूर से हिमाच्छादित पर्वतशिखर देखकर सभी के मन प्रफुल्लित हो उठे। सवा महीने की दुर्गम यात्रा कर सब

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सकुशल बदरीआश्रम पहुँच गये।

हिमालय के अलौकिक दृश्य को देखकर शंकरदेव को स्वर्ग जैसी अनुभूति हो रही थी। अलकनन्दा के उस पार बदरिकाश्रम था। नदी को पार करने के लिए लकड़ी का पुल था। तीर्थ पुरोहितों की बस्ती भी उस पार ही थी। नये यात्रियों की टोह में लगे एक तीर्थ-पण्डे ने उन्हें ठहरने-खाने के प्रति आश्वस्त कर अपने घर ले जाकर एक कोठरी खोल दी।

गुणवन्त कोटियाल पण्डा अब उनका पथ प्रदर्शक था। दिन का प्रथम प्रहर ही बीता था। पण्डा उन्हें पास ही स्थित प्राचीन तप्त कुण्डों पर स्नान कराने ले गया। वहाँ पास-पास में उष्ण जल के दो कुण्ड थे। प्रकृति का यह अद्‌भुत चमत्कार देख सभी विस्मित थे। हिमालय के भीषण शीत में ठिठुरन छूट रही थी। पास ही बहती अलकनन्दा का पानी बर्फ जैसा ठण्डा बह रहा था। उनके मध्य गरम पानी के स्रोत का यहाँ होना कम आश्चर्य की बात नहीं।

पण्डे ने बताया, "इसी स्थान पर नर-नारायण ने तपस्या की थी। यहाँ तप्त कुण्ड पर बैठकर किये गये जाप का सहस्र गुणा फल मिलता है। यहाँ से थोड़ी ही दूरी पर ब्रह्म कपाली हैं। श्रद्धालु अपने पितरों को पिण्डदान करने वहाँ जाते हैं। ये पिण्ड साधारण नहीं होते, भगवान् के भोग से बनते हैं।"

कुण्ड के गरम जल में स्नान करते ही सब के बदन में स्फूर्ति आ गयी। लगा, रास्ते की सारी थकान उतर गयी। तप्त कुण्डों के पास जरा-सी ऊँचाई पर पत्थर की कुछ सीढ़ियाँ चढ़कर मन्दिर में प्रवेश किया। द्वार पर स्थापित गरुड़ को सर्वप्रथम प्रणाम किया। आगे मन्दिर परिसर में स्थापित हनुमान को सिर नवा कर सब ने मुख्य मन्दिर में प्रवेश कर दर्शन किये।

बदरीविशाल के विग्रह के पास ऐश्वर्य की अधिष्ठात्री देवी महालक्ष्मी एक सामान्य सेविका के रूप में चँवर धारण किये खड़ी हैं। बदरी दरबार में गणेश, नारद, उद्धव के साथ धनाध्यक्ष कुबेर भी दास्य भाव से उपस्थित हैं। भक्ति-तप के प्रतीक नर-नारायण भी वहाँ विराजमान हैं। उनके दोनों ओर भूदेवी और श्रीदेवी की प्रतिमाएँ हैं। बदरीनाथ के सम्मुख दण्डवत प्रणाम कर कुछ समय वहाँ बैठकर शंकरदेव के साथ सब ने विष्णु सहस्रनाम का पाठ किया।

मन्दिर के भोग भण्डार में कुछ दक्षिणा देकर वहाँ बने गरम भात और चने की दाल का प्रसाद पत्तल में लेकर प्रांगण में आये। सब के साथ प्रसाद लेते हुए शंकरदेव अपने संगियों से कह रहे थे, "तीर्थों में आकर मूर्तियों के दर्शन करने मात्र से कुछ नहीं होता। उसके निहितार्थ को समझना भी आवश्यक है। लक्ष्मी प्राप्ति के लिए लोग आपाधापी में लगे हैं। किन्तु लक्ष्मी उसके पास ही स्थिर होती हैं, जो सदैव हरि को अपने

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हृदय में बसाये रखता है। अन्दर तुम लोगों ने देखा नहीं, महामाया लक्ष्मी कैसे हरि के सम्मुख एक सामान्य दासी की तरह हाथ में चँवर लिये खड़ी थीं। उसी प्रकार स्वर्णपुरी लंका से अपने ही भाई रावण द्वारा निष्कासित धनाध्यक्ष कुबेर भी यहाँ दास्य भाव से उपस्थित हैं। उद्धव के ज्ञान के अहंकार का गोपियों द्वारा दमन होने के पश्चात् ही भगवान् का सानिध्य प्राप्त हुआ। गरुड़ और हनुमान ने सदैव दास्य भाव से हरि की सेवा की है। चलो, अब अपने डेरे पर चलते हैं। इस समय मेरा मन कुछ रचने के लिए प्रेरित हो रहा है।''

मन्दिर के नीचे एक गली के दोनों ओर बने दो मंजिले घरों के नीचे दुकानें थीं, जहाँ यात्रियों को अपनी आवश्यकता की कुछ वस्तुएँ मिल जाती थीं। एक-दो दुकानें वैद्यकीय जड़ी-बूटियों की थीं।

शाम को ठण्ड बढ़ने लगी। पण्डे ने कोठरी में दीपक के साथ आग तापने की व्यवस्था भी कर दी। ऊनी कम्बल ओढ़ने के लिए दे दिये। यहाँ के तीर्थ-पुरोहितों के व्यवहार से चारों यात्री प्रसन्न थे। इनके जैसा पण्डों का शिष्ट व्यवहार उन्होंने अन्य तीर्थों में नहीं देखा।

बदरिकाश्रम के नयनाभिराम सौन्दर्य ने शंकरदेव के मन को मोहा। बदरीनाथ के अन्य स्थलों को देखने उस दिन नहीं जाया जा सकता, यह पहले ही तय था। शाम ढल गयी। इसके साथ बर्फानी हवा चलने लगी। ठण्ड का प्रकोप बढ़ता जा रहा था। डेरे में पहुँचकर कोठरी में रखी लोहे की परात में परमानन्द ने आग जलायी तो शंकरदेव ने सावधान किया, ''धुँए के निकास के लिए एक खिड़की खोल दो, नहीं तो सबका दम घुटेगा।'' आग की गरमी से बदन को सुख मिल रहा था। कम्बल ओढ़कर सब बिस्तर में दुबक गये। शंकरदेव की आँखों में नींद नहीं थी। उनके मन में तो संगीत के सुर हलचल मचा रहे थे, भक्ति के भाव मन में उतर रहे थे। वे कुछ गुनगुनाने लगे। उस गुनगुनाहट में राग धनश्री के सुर थे। फिर अपने मनोगत भावों को भोजपत्र पर लेखनीबद्ध करने लगे—

ध्रु— मन मेरि राम चरणहि लागु ।
तइ देखो ना अन्तक आगु ।।
पद— मन आयु क्षणे क्षणे टुटे ।
देखो प्राण कोन दिने छुटे ।।
मन काल अजगरे गिले ।
जान तिलेके मरण मिले ।।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मन निश्चय पतन काया ।
तइ राम भज तेजि माया ।।
रे मन इ सब विषय धांधा ।
के ने देखि ने देखेस आंधा ।।
मन सुखे पार कै छे निन्द ।
तइ चेतिया चिन्त गोविन्द ।।
मन जानिया शंकरे कहे ।
देखो राम बिने गति नहे ।।

शंकरदेव अपनी धुन में गीत को उच्च स्वर में गाने लगे। मधुर सुर सुनकर आसपास के लोग कोठरी में जमा हो गये। समधुर गायन सुन सभी मुग्ध थे। उनके मन में अपार हर्ष हुआ। उन्होंने साथियों से कहा, ''भगवान् की असीम कृपा है। मैं जिस भाषा की बात कह रहा था, उसमें आज यह स्वतःस्फूर्त प्रथम रचना प्रस्फुटित हुई है। यह ऐश्वरिक गीत है। इसकी धनश्री राग का सुर इधर उत्तर भारत में प्रचलित धनश्री के स्वर से अलग है। ऐसे गीत और भी रचने होंगे। ईश्वर प्रदंत्त इस गीत को रचने का शुभारम्भ बदरिकाश्रम की पावनमूमि पर हुआ, यह परमब्रह्म श्रीकृष्ण की कृपा ही है।''

परमानन्द ने कहा, ''गुरुदेव ! आपके भावों और सुर का ही प्रभाव है कि इतनी ठण्ड में भी लोग अपने घरों से निकल यहाँ चले आये। पण्डे की पत्नी भी अपनी रसोई का काम छोड़ यहाँ आ बैठी थी। अब चलिये, भोजन कर आते हैं। पण्डे की पत्नी जाते-जाते भोजन करने का संकेत कर गयी है। आपको हम से वात करते देख कुछ बोली नहीं।''

शंकरदेव ने उसकी वात का अनुमोदन करते हुए कहा, ''मुझे समय का ध्यान ही नहीं रहा। पण्डे की पत्नी को और कितनी देर हम प्रतीक्षा करायेंगे ! ठण्ड भी वहुत वढ़ गयी है। उसे भी अपने काम निपटाकर सोना है। यह लो, पण्डा हमें ही वुलाने आ रहा है।''

रात्रि में निद्रामग्न शंकरदेव को स्वप्न में एक दिव्य पुरुष के दर्शन हुए। उसके सुन्दर गौरवर्णी मुख पर सौम्य मुस्कान थी। सिर पर कन्धे तक झूलते काले घुँघराले केश। घने कुन्तलों को लाल पट्टी से बांध मयूरपंख खोसा था। ललाट पर कस्तूरी-चन्दन से वैष्णव तिलक और गले में तुलसी की माला शोभायमान थी। वाहुओं पर गोपी-चन्दन से वैष्णव चिह्न बने थे। कटि में पीताम्वर और कन्धों पर रेशमी उत्तरीय था। वह कह रहा था, ''शंकर ! उठ ! रात्रि का तीसरा पहर बीत रहा है। मैं बस, तुझसे मिलने ही हिमालय से उतर कर आया हूँ। तू

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भी कृष्ण-भक्त है और मैं भी। यह कृष्ण-भक्ति ही हमारा सम्बन्ध स्थापित करती है। लगता है, तू मुझे अब भी नहीं पहचान पाया। अरे ! मैं उद्धव हूँ।''

शंकरदेव उन्हें कह रहे थे, ''यह आपकी मुझ पर बड़ी कृपा है जो मुझ जैसे सामान्य व्यक्ति को दर्शन दिये। हे भक्तराज ! मेरी हार्दिक कामना है कि मैं आपके साक्षात दर्शन करूँ। प्यासे की प्यास जिस प्रकार स्वप्न में जल पीने मात्र से नहीं बुझती, वैसी ही स्थिति इस समय मेरी है। आप साक्षात दर्शन देने की मुझ पर कृपा करें।''

''शंकर ! मैं श्रीकृष्ण के आदेश पर ही आया हूँ। उनकी कृपादृष्टि सदैव तुझ पर है। तू जिस भक्ति-मार्ग पर अग्रसर है उसी का अनुसरण कर। तेरे जीवन में अनेक कष्ट लिखे हैं। किन्तु तू कृष्ण-कृपा से हर बाधा को पार कर लेगा। तेरे द्वारा अभी बहुत कुछ रचा जाना है। तेरे कार्य में सहायता करने और तेरे बाद उसे आगे बढ़ाने हेतु एक दिव्य पुरुष शीघ्र ही धरती पर जन्म लेने वाला है। इस बात का संकेत तुझे समय पर मिल जाएगा।''

उद्धव ने आगे कहा, ''तूने आज जो गीत रचा है, उसे प्रातःकाल प्रभु को समर्पित करना। तुझे हरि-कृपा का प्रसाद मिलेगा। अब मुझे भी श्रीचरणों की सेवा में जाना है। कल बदरीविशाल के दर्शन कर तप्त कुण्ड पर आना। यदि श्रीकृष्ण-आज्ञा मिली तो मैं वहीं तुझे एक वृद्ध के रूप में साक्षात दर्शन दूँगा। मेरे श्वेत केश और पीत वस्त्र देखकर मुझे पहचान लेना। तेरे सिवाय मुझे अन्य कोई न देख सकेगा। लेकिन सावधान ! उस समय तू मुझसे वार्तालाप करने का प्रयास न करना।''

स्वप्न पूरा होते ही शंकरदेव की आँखें खुल गयीं। मन अपार हर्ष से भर गया। हर्षातिरेक में उन्होंने सबको उठा दिया। ठण्डी अलसायी रात में किसी का मन बिछौना छोड़ने का नहीं हो रहा था। अभी अन्धेरा ही था। पौ भी नहीं फटी थी। किन्तु गुरु के कहे को भला कोई कैसे नकारता। शंकरदेव सबको लेकर तप्तकुण्ड पर स्नान करने पहुँचे। अभी वहाँ इक्के-दुक्के लोग ही थे। कुछ साधु-संन्यासी कम्बल ओढ़े गरम कुण्डों के पास सोये थे।

प्रातःकालीन दर्शन के लिए मन्दिर के पट खुलते ही सबने भीतर प्रवेश कर बदरीविशाल को साष्टांग प्रणाम किया। शंकरदेव ने भोजपत्र पर रात को लिखा पद मुख्य रावल पुजारी को देकर उसे हरि-चरणों में समर्पित करने को कहा। पुजारी पहले दिन ही शंकरदेव के व्यक्तित्व से प्रभावित हो गया था। उस दिन भीड़ अधिक होने से वह उनसे बतिया नहीं पाया। आज उसने उनका परिचय जाना। उनकी प्रांजल संस्कृत सुनकर वह और प्रभावित हुआ। शंकरदेव के साथ ही रावल पुजारी ने देखा कि बदरीविशाल पर चढ़े

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पुष्पों में से एक ब्रह्म कमल भोजपत्र पर आकर गिरा। पुजारी ने ब्रह्म कमल सहित भोजपत्र पर लिखी रचना शंकरदेव को देते हुए कहा, "हे महाभाग ! बदरीविशाल की आप पर अपार कृपा है। उन्होंने संकेत दिया है कि जो कार्य आपने मन में ठान रखा है, वह अवश्य पूर्ण होगा। अपने हृदय में सदैव हरि का ध्यान करते हुए अपने मार्ग पर आप प्रशस्त हों। कोई भी बाधा आपको नहीं रोक सकेगी। यह मेरा दृढ़ विश्वास है।"

शंकरदेव ने हरि-प्रदत्त ब्रह्म कमल और भोजपत्र को सिर माथे लगा कर अपनी झोली में सँभाल कर रखा। वे मन ही मन समझ गये कि अब श्रीहरि कां उन्हें आशीर्वाद मिल गया है। रात के स्वप्न की बात उन्होंने अब तक किसी को नहीं बतायी। वे उद्धव के दर्शन करने को व्यग्र हो रहे थे। उन्होंने फिर से तप्तकुण्ड पर चलने को कहा तो परमानन्द ने कहा, "गुरुदेव ! स्नान तो हम कर चुके। अब वहाँ चलकर क्या करेंगे !"

"वहाँ थोड़े समय बैठकर विष्णु सहस्रनाम का पाठ करेंगे। याद नहीं, पण्डे ने क्या बताया था, यहाँ किये गये जप का सहस्र गुणा फल मिलता है। अब देर मत करो।"

पण्डा कोटियाल उन्हें ढूँढ़ता हुआ वहाँ आ पहुँचा। उसने कहा, "आज बहुत तड़के ही आप लोग निकल आये। एक बार तो मैं चिन्तित हो गया। फिर सोचा, आप लोग मन्दिर में ही मिलेंगे।"

अब तक उजास हो गया। सामने दिखते नीलकण्ठ पर्वत की हिमाच्छादित चोटी उदीयमान सूर्य की किरणों से किसी स्वर्ण-पर्वत की भाँति प्रतिविम्बित हो रही थी। सब उस अद्भुत दृश्य को आँखों से पीने में तल्लीन थे। किन्तु शंकरदेव की आँखें तो उद्धव रूपी वृद्ध को खोज रही थी। यकायक उनकी दृष्टि अलकनन्दा की ओर गयी। पीत रंग की धोती और अंगरखा पहने एक वृद्ध खड़ा जैसे उनकी ही प्रतीक्षा कर रहा था। उसके केश और वस्त्र वैसे ही थे जैसे कि स्वप्न में देखे थे। बस, केशों का रंग श्याम के बदले श्वेत था। शंकरदेव ने उन्हें प्रणाम किया। उद्धव का आशीर्वाद की मुद्रा में उठा दाहिना हाथ इस बात का भी संकेत था कि अब वहीं रुक जाओ। थोड़े समय दर्शन देने के पश्चात् वे वायु में धुएँ की भाँति विलीन हो गये। उनके अन्तर्ध्यान होते ही शंकरदेव भावविह्वल हो गये। कृष्णभक्त उद्धव कृष्णस्वरूप ही तो थे। शंकरदेव दौड़कर उस स्थान पर पहुँचे, जहाँ वृद्ध रूपी उद्धव अभी-अभी खड़े थे। उन्होंने उस जगह की मिट्टी को हाथ में लेकर माथे से लगाया और स्वयं को धन्य माना। फिर साथियों को बुलाकर उन्हें सारी बात बतायी और उस मिट्टी को अपने मस्तक पर

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लगाने को कहा। यह जानकर सर्वजय ने कहा, "गुरुदेव ! हमारे ऐसे पुण्य कहाँ जो हमें उद्धव के दर्शन हो पाते ! किन्तु यह भी हमारा क्या कम बड़ा भाग्य है जो आपके साथ यहाँ तक यात्रा पर आये।"

अब तक दिन चढ़ आया था। बदरीनाथ और इसके आसपास के रमणीय स्थलों को देखकर शंकरदेव का मन प्रकृति से ज्यादा जुड़ गया था। उनका नित्य-नियम बन गया, तड़के उठकर तप्तकुण्ड पर स्नान कर बदरीविशाल के दर्शन करते। फिर भगवान् को चढ़ाया भात-दाल का भोग लेकर मन्दिर के प्रांगण में बैठकर साथियों के साथ प्रसाद पाते। मन्दिर के आसपास अनेक पर्वत-शिखर थे। वे कभी किसी की तो कभी किसी शिखर की दुर्गम चढ़ाई कर ऊपर जाते। वहाँ उन्हें गुफा-कन्दराओं में अपनी साधना में लीन कई साधु-संन्यासी मिलते। कुछ मौन-साधक थे। कुछ से बात करने का अवसर मिल गया। उन्हें देखकर वे विचार करते, इन जनशून्य स्थलों पर शारीरिक कष्ट भोगकर ये लोग तपस्यारत हैं, परन्तु इससे समाज और देश को क्या मिलेगा ? ये अपनी साधना पूरी कर अपने लोगों के बीच जाकर जन-कल्याण के कार्य करें, तो कितना अच्छा हो !

शंकरदेव कई दिन बदरीनाथ में रुके रहे। एक दिन उन्होंने व्यास-गुफा और सरस्वती नदी के दर्शन करने का मन बनाया। मुख्य मन्दिर से अलकनन्दा पर बने काष्ठ-सेतु को पार कर वे लोग माणा गाँव की ओर अग्रसर हुए। व्यास गुफा, जहाँ बैठकर महर्षि वेदव्यास ने महाभारत तथा अन्यान्य पुराणों के साथ श्रीमद्भागवत भी लिखी थी, जाने का पथ उसी माणा गाँव से होकर जाता है, ऐसा उन्हें बताया गया। वह एक सन्तकवि की दूसरे सन्तकवि से मानसिक-मिलन की यात्रा थी।

माणा गाँव तक रास्ता समतल था। रास्ते के दोनों ओर के मैदानों में और पहाड़ों पर भेड़ों के रेवड़ के रेवड़ चर रहे थे। उनको चराने वाले गड़रियों के सिवाय पूरा पथ जन-शून्य था। माणा पहुँच, वहाँ के निवासी गिरिजनों को देखकर शंकरदेव को अपने क्षेत्र के नगा, खासी, गारो लोग बरबस याद आ गये। उन्हीं की तरह ये भी गौरवर्ण और सुन्दर नाक-नक्श वाले थे। लकड़ी के बने छोटे-छोटे घरों से धुआँ उठ रहा था, कदाचित् भोजन बन रहा था। प्रायः घरों में लगी खड्डियों पर महिला-पुरुष बैठे ऊनी धागों से वस्त्र और गालीचे बुन रहे थे। शंकरदेव को वहाँ का पूरा वातावरण अपने पूर्वांचल के पहाड़ी गाँवों जैसा लगा।

माणा से आगे पहाड़ी चढ़ाई थी। अब काले रंग का एक मोटाताजा कुत्ता उनके साथ चलने लगा, जैसे वह उनका पथ-प्रदर्शक हो। ऐसा शान्त

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भावी श्वान इसके पहले उन्होंने कभी नहीं देखा। उसे देख शंकरदेव को पाण्डवों के स्वर्गारोहण की कथा याद आयी, उनके साथ भी ऐसा ही एक कुत्ता युधिष्ठिर के संग आखिर तक गया था। वे तो धर्मराज थे जो श्वान के रूप में चल रहे थे। ऐसे हमारे भाग कहाँ ! उन्होंने सोचा, अच्छा है, कोई स्थानीय जीव तो हमारा साथ निभा रहा है। गाँव वाले बता रहे थे कि इसी पथ से पाँचों पाण्डव और द्रोपदी स्वर्गारोहण पर गये थे।

पहाड़ी चढ़ाई की थकान व्यास गुफा में पहुँचकर मिट गयी। शंकरदेव को अपार सन्तोष हुआ। उन्होंने अनुभव किया, अपने कार्य को करने के लिए हरि आज्ञा के पश्चात् अब व्यास आज्ञा भी मिल गयी। वहाँ से कठिन पहाड़ी पगडण्डी पर चलते हुए भीम सेतु को पार कर सरस्वती नदी के पर्वतीय तट पर पहुँचे। नदी का प्रवाह इतना तीव्र था कि वहाँ स्नान नहीं किया जा सकता था। पहाड़ों से टकरा कर ऊपर आते सरस्वती-जल के छींटों से अपने को अभिषिक्त किया।

सरस्वती के तट पर बने सरस्वती मन्दिर में सब ने अपने शीश नवाए। शारदे की प्रार्थना कर वे सरस्वती नदी का सौन्दर्य निहारने एक चट्टान पर बैठ गये। उन लोगों का मन भी स्वर्गारोहण के पथ पर जाने को मचल रहा था। किन्तु वहाँ जाने का विचार यह सोचकर त्याग दिया कि अभी पूरे देश की यात्रा करनी शेष है।

शंकरदेव ने कुछ याद कर साथियों से कहा, "कल आधी रात की बात है। मेरी दाहिनी बाँह जोर से फड़कने लगी। इसे मैंने विधि का संकेत माना। पुत्र परमानन्द ! तुम कल की तिथि किसी भोजपत्र पर लिख लो। श्रीकृष्ण ने मुझे इंगित किया है कि कल रात किसी दिव्य आत्मा ने पृथ्वी पर जन्म लिया है। मेरा मन कहता है कि वह आगे चलकर मेरे नामधर्म के प्रचार में सहायक बनेगा और मेरे मरने के बाद वही मेरे कार्य को आगे बढ़ायेगा।"

इस बात को सुनकर सभी अति प्रसन्न हुए। परमानन्द ने मुदित मन से कहा, "गुरुदेव ! मैंने आपकी बतायी कल की तिथि लिख ली है— शक संवत् 1411 (सन् 1489), ज्येष्ठ माह, कृष्ण प्रतिपदा, रविवार, मध्य रात्रि।"

"अब हमें चलना चाहिये। ठण्ड भी बढ़ती जा रही है। हमें यहाँ रहते दो महीनों से ज्यादा हो गये। अब यहाँ बर्फ गिरने लगेगी तो मन्दिर के द्वार बन्द कर दिये जायेंगे। कल सुबह हम अपनी अगली यात्रा पर फिर से निकल पड़ेंगे।" शंकरदेव ने कहा।

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नेपाल होते हुए घर वापसी

बदरीनाथ से पहाड़ी रास्ते चलकर शंकरदेव नेपाल में प्रवेश कर गये। अब लोगों की बोलचाल और वेशभूषा बदल गयी थी। उस ठण्डे पहाड़ी प्रदेश में वे जहाँ भी जाते लोग उनका आदर-सत्कार करते। उनके ओढ़ने-बिछाने के गर्म कपड़ों की समुचित व्यवस्था जगह-जगह कर देते। वहाँ के मेहनतकश लोगों को विषम परिस्थितियों में जीवनयापन करते देखकर शंकरदेव द्रवित हो उठते।

मुक्तिनाथ

चारों यात्री ज्यों-ज्यों मुक्तिनाथ के समीप पहुँच रहे थे, शालग्राम शिलाएँ मिलने लगीं। इसीलिए उस क्षेत्र को शालग्राम-क्षेत्र भी कहा जाता है। मुक्तिनाथ में कभी पुलह और पुलस्त्य ऋषियों के आश्रम रहे थे। देवकी, गण्डकी और चक्रा नदियों के संगम की वहाँ त्रिवेणी बह रही थी। वाराहपुराण की कथानुसार गज-ग्राह का युद्ध यहीं हुआ था, जिसमें भगवान् विष्णु ने अपने सुदर्शन चक्र से ग्राह का सिर काटकर गज का उद्धार किया। यहीं पर राजर्षि भरत ने अपने राजपाट का त्याग कर तपस्या की थी। दूसरे जन्म में जब उन्होंने मृग योनि में जन्म लिया, तब भी अपने मृग-यूथ और माँ को छोड़कर यहीं आ गये थे।

मुक्तिनाथ के अनेक देवालयों देखते हुए यात्रीदल दामोदरकुण्ड के लिए निकलने को तत्पर हुआ। गृहस्थ, जिसके यहाँ वे ठहरे हुए थे, ने कहा, "वहाँ भीषण ठण्ड होगी। सम्भव है कि हिमपात भी मिले। आप ये ऊनी कम्बल अपने साथ ले जाइये, अन्यथा बीमार पड़ जायेंगे।"

शंकरदेव ने कहा, "किन्तु इन कम्बलों को लौटाने के लिए हमें वापस आना पड़ेगा। आपका इतना अनुग्रह ही बहुत है। इन्हें रहने दीजिये।"

गृहस्थ ने अपने एक परिचित का पता बताते हुए कहा, "इसकी चिन्ता आप मत कीजिये। आप काठमाण्डू में मेरे बताये बंधु को ये कम्बलें दे जाइयेगा। मेरा वहाँ जाना होता रहता है। दामोदरकुण्ड में बहुत ठण्ड होगी, बिना गर्म कपड़ों के वहाँ आप लोगों को बहुत असुविधा होगी।"

दामोदरकुण्ड

मुक्तिनाथ से आठ कोस चलकर गण्डकी नदी के उद्गम स्थल दामोदरकुण्ड की ओर शंकरदेव साथियों के साथ चल पड़े। दुर्गम पहाड़ी चढ़ाई थी। आगे

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जाकर हल्का हिमपात भी होने लगा। यह तो अच्छा रहा कि मुक्तिनाथ में गृहस्थ ने ऊनी कम्बल दे दिये थे। कन्धों का बोझ अब काम आ रहा था।

वहाँ पहुँचने पर चारों ओर चक्रांकित शिलाएँ दिखायी दीं। उन शिलाओं को विष्णु-चिह्न मानकर शंकरदेव ने प्रणाम किया। गण्डकी की तीव्र धारा कलकल बह रही थी। नदी का पानी ऐसा ठण्डा था जैसे बर्फ ही पिघल कर वह रही हो। गण्डकी में अनेक रंग, आकार, चक्रांकित रूप की शालग्रामशिला मिलने के कारण इस नदी को नारायणी या शालग्रामी और गोल शिला को गण्डकशिला, विष्णु वटी, विष्णुशिला, शालिग्राम, शिलाहरि, सालिगराम, परमेष्ठी आदि अनेक नामों से विभूषित किया गया है। शालग्राम शिला के रूप-आकार के अनुसार इसे हरि, विष्णु, कृष्ण, राम, नरसिंह का रूप मानकर वैष्णव इसकी पूजा करते हैं।

हिमपात तेज हो गया। यह तो अच्छा रहा कि वहाँ रह रहे एक साधु की कुटीर में आसरे के साथ तापने के लिए आग भी मिल गयी। वहाँ ज्यादा देर तक रुकना सम्भव नहीं था। हिमपात रुका तो वे काठमाण्डू के लिए निकल पड़े।

काठमाण्डू

यात्री अब विष्णुमती और वागमती नदियों के संगम पर बसे काठमाण्डू पहुँचे। विष्णुमती के तट पर बने पशुपतिनाथ मन्दिर को देखकर शंकरदेव ने साथियों को बताया, "आज से लगभग सात सौ वर्ष पहले कामरूप में धार्मिक और प्रजापालक राजा श्रीहरिष वर्मन का राज्य था। उसने गौड़, मिथिला, उड्र (उड़ीसा), कलिंग और कोसल को जीतकर कामरूप की सीमा का विस्तार किया। उसकी कन्या राज्यमती का नेपाल के राजा जयदेव के साथ विवाह हुआ था। उसी राज्यमती के आदेश पर इस विशाल पशुपतिनाथ मन्दिर का निर्माण किया गया था। इस मन्दिर का स्थापत्य देखो, कितना सुन्दर और चित्ताकर्षक है !"

बलदेव ने कहा, "गुरुदेव ! सुनने में आता है कि पशुपतिनाथ मन्दिर में स्थापित पंचमुखी शिवलिंग पारस पत्थर का बना हुआ है !"

"यह कोरी कल्पना मात्र है कि यह शिवलिंग पारस पत्थर का बना हुआ है।" शंकरदेव ने कहा।

मन्दिर से वे वागमती किनारे बने मछन्दरनाथ (मत्स्येन्द्रनाथ) के मन्दिर में पहुँचे तो सर्वजय ने कहा, "गुरुदेव ! बचपन से सुनता आया हूँ कि मत्स्येन्द्रनाथ एक बार कामरूप आये थे। ऐसा भी सुना है कि वे एक रूपवती

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नारी मृणावती के मोह में फँसकर अपना जप-तप सब बिसराकर वहीं रम गये। यह भी सुना है कि यह तो उनके शिष्य गोरखनाथ थे जिन्होंने 'जाग मछिन्दर गोरख आया' की अलख जगाकर अपने गुरु को मृणावती के मोहपाश से मुक्त कराया।''

शंकरदेव ने कहा, ''यह प्राचीन कथा है। इसमें सच क्या है, कुछ नहीं कहा जा सकता ! समय के साथ मूल घटना में कुछ बातें और भी जुड़ जाती हैं और वह किंवदन्ती बन जाती है। इस कहानी की सच्चाई में जाने से ज्यादा महत्त्वपूर्ण यह है कि मत्स्येन्द्रनाथ एक सिद्ध पुरुष थे।''

शंकरदेव ने देखा कि काठमाण्डू में अनेक बौद्ध हैं। उन्हें पता चला कि वहाँ बुद्धनाथ का प्राचीन मन्दिर है। इस मन्दिर में यात्रा करने के लिए निकटवर्ती देश तिब्बत से अनेक बौद्ध आते हैं। आयताकार मन्दिर की दीवारों पर अमिताभ की अगणित मूर्तियों के साथ अन्य प्रतिमाएँ भी थीं। इसके अतिरिक्त भी वहाँ स्थित अन्य देवालयों को उन्होंने देखा।

काठमाण्डू से पांच कोस की दूरी पर स्थित नारायण-चतुष्टय के नाम से प्रसिद्ध चंगु-नारायण, विशंकु-नारायण, शिखरनारायण एचंगु-नारायण के दर्शन करने चल दिये। वह यात्रा काफी कठिन थी। चारों देव-स्थान इन्हीं नामों के चार गाँवों में थे, जिसके लिए उन्हें पहाड़ी रास्तों पर कई कोस चलना पड़ा।

जनकपुर (मिथिला)

नेपाल के पहाड़ों से यात्रीदल ने नीचे जाने का रास्ता पकड़ा। अब उनका गन्तव्य जानकी की जन्म-क्रीड़ा स्थली, सीता-राम की मिलन स्थली जनकपुर था। घोर वन से होते हुए पहाड़ी रास्ता ढलान पर था। धीरे-धीरे बस्तियाँ मिलने लगीं। कुछ दिनों की यात्रा के बाद सब जनकपुर पहुँचे। आसरे की खोज में दोपहर होते-होते उनका परिचय एक पण्डित लक्ष्मीकान्त झा से हुआ। उसने शंकरदेव और साथियों की आवभगत की और अपने घर ले जाकर ठहराया।

लक्ष्मीकान्त झा ने कहा, ''अभी भोजन कर विश्राम कीजिये। तब तक धूप भी ढल जायेगी, फिर यहाँ के मन्दिरों के दर्शन कराने ले चलूँगा।''

दोपहर बाद झा ने सबको साथ ले जाकर जानकी, राम और जनक मन्दिरों के दर्शन कराये। फिर वहाँ से रंगभूमि होते हुए धनुषा ले गया जहाँ श्रीराम ने शिव-धनुष तोड़ा और परशुराम का दर्प भंग किया था।

रात्रि विश्राम के समय लक्ष्मीकान्त ने बताया, ''जनकपुर को मिथिला, तैरभुक्त और विदेहनगर भी कहते हैं। मिथिला की शास्त्रीय सीमा चम्पारण्य से गण्डकी तक बतायी गयी है। तद्विषयक एक श्लोक है–

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गण्डकीतीरमासाद्य चम्पारण्यन्तकं शिवे ।
विदेहभूः समाख्याता तैरभुक्ताभिधा तु सा ।।

"'तैरभुक्त' ही आज का तिरहुत है। यह विदेहपुरी सदा से विवेकियों की स्थली रही है। शतपथ ब्राह्मण, तैत्तिरीय ब्राह्मण, बृहदारण्यक उपनिषद के अलावा अन्य ग्रन्थों तक में यहाँ की बार-बार चर्चा मिलती है। अधिक क्या कहूँ, यहाँ की वेश्याएँ भी ब्रह्मज्ञानिनी हुई हैं। पिंगला कहती है—

विदेहानां पुरे ह्यस्मिन्नहमेकैव मूढधीः ।
यान्यमिच्छन्त्यसत्यस्मादात्मदात् काममच्युतात् ।।

"अर्थात् इस विदेह नगरी में मैं अकेली ऐसी मूढ़ हूँ जो अविनाशी, परमप्रिय परमात्मा को छोड़कर पराये पुरुष की अभिलाषा करती हूँ।"

लक्ष्मीकान्त जैसे युवक से ऐसी सारगर्भित शास्त्र सम्मत बातें सुनकर शंकरदेव बड़े प्रभावित हुए। उन्होंने कहा, "हमें यहाँ हुए मैथिल-कोकिल कविवर विद्यापति के बारे में भी कुछ बताइये।"

"इसी मिथिलांचल के विसफी नामक ग्राम में विद्यापति (सन् 1360-1448) जन्मे थे। उनका देहान्त हुए अभी पचास वर्ष भी नहीं हुए होंगे। मेरे बाबा बताया करते थे कि विद्यापति मिथिला नरेश शिवसिंह के राजकवि थे। उन्होंने संस्कृत, अवहट्ट और मैथिली भाषाओं में लिखी अपनी रचनाओं के माध्यम से लोगों में भक्तिभावना जगायी तथा जनजागरण किया।"

"हाँ, विद्यापति के लिखे पद मैंने भी सुने हैं। उनकी भाषा समझना कठिन नहीं। मैथिली और हमारी कामरूपी में काफी सामंजस्य है।" इतना कहकर शंकरदेव ने आगे कहा, "आपको कदाचित् पता हो या न हो कि कभी मिथिला का कुछ भाग कामरूप के अन्तर्गत था। हमारे यहाँ हुए राजा भास्कर वर्मन से पाल वंश के उदय तक, उस क्षेत्र पर कामरूप का वर्चस्व था।"

लक्ष्मीकान्त ने कहा, "आपका कथन सत्य है। मिथिला में हुए उमापति उपाध्याय कृत 'पारिजात हरण' काव्य में प्राग्ज्योतिषपुर तथा कामरूप का वर्णन मिलता है। अवसर मिला तो एक बार मैं कामरूप अवश्य आऊँगा।"

अपने तीन महीनों के प्रवास में शंकरदेव ने जनकपुर के आसपास स्थित दशरथ मन्दिर, रत्नसागर मन्दिर, कपिलेश्वर, मिथिलेश्वर महादेव, अरगजा सर, अग्नि कुण्ड, विहार कुण्ड, विद्या कूप, सीता कुण्ड आदि के अलावा अनेक महामुनियों के प्राचीन आश्रमों का परिभ्रमण किया।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सिद्धाश्रम (बक्सर)

जनकपुर से अब उनका गन्तव्य सिद्धाश्रम (बक्सर) था। वे रक्सौल होते हुए गंगा-तट पर पहुँचे। नाव से उस पार सिद्धाश्रम पहुँचे। इसी सिद्धाश्रम में कभी महर्षि विश्वामित्र का आश्रम था, जहाँ उनके यज्ञ की रक्षा करने के लिए श्रीराम और लक्ष्मण ने ताड़का राक्षसी और सुबाहु राक्षस का वध किया और मारीच को वहाँ से खदेड़ा।

इसी सिद्धाश्रम को द्वापर में कारूष प्रदेश कहा जाता था, जहाँ के राजा पौण्ड्रक ने अपने और दो नकली हाथ लगा स्वयं को चतुर्भुजी वासुदेव घोषित कर रखा था। वह अपने अत्याचारों के कारण श्रीकृष्ण के द्वारा युद्ध में मारा गया।

सिद्धाश्रम में कुछ दिन रहकर शंकरदेव ने पंचकोशी परिक्रमा में आसपास के संगमेश्वर, सोमेश्वर, चित्ररथेश्वर, रामेश्वर, सिद्धनाथ आदि स्थलों को देखा। राम-चबूतरा और उसके पास लक्ष्मीनारायण मन्दिर में दर्शन किये। वहाँ से वे वैद्यनाथ धाम की ओर अभिमुख हुए।

वैद्यनाथ

कुछ दिनों की यात्रा कर वे द्वादश ज्योतिर्लिंगों में गिने जानेवाले वैद्यनाथ धाम पहुँचे। इसके बारे में बताया गया कि इसे रावण द्वारा कैलास से लाया गया था। रावण के जाने के बाद इस शिवलिंग को बैजू नामक भील ने देखा और प्रथम पूजन किया। उसी बैजू के नाम पर इसे वैद्यनाथ कहा जाने लगा। वहाँ के अनेक देवालयों को देखते हुए शंकरदेव कपिलाश्रम की ओर चल पड़े।

कपिल-आश्रम

रास्ते में महानन्दा नदी आयी। आगे का रास्ता घनघोर वन के बीच से था। जमीन दलदली थी। दलदल में उगे घने वन में हिंसक बाघों का भय था। किन्तु उनसे बचते-बचाते यात्रीदल अपने गन्तव्य की ओर अग्रसर होता रहा। अब सब गंगा नदी के आखिरी छोर पर पहुँच गये जहाँ यह सागर में समा अपना अस्तित्व विलीन कर देती है। इस स्थल को गंगासागर तीर्थ और इसके नाम पर ही यहाँ से प्रारम्भ हुए सागर को गंगासागर कहा जाता है।

नाव से मुख्य भूखण्ड से थोड़ी दूर पर स्थित सागर-द्वीप पर सब पहुँचे। वहाँ कुछ साधुओं के अलावा और कोई नहीं था। एक छोटे-से मन्दिर में कपिल मुनि की मूर्ति थी। वहाँ रह रहे साधुओं में से एक ने उन्हें बताया, "मकर-संक्रान्ति और कार्तिक-पूर्णिमा को श्रद्धालु यहाँ आते हैं, अन्यथा यह जनशून्य ही

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रहता है। यहाँ आना बड़ा दुष्कर है। साहस कर ही आप यहाँ आ पाये हैं। अब आप सागर में स्नान कर मन्दिर जा कपिल मुनि के दर्शन कर आइये। आज रात्रि हमारी कुटिया में विश्राम कर सुबह आगे निकलियेगा। इस कपिल मन्दिर के अतिरिक्त यहाँ अन्य दर्शनीय स्थल नहीं है।

अब सभी बंगभूमि में प्रवेश कर गये। रास्ते में आये काटोआ आदि स्थानों को देखते हुए वे गृहाभिमुखी हुए। भारत-भ्रमण कर शंकरदेव के मन में अपार सन्तोष हुआ। दक्षिण की विकसित संस्कृति को वहाँ जाए बिना नहीं समझा जा सकता था। वहाँ भरत मुनि के नाट्यशास्त्र की बारीकियों को समझने के साथ विभिन्न जगहों के नृत्यों को देखा, संगीत को सुना। वहाँ की नाट्य परम्पराओं को करीब से देखा। वहाँ की धार्मिक परम्परा और आध्यात्म-दर्शन को समझा। लोक-मानस को जाना। उत्तर भारत की भाषाओं के साथ अपनी कामरूपी की समानता को जाना-समझा, तभी तो उन्होंने ब्रजावली में अपना प्रथम बरगीत बदरिकाश्रम में रचा। प्रदेश-प्रदेश की सन्त-सम्पदाओं को जाना-समझा।

बरदोवा की ओर

गंगा से होती हुई नाव ब्रह्मपुत्र में प्रवेश कर गयी। वर्षों बाद अपना परिवेश मिला। शंकरदेव सोच रहे थे, इतने वर्षों बाद उन्हें अचानक आया देखकर घरवाले और गाँववाले कितने प्रसन्न होंगे ! हरि से प्रार्थना है कि दादी जीवित मिल जाये। वृद्ध जयन्त, माधव, गुरु कन्दली के बारे में सोचकर मन आशंकित हो उठता है। पता नहीं, वे जीवित मिलेंगे भी या नहीं ! कभी वे सोचते, मनु को छोड़कर आया तब वह दस वर्ष की भी नहीं हुई थी। अब वह पूर्ण युवती हो गयी होगी ! क्या वह अपने बाबा को पहचान भी पायेगी ! ऐसा ही न जाने क्या-क्या सोचते हुए शंकरदेव वरदोवा के निकट पहुँचते जा रहे थे।

पूरी यात्रा में बारह वर्ष का समय लग गया। शंकरदेव की आयु अब चौवालीस वर्ष की हो गयी। वे अपने साथियों के साथ बरदोवा पहुँचे तो पता चला कि उनका परिवार आजकल पास के गाँव आलिपुखुरी में रहने चला गया है।

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तीसरा खण्ड

संघर्ष

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

राम मन्त्र सार

पौष की रात का पहला प्रहर बीत रहा है। ओस में नहायी प्रकृति को कुहासे की सफेद चादर ने ढाँप रखा है। हड्डियों को कँपा देनेवाली ठण्ड से बचने लोग घरों में दुबके हैं। बैरन ठण्ड खेरसुती की बूढ़ी काया के लिए जानलेवा बन गयी। उसका पोता शंकर जब से यात्रा पर गया है, उसका मन विचलित है। वह रोज पोते की बाट जोहती चिन्ताग्रस्त हो सोचती, गुरु कन्दली को तो अन्य लोगों के साथ बरदोवा लौटे वर्षो हो गये। पता नहीं, शंकर कहाँ भटक रहा होगा, कैसा होगा। उस निष्ठुर को अपनी बूढ़ी दादी का भी ख्याल नहीं आया। उसके बिना मेरा एक-एक दिन एक-एक वर्ष की तरह बीत रहा है। वह कम से कम अपने किसी एक साथी को ही अपनी कुशलता का समाचार देकर मेरे पास भेज देता तो मन को थोड़ी शान्ति मिल जाती। अब उसके बारे में कैसे जानूँ ! वह कैसा होगा ! नहीं-नहीं, ठीक ही होगा ! उसके प्रति मोहवश ही मेरे मन में ऐसे-वैसे विचार उमड़ने लगते हैं। इस साल यह जाड़ा भी मेरी जान का दुश्मन बन गया है। आज जैसी सर्दी मैंने जीवन में कभी नहीं देखी। यह ठिठुरन तो मेरी हड्डियाँ ही चटका देगी।

वह अपने कमरे में मूढ़े पर सिगड़ी के सामने बैठी आग सेंक रही है। चन्दरी ने उसके पाँवों को गरम पानी में डुबो रखा है जिससे उसकी पीड़ा कम हो सके। खेरसुती के दांतों ने उसकी बुढ़ायी देह का साथ कभी का छोड़ दिया। उसने बोटा से पान का पत्ता उठा उस पर चूना लगा ताम्बूल के एक टुकड़े के साथ मिलाकर अपने पास रखे छोटे-से इमामदस्ते में कूटकर उसका मलीदा बना अपने मुँह में दबाया। फिर कुछ याद कर चन्दरी से बोली, "चन्दरी ! तुम्हें एक बात कहना ही भूल गयी। आज सुबह मैंने एक सपना देखा है ! मेरा शंकर यात्रा से लौट कर नामघर में बैठा है। मुझे आया देख उसने उठकर मेरी चरण-वन्दना की।"

"यह तो बहुत अच्छा सपना है काकी ! सुबह देखा हुआ स्वप्न कभी झूठा नहीं होता।" चन्दरी ने इतना कह कर उसके पाँव गमछे से पोंछकर बिस्तर पर सुलाकर कहा, "अब मैं भी सोने जाती हूँ।"

चन्दरी ने पलटकर बाहर जाने को दरवाजा खोला तो उसे दूर से आती दो मानव आकृतियाँ दिखायी दीं। वह सोच में पड़ गयी, इस वक्त कौन हो सकता है। वे आकृतियाँ नजदीक आयीं तो उन में एक को

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पहचानकर वह चिंहुक उठी, "काकी ! जल्दी बाहर आओ। देखो कौन आया है। तुम्हारा शंकर— नहीं ! नहीं !! हमारा शंकर लौट आया है।"

शंकरदेव ने घर में प्रवेश कर चन्दरी को नमस्कार किया। उसके सिर के बाल अब श्वेत हो गये थे, किन्तु बदन में पहले जैसी ही फुर्ती थी। साथ आये नावरिये ने उनकी गठरी-मुठरी बरामदे में रखकर लौटने की आज्ञा मांगी। शंकरदेव ने उसे मेहनताने का एक रजत रुपया दे विदा किया। यह देख चन्दरी बोली, "घाट से सामान लाने का एक रजत रुपया तुमने क्यों दिया !"

"मैंने उसे अधिक पारिश्रमिक नहीं दिया है। वह सर्वजय, बलराम, परमानन्द और मुझे नाव से बरदोवा लाया। वहाँ तुम लोगों का आलिपुखुरी में होने का पता चला, तो इतनी ठण्डी रात में मेरा सामान ढोकर यहाँ तक लाया। इसीसे मुझे यहाँ पहुँचते इतनी देर हो गयी।"

"वे चारों तुम्हारे साथ यहाँ क्यों नहीं आये ?" चन्दरी ने पूछा।

"उन्हें भी अपने-अपने घर जाने की शीघ्रता थी। अब चलो दादी से मिलते हैं।" इतना कहकर शंकरदेव ने दादी के कक्ष में प्रवेश किया।

खेरसुती ने उठकर दीपक की लौ तेज की। शंकरदेव ने दादी की चरण वन्दना कर कहा, "दादी ! देखो, मैं लौट आया।" दादी ने पोते को बाहुपाश में भर गले से लगाया। फिर मोढ़े पर बिठाकर कहा, "तुमने आने में बहुत देर कर दी शंकर ! मेरी साँसें तुम्हें देखने के लिए ही अटकी हैं।" फिर चन्दरी से बोली, "किसी को भेजकर जयन्त, माधव सबको इसके आने का समाचार दे।"

शंकरदेव ने चन्दरी को सम्बोधित करते हुए कहा, "इतनी रात में किसी को कष्ट देना उचित नहीं। सुबह सबसे मिलना हो ही जाएगा।" फिर खेरसुती से पूछा, "दादी ! मनु और हरि सब कुशलपूर्वक हैं न !"

"हाँ ! सब ठीक है। अभी तुम थकेमान्दे हो। चन्दरी तुम्हारे लिए भात बनाने गयी है। खाकर सो जाओ। सुबह बातें करेंगे।" दादी ने कहा।

सुबह पारिवारिक लोगों से घिरे शंकरदेव बैठे थे। मनु अपने पति हरि के साथ आयी। वह संकोचवश पिता के सामने न आकर एक कोने में खड़ी हो गयी। अब वह बच्ची नहीं रह गयी, इक्कीस-बाइस वर्ष की युवती थी। उसने अब तक का आधा से ज्यादा जीवन पिता के बिना जीया था। शंकरदेव ने उसे आवाज दे अपने पास बुलाया। स्नेह से उसके सिर पर हाथ फेरा। उसकी कुशलक्षेम पूछी। उसने गरदन भर हिलायी। मनु के मौन में न जाने पिता के प्रति उलाहना छिपा था या फिर सहज संकोच

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मात्र से वह चुप थी !

प्रणाम-आशीर्वाद के आदान-प्रदान की औपचारिकता पूरी हुई तो शंकरदेव ने मनोरमा और गोविन्दगिरि को न देखकर उनके बारे में पूछा। जयन्त ने कहा, "शंकर ! तुम्हारे भ्रमण के कालखण्ड में पूर्वांचल में बहुत-से परिवर्तन हो गये। कछारियों के हमले बीच-बीच में होते रहे। इससे गोविन्दगिरि का मन यहाँ से उचट गया। उसने इतने वर्षों में इकट्ठी की गयी चल-सम्पत्ति और अपनी गर्भवती पत्नी मनोरमा के साथ यहाँ से पलायन करने का मन बनाया। एक दिन आठ कहारों की बड़ी डोली में बैठ कर निकल गया। बाद में पता चला कि वन में रात हो जाने पर वे अपनी डोली में सोये थे। मौके का फायदा उठाकर कहार उसकी धन-सम्पत्ति लूटकर भाग गये। यह भी सुना है कि उन कहारों ने कोई मादक द्रव्य भात में मिलाकर उन्हें खिला दिया था। उनकी अचेतनावस्था में उनके पहने हुए कपड़े तक उतारकर वे ले गये।"

यह सुनकर शंकरदेव दुःखी हुए। उन्होंने पूछा, "इसके बाद उनका क्या हुआ, इसका कुछ पता चला कि नहीं ?"

माधव ने कहा, "हमने पता लगाया था कि अपनी नग्नता को पेड़ की छाल से ढककर वे ब्रह्मपुत्र के तट पर पहुँचे। वहाँ पास से गुजर रही नाव के मालिक हरसिंह बोरा ने उनकी सहायता कर पहनने के कपड़े दिये और उन्हें अपने साथ उत्तर पार अपने घर नारायणपुर ले गया। सुनने में यह भी आया है कि मनोरमा ने एक पुत्र को जन्म दिया है।"

जयन्त फिर अपनी बात पर लौटा। उसने कहा, "भूयाँ राज्य अब पहले की भाँति शक्तिशाली नहीं रहा। यह खण्ड-खण्ड होकर छोटी-छोटी जागीरों में बदल चुका है। ब्राह्मण, कलिता आदि भी अपनी जमीन्दारी के भूपति बनकर भूयाँ कहलाने लगे हैं। सब अपने-अपने क्षेत्र के सामन्त हैं।"

जयन्त ने आगे कहा, "कछारियों के अत्याचार से तंग होकर हमें बरदोवा से यहाँ आना पड़ा। आलिपुखुरी आकर भूयाँ परिवार प्रसन्न नहीं है। यहाँ से बचे-खुचे भूयाँ राज्य को चलाने में भी अनेक कठिनाइयाँ हैं। फिर भी जगतानन्द कलियाबर से काजलिमुख तक जगह-जगह घूम कर राजकीय व्यवस्था को देख रहा है।"

माधव ने कहा, "आहोम राजवंश में सुहेन्फा (सन् 1488-1493) के बाद अब सुपिम्फा का शासन (सन् 1493-1497) आया है। उसने कछारियों के राज्य पर आक्रमण कर दिया। कछारियों को अपने राज्य का पूर्व में दिखौ नदी से लेकर पश्चिम में डिमापुर तक का विस्तृत अंचल छोड़ना पड़ा। इससे

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उनके मन में आहोमों के प्रति विद्वेष की भावना और बढ़ गयी। कछारियों की हार का एक लाभ भूयाँ राज्य को यह हुआ कि युद्ध में लगे रहने से वे हमारे क्षेत्र में उत्पात करने के बारे में उदासीन हो गये। अब तुम आ गये हो। हमारी चिन्ता शेष हो गयी। तुम्हें यह राजकाज फिर से सँभालना होगा।''

उस समय शंकरदेव ने उनकी किसी बात का उत्तर नहीं दिया। वे भी यह सोचकर वापस चले गये कि शायद शंकर हमारी बात पर विचार करने के लिए थोड़ा समय चाहता है। किन्तु उनके मन में तो कुछ और ही चल रहा था। वे बरदोवा को नहीं भुला पा रहे थे। उसे उन्होंने अपने मन मुताबिक सँवारा था। फिर भी वे निरुत्साहित नहीं हुए। वे इस बात से आश्वस्त थे कि पश्चिमी भारत की तरह इस पूर्वांचल में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है।

शंकरदेव के मझले दादा माधव का पोता रतिकान्त और उसका बेटा हातीया उनसे ईर्ष्या रखते थे। दोनों जगह-जगह दुष्प्रचार कर रहे थे कि घोर शाक्त, प्रतापी राजा कुसुमवर का पुत्र शंकर वैष्णव बनने का ढकोसला कर महा अघोरी बन गया है। भूयाँ राज्य का भार सँभालने से बचने के लिए ही यह तीर्थ यात्रा पर निकल गया था।

दुष्प्रचार और राजकीय समस्याओं से अपने को विरत रखते हुए शंकरदेव शास्त्र-चर्चा और रचना कार्य में अपने को मनस्थ रखना चाहते थे। किन्तु उनके सामने अपने ही लोगों ने इस कार्य में बाधा खड़ी कर दी।

शंकरदेव से उस दिन कोई उत्तर न मिलने पर खेरसुती, जयन्त और माधव तीनों फिर उनके पास आये। जयन्त ने बात शुरू करते हुए कहा, ''बेटा शंकर ! दिन प्रति दिन हमारा भूयाँ राज्य कमजोर पड़ता जा रहा है। मैं भी बूढ़ा हो गया हूँ। तुम्हारे बिना इसे सँभालने वाला कोई नहीं। राज्य को तुम्हारे जैसा कोई सर्वगुणी व्यक्ति चाहिये।''

माधव ने कहा, ''राज्य की जनता की भी यही इच्छा है। तुम्हें राज्यभार अपने कन्धों पर लेना ही होगा। लोग तो राजसी पद पाने के लिए लालायित रहते हैं, जबकि तुम्हारे सामने राजसी वैभव बाँहें पसारे सामने खड़ा है। तुम पता नहीं क्या-क्या सोचते रहते हो।''

शंकरदेव ने कहा, ''दादा ! मुझे राजसी सुख-वैभव की कोई चाह नहीं है। ऐसा होता तो मैं राजपाट छोड़कर बारह वर्षों की दीर्घ भारत-यात्रा पर ही नहीं जाता। मैं अपने लोगों के लिए ऐसा कुछ करना चाहता हूँ जिससे उनका समग्र रूप से विकास हो।''

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ये बातें सुनकर खेरसुती विचलित हो गयी। वह जानती थी कि राजसी वैभव का लालच देकर शंकर को नहीं ललचाया-फुसलाया जा सकता। उसने अपने देवर को डाँटते हुए कहा, ''माधव ! तुम ऐसी तुच्छ बातें शंकर से क्यों कर रहे हो ? इसे राजसी वैभव का कोई लालच नहीं है, यह तुम भी भलीभाँति जानते हो। तुम्हारा पोता रतिकान्त इसके बारे में जो मन में आता है, जगह-जगह कहता फिरता है। क्या मैं यह सब नहीं जानती ! अच्छा होगा कि तुम उस पर नियन्त्रण करो।''

भाभी की फटकार सुनकर माधव मौन हो गया। खेरसुती ने अपने को संयत किया। फिर बात का सूत्र स्वयं थामते हुए शंकरदेव के सिर पर हाथ फेरकर बड़े दुलार से कहा, ''बेटा शंकर ! हम चाहते हैं, तुम फिर से राज्यभार सँभालो और पुनः विवाह कर अपनी गृहस्थी बसाओ। हमारे जीवन का क्या ठिकाना ! अब हम ज्यादा दिन नहीं जीने वाले। तुम्हारा जीवन हमारे सामने व्यवस्थित हो जाए तो सुख से प्राण छोड़ सकेंगे।''

दादी की बातें सुनकर शंकरदेव बड़े असंमजस में पड़ गये। उन्हें नहीं सूझा कि वे क्या उत्तर दें। फिर अपने मन को दृढ़ कर कहा, ''दादी ! मेरा मन इस कार्य में नहीं लगता, मैं राज-कार्य चलाने की मनःस्थिति में नहीं हूँ। और न ही मुझे किसी राजसी वैभव की चाह है। मैं एक साधारण व्यक्ति हूँ। मैं कोई राजा जनक या विदेह नहीं। मैं अपना जीवन अपने ढंग से जीना चाहता हूँ। मैं सत्य की खोज में हूँ। मैं जीवन के गूढ़ार्थ को जानना-समझना चाहता हूँ। आप लोग मुझे क्षमा करें, मैं यह कार्य नहीं कर पाऊँगा।''

इस पर भी उनका दबाव कम नहीं हुआ। आज वे ठान कर आये थे कि शंकर को किसी भी तरह इसके लिए तैयार करना ही है। सब ने एक साथ कहा, ''शंकर ! तुम्हें यह कार्यभार लेना ही होगा।''

''कोई भी कार्य उसके प्रति आस्था रहने पर ही सुचारु चलता है, अन्यथा नहीं। इस काम में मेरी रुचि नहीं। आप लोग मुझ पर अनचाहा कार्य क्यों लादना चाहते हैं ? आप लोग मेरे प्रति यह अन्याय कर रहे हैं।''

तीनों समझ गये कि शंकरदेव को राजी करना आसान नहीं। फिर भी उन्होंने आशा नहीं छोड़ी। जयन्त ने फिर कहा, ''इससे पहले भी तुम यह कार्य कर चुके हो, अव क्यों नहीं होगा। तुम्हें हमारी वात रखनी होगी। साथ ही तुम्हें दोवारा विवाह भी करना होगा। हम किसी अच्छी कन्या की तलाश में लगे हैं।''

''ऐसा पता होता कि आप लोग मुझ पर इस तरह दवाव बनायेंगे तो मैं वापस ही नहीं लौटता, वहीं कहीं रम जाता। मैं यह सोचकर वापस

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आया कि मुझे अपने लोगों के बीच रहकर कार्य करना है। प्रजा का हित मैं भी चाहता हूँ। मैं इनके आर्थिक हित के साथ इन्हें मानसिक रूप से भी सशक्त देखना चाहता हूँ। आज ये लोग अन्धविश्वासों, जादू-टोनों और वामाचारियों के भ्रमजाल में फँसे हुए हैं। क्या आप लोग नहीं चाहते कि इन सब से इन्हें छुटकारा मिले और हरि-भक्ति में अपना मन लगायें ?''

खेरसुती ने कहा, ''हम तुम्हारी सब बातें समझते हैं। तुम राजकाज सँभालकर और भी अच्छी प्रकार प्रजा का हित कर सकोगे। हम में कोई बाधक नहीं बनेगा। अब तुम हमारी बात का अनुमोदन कर दो।''

शंकरदेव ने अपने आपको चक्रव्यूह में घिरा देखकर कहा, ''ठीक है, मेरी भी एक शर्त है। जिस दिन इस कार्य से मेरे मन में विरक्ति होगी, इसे छोड़ सकता हूँ। अपने बदले जिसे भी अपना भार सौंपूँ, उसे आप सभी स्वीकार करेंगे।''

इस पर सभी सहमत हो गये। इस कार्य में शंकरदेव की पहले से ही रुचि नहीं थी। कुछ दिनों बाद उन्होंने अपने जामाता हरि भूयाँ को बुलाकर अपना कार्य उसे सौंप दिया।

राज्यभार से मुक्त होकर शंकरदेव ने अपने मन को स्थिर किया और फिर से रचना-कार्य में लग गये। वे कुछ नया रचना चाहते थे। उन्होंने दुलड़ी, पयार, झुना, झुमरि, झमक आदि छन्दों में गीत, भटिमा (महिमा या स्तुति), नाटक आदि लिखने का मन बनाकर गरुड़ पुराण पर आधारित भक्ति निरूपक रचना 'भक्ति प्रदीप' लिखनी प्रारम्भ की। गरुड़ पुराण में वर्णित है कि युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में मानव-कल्याण के सम्बन्ध में अपने-अपने विचार प्रकट करनेवाले ऋषियों के साथ अंगिरा और नारद का संवाद हुआ। उन दोनों महर्षियों के विचार से राजसूय यज्ञ से मानव का कोई विशेप कल्याण नहीं होता। उनके विचार सुनकर अर्जुन को बड़ा संशय हुआ और उन्होंने पास. बैठे श्रीकृष्ण से प्रश्न किया। 'भक्ति प्रदीप' की कथा शंकरदेव ने गीता की तरह कृष्ण-अर्जुन संवाद के रूप में लिखी। श्रीकृष्ण ने 'सुशील ब्राह्मण-चण्डालिन' तथा 'चण्डालिन-नारद संवाद' की कथाओं के माध्यम से एकशरण धर्म, भागवत धर्म, परमब्रह्म, भक्त-लक्षण, कर्मकाण्ड का निपेध, श्रवणभक्ति, स्मरण-भक्ति, कीर्तन, नाम-माहात्म्य इत्यादि के तत्त्व विस्तारपूर्वक अर्जुन को समझाये। तीन सौ आठ (308) छन्दों के इस ग्रन्थ में एक जगह लिखा कि मनुष्य दूसरे के धर्म से कभी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हिंसा न करे। सभी धर्मों के प्रति वत्सलता रखना ही भागवत धर्म है–

परर धर्मक निहिंसिबा कदाचित ।
करिबा भूतक दाया सकरुण चित्त ।।
हुइबा शान्त चित्त सर्वधर्मत वत्सल ।
एहि भागवत धर्म जाना महाबल ।।

इसमें एकशरण भक्ति को प्रतिपादित करते हुए श्रीकृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हुए कहते हैं–

मोक एरि आन एको न भजे देवक ।
सेहि भक्ति एरुवावे समस्ते कर्मक ।।
सेहि एकशरण भजन अनुपाम ।
नुशुनय आन एको देवतार नाम ।।
अव्यभिचारिणी ताके बुलिय भक्ति ।
नाहिके प्रयास आत अल्पे साधे गति ।।

'भक्ति प्रदीप' में शंकरदेव ने कृष्ण-कथा और भारतवर्ष की महिमा गाते हुए यह भी लिखा कि भक्ति रहित ब्राह्मण-जन्म भी वृथा है–

सुना सभासद पद यैते कृष्ण कथा ।
भारत भूमित जन्म न करिबो वृथा ।।
भारतत द्वीज जन्म धरि आछा किक ।
इटो अधमर जीवनतो धिक धिक ।।

अब शंकरदेव ने ब्रह्मपुराण पर आधारित खण्डकाव्य 'उरेषा-वर्णन' को दो सौ पच्चीस (225) पदों में लिखकर पूरा किया। भगवान् जगन्नाथ और उनके महाप्रसाद के माहात्म्य का प्रतिपादन करना ही उनका मूल उद्देश्य रहा। महाराज इन्द्रद्युम्न की शोभायात्रा में सम्मिलित विभिन्न जाति के व्यक्तियों के वर्णन में उन्होंने अपनी यात्रा के समय आँखों देखे समाज का दृश्य उपस्थित किया। सम्पूर्ण रचना में उन्होंने वैष्णव और एकशरणिया नामधर्म की जनतान्त्रिक भावना को लोगों के सामने बड़ी निपुणता के साथ प्रस्तुत किया। इस काव्य में उन्होंने ब्रह्मपुराण की विविध सामग्री एकत्र कर उसे सर्वथा नवीन और संश्लिष्ट रूप में लोगों के सम्मुख रखते हुए स्वयं यह स्वीकारा–

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नमो नमो जगन्नाथ भकतर निधि ।
हरिक स्मरणे आरम्भर हौक सिद्धि ।
उरेषार कीर्तनक शुनियो लोकाइ ।
शंकरे रचिला ब्रह्म पुराणक चाइ ।
मुनिगणे ब्रह्मात पुछिल प्रणिपाते ।
क्षेत्रर महिमा आबे कहियो आम्हाते ।
किवा हेतु इन्द्रद्युम्न राजा शुद्ध चित्ते ।
करिलन्त अश्वमेध उरेषा पुरीते ।
बन्धाइल अद्‌भुत दोल आश्चर्य महिमा ।
राम कृष्ण सुभद्रार सजाइला प्रतिमा ।
किबा हेतु दौलत थापिला नरेश्वर ।
समस्ते वृत्तान्त कहियोक सृष्टिकर ।

आलिपुखुरी को भी शंकरदेव ने बरदोवा की तरह वैकुण्ठ के समान बना दिया। लकड़ी के मोटे-मोटे गोल खूँटों पर लकड़ी-बाँस से ऊँचा-लम्बा-चौड़ा विशाल नामघर बनाया गया। छत पर पुआल की मोटी परत छायी गयी। भीतर मणिकूट बनाकर गुरु-आसन की स्थापना की गयी। शंकरदेव ने शुरू से ही यह परिपाटी डाली कि गुरु-आसन पर कोई व्यक्ति नहीं बैठेगा और वे स्वयं भी कभी नहीं बैठे। उन्होंने गुरु-सिंहासन पर धार्मिक ग्रन्थ को स्थापित करने की प्रथा चलायी।

नामघर के पास भक्तों के रहने के लिए हाटी घर बनाये गये। नामघर में नित्य हरि नाम-कीर्तन होने लगा। चारों तरफ के लोग वहाँ आने लगे। अब शंकरदेव को दूर-दूर तक के लोग जानने लगे थे। नामघर में दुःखी-दरिद्रों की सहायता की जाती। इसके माध्यम से लोगों में जाति-विरादरी, स्पृश्य-अस्पृश्य, उच्च-नीच का भेद दूर हो रहा था। शंकरदेव और नामघर के प्रति साधारण जनता का आकर्षण बढ़ता गया।

हाटीघरों में ब्राह्मण, कायस्थ, कलीता ही नहीं, नगा, मिरी, गारो, कछारी, सुतिया, जोगी, धोवी, कैवर्त, मच्छीमार आदि सभी एक साथ मिलकर ठहरते और नामघर में हरि-कीर्तन करते। भारत-यात्रा में बने सम्पर्कों के चलते जगन्नाथपुरी और गंगा-यमुना किनारे के सन्त-महात्मा और पण्डित-विद्वान भी समय-समय पर उनके पास आने लगे।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भक्तों का आना दिन प्रति दिन बढ़ रहा था। वे अपने प्रवचनों के बीच-बीच में कहा करते थे, "किसी भी समस्या का निदान युद्ध से नहीं हो सकता। कछारियों का जब तक मन परिवर्तित नहीं होगा, वे सदैव उत्पात करते रहेंगे। हमारा कामरूप साम्राज्य आज कछारी राज्य, जयन्तिया राज्य, आहोम राज्य, भूयाँ राज्य, खेनवंशी कमंता राज्य, सुतिया राज्य जैसे छोटे-छोटे कई राज्यों में विभक्त है। हालांकि हमारी भाषा, रहन-सहन, गीत-वाद्य, जलवायु सभी करीब-करीब एक ही हैं। हम सभी आपस में भाई-बहन हैं। राज्यों के विभाजन से हमारी शक्ति क्षीण हुई है। राजा और राज्य तो क्षणभंगुर हैं। आज जो राजा है, कल उसके स्थान पर कोई और होगा। केवल मानव धर्म हा चिरस्थायी है। यदि हम हरि को अपने हृदय में स्थान दे सकें तो हमारे समस्त भेदाभेद, विद्वेष, स्व-पराये का भेद अपने आप समाप्त हो जायेंगे। इन सब के लिए भागवती एकशरण नामधर्म का हमें प्रचार करना होगा।"

शंकरदेव कहते, "हरि-भक्ति पर सबका अधिकार है। भक्ति-यात्रा पर चलने के लिए कोई पात्रता नहीं चाहिये। ब्राह्मण से चण्डाल तक, कायस्थ से लेकर कुम्हार-चमार तक, सब इस पर चल सकते हैं। धर्म पर सब का अधिकार है। मानवीय गुण विहीन धर्म सत्य नहीं हो सकता। निम्न कुल में जन्म लेनेवाले चमार, कुम्हार, लोहार आदि अपना काम करते हैं, उनको हम छोटा कैसे समझ सकते हैं ! कर्म ही धर्म है। अकर्म करनेवाले ब्राह्मण को क्या उच्च कुल का कहा जाएगा !"

नामघर में आनेवाले भक्तों को शंकरदेव समझाते, "अव्यक्त हरि में अपना चित्त लगाकर अन्य चिन्ताएँ छोड़ो। भक्तिभाव से हरि का गुणानुकीर्तन करो। हरि-राम, हरि-राम सभी मन्त्रों का मूल मन्त्र है। इस कलियुग में तप-यज्ञ से हरि को नहीं पाया जा सकता। अपने तन की शुद्धि के साथ मन की भी शुद्धि करो।"

नामधर्म ने हजारों लोगों को आकर्षित किया। स्पृश्य-अस्पृश्य, उच्च-नीच, भेदाभेद से परे एक नये समाज की शंकरदेव रचना कर रहे थे। समवेत कण्ठों से नामघर में कीर्तन के सुर गूँजायमान होने लगे—

भाई राम कह राम कह राम मन्त्र सार ।
तप जप यज्ञ योगे सिद्धि नाहि आर ।।

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आलिपुखुरी से बरदोवा

कछारी और आहोम राज्यों के बीच छिड़ा युद्ध लम्बा खिंचता जा रहा था। अब सुहुंग्मुंग (सन् 1497-1539) आहोम राजा था। उसने अपनी नयी राजधानी दिहिंग नदी के किनारे बनायी जिससे वह दिहिंगिया राजा के नाम से ज्यादा प्रसिद्ध हो गया। वह कुशल शासक और रण कौशल में निपुण था। आहोमों की सामरिक शक्ति कछारियों से ज्यादा मजबूत थी। कछारी युद्ध में हारते हुए अपने क्षेत्र से पीछे हटते जा रहे थे।

शंकरदेव ने बरदोवा लौटने के लिए इसे उपयुक्त समय समझा। उनका मन तो कभी से बरदोवा में अटका था। वैसे आलिपुखुरी में भी उन्होंने कोई कसर नहीं रखी थी। किन्तु आलिपुखुरी में बरसात के दिनों में बाढ़ की वजह से काफी परेशानियों का सामना करना पड़ता था। बरदोवा में टेम्बुवनी पर बांध बना दिये जाने से यह चिन्ता नहीं थी। वहाँ आकाशीगंगा जैसा स्वच्छ जल का वृहद सरोवर था जो सदैव कमल फूलों से भरा रहता था। फिर वहाँ के प्रति उनके मन में एक आत्मिक लगाव भी था। उनके पुरखे भी वहीं रहे थे। वहाँ उन्होंने ब्राह्मण-शूद्रों के बीच प्रीतिकर सम्वन्ध स्थापित किये थे। बरदोवा का आकर्षण उन्हें बार-बार अपनी ओर खींच रहा था।

इसके साथ शंकरदेव के मन में कई प्रश्न उठ रहे थे, मैं भी अपने पिता कुसुमवर की तरह शासन सँभाल कर क्या भूयाँ राज्य को शक्तिशाली बना सकता हूँ ? ईश्वर ने क्या मुझे राज्य चलाने और उसे सुदृढ़ बनाने के लिए इस धरती पर भेजा है ? मेरा धर्म, मेरी प्रवृत्तियाँ क्या इस बात की अनुमति देते हैं ? फिर सोचते, राजा आते-जाते रहते हैं। काल के प्रवाह में लोग राजा को एक दिन भुला देते हैं। राजा का राज्य रहे या नहीं, यह भूमण्डल तो शाश्वत है। मैं चाहता हूँ कि भारतवर्ष के विशाल भूखण्ड से लोग आकर यहाँ बसें। हमारी सीमा के उस पार युद्ध चल रहा है। दुःख की बात यह है कि युद्ध में अपने ही लोग मर रहे हैं। किसी विदेशी आक्रमणकारी ने हमला किया होता तो अपनी मातृभूमि के लिए प्राण न्यौछावर करना उचित समझा जा सकता था। किन्तु यह युद्ध किसी उद्देश्य को लेकर नहीं केवल राज्य-लिप्सा के वशीभूत होकर लड़ा जा रहा है। जयकार राजा की होती है, परन्तु मरती तो जनता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विजय चाहे आहोमों की हो या कछारियों की, क्षति तो दोनों पक्षों की होगी।

इसके साथ ही शंकरदेव का ध्यान अतीत की ओर चला गया। उन्हें पता चला कि कमता राज्य पर शासन कर रहे खेन वंशीय राजा निलाम्बर ने अपनी सेना को सुगठित कर मुसलमानों के हाथ से उत्तरी बंगाल का उद्धार कर अपने शासित प्रदेश में यातायात की उन्नति के लिए सड़कें बनवायीं। उसकी उत्तरोत्तर बढ़ रही शक्ति को कुचलने के लिए पड़ोसी गौड़ राज्य के सुलतान अलाउद्दीन हुसैन शाह ने उसके राज्य पर आक्रमण किया और युद्ध में निलाम्बर मारा गया। उन्होंने सोचा, इस हिंसा-प्रतिहिंसा का कोई अन्त नहीं !

शंकरदेव ने अपनी वर्तमान परिस्थितियों पर भी विचार किया— भूयाँ राज्य के अधिकारी मुझसे नाराज हैं, क्योंकि मैंने उनकी बात मानकर राज्यभार नहीं उठाया। उनका नाराज होना एक तरह से स्वाभाविक भी है। प्रचलित नियमों के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए साहस की आवश्यकता होती है। मैंने राज्यभार उठाने की मनाई किसी भीरुता के कारण तो नहीं की ! मैंने अपनी आत्मा की पुकार सुनी। राज्य को शक्तिशाली बनाने मात्र से ही क्या मानव की उन्नति हो सकती है ! मनुष्यों के बीच एकता स्थापित करना, उनके मन में एक शक्तिशाली विचारधारा को स्थापित करना, क्या कोई रण जीतने से कम है !

सारी बातों पर विचार कर उन्होंने सोचा, बरदोवा वापस जाने के लिए यही उपयुक्त समय है। यह बात मैंने सबके सामने रखी। सबने मेरी बात का समर्थन किया। अब वहाँ फिर से नाम-प्रसंग प्रारम्भ होगा। वहाँ नामघर है, हरि मन्दिर भी है, जहाँ फगुवा की दोल यात्रा शरू की थी। वहाँ से आलिपुखुरी भी विशेष दूर नहीं, यहाँ के लोग भी बरदोवा आ पायेंगे। मौसम भी अच्छा है। इस समय वर्षा ऋतु बीत चुकी है।

शंकरदेव के कदम बरदोवा की ओर अपनी ही धुन में आगे बढ़े जा रहे थे। रास्ते में कोई परिचित मिला भी होगा, पर वे अपने विचारों में खोये हुए चलते गये। बरदोवा पहुँचकर उन्होंने देखा, चारों ओर प्रकृति की श्यामलता पसरी है। नीले आकाश में विभिन्न प्रकार के पक्षी अपने पंख पसारे उन्मुक्त भाव से हवा में गोते लगा रहे हैं। आसपास के वनों में होता पक्षियों का कलरव चारों ओर निनादित हो रहा है। आकाशीगंगा सरोवर कमल पुष्पों से भरा है। उसके जल में तैरते कमल-पातों की सरोवर ने जैसे हरी चादर ओढ़ रखी है। जलपक्षी उसके पानी में किलोल कर रहे हैं। किनारे खड़े पीपल की शाखाएँ सरोवर के

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जल पर झुकी मानों उसे छाँव दे रही हैं। पेड़ के तने और डालियों पर चढ़ती-उतरती गिलहरियाँ धमा-चौकड़ी मचा रही हैं।

उनका मन प्रकृति से एकाकार हो गया। उनके ओंठों पर राग धनश्री की गुनगुनाहट में शब्द आबद्ध होने लगे—

ध्रु— नारायण काहे भकति करो तेरा ।
मेरि पामरु मन, माधव घने घन, घातुक पाप नाछोरा ।।
पद— जत जीव जंगम कीट पतंगम, अग नग जग तेरि काया ।
सब कहु मारि, पूरत ओहि उदर, नाहि करत भूतदाया ।।
ईश स्वरूपे हरि सब घटे बैठह्र, जैसन गगन बियाापि ।
निन्दा वाद, पैशुन्य, हिंसा हरि, तेरि करोहो हामु पापी ।।
काकु शंकर कय, कर करुणानाथ, यो नो छोरोहो राम बाणी ।
सब अपराधक बाधक तुवा नाम, ताहे शरण लेहु जानि ।।

शंकरदेव के वापस बरदोवा में आ बसने से वहाँ फिर से पहले जैसा उल्लास का वातावरण बन गया। नामघर और हरि मन्दिर में भक्तों का आवागमन निरन्तर होने लगा। एक दिन अपने व्याख्यान में शंकरदेव ने कहा, "धर्म के नाम पर चल रहे कर्मकाण्ड ने व्यावसायिक रूप ले लिया है। लोग धर्म की आड़ में संस्कारित होने के बदले रूढ़ियों में बंधते जा रहे हैं। बलि के नाम पर निरीह पशुओं, कहीं-कहीं तो मानव तक की बलि दी जाती है। यह कौन सा धर्म है, जो लोगों में हिंसाचार फैला रहा है ? मैंने जितने शास्त्र भी पढ़े हैं, उनमें कहीं भी बलि देने के बारे में नहीं पढ़ा।

"निष्काम भक्ति से जो ईश्वर की पूजा-आराधना करता हुआ अपने कर्तव्य का निर्लिप्त भाव से पालन करता है, उसे हताशा और दुःख नहीं सताते। ईश्वर-भक्ति का अर्थ अपने कार्यों के प्रति उदासीन होना भी नहीं। गीता में भी कहा गया है, 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ।' इसका तात्पर्य है कि जिसका जो कर्म-कर्तव्य है, वही उसका धर्म है।"

शंकरदेव की लेखनी ज्यों-ज्यों आगे बढ़ती जा रही थी, वे भी अपनी उम्र की एक-एक सीढ़ियाँ ऊपर चढ़ते जा रहे थे। बरदोवा आकर उन्होंने अजामिल उपाख्यान, अमृत मन्थन, प्रह्लाद चरित, हरमोहन, बलि-छलन, ध्यान वर्णन आदि कई ग्रन्थों की रचना की।

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दादी से बिछोह

शंकरदेव अपने कमरे में बैठे, खोल के चर्म मढ़े मुखों पर हाथों से ताल देकर कोई नया सुर रचने में लगे थे। उनका ध्यान उस समय भंग हुआ जब खेरसुती ने उनका नाम पुकारा। उन्होंने गरदन उठाकर देखा, दादी अपने साथ जयन्त, माधव, बूढ़ा, केताइ, हरिवरगिरि, महेन्द्र कन्दली, रामराम की फौज लेकर आयी थी। चन्दरी भी उनके साथ कमरे में प्रवेश कर गयी। उसने सब को बैठने के लिए मोढ़े दिये, बोटा में पान-ताम्बूल-चूना लाकर रखा।

खेरसुती ने कहना शुरू किया, ''शंकर ! तुम मेरे वंशधर पोते हो। मनु के सिवाय तुम्हारी कोई सन्तान नहीं। क्या यह तुम्हारा धर्म नहीं कि अपने वंश को आगे बढ़ाओ। भविष्य को किसने देखा है ! मैं और कितने दिन जीवित रहूँगी ! मेरे सफेद केश, टूटे दाँत, आँखों में मन्द पड़ा प्रकाश मेरी आगत मृत्यु के संकेत हैं। अब तो मैं बीमार भी रहने लगी हूँ। मेरे जीते जी तुम्हारा घर दोबारा बस जाए तो मैं अपने शरीर को शान्तिपूर्वक छोड़ सकूँगी। तुमने मेरी बात नहीं मानी तो शरीर छोड़ते समय यह मानसिक सन्ताप भी आत्मा के संग जाएगा। बेटा शंकर ! इस बूढ़ी लाचार दादी की क्या इतनी-सी बात भी नहीं मानोगे ? तुम अपना विवाह करा लो, तभी मैं चैन से मर सकूँगी।''

शंकरदेव समझ रहे थे, मुझ पर मानसिक दवाब बनाने के लिए ही दादी इतने लोगों को लेकर आयी है। मैं जब से भारत-भ्रमण कर लौटा हूँ, ये लोग मुझ पर विवाह के लिए बराबर दवाव बनाये हुए हैं। शंकरदेव ने मन ही मन सोचा, मैं यहाँ लौटकर ही क्यों आया ! वहीं कहीं रम जाता। किन्तु उनका विवेक कहता, नहीं ! नहीं !! ऐसा करता तो वह मेरा स्वार्थ होता। अपने लोगों के लिए कुछ न कर, वहीं रहकर अध्यात्म में अपने को खपा देता तो यह भी क्या आवश्यक था कि मेरी आत्मा को मुक्ति मिल ही जाती। अगर मुक्ति मिल भी जाती तो अपने सामाजिक दायित्व से तो वह मेरा पलायन ही होता न !

वे विचार करने लगे, सूर्यवती को गये तेईस वर्प बीत गये। मेरी उम्र भी अड़तालीस की हो गयी। इस वयस में दोबारा विवाह करना क्या सही होगा ? अपने जीवन में यम, नियम, आसन, प्राणायाम आदि कर, शरीर के नीति-नियम का सदैव पालन किया है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अब इनके दबाव और आग्रह को निरन्तर अस्वीकार करते रहना कदाचित् सम्भव नहीं। दादी ने ही मुझे पालपोस कर बड़ा किया है। उसकी आत्मा को कष्ट देना क्या उचित होगा ? सांसारिकता से हठपूर्वक विरक्ति क्या सच्ची विरक्ति होगी ? हमारे वसिष्ठ, अत्रि, अगस्त्य आदि ऋषि भी गृहस्थ थे। हाँ ! मैं जिस समाज का कल्याण करना चाहता हूँ, उसकी इकाई बनना क्या मेरी भूल होगी ?

शंकरदेव के मौन को उनकी स्वीकृति समझते हुए जयन्त ने उत्साहित होते हुए कहा, "शंकर ! कालिका भूयाँ की पुत्री कालिन्दी रूप-गुण में सर्वथा तुम्हारे योग्य है। अगले महीने अच्छा मुहूर्त भी है।"

"तो आप लोग पूरी तैयारी के साथ आये हैं। अच्छी बात है। इसमें भी श्रीकृष्ण की कोई लीला छिपी होगी ! उनकी माया को समझना कठिन है।" शंकरदेव ने धीमे से कहा।

शंकरदेव को कालिन्दी के साथ परिणय-सूत्र में आबद्ध कर दिया गया। उन्हें कालिन्दी में भी सूर्यवती जैसी ही पति निष्ठा देखकर अपार सन्तोष हुआ। उन्होंने मन ही मन विचार किया, हमारे देश की नारी सदैव पति-वल्लभा होती है। भारतीय नारी के लिए पति ही जीवन-सम्बल और जीवन की गति है। मैं भाग्यवान हूँ जो ऐसी सुसंस्कारित और पति-परायणा पत्नी मुझे दोबारा मिली।

दादी खेरसुती की अस्वस्थता बढ़ती जा रही थी। शंकरदेव व्यग्र हो उठे। वे उसकी शय्या के पास पूरी रात बैठे रहे। रात में वैद्य की दवा खाने के बाद दादी को नींद आ गयी। तड़के उसकी आँखें खुलीं। शंकरदेव और कालिन्दी को पास बैठे देख उसे बड़ा सन्तोष मिला। पोते के सिर पर हाथ फेरते हुए उसने कहा, "बेटा शंकर ! तुम रात भर सोये नहीं। तुम कब तक इस जर्जर काया की देखभाल करोगे ! अब मेरी आत्मा इस देह का संग छोड़ना चाहती है। मेरी मृत्यु पर तुम दुःखी मत होना, रोना भी नहीं। तुम तो स्वयं ज्ञानी है। मैं तुम्हें भला क्या समझाऊँगी। किन्तु दादी हूँ न ! पुत्र कितना भी बड़ा हो जाए, ज्ञानी हो जाए, वह माँ-बाप के लिए बच्चा ही रहता है। यह शरीर नश्वर है। आत्मा ने इतने दिनों तक इस शरीर का साथ निभाया, यही क्या कम बड़ी बात है !"

"दादी ! अब चुप हो जाओ। तुम्हारा ज्यादा बोलना ठीक नहीं।"

"अरे बावले ! अभी नहीं बोली तो फिर कब बोलूँगी। अब तो चला-चली की बेला है। तुम्हें छोड़कर जाते हुए अब मैं दुःखी नहीं। तुम्हारा विवाह हुए तीन माह हो गये। कुछ दिन और रहती तो बहू के और थोड़े लाड़-चाव कर

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लेती। तुम्हारे बच्चों का मुँह देख लेती। यह सब तो मोह है। मनुष्य की इच्छाओं का क्या कोई अन्त है ? मोह मृत्यु तक पीछा नहीं छोड़ता। यह मोह-माया बड़ी ठगिनी है, इसकी अदृश्य काया का कोई ओर-छोर नहीं। तुम मेरे वंश के गौरव हो। मैं जानती हूँ, तुम लोगों को तारने के साथ अपना भी उद्धार कर लोगे। मैं तुम्हें आशीर्वाद देती हूँ, तुम्हारा यश चारों दिशाओं में सूर्य के प्रकाश की भाँति फैले। अब तुम मुझे अपना कोई गीत सुनाओ।''

दादी का मन रखने शंकरदेव गाने लगे—

ध्रु— पामरु मन, राम चरणे चित्त देहु ।
अथिर जीवन राम, माधव केरि नाम, मरणक सम्बल लेहु ।।
पद— रयनी दिवसे दूर आवि जावत अन्तक गरजि ।
कथि तनुपात मिलत मति मानि राम भजहु सब बरजि ।।
आश-पास परशि मानस पशु परलि बन्दि बेरि-बेरि ।
भव कारागार तारक नाहि आर बिने भकति रति तेरी ।।
अवनिशि सेवहु, राम परम पहु, रहु हृदय पंकज मेरा ।
कृष्ण किंकर भण, राम परम धन मरणहि संग ना छोरा[1] ।।

दादी को जोर से खाँसी आयी। कालिन्दी ने उसे थोड़ा जल पिलाना चाहा तो उसने कहा, ''बहू ! मेरी प्यास इस पानी से नहीं बुझेगी। मेरा गला सूख रहा है। शंकर के लाये हुए गंगाजल में तुलसी का पत्ता डालकर मुझे पिला। और सुन ! अब मुझे धरती के बिछोने की आवश्यकता है। बहू ! शीघ्रतापूर्वक धरती को गोबर से लिपवाकर मुझे नीचे लेटा दे। कहीं बिस्तर पर ही मेरे प्राण न चले जाएँ।''

कालिन्दी सब समझ रही थी। उसने झटपट ग्वालीघर से गाय का गोबर मंगा आंगन को लीपकर चटाई बिछायी और पोते-बहू ने दादी को उस पर लेटा कर सिरहाने तकिया लगा दिया। इसके साथ ही बहू ने दौड़कर

---

1 राग धनाश्री में रचे गीत का भावार्थ : अरे मेरे पामर मन ! तू राम-चरणों में चित्त दे। यह जीवन अस्थिर है, मरण के समय राम-माधव के नाम का सम्बल ले। रात-दिन आयु घटती जा रही है, अन्तक (यमराज) गरजते हुए आ रहा है। कब इस तनु (शरीर) का पात हो जाये, पता नहीं; रे मन, ऐसी मति धारकर सब भोग छोड़कर राम का नाम भज। मन रूपी पशु, आशा के पाश में बार-बार बंधता है। भक्ति की अनुरक्ति के बिना, इस भव-कारागार से मुक्त कराने वाला कोई और तारक नहीं है। रे मन ! इस संसार रूपी निशि में हृदय-पंकज पर विराजमान राम की निरन्तर सेवा करता रह। कृष्ण-किंकर यह शंकर कहता है, राम ऐसा परम धन है जो मरने पर भी साथ नहीं छोड़ता।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तुलसी का विरवा लाकर दादी के सिर की ओर रख दिया। दादी की चेतना अभी एकदम शान्त नहीं हुई थी। उसने धीमे से पोते को कहा, ''शंकर ! मुझे गीता का पन्द्रहवाँ अध्याय सुनाओ।''

शंकरदेव ने रात भर दादी को भागवत के प्रसंग सुनाये थे। वह सो गयी तब भी उनका पठन निरन्तर चलता रहा। अब उसकी इच्छानुसार वे गीता के पन्द्रहवें अध्याय का सस्वर परायण कर रहे थे—

निर्मानमोहा जितसंगदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः ।
द्वन्द्वैर्विमुक्ता सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढ़ाः पदमव्ययं तत् ।।

सुवह हुई तो भूयाँ परिवार के सदस्यों के अलावा गाँव वालों से बाहर का बरामदा भर गया। चन्दरी कोने में खड़ी सुबक रही थी। उसने इस घर में आँखें खोलीं तव से हरदम खेरसुती के पास ही रही। चारों ओर निस्तब्धता पसरी थी, जैसे सब आगत मृत्यु की बाट जोह रहे थे। शंकरदेव दादी को अपना लिखा गीत गाकर सुना रहे थे—

ध्रु— बोलहु राम नामे से मुकुति निदाना ।
भव वैतरणी, तरणी सुख शरणी, नाहि नाहि नाम समाना ।।
पद— नाम पंचानन नादे पलावत, पाप दन्ती भय भीत ।
बुलिते एक, शुनिते शत नितरे, नाम धरम विपरीत ।।
वचने बुलि राम, धरम अरथ काम मुकुति सुख सुखे पाय ।
सव कहो परम सुहृद हरिर नाम छुटे अन्तकेरि दाय ।।
नारद शुक मुनि राम नाम बिने नाहि कहल गति आर ।
कृष्ण किंकर कय छोड़ मायामय राम परम तत्त्व सार[1] ।।

गायन के साथ बीच-बीच में शंकरदेव की दृष्टि दादी पर अनायास

---

1 राग धनाश्री में रचे गीत का भावार्थ : राम नाम ही मुक्ति की औषधि है। इसलिए, सदैव राम-नाम का जाप करते रहो। इस भव-वैतरणी को सुख पूर्वक पार करने के लिए नाम जैसी और कोई तरणी (नाव) नहीं। राम-नाम का नाद सुनते ही सारे पाप पलायन कर जाते हैं। नाम लेनेवाला तो अकेला तरता है, परन्तु नाम-श्रवण करने वाले सैकड़ों भी तर जाते हैं। वचन द्वारा राम-नाम लेते ही, धर्म, अर्थ, काम, मुक्ति— ये चतुर्वर्ग सुख सरलता से मिल जाते हैं। हरि का नाम जैसा कोई सुहृद नहीं, जिसके लेने मात्र से अन्तक (यम) का दाय (अधिकार) भी छूट जाता है। नारद, शुक आदि मुनियों का भी यही कहना है कि राम-नाम के बिना और कोई गति नहीं है। कृष्ण किंकर शंकर कहता है, इस जगत-माया को छोड़ो, राम ही केवल परम तत्त्व का सार है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चली जाती। दादी के ओंठ अनवरत धीमे-धीमे हिल रहे थे। अस्फुट स्वर में कभी-कभार हरि-हरि का उच्चारण सुनायी पड़ जाता। अचानक ओंठों का कम्पन थम गया। दादी की आँखें जैसे शून्य में स्थिर हो गयीं। नेत्रों के कोरों में बस दो अश्रु-बिन्दु अटके थे। उन्होंने जोर-जोर से पुकारा, दादी ! दादी !! पर दादी कैसे बोलती वह वहाँ होती, तब न ! उन्होंने पार्थिव देह के पलक-द्वारों को बन्द किया और उसके चरणों में सर रखककर फफक-फफक कर रोने लगे।

दादी से सदा के लिए बिछोह शंकरदेव को असहनीय लग रहा था। किन्तु होनी को भला कौन टाल सकता है। श्मशान में लोगों का हुजूम लगा था। दादी का पार्थिव शरीर धू-धू करती लपटों में भस्मीभूत होता जा रहा था। चिता के सामने पीपल की छाँव तले मौन बैठे शंकरदेव अपने ही भावलोक में विचर रहे थे– आज मैं जो कुछ भी हूँ उसका पूरा श्रेय दादी को ही है। उसने मुझे कितनी कठिनाइयों से पालपोस कर बड़ा किया। वही मेरी माँ थी और बाप भी। उन दोनों की छत्रछाया तो बचपन में ही मेरे सिर से उठ गयी। बचपन में मैं पढ़ता नहीं था तो दादी के हिये में कैसी हूक उठ्ती थी ! गुरु महेन्द्र कन्दली के यहाँ से शिक्षा पूरी करके आया, तब उसे कितना अपार सन्तोष हुआ था। मेरे विवाह का चाव उसने सूर्यवती से ब्याह कराके पूरा किया। सूर्यवती नन्ही-सी मनु को छोड़ कर चली गयी तो दादी ने ही उस अबोध को सँभाला। दादी ने ही मनु का हरि भूयाँ से ब्याह करा मुझे निश्चिन्त किया, तभी तो मैं भारत-भ्रमण पर जा पाया। किन्तु मैंने दादी के लिए क्या किया ! उसे बुढ़ापे में अकेला छोड़कर बारह वर्ष की लम्बी यात्रा पर चला गया। यह भी नहीं सोचा कि मेरे बिना उसके मन पर क्या बीतेगी ! हाँ, यह भी सच है कि अपने मन को पक्का कर घर से नहीं निकलता तो वह सब नहीं पा सकता था जो मैंने उस यात्रा में पाया। मेरा वह अनुभव अपने ही लोगों के तो काम आयेगा। अब लोग वैष्णव मार्ग पर चलने लगे हैं। यह सब देखकर दादी को कितना सन्तोष होता था। दादी सशरीर भले हमारे बीच नहीं रही, परन्तु उसकी आत्मा तो यह सब देख रही है। संयोग के बाद वियोग विधि का विधान है। अभी मुझे जीवन में बहुत काम करने हैं। मोह मनुष्य को अन्धकार की ओर ले जाता है। रात में दादी को यही तो सुना रहा था– 'निर्मानमोहा जितसंगदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः । द्वन्द्वैर्विमुक्ता सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढ़ाः पदमव्ययं तत् ।।'

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जीवन में गतिशीलता

शंकरदेव ने धर्मचर्चा और नामघर में कीर्तन करने के साथ-साथ अपने एकान्तिक क्षणों में श्रीमद्भागवत पुराण की कथाओं के आधार पर रचनाएँ लिखनी प्रारम्भ कीं। उनमें न जाने कौन-सी जीवन-ऊर्जा थी कि एकशरण नामधर्म का कार्य करते हुए अपना लेखन भी करते जा रहे थे। श्रीकृष्ण की समग्र लीलाओं को कुसुममाला पदों में प्रणयन करना आरम्भ किया। उन पदों को याद रखना साधारण जनता के लिए अति सरल हो गया।

उन्होंने श्रीमद्भागवत के छठे स्कन्ध की कथा पर 'अजामिलोपाख्यान' लिखा। कुल चार सौ छब्बीस (426) छन्दों में रची गयी इस रचना में आरम्भ में विभिन्न पाप-कर्मानुसार मिलने वाले नरकों का वर्णन किया। साथ ही उन्होंने स्थान-स्थान पर विष्णु के दूतों द्वारा 'नारायण' के नाम-स्मरण और नाम-संकीर्तन की महत्ता अजामिल-कथा के माध्यम से बतायी।

शंकरदेव की लेखनी ने जैसे विराम लेना सीखा ही नहीं था। भागवत के आठवें स्कन्ध पर आधारित कथा पर उन्होंने 'अमृत-मंथन' और 'गजेन्द्रोपाख्यान' रचे। गजेन्द्रोपाख्यान को उन्होंने अड़तीस (38) पदों में कथा-गीति के रूप में रचा। त्रिकूट के प्रकृति-चित्रण में कामरूप के पहाड़ी वनों का वर्णन करना वे नहीं भूले।

शंकरदेव की लेखनी निरन्तर चलती रही। उन्होंने सरल भाषा में भगवान् विष्णु के 'चतुर्विंशति अवतार' वर्णन में लिखा—

जय हरि गोविन्द ।
नारायण राम केशव हरि ।
राम राम केशव हरि ।।
प्रथमे प्रणामो ब्रह्म रूपी सनातन ।
सर्व अवतारर कारण नारायण ।।
तयु नाभि कमलत ब्रह्मा भैला जात ।
युगे युगे अवतार धरा असंख्यात ।।
मत्स्य रूपे अवतार भैला प्रथमत ।
उद्धारिला वेद प्रभु प्रलय जलत ।।
सत्यव्रत राजाक देखाइला निज माया ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

न धरिला समुद्रे तोमार मत्स्य काया ।।
कूर्म्म अवतार भैला क्षीरोदधि तीरे ।
लक्ष प्रहरर पन्थ जुरिला शरीरे ।।
करिलेक परि स्तुति सुरासुर नागे ।
धरिला मन्दर गिरि प्रभु पृष्ठ भागे ।।
दिव्य यज्ञ-वराह स्वरूपे भैला तुमि ।
लीलाये दन्तर अग्रे उद्धारिला भूमि ।।
तोम्हाक करिले युद्ध हिरण्याक्ष बीरि ।
अप्रयासे दैत्यक बधिला दान्ते छिरि ।।
आदि दैत्य हिरण्यकशिपु बलियार ।
नरसिंह रूपे हिया बिदारिला तार ।।
करिला निर्भय पाइला त्रिदशे उल्लास ।
भक्त प्रह्लादक प्रभु करिला आश्वास ।।
बामन स्वरूपे अदितिर वाक्य पालि ।
इन्द्रक थापिला छ्ले बलिक निकालि ।।
त्रैलोक्यक आक्रमिल चरणर गति ।
तयु पादोदके गंगा भैला उतपत्ति ।।

अव उन्होंने भागवत के दूसरे और छठे स्कन्धों के आधार पर कृष्ण की लीलाओं पर एक रचना और लिखी। इसे पढ़कर महेन्द्र कन्दली ने कहा, शंकरदेव ! इस रचना ने प्रमाणित कर दिया है कि गागर में सागर कैसे भरा जाता है ! इसका नाम 'गुणमाला' रखें तो कैसा रहेगा ?"

"गुरुदेव ! अभी यह रचना पूर्ण नहीं हुई। मेरे मन को भी अभी इससे सन्तुष्टि नहीं मिली।" शंकरदेव ने कहा।

"शंकर ! रचनाकार को अपने कृतित्व पर सन्तोष न होना उसका गुण ही माना जायेगा। अभी तो तुम पचास वर्ष के ही हुए हो। पूरा जीवन तुम्हारे सामने है। यह रचना तुम्हें यदि अधूरी लग रही है तो जब तुम्हारा मन करे तब इसमें और जोड़ लेना। उस पूर्ण रचना को देखने के लिए मैं भले जीवित न रहूँ, मेरा आशीर्वाद सदैव तुम्हारे साथ रहेगा। इस समय मुझे तो इसका नामकरण 'गुणमाला' करना ही उचित लगता है।"

गुरु कन्दली की वात सुनकर शंकरदेव ने ईश्वर को मन ही मन प्रणाम कर धन्यवाद दे प्रार्थना की कि ऐसी ही सुमति और विनम्रता मुझे

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सदैव देते रहना। उस रचना का नाम उन्होंने गुणमाला ही रख दिया।

रचनाकर्म के साथ-साथ शंकरदेव का समय भक्तों के साथ भी व्यतीत होता था। किस समय वे अध्ययन करते और लिखते थे, यह भक्तों के लिए अचरज का विषय था। उनकी वक्तृत्व क्षमता और लेखन सामर्थ्य को देखकर कुछ पण्डितों को चिन्ता होने लगी, शंकर अभी पचास-बावन वर्ष का ही हुआ होगा और इसने श्रीमद्भागवत तथा अन्यान्य पुराणों के आधार पर कई शास्त्र न केवल रच दिये, अपितु आगे भी रचता ही जा रहा है। यह यदि इसी तरह अपने कार्य को आगे बढ़ाता गया तो हमें कौन पूछेगा ? इसे किसी तरह नीचा दिखाना आवश्यक है। इसके परिवार में उसका चचेरा भाई रतिकान्त और उसका बेटा हातीया इसे नहीं चाहते हैं, उन्हें भी हमारे पक्ष में रखना होगा।

रतिकान्त पढ़ालिखा था। उसने योगाभ्यास कर कर्मयोग और राजयोग भी सीखे थे। उसे देव-देवियों की पूजा और बलि-विधान में अटल विश्वास था। हठयोग से उसनी अपने शरीर को सुगठित बना रखा था, परन्तु व्यक्ति के हिसाब से वह निम्न स्तर का था, शास्त्रज्ञानी होकर भी मन से अधम था। सुन्दर देह-यष्टि के रतिकान्त ने प्राप्त ज्ञान का जीवन में सदुपयोग न कर समाज में अपना प्रभाव दिखाने के लिए आडम्बर और कपट का ही सदैव सहारा लिया। लोगों की सहानुभूति पाने के लिए वह समय पर झूठा अभिनय करने में भी पारंगत था।

शंकरदेव अपने विरोधियों की बातों पर कभी कान न धर अपने नामधर्म-प्रचार और लेखन-कार्य में एक सिद्ध योगी की तरह निरन्तर लगे रहे। वे भागवत की कथाओं पर, कभी-कभी अन्य पुराण-कथाओं से भी प्रसंग लेकर नयी-नयी रचनाओं का प्रणयन करते रहे।

इसी तरह दो सौ सत्तावन (257) पदों में 'प्रह्लाद-चरित' रचा। इसमें ब्रह्मा-विष्णु-महेश को एक ही देव के विभिन्न रूपों में चित्रित करते हुए नवधा-भक्ति का भी उल्लेख किया। कथा दो भागों में है। प्रथम भाग में वैकुण्ठ के द्वारपाल जय-विजय को मिले शापादि के वारे में लिखा तो दूसरे भाग में प्रह्लाद-चरित और नृसिंह-अवतार की कथा का सांगोपांग वर्णन किया।

भागवत के आठवें स्कन्ध से कथा लेकर 'हरमोहन' और 'बलि-छलन' की रचना की। अट्ठानवे (98) पदों में रचे गये 'हर-मोहन' में विष्णु के

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मोहिनी रूप पर शिव के रीझने की कथा लिखी। मोहिनी के सौन्दर्य पर आकर्षित होकर शिव के उसके पीछे-पीछे दौड़ने का बड़ा ही मनोहारी वर्णन शंकरदेव ने किया। शिव ने विष्णु को जहाँ 'तुमि कार्य-कारण समस्त चराचर' जैसी पदावलियों से सम्बोधित किया, वहीं विष्णु ने शिव को 'तुमि महायोगी' और 'किंचितेको नाहिं भेद तोम्हारे आमारे एक काया' कहकर निरूपित किया। अन्ततः शिव की विष्णुभक्त के रूप में परिणति दिखाते हुए दोनों में समन्वय और सांमजस्य का प्रतिपादन किया।

इसी प्रक्रिया में शंकरदेव ने 'बलि-छलन' लिखा। फिर वैकुण्ठ और वैकुण्ठपति की महत्ता दर्शाने के लिए उन्होंने भागवत आधारित 'ध्यान-वर्णन' को अट्ठाइस (28) पदों में आलंकारिक और मधुरिम भाषा में लिखकर पूरा किया।

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बरदोवा से पलायन

बरदोवा में कछारियों के उत्पात फिर से शुरू हो गये। चारों ओर पसरी अशान्ति के कारण लोगों का नामघर में आना कम होने लगा। कछारियों से भूयाँ अति दुःखी हो गये थे। कछारी आये दिन उनके गाँवों में घुसपैठ कर खड़ी फसल काट ले जाते। गाय-बैलों को हाँक ले जाते। लोगों के घरों में लूटपाट कर आग लगा देते। उन्होंने लोगों का जीना मुश्किल कर दिया।

उन्हें सबक सिखाने के लिए गाँव के कुछ भूयाँओं ने मिलकर एक कपट जाल रचा। कुछ कछारियों को उन्होंने बड़ी मनुहार कर भोज-भात पर आमन्त्रित किया। भात खा रहे कछारियों पर भूयाँओं ने विश्वासघात कर अचानक हमला कर दिया। उन्हें सम्हलने का मौका तक नहीं मिला और सब के सब मौत के घाट उतार दिये गये।

शंकरदेव को इस बात का पता चला तो वे अत्यन्त दुःखी हो गये। उन्हें अपने सजातीय लोगों के इस दुष्कर्म का बड़ा क्षोभ हुआ। वे यह भी समझ गये कि अब घात-प्रतिघात का घटनाक्रम शुरू हो गया है। कभी भी कछारियों की ओर से प्राणघातक हमले हो सकते हैं। आगत विपदा का अनुमान लगाकर उन्होंने अपने लोगों को कहा, "आप लोगों ने कछारियों से विश्वासघात कर उनकी हत्या करने का जो जघन्य अपराध किया गया है, उसका दण्ड पूरे भूयाँ समाज के साथ अन्य लोगों को भी भुगतना पड़ेगा। वे कभी भी हम पर प्राणघातक हमला कर सकते हैं। इसलिए सभी बरदोवावासी शीघ्रातिशीघ्र नावों से ब्रह्मपुत्र के उस पार चले जायें। इस कार्य में विलम्ब करने का अर्थ अपनी मृत्यु को आमन्त्रित करना है।"

इतनी शीघ्र बरदोवा छोड़ना सम्भव नहीं था। कुछ लोग कछारियों का डटकर सामना करने को तैयार हो गये। शंकरदेव समझ गये— 'विनाश काले विपरीत बुद्धि।' उन्होंने सोचा जितने लोगों की जान बचायी जा सके, यही अच्छा है। फिर अपनी पत्नी कालिन्दी, मनु, हरि, जयन्त, माधव, चन्दरी, जगतानन्द, रामराम आदि अन्यान्य पारिवारिक सदस्यों, नामघर के भक्तों और बरदोवा वासियों को अपना-अपना सामान समेटकर उन्होंने नावों में बैठने को कहा। कालिन्दी अपने पति के बिना किसी भी तरह जाने को राजी नहीं थी। आखिर पति-आज्ञा का उसे पालन करना पड़ा।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बसे-बसाये घर का सामान उठाकर इतनी जल्दी चले जाना कोई आसान काम नहीं था। लोगों ने अपने घरेलू सामान, खेती के औजार, गाय-बैल आदि जिससे जो बना अपने साथ लिया और ब्रह्मपुत्र के उत्तर पार जाने के लिए छोटी-बड़ी नावों पर चढ़ गये। यह तो अच्छा हुआ कि उनके पलायन का समाचार कछारियों तक नहीं पहुँचा, अन्यथा वे दूर से ही अपने विष बुझे बाणों से नौका पर सवार लोगों को बींध डालते।

बरदोवा में कुछ लोग ही बचे रह गये। शंकरदेव अपने सब ग्रन्थों का गट्ठर बांधने लगे परन्तु उन्हें 'उरेषा-वर्णन' ग्रन्थ नहीं मिल रहा था, जिसे लिये बिना वे बरदोवा कैसे छोड़ते ! बहुत खोजने पर वह मिल तो गया, किन्तु कछारियों का दल तब तक वहाँ पहुँच चुका था। अब उनसे अपनी प्राणरक्षा करना अति दुष्कर हो गया। उन्होंने सोचा कि इन्हें समझाने या मिन्नत करने से कोई लाभ नहीं होने वाला। अभी इनके मन में प्रतिहिंसा की आग धधक रही है। इतने लोगों का अकेले सामना भी नहीं किया जा सकता। इस समय इनसे अपने प्राणों की रक्षा करना मेरा धर्म है। उन्होंने उनसे बचने के लिए एक उपाय किया। नाटक के काम में ली हुई साधु की जटा और दाढ़ी-मूँछ अपने चेहरे पर लगायी। मुँह को रंगों से रँगा और साधु की पोशाक पहनकर ब्रह्मपुत्र-तट की ओर चल दिये।

कछारियों की दृष्टि उन पर पड़ी तो उन्हें रोककर पूछताछ की। एक कछारी को उन पर शक हो गया। किन्तु तब तक वे घाट पर लगी नाव पर दौड़कर सवार हो गये। कछारी उनके पीछे भागे। किन्तु नाव उनकी पकड़ से दूर जा चुकी थी। बरदोवा छोड़ने का उनके मन में बहुत मलाल था। अपनी जन्मभूमि को सदा के लिए छोड़ना कितना दुःखदायी होता है। वे सोच रहे थे, यहीं मेरा बचपन बीता। यहाँ के वनों में विचरण कर ही मैंने प्रकृति को समझा। यहीं मेरा सूर्यवती से विवाह हुआ। मनु का जन्म भी यहीं हुआ। अब आकाशीगंगा सरोवर कछारियों के हाथों में चला जाएगा। मेरा प्रिय हरितकी पेड़ जिसके नीचे बैठकर मैंने अपना लेखन शुरू किया, वह भी इनका हो जाएगा। उसी पेड़ के पास बनाया गया नामघर भी इनके अधिकार में चला जाएगा। अपने हाथों बड़ी उमंग से बनाये गये पहले हरि मन्दिर में वापस आने का दोबारा अवसर अब जाने मिले या नहीं ! यहीं से अपने एकशरणिया नामधर्म का प्रचार प्रारम्भ किया, यहीं से भारत-भ्रमण पर निकला। मेरे पीछे से बरदोवा छोड़ आलिपुखरी जा बसे लोगों को कितने प्रयास कर वापस यहाँ लौटाया था ! मुझे क्या पता था कि बरदोवा को फिर से छोड़ना पड़ेगा। अब

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यही मानना होगा कि भूयाँ राजसत्ता सदा के लिए शेष हो गयी।

नाव ब्रह्मपुत्र की मझधार में पहुँची तो शंकरदेव ने अपने साधु वेष को उतारा। नाव से झुक कर नदी के पानी से अपना मुँह धोया। नाव खे रहे माँझी ने उन्हें पहचान लिया। चप्पुओं को खेता हुआ वह बोला, "गुरुदेव ! आपने मुझे नहीं पहचाना। मैं बाहिराम लांगथासा हूँ। आपके नामघर में बहुत बार गया हूँ। आपने जिस दिन सती राधिका शान्ति से टेम्बुवनी में पानी डलवाया, उसे मैंने अपनी आँखों देखा है। आप किसी प्रकार की चिन्ता न करें। आज मैं बहुत दिनों बाद बरदोवा आया। सोचा, यहाँ अच्छे भाव में अपनी मछलियाँ बेच लूँगा। यहाँ आया तो लोगों में अफरा-तफरी देखी। मैं बात को ठीक तरह से समझ नहीं पाया। इतना जरूर समझ गया कि यहाँ कुछ अनहोनी घटी है। तभी तो लोग भागे जा रहे हैं। मेरी नाव आकर घाट से लगी ही थी कि साधु वेष में आकर आप नाव में चढ़े। आपका पीछा करते कछारियों को देखकर मैं स्थिति भाँप गया और नाव को जलधारा में तुरन्त छोड़ दिया। प्रभु ! अब चिन्ता की कोई बात नहीं।"

शंकरदेव उस पार शिंगरी में आकर अपने लोगों से मिले। सबने वन में आसरा ले रखा था। खुले में उनका खाना पक रहा था। सब के मन में असुरक्षा के भाव थे। सब अपने को असहाय समझ रहे थे। अब समस्या थी कि कहाँ जाकर बसा जाए, वन में तो नहीं रहा जा सकता।

कुछ दिनों भटक कर भलुकागुड़ी में सब अस्थायी तौर पर डेढ़ महीने तक रहे। वहाँ शंकरदेव के अनेक भक्त थे। उनके अनुरोध पर ही वे वहाँ रुके थे। स्थानीय लोगों ने वहाँ नामघर बनाकर धर्म-चर्चा की व्यवस्था कर दी थी। किन्तु वह जगह किसी को पसन्द नहीं थी। उन्होंने कोमोराकाटा नामक जगह पर जाकर बसने का प्रस्ताव रखा। उनके आग्रह को देख कुछ दिनों तक वहाँ जाकर रहे। वहाँ भी नामघर बनाया गया। नाम-कीर्तन के निनाद से वातावरण गुंजायमान हो गया। आसपास के गाँवों के लोगों ने आकर शंकरदेव की शरण ली। कोमोराकाटा नीची जमीन पर बसा होने के कारण थोड़ी-सी बारिश होने पर ही पानी से भर जाता था। पास के पहाड़ों पर बसे डफला आकर जब-तब लूटपाट कर जाते, सो अलग। शंकरदेव ने वह स्थान भी छोड़कर कहीं और जाकर बसने का मन बनाया।

इन कठिनाइयों के चलते वहाँ बने नामघर और हाटी को वहाँ के लोगों के सुपुर्द कर वे सबके साथ रौता में जाकर बस गये। रौता में भी नामघर और भक्तों के ठहरने के लिए हाटियाँ बनवायीं। वहाँ की जमीन

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

खेती के लिए उपजाऊ थी। किन्तु वहाँ भी अनेक विषमताएँ थीं। वहाँ की जलवायु शुरू-शुरू में किसी को माफिक नहीं हुई। दूसरे वहाँ से उत्तर में रहनेवाले भोटियाओं के हमले का डर सदैव बना रहता था। रौता में पहले महीने ही स्त्री-बच्चे और बड़े मिलकर पन्द्रह लोग विभिन्न बीमारियों से मर गये। कोई उपचार काम नहीं आया। सबके मन अत्यन्त क्षुब्ध थे। किन्तु होनी के सामने भला किसका वश चलता !

स्थान-स्थान के भटकाव के बीच भी शंकरदेव का चचेरा भाई रतिकान्त दलै और उसका बेटा हातीया उनके दुष्प्रचार में पहले की भाँति लगे थे। वे लोगों को कहते फिरते, "शंकर पलायनवादी है। हरिभक्ति का ढकोसला करता है। अपना भूयाँ राज्य उससे सँभाला नहीं गया। राज्य के पतन के लिए वही जिम्मेदार है।"

इन बातों से शंकरदेव बड़े व्यथित हुए। दादी खेरसुती भी अब नहीं रही जो ऐसी बातों को सँभाल कर उन्हें मानसिक सांत्वना दिया करती थी। यह उनके जीवन की अग्नि-परिक्षा थी। उनके मन में द्वन्द्व चल रहा था, आज भूयाँओं की शक्ति क्षीण हो चुकी है, फिर भी इनके मन से भौमिक बने रहने की आकांक्षा शेष नहीं हुई। ये लोग चाहते हैं कि मैं अपने कन्धों पर सारा राज्यभार ले लूँ। एक क्षण के लिए उनके मन में भाव आये, क्या मैं शिरोमणि भूयाँ वंश की अयोग्य सन्तान हूँ ? फिर मन में दूसरा भाव जागा, नहीं, ऐसा नहीं है। मैंने लोगों में जन-जागृति लाने का जो स्वप्न देखा है, वह किसी राज्य को चलाने से कम कठिन नहीं है। राज्य तो कुछ काल के लिए रहता है, परन्तु मैं जो कार्य कर रहा हूँ वह चिरस्थायी है। मैं भी चाहता तो अपना राज्य चलाकर सुखभोग करता। किन्तु अपने स्वप्न को पूरा करने के लिए मैंने असीम कष्ट उठाये हैं। भारत में हुए अनेक महापुरुषों के जीवन में भी विषाद के ऐसे क्षण बहुत बार आये हैं। किन्तु उन्होंने अपने रास्ते की अड़चनों को दूर करते हुए लोक-कल्याण को ही सर्वोपरि माना। मुझे भी ऐसी विपत्तियों से विचलित न होकर अपने मार्ग पर सतत अग्रसर होते रहना है।

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गांमौ वास

आहोम राजा सुहुंग्मुंग को, जो दिहिंगिया राजा के नाम से ज्यादा प्रसिद्ध था, राज्य चलाते दो दशक हो गये। आहोम जाति पहले बर्मा में इरावती नदी किनारे रहती थी। वहाँ से सुहुंग्मुंग के सत्ता सँभालने के करीब पौने तीन सौ साल पहले उसका पूर्वज सुकाफा (सन् 1228-1268) पाटकाई दर्रा पार कर यहाँ आया और उसने आहोम राज्य की नींव डाली। सुहुंग्मुंग सुकाफा की चौदहवीं पीढ़ी में था।

आहोमों की अपनी टाइ भाषा-संस्कृति थी। उन्होंने स्थानीय लोगों पर अपनी सभ्यता नहीं थोपी, अपितु वे ही यहाँ की भाषा-संस्कृति में धीरे-धीरे दूध में शक्कर की तरह घुलमिल गये। सुहुंग्मुंग ने अपने शासनकाल में आहोम राज्य को शक्तिशाली बनाया। सुतिया राजा धीरनारायण ने जब आहोम राज्य पर आक्रमण किया तो सुहुंग्मुंग के हाथों वह बुरी तरह परास्त हुआ था।

उधर कमता राज्य पर गौड़ के सुलतान अलाउद्दीन हुसैन शाह ने अधिकार कर रखा था। हुसैन शाह को हरा कर कोच राजवंशी विश्वसिंह ने कमता राज्य को अपने अधिकार में कर नये कोच राज्य की नींव डालकर चिकनग्राम में अपनी राजधानी बनायी। विश्वसिंह दरअसल बहुत साधारण परिवार का था। उसके नाना हाजो ने कमता राज्य के एक भाग पर अधिकार कर लिया था। वह 'हाजो' (एक गाँव का भी नाम) में बैठकर राज्य चलाता था। हाजो के दो बेटियाँ हीरा और जीरा थीं। उसने अपनी दोनों वेटियों का विवाह कोच वंशी हरिया मण्डल से कर दिया। हीरा के गर्भ से विशु उर्फ विश्वसिंह का जन्म हुआ जो कालान्तर में पुत्रविहीन अपने नाना हाजो के राज्य का उत्तराधिकारी बना और विमाता जीरा के गर्भ से उत्पन्न अपने अनुज शिवु उर्फ शिवसिंह को उसने युवराज बनाया।

विश्वसिंह को अपने कोच राज्य की सीमा पर बसे भूयाँवंशियों से भय था कि वे लोग अपने राज्य को फिर से सुदृढ़ न कर ले। इसलिए उसने अनके भूयाँओ की हत्या की और शेष को अपने अधीन किया। अव उसके सीमा क्षेत्र में पहले का भूयाँ राज्य भी समाहित हो गया।

कोच राज्य की बढ़ती सीमा से शंकरदेव चिन्तित हो गये, पता नहीं

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कोच राजा विश्वसिंह किस दिन रौता पर भी हमला कर बैठे ! उन्होंने पहले से ही अपना मन किसी निरापद स्थान में जाकर बसने का बना रखा था। राजनीतिक परिस्थितियों का आकलन कर, रौता में बने नामघर और हाटी को वहाँ के लोगों के सुपुर्द कर वे सबके साथ आहोम राज्य के अन्तर्गत स्थित गांमौ में जाकर बस गये। उन्हें विश्वास था कि आहोम राज्य में अब शान्ति से रह सकेंगे; यहाँ कोच सेना के आक्रमण का भय नहीं था।

शंकरदेव के भक्त और ग्रामवासी उत्साह के साथ गांमौ को नया रूप देने में लग गये। सब लोगों ने मिलकर नये सिरे से एक बड़ा नामघर बनाया। भीतर मणिकूट और भव्य गुरु-सिंहासन की स्थापना की। दीवारों पर पुराण-कथाओं के चित्रों का अंकन किया गया। नामघर के पास ही भक्तों के रहने के लिए दो हाटी घर बनाये गये। एकशरणिया नामधर्म का प्रचार-प्रसार फिर प्रारम्भ हुआ। इसके साथ ही शंकरदेव के भटकाव भरे जीवन में एक स्थिरता भी आयी।

रामराम ने एक दिन जगतानन्द से कहा, "अब लग रहा है कि हम यहाँ कई वर्षों तक शान्ति से रह सकेंगे। यहाँ नये-नये लोग एकशरणिया नामधर्म में दीक्षित होकर भक्त बनेंगे। बरदोवा को छोड़ने के बाद जगह-जगह के भटकाव को मैं याद करता हूँ तो मन दुःखी हो जाता है। शिंगरी के वन में बितायी वह रात कितनी त्रासदी भरी थी ! घिलामारी, भलुकागुड़ी, कोमोराकाटा में भटकने के बाद हम रौता में भी छह माह से ज्यादा कहाँ रह पाये ! उन कष्टों में भगवान् ने ही हमारी रक्षा की और हमें आत्मबल दिया। किन्तु एक बात है कि इतने स्थान परिवर्तन का हमें लाभ भी मिला। इससे नामधर्म की पताका जगह-जगह फहरायी और वहाँ नामघर भी बनते गये।"

"अब आगे क्या योजना है ?" जगतानन्द ने पूछा।

सारी बातें शंकरदेव सुन रहे थे। उन्होंने कहा, "हमें लोगों के मन में यह विश्वास जागृत करना पड़ेगा कि नामघर केवल ईश्वर का कीर्तन और धर्म-चर्चा करने का ही स्थान नहीं। यहाँ हम मिलजुल बैठ कर आपसी और गाँव की समस्याओं को सुलझा सकते हैं। अपनी कलाओं का प्रदर्शन कर सकते हैं। समय-समय पर हास-परिहास भी कर सकते हैं। इसके साथ यहाँ भी लोगों के मन से छुआ-छूत, ऊँच-नीच का भेद मिटाना होगा। मनुष्य के प्रति मनुष्य के मन में विश्वास पैदा करना होगा।"

रामराम ने कहा, "हमें ऐसी व्यवस्था करनी होगी कि नाम-प्रसंग में

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सभी ग्रामवासी नामघर में भाग लेने आयें। इससे वे एकशरणिया नामधर्म में धीरे-धीरे दीक्षित होंगे। इसके साथ उनके मन-भेद भी दूर होते जायेंगे।''

गांमौ के वातावरण से शंकरदेव के मन में शान्ति आयी। उनकी लिखी गुणमाला और गीत भक्तों के साथ ही जन-जन की जबान पर भी चढ़ गये। लोगों में आये उत्साह को देखकर नामघर की दीवारों पर भगवद् कथाओं के मनोमुग्धकारी चित्रांकन किये गये। गुरु-सिंहासन को और भव्य रूप से सजाया गया। नाम-कीर्तन से गांमौ धन्य हो गया।

शंकरदेव नामघर में बैठे धर्मचर्चा कर रहे थे कि चन्दरी ने आकर शुभ समाचार सुनाया, ''शंकर ! तुम्हें अभी-अभी पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई है। विधाता तुम पर प्रसन्न हैं। इस बार मैं बधाई में सोने के कड़े लूँगी।''

शंकरदेव को मौन देखकर चन्दरी का उत्साह ठण्डा पड़ गया। उनके चेहरे पर कोई भाव नहीं उभरा। यह देखकर एक भक्त से कहे बिना नहीं रहा गया, ''गुरुदेव ! यह तो हम सबके लिए आनन्द की बात है। पुत्र होने पर भी आप निर्विकार बैठे हैं ! इसका कारण हम नहीं समझ पा रहे !''

शंकरदेव ने कहा, ''यह संसार अनित्य है। हमें जल में रहनेवाले पद्मपत्र की भाँति निर्लिप्त होना चाहिये। इसका तात्पर्य यह भी नहीं कि सांसारिक जीवन का कोई महत्त्व नहीं। आप सब भी गृहस्थ हैं और अपने परिवारों के पालन-पोषण के लिए खेती तथा अन्यान्य परिश्रम साध्य काम करते हैं। मोह-माया के वशीभूत होकर हम सांसारिकता निभाते हैं। यह कोई गलत बात नहीं। यह आवश्यक भी है। जीवन क्षण-भंगुर है, किन्तु गृहस्थ बने बिना सांसारिक बातों को समझा भी नहीं जा सकता। केवल महापुरुष ही गृहस्थ बने बिना भी सांसारिकता को समझ सकने में सक्षम हैं। किन्तु हम जैसे साधारण लोगों के लिए यह असम्भव है। मेरे निर्विकार रहने का अन्य कारण है। मैं पुत्र और परिवार के मोह में फँस कर यदि अपने विचारे हुए कार्यों को एकाग्रचित्त होकर नहीं कर सका तो अपने लक्ष्य से भटक जाऊँगा। ऐसे में मेरे जीवन का अर्थ ही क्या रह जाएगा ! यही सोचकर मैं मौन हो गया।''

शंकरदेव के मन में उथल-पुथल मची थी। वे सोचने लगे, क्या मेरे भीतर दो शंकर समाये हैं ! एक शंकर कालिन्दी में अनुरक्त गृहस्थ है। दूसरा शंकर जगत की मुक्ति के लिए राज्य का लोभ छोड़कर राजशक्ति को असार्थक मानकर अपनी गृहस्थी को निर्विकार भाव से चलाते हुए जन-कल्याण में लगा गुरु-शंकर है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सांसारिक जीवन में रहकर भी शंकरदेव ने अपने मन को उससे सदैव विरक्त रखा। कुछ क्षणों के लिए पुत्र मोह ने मन को घेरा तो उसके पाश से अपने को मुक्त किया। भावातिरेक में उनकी आँखों से अश्रुधारा बहने लगी। मन के एक कोने में तड़प थी और दूसरे कोने में गीत और सुर एक साथ उपज रहे थे। उन्होंने मन ही मन अपने को मोह से उभारने के लिए ईश्वर को धन्यवाद दिया। भाव शब्दों के रूप ले एक अनुपम गीत के रूप में प्रकट हुए। वे कुछ गुनगुनाने लगे। फिर 'केदार' राग में गाने लगे—

ध्रु— पावे परि हरि करोहो कातरि, प्राण राखबि मोर ।
विषय विषधर, विषे जरजर, जीवन ना रहे थोर ।।
पद— अथिर धन जन जीवन यौवन अथिर एहु संसार ।
पुत्र-परिवार सबहि असार करबो काहेरि सार ।।
कमल दल जल चित्त चंचल थिर नोहे तिल एक ।
नाहिं भव भय, भोगे हरि हरि परम पद परतेक ।।
कहतु शंकर ए दुख सागर पार करा हृषिकेश ।
तुहु मति गति देहु सिरिपति, तत्व पन्थ उपदेश ।।

गीत की व्याख्या करते हुए शंकरदेव ने भक्तों को बताया, हे हरि, मैं तुम्हारे चरणों में पड़कर कातरता से विनती करता हूँ कि तुम मेरे प्राणों की रक्षा करो। विषय रूपी विषधर के विष से जरजर (जर्जर) हो चुका मेरा जीवन अब बचने वाला नहीं।

हे प्रभु, धन, जन, जीवन, यौवन जिस प्रकार अथिर (अस्थिर) हैं उसी प्रकार यह संसार भी तो अथिर ही है। पुत्र-परिवार सब कुछ असार है। भला, मैं किसको सार मानूँ ? मेरा यह चंचल चित्त कमल की पँखुड़ी पर गिरे जल की भाँति है जो क्षण भर भी थिर (स्थिर) नहीं रहता। भव-भोगों (सांसारिक भोगों) में पड़े रहने के कारण परमपद की प्रतीति कैसे होगी। शंकर कहता है, हे ऋषिकेश, इस दुख-सागर से मुझे पार करो। हे श्रीपति, तुम्हीं मुझे गति (सुगति), मति (सुमति) और आत्म तत्त्व-पन्थ के ज्ञान का उपदेश करो।

इस गीत को रच-गाकर भी शंकरदेव के मन का द्वन्द्व कम नहीं हुआ। मन की चंचलता कुछ और रचने के लिए उत्प्रेरित कर रही थी। थोड़ी देर वे मौन हो गये। फिर कुछ क्षणों पश्चात् उनके मुख से राग 'श्री' में एक अन्य गीत का प्रस्फुटन हुआ—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ध्रु— गोपाले कि गति कैले, गोविन्दे कि मति दिले ।
नाथ विफले वयस सब गेलि रे ।।
पद— ए भव गहन वन आति मोह पाशे छन्न
ताते हामो हरिणा बेड़ाइ ।
फान्दिलो मायार पाशे काल-व्याधे धाया आसे
काम क्रोध कुत्ता खेदि खाइ ।।
हेराइल चेतन हरि नाजानो किमते तरि
गुणिते दगध भैल जीव ।
लोभ मोह दुयो बाघ सतते न छारे लाग
राखु राखु ए सदाशिव ।।
पलाइते नेदेखो सन्धि दिने दिने दृढ़ बन्दी
भैलो मन्द मनेर युगुति ।
तुवा हरि लागो गोर मोर माया पाश छोड़
शंकरे करय काकूति ।।

दूसरे गीत में उन्होंने अपने मन में छिपी कुण्ठाओं को स्वीकार किया। इसे पूरा गाने के पश्चात् उनके चेहरे पर उछाव छा गया। ओठों पर स्निग्ध मुस्कान आ गयी। उन्होंने सम्मुख बैठे लोगों को गीत का अर्थ समझाया, "गोपाल, तुमने कैसी मति दे, मेरी मति हर ली। माया में फँसे हिरण की भाँति मैं भटक रहा हूँ। काल रूपी व्याध सामने खड़ा है। काम-क्रोध रूपी कुत्ते खदेड़-खदेड़ कर खाये जा रहे हैं। मेरी चेतना ही खो गयी, इससे मेरा तारण कैसे होगा ! चिन्ता से जीवन जल रहा है। लोभ-मोह रूपी बाघ मेरे पीछे पड़े हैं। हे सदैव कल्याणकारी सदाशिव मंगलकारी हरि ! तुम्हीं मेरी रक्षा करो, रक्षा करो। इनसे निकलने के बदले दिन प्रति दिन इसके बंधन में जकड़ा जा रहा हूँ। हे हरि! मैं तुम्हारे चरणों का दास हूँ, मुझे माया-मोह से छुटकारा दिला दो। यह शंकर तुमसे बार-बार यही काकूति (विनती) करता है।"

जगतानन्द और रामराम गुरु शंकर के गीत के तात्पर्य को अच्छी प्रकार समझ गये। विवाहित जीवन मनुष्य को कामनाओं की ओर धकेलता है, जिनसे बचना अत्यन्त कठिन है। इसके वशीभूत होकर काम और क्रोध से कुछ पलों के लिए गुरु का विवेक भी शायद भ्रमित हुआ। अब इन सबसे उन्होंने मुक्ति पा ली।

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तिरहुत के जगदीश मिश्र

शंकरदेव अपने अध्ययन कक्ष में आकर बैठे ही थे कि एक भक्त ने आकर कहा, "गुरुदेव ! कोई आपसे मिलने दूर देस से आया है।" उन्होंने सोचा दूर देस से कौन आया होगा ! खैर, जो भी हो। उन्होंने उस व्यक्ति को अन्दर बुलाया। उसने आकर प्रणाम कर कहा, "हे महाभाग ! मैं मिथिला के तिरहुत का रहनेवाला जगदीश मिश्र हूँ। आपके साथ श्रीमद्भागवत पर चर्चा करने जगन्ननाथ पुरी से आ रहा हूँ।"

"आप इतनी दूर से आये हैं, पहले तैयार होकर जलपान करें। कुछ देर आराम कर लें। फिर हम वार्तालाप करेंगे।"

"श्रीमान ! मैं नाव से उतर कर नदी किनारे ही स्नान-ध्यान कर आया। आपके घर में प्रवेश करने पर आपकी धर्मपत्नी से भेंट हो गयी। मुझे दूर देस से आया जानकर उन्होंने आपके बारे में बताया कि वे अभी आसन-प्राणायाम में लगे हैं, तब तक आप जलपान कर लें। मेरे ना-नुकुर करने भी पर बहुत आग्रह कर उन्होंने मुझे पेटभर कलेवा करा दिया। वे मुझसे अपनी कामरूपी में बतियाती रहीं और मैं अपनी मैथिली में। फिर भी हम एक दूसरे के भावों को अच्छी प्रकार समझ रहे थे। यह अनुभव मेरे लिए सुखद रहा।"

मिश्र की बात पर शंकरदेव को सन्तोष हुआ। उन्होंने कहा, "अच्छी बात है। तो हम भागवत के विषय में चर्चा प्रारम्भ कर सकते हैं।"

"गोवर्धन-पीठ के महन्त श्रीधर स्वामी लिखित श्रीमद्भागवत का भाष्य 'भावार्थ-दीपिका' पढ़कर मैं इतना मुग्ध हुआ कि उसे कितनी ही बार पढ़ा।"

"हाँ ! मैंने भी उस भाष्य के बारे में सुना है कि श्रीधर स्वामी ने अथक परिश्रम से भागवत की पूर्ण व्याख्या कर संस्कृत में वह भाष्य लिखा है। मूल भागवत तो मैं गुरुकुल में पढ़ चुका। किन्तु उस ग्रन्थ के गूढ़ तत्त्व को समझने के लिए मैं भी यह भाष्य पढ़ना चाहता था। मेरा अहोभाग्य जो मुझ अकिंचन पर कृपा करने इतनी दूर चलकर आप स्वयं यहाँ पधारे। मेरे मन में यह जानने की जिज्ञासा हो रही है कि मेरे पास इतनी दूर आने के लिए आप कैसे प्रेरित हुए ?"

"श्रीधर-भाष्य को लेकर मैं पुरी गया। मेरे मन में भावना जागी थी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कि इसे भगवान् के सम्मुख बैठकर सुनाना चाहिये। मैं गर्भगृह में भाष्य का नित्य पठन करने लगा। एक रात्रि स्वप्न में मुझे प्रभु-विग्रह के दर्शन हुए। मेरे कानों में शब्द गूँज रहे थे, 'मैं तो काष्ठ का जड़ जगन्नाथ हूँ। तुझे इसे सुनाना ही है तो पूर्व में चला जा। वहाँ तेरी भेंट चेतन जगन्नाथ से होगी। उसे जाकर सुना।' अनायास ही एक दिन आपके पण्डे से भेंट हो गयी। उनसे ही आपके बारे में पता चला तो समझ गया, प्रभु का संकेत आपकी ओर ही था।''

''आपने मेरे जैसे तुच्छ व्यक्ति के लिए बहुत बड़ी बात कह दी। मैं तो अभी सीख रहा हूँ। यह भी अच्छा है कि श्रीधर स्वामी कृत भाष्य लेकर मेरे पास आने के लिए प्रभु ने आपको प्रेरित किया। अब आप थोड़ा विश्राम कीजिये। बहुत दूर से आये हैं, थके भी होंगे। भोजन के समय आपको लेने आऊँगा।''

जगदीश मिश्र के साथ बैठकर भागवत-चर्चा करने का शंकरदेव का नित्य नियम वन गया। उन्हें भागवत तत्त्वों के साथ-साथ विभिन्न भक्ति-सम्प्रदायों का परिचय, तत्त्व-चिन्तन, श्रवण-कीर्तन-स्मरण इत्यादि के विषय में और अधिक जानने को मिला। मिश्र भी वहाँ ऐसे रमे कि उन्होंने गाँव लौटने का नाम तक नहीं लिया।

जगदीश मिश्र के साथ भागवत दर्शन पर चले दीर्घकालीन विचार मंथन से शंकरदेव के मन में एक मात्र श्रीकृष्ण को ही परमब्रह्म मानकर एकशरण भक्ति की भावना और दृढ़ हो गयी। उन्हें अपने द्वारा प्रचारित वैष्णव नामधर्म को एकशरणिया नामधर्म कहने की सार्थकता पर और विश्वास हो गया।

जगदीश मिश्र गांमौ में एक वर्ष रहे। वहीं उनकी अल्पकालीन बीमारी के बाद मृत्यु हो गयी। शंकरदेव ने नदी किनारे उनका यथोचित दाह-संस्कार किया।

देखते-देखते गांमौ में रहते शंकरदेव को पाँच वर्ष बीत गये। इसमें जहाँ बहुत कुछ पीछे छूट गया, वहीं नया भी वहुत कुछ जुड़ गया। यहीं शंकरदेव के दोनों दादा जयन्त और माधव का स्वर्गवास हुआ। यहीं उन्हें प्रथम पुत्र रामानन्द की प्राप्ति हुई थी।

लोकदृष्टि में संसारी दिखनेवाले शंकरदेव का जीवन असल में एक निर्लिप्त कर्मयोगी का जीवन था। उनकी प्रसिद्धि और नामघर में बढ़ती

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भक्तों की संख्या से जलकर विरोधियों ने फिर सिर उठाने शुरू किये। शाक्तधर्मी ब्राह्मणों के साथ उनके पारिवारिक सदस्य रतिकान्त और हातीया भी जगह-जगह अनर्गल प्रलाप कर रहे थे, "शंकर दोहरा जीवन जीता है। एक तरफ यह हमारी तरह ही विवाहित है। हमारी तरह ही अपनी पत्नी के प्रेम में फँसकर यह सन्तान को जन्म देता है। दूसरी ओर यह ईश्वर-साधक जैसा ढोंग कर लोगों में अपने नामधर्म का प्रचार कर उन्हें बरगलाता है। इसे साधु-सन्त या गुरु कैसे माना जा सकता है। कुछ शास्त्रों को पढ़ लेने मात्र से क्या कोई गुरु हो जाता है ?"

इन बातों पर शंकरदेव मौन ही रहे। जयन्त और माधव जैसे समझदार व्यक्ति होते तो क्या पता रतिकान्त के अनर्गल प्रलाप पर वे कोई लगाम लगाते। अब वह और ज्यादा स्वच्छन्द हो गया। किन्तु शंकरदेव के गुणी भक्त इस दुष्प्रचार का समुचित उत्तर देते थे। रामराम ने कहा, "शंकरदेव गृहस्थ हैं, इससे उनके द्वारा अपने अनुभव से दिये गये उपदेश हमारे लिए ज्यादा उपयोगी और व्यवहारिक हैं। वे हमें ऐसा कुछ भी करने को प्रेरित नहीं करते जो करने योग्य न हो। गृहस्थ होकर, सांसारिक धर्म का पालन करते हुए भी ईश्वर को पाया जा सकता है; इस बात को शंकरदेव को छोड़कर भला कौन समझा सकता है !"

सर्वजय ने कहा, "वे संन्यासी नहीं, राजा भी नहीं, हमारे जैसे ही एक व्यक्ति हैं। यही उनके मन का अटल विश्वास है। गृहस्थ होने पर सन्तान का पिता बनना स्वाभाविक है। इस बात में रतिकान्त ने कौन-सा दोष देख लिया जो वह उनकी जगह-जगह निन्दा करता फिर रहा है। क्या राम-कृष्ण तथा हमारे अन्य ऋषि-मुनियों के सन्तान नहीं थी ! वे सभी तो गृहस्थ थे।"

कालिन्दी के कानों में भी ये बातें यदाकदा पड़तीं। वे अपने पति को अच्छी प्रकार जानती-समझती थीं। उन पर इन सब बातों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वे मन में अपार आनन्दित थीं कि उनका पति गृहस्थ होकर भी एक दिव्य महापुरुष हैं। उन्होंने अपने पति में एक गुरु को भी पाया, जिस पर उन्हें गर्व था।

गांमौ में भक्तिधर्म प्रचार का अच्छा वातावरण बना हुआ था। भक्तों की संख्या दिन प्रति दिन बढ़ रही थी। शुरू-शुरू में आहोम राज्य के अन्तर्गत होने के कारण कोच राजा के आक्रमण का भय नहीं था। अतीत में एक बार कोच सेना ने आहोम राज्य पर हमला किया तो उसे बुरी तरह परास्त होना पड़ा

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

था। इस बात से चिढ़े हुए कोच अब फिर से आक्रमण की तैयारी में लगे थे। गांमौ की सीमा पर फिर से इकट्ठी हो रही कोच सेना किसी भी समय गांमौ पर धावा बोल सकती थी।

दूसरी ओर उत्तर की तरफ के पहाड़ों पर रहने वाले भोटिया और डफला जब-तब लूटपाट करते थे। पहाड़ों की भीषण ठण्ड से बचने के लिए वे हर साल जाड़े में मैदानों में आकर अपना अस्थायी डेरा लगाकर रहा करते थे। पहाड़ों से बनाकर लाये सामान और वनोपज का समतल में मिलने वाले बरतन और कपड़ों, विशेषकर नमक के साथ विनिमय करते थे। उनमें बीस-तीस भोट-डफला शंकरदेव की शरण लेकर नामधर्म में दीक्षित भी हुए। किन्तु उनमें कुछ उपद्रवी यदाकदा लूट-खसोट करते थे। रतिकान्त ने उनकी मानसिकता का फायदा उठा कर उन्हें नामघर पर हमला करने के लिए उकसाया था।

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

धुवाहाटा में नाम-ध्वनि

जगतानन्द का आहोम दरबार में आना-जाना था। वे दिहिंग किनारे बसायी गयी आहोम राज्य की नयी राजधानी भी हो आये थे। आहोम स्वर्गदेव[1] सुहुंग्मुंग ने उन्हें 'रामराय' की उपाधि प्रदान की थी जिससे लोग अब उन्हें रामराय कहकर पुकारने लगे। उनके कहने पर आहोम राजा ने भोट और डफलाओं के उत्पात पर लगाम लगायी। शंकरदेव ने सोचा, गांमौ पर कोच सेना के आक्रमण करने पर जीत चाहे किसी की भी हो, भुगतना तो सब को ही पड़ेगा।

शंकरदेव को अपने लोगों की सुरक्षा की चिन्ता सताने लगी। ऐसे में जगतानन्द ने उन्हें आहोम राज्य के अन्तर्गत ब्रह्मपुत्र के बीच स्थित माजुली द्वीप के धुवाहाटा के बारे में बताकर वहाँ चलने के लिए कहा। शंकरदेव ने अपने मन को पक्का कर अन्ततः धुवाहाटा जाने का निर्णय कर लिया।

नदी तट पर नौकाएँ लग गयीं। घरेलू साज-सामान के साथ खेती में काम आनेवाले सामान को भी लाद दिया गया। नावों पर आबाल-वृद्ध नर-नारी के साथ मनु, हरि, चन्दरी, भक्त आदि सवार हो गये। उस समय शंकरदेव की अवस्था तिहत्तर वर्ष चल रही थी।

नदी-द्वीप माजुली ब्रह्मपुत्र और सुवणशिरी नदियों के मध्य उर्वर समतल मिट्टी पर प्राकृतिक रूप से बना ईश्वर प्रदत्त धान का कटोरा है। दो जलधाराओं के माजत (मध्य) होने के कारण कालान्तर में यह माजुली कहलाने लगा। धर्मपाल वंश के अन्तिम राजा रामचन्द्र ने अपनी राजधानी इसी द्वीप के रतनपुर में बनायी थी। कई कोसों में फैले विस्तृत माजुली की भूमि छोटी-बड़ी कई नदियों द्वारा सिंचित और घने वनों से आच्छादित थी। इसके दक्षिण में चिर-प्रवाही, सागरमुखी, महाबाहु ब्रह्मपुत्र और उत्तर में सुवणशिरी नदिया हैं।

दिन भर की नाव-यात्रा के पश्चात् शंकरदेव सबके साथ माजुली की पश्चिमी दिशा में वन के बीच बसे धुवाहाटा पहुँचे। वहाँ चारों ओर फैली

---

1 स्वर्गदेव : आहोम जाति अपने को स्वर्ग के देवता इन्द्र के वंशज मानने के नाते अपने राजा को स्वर्गदेव कहते हैं। इसके पीछे एक रोचक आख्यान है– 'युद्ध में कौरवों के विनाश के पश्चात उनकी विधवाओं को अपना वंश चलाने की चिन्ता हुई। श्रीकृष्ण के पास जाकर उन्होंने अपनी चिन्ता बताई। उनके कहने पर इन्द्र ने स्त्री रूप धारणकर कुरुवंशी युवक दुर्मरीष के साथ परिणय किया। उन दोनों के संसर्ग से एक देवतुल्य पुत्र हुआ। आहोम अपने को उसी पुत्र की सन्तान मानते हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हरियाली ने सबका मन मोहा। नदी से होकर आती शीतल बयार सबको सुहायी। वनों में होता पंछियों का कलरव संगीत जैसा लगा। उन्होंने देखा, वहाँ की मिट्टी उर्वरा है और पीने के पानी की प्रचुरता भी है।

धुवाहाटा के चारों ओर लगे बेल-वृक्ष वहाँ की शोभा को द्विगुणित कर रहे थे। पेड़ों की गुरि (जड़) मिट्टी के ऊपर तक निकली थी। इससे लोग उसे बेलगुरि या बेलगुड़ी भी कहते थे। धीरे-धीरे यही नाम लोगों की जबान पर चढ़ गया था। शंकरदेव अपने भक्तों के साथ द्वीप पर उतरे तो उन्हें लगा जैसे वे किसी स्वप्नलोक में पहुँच गये हों। नदी और पोखरों के किनारे बने चांगघरों (मचान पर बने घर) में वास कर रहे मिसिंग जाति के लोगों की काले रंग की वेशभूषा उन्हें बड़ी चित्ताकर्षक लगी। काले वस्त्रों पर लाल-हरी विभिन्न रंगी धागों से की गयी कशीदाकारी ने बरबस सबका ध्यान खींचा। मिसिंग के अलावा वहाँ बसी कछारी, सोनोवाल, देउरी जातियों की भिन्न-भिन्न पोशाकें और रहन-सहन को देखना भी उन्हें सुखद लगा।

माजुली से उत्तर या दक्षिण के तटों पर बसे गाँवों तक नाव से जाकर दिन भर में लौटा जा सकता है। उत्तरी किनारे पर बसा नारायणपुर और दक्षिण किनारे पर स्थित भाण्डारीडूबी यहाँ के निकटस्थ व्यापारिक केन्द्र हैं। वहाँ तक भी नाव से जाकर एक दिन में लौटा जा सकता है।

शंकरदेव और भक्तों को नया स्थान अति मन भाया। वहाँ जमीन की कोई कमी न थी। सबने मिलकर वन को साफ किया और कुछ ही दिनों में वहाँ बरदोवा और गांमौ से भी सुन्दर और बड़े नामघर, मणिकूट, हाटी आदि बना लिये। लम्बे-चौड़े नामघर की त्रिकोणिका छत बड़ी आकर्षक बनायी गयी। इसके बाहर धार्मिक और सामाजिक कार्य करने के लिए काफी खुली जगह छोड़ी गयी।

शंकरदेव ने भक्तों को कहा, "नामघर केवल हरि-संकीर्तन करने मात्र के लिए नहीं है। यहाँ गाँव के लोग बैठकर अपने अन्य धार्मिक और सामाजिक काम भी कर सकेंगे। नामघर के पास हमें और हाटियाँ बनानी होंगी, ताकि बाहर से आने वाले भक्त वहाँ ठहर सकें। यहाँ हमें स्वच्छ जल के पोखर खोदने होंगे।

"नामघर को हम प्राचीन ऋषि-मुनियों के आश्रमों जैसा रूप देंगे। ये हमारी समाज-व्यवस्था को सुधारने का काम भी करेंगे। यहाँ ऊँच-नीच या स्पृश्य-अस्पृश्य किसी प्रकार का जातिभेद नहीं रखा जाएगा। यहाँ हमारे भक्त गाँव के बच्चों को शिक्षा देंगे, समय पर अपने उपलब्ध साधनों से उनकी चिकित्सा भी करेंगे। भक्तों को नामधर्म का प्रचार करने के लिए शिक्षित

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

किया जाएगा। यदि हमारा कोई आपसी विवाद होगा तो उसे भी यहीं बैठकर सुलझायेंगे। यहाँ एक बड़ा कक्ष केवल पुस्तकों के लिए होगा। वहाँ बैठकर नयी रचनाओं को साँचिपात पर लिपिबद्ध करने के साथ कथा-प्रसंग के अनुसार पोथियों पर चित्रकारी भी की जाएगी। पुराने प्राप्य ग्रन्थों की सुन्दर प्रतिलिपियाँ बनायी जाएँगी। कोई जिज्ञासु चाहे तो वहाँ बैठकर ग्रन्थों का वाचन भी कर सकता है।

"इसके साथ ही हमारे नाटक-नृत्य-संगीत में काम आनेवाले मुखौटे-पोशाकें और खोल आदि वाद्य बनाने के लिए कक्ष अलग से होंगे। इससे हमारे ग्रामीण लोगों को रोजगार के नये साधन मिलेंगे, उनकी कला के प्रति अभिरुचि जागृत होगी। वैसे तो हमारे यहाँ घर-घर में ही करघों पर कपड़ा बुना जाता है, फिर भी हम वयन के लिए अलग व्यवस्था करेंगे। यहाँ अतिरिक्त पड़ी जमीन को गरीब किसान जोत सकेंगे।

कुछ ही दिनों में नामघर के नाम पर एक छोटा गाँव बस गया। इसकी चारों दीवारों में 'करापाट' (प्रवेश द्वार) बनाये गये। पास ही बनीं हाटियों में भक्तों के रहने की व्यवस्था की गयी। हाटियों के बीच छोटी-छोटी गलियाँ थीं। इस बसावट को ही आगे जाकर 'सत्र' कहा जाने लगा। सत्र अर्थात् जहाँ सत लोगों को त्राण मिले।

धुवाहाटा के वातावरण में नाम-ध्वनि मुखरित हो उठी। इसके साथ ही शंकरदेव के परिवार में अभिवृद्धि हुई। उन्हें वहाँ और दो पुत्र कमललोचन और हरिचरण तथा एक कन्या रुक्मिणी की प्राप्ति हुई। रुक्मिणी को माता-पिता दुलार से हरिप्रिया कहकर पुकारते।

शंकरदेव ने गांमौ में भोगी हुई अपनी मानसिक व्यथा को 'पाषण्ड-मर्दन' काव्य में व्यक्त किया। उन्होंने भागवत, पद्म पुराण, बृहन्नारदीय पुराण, विष्णुधर्मोत्तर पुराण और सूत-संहिता से आधार ग्रहण कर अपनी व्याख्याओं द्वारा विरोधियों को मुँहतोड़ जवाब दिया। काव्य में बताया गया कि कलियुग में तप-यज्ञादि की कोई आवश्यक नहीं। भगवान् के नाम-जाप से महापापी भी मुक्ति पा सकता है। भगवद् नाम लेने के लिए ब्राह्मण अथवा ऋषि-मुनि बनने की कोई आवश्यकता नहीं। यदि कोई प्रमादवश भी एक बार हरिनाम का उच्चारण करता है तो वह अजामिल की भाँति मुक्ति का अधिकारी हो जाता है। इस कलियुग में नामधर्म से बड़ा मुक्ति का कोई मार्ग नहीं।

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परम्परा का वाहक

भाण्डारीडूबी घाट ब्रह्मपुत्र के दक्षिण तट पर बसे गाँवों के लिए सुविधाजनक था। उस घाट पर उत्तरी किनारे से नारायणपुर के व्यवसायी तक अपना माल बेचने आते थे। धुवाहाटा से भी वह घाट ज्यादा दूर नहीं था। भाण्डारीडूबी घाट पर चहल-पहल थी। घाट पर एक नाव आकर रुकी। नाव से एक प्रौढ़ व्यक्ति, महिला, एक सुदक्ष युवक और एक अतिरूपवती कन्या उतरे। नावरिया उन्हें कुछ समझा रहा था। घाट पर स्नान कर रहा एक युवक सारा दृश्य देख रहा था। उसे लगा कि ये लोग नये हैं। शायद किसी का पता-ठिकाना पूछ रहे होंगे। उसने उनके पास जाकर पूछा, "आप लोग यहाँ नये लगते हैं ! यहाँ किससे मिलना है ? मुझे बताइये, शायद मैं आपकी कोई सहायता कर सकूँ।"

प्रौढ़ व्यक्ति ने कहा, "हम यहाँ किसी को नहीं जानते। हमें पता चला है कि यहाँ सरस्वती भूयाँ का वंशधर कोई कायस्थ परिवार रहता है। हम भी कायस्थ हैं। उनके यहाँ यदि कोई विवाह योग्य लड़का है तो हम उसके साथ अपनी कन्या का विवाह करने के उद्देश्य से यहाँ आये हैं।"

युवक यह सुनकर लजा गया। क्योंकि वह उसी परिवार से था और सम्भावित वर भी वही था। उसने कहा, "मैं उसी परिवार के यशपाल भूयाँ का पुत्र गयापाणि हूँ। हमारा घर यहाँ से नजदीक ही दिखौ नदी के किनारे होकाराकुची में है। आप लोग पहले घर चलिये।"

नाव से उतरा युवक गयापाणि से मिलकर बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने अपना परिचय देते हुए कहा, "मेरा नाम माधव है। ये मेरे पिता गोविन्दगिरि हैं। मेरी माँ मनोरमा बरदोवा के श्रीमन्त शंकरदेव की चचेरी बहन है। यह बालिका मेरी बहन उर्वशी है। नावरिया का नाम गोविन्द माँझी है। ये हमारे घर के सदस्य हैं, अपितु कहना चाहिये कि हम इनके घर के सदस्य हैं। इन्होंने दुर्दिनों में हमारी बहुत सहायता की है। हम इनके आभारी हैं। मैं इन्हें घाघरी काका कहता हूँ। इनका घर घाघर में होने के कारण लोग इन्हें घाघरी माँझी भी कहते हैं।"

गोविन्दगिरि ने उसे यशपाल भूयाँ का पुत्र और अपना सजातीय जानकर मन ही मन दामाद बनाना तय कर लिया। उसने अधिक जानने के लिए उससे पूछा, "तुम कायस्थ हो, फिर तो तुम्हारी रुचि पढ़ने में भी अवश्य रही होगी ?"

गयापाणी ने कहा, "हाँ ! बाल्यकाल से ही अध्ययन में मेरी रुचि है। मेरा

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ज्ञानपिपासु मन मुझे बंग भूमि के शिक्षा-संस्कृति-कला के केन्द्र नवद्वीप ले गया। वहाँ जाकर शास्त्रों का अध्ययन कर कुछ दिनों पहले ही अपने गाँव लौटा हूँ।"

गोविन्दगिरि यह जानकर मन में बड़ा सन्तुष्ट हुआ। वह उसके परिवार से सम्बन्ध जोड़ने के लिए उतावला हो गया। उसने गयापाणि को कहा, "अब चलो, तुम्हारे घर चलते हैं। वहीं तुम्हारे पिता के सामने सारी बातें होंगी।"

यशपाल भूयाँ ने घर पर आये अतिथियों का समुचित आदर-सत्कार किया। जलपान कराने के बाद उसने गोविन्दगिरि से उनकी कुशलक्षेम पूछी। वे उसे अपनी कहानी सुनाने लगे, "मेरा नाम गोविन्दगिरि भूयाँ है। मेरे कान लम्बे होने के कारण लोग मुझे बरकणागिरि भी कहते हैं। मैं मूल रूप से धवला नदी के किनारे बसे बण्डुका का रहने वाला हूँ। कन्नौज से आकर बण्डुका में बसने वाले अनेक कायस्थ परिवारों में हमारा परिवार भी पीढ़ियों से वहाँ है। वहाँ के सामन्त के यहाँ मैं मजीन्दारी (मजुमदार) करता था। राजस्व का लेखा-जोखा रखना और पत्र-व्यवहार करना मेरे जिम्मे था। सरकारी नौकरी के अलावा मेरे पास वहाँ काफी माटी-जमीन है। मेरी पत्नी अनुचिता और पुत्र दामोदर के साथ मैं सुखी था। दामोदर पढ़-लिख कर युवा हुआ तो उसका विवाह शची नामक एक सुशील कन्या से कर दिया। एक दिन अचानक मेरी पत्नी का देहावसान हो गया। इससे मेरा मन इतना क्षुब्ध हुआ कि वहाँ की सम्पत्ति और मजीन्दारी का भार दामोदर को सौंप कर इधर पूर्व की ओर चला आया और बरदोवा में अपने सजातीय कायस्थ परिवारों की बस्ती देखकर वहीं के टेम्बुवनी गाँव में बस गया। इसमें शंकरदेव और उनके परिवार ने मेरी बहुत सहायता की। उनके परिवार के साथ हुआ परिचय धीरे-धीरे घनिष्ठता में बदल गया। उन सम्बन्धों के चलते उनकी चचेरी बहन मनोरमा के साथ मेरा दूसरा विवाह हो गया। वहाँ मैंने परिश्रम कर काफी धन कमाया। मेरी गृहस्थी मनोरमा के साथ अच्छी चल रही थी।"

इतना कह गोविन्दगिरि थोड़ी देर चुप हो गये। फिर उन्होंने आगे बताना शुरु किया, "अब मेरे दुर्योग के दिन शुरू हुए। वहाँ बीच-बीच में कछारियों के हमले होते रहते थे। इससे मैं बहुत सहमा रहता था। मन में भय समाया रहता था कि इतने परिश्रम से अर्जित किये गये धन को वे कहीं लूट ले गये तो क्या होगा ! वहाँ से मेरा मन उचट गया। एक दिन मैंने आठ कहारों की एक बड़ी डोली की व्यवस्था की और अपनी गर्भवती पत्नी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मनोरमा और इकट्ठी की गयी चल-सम्पत्ति को साथ लेकर निकल पड़ा। हम वन के रास्ते जा रहे थे। रात हुई तो वहीं भात बनाया और खाकर डोली में हम सो गये। सुबह नींद खुली तो हमारा सिर चकरा रहा था। डोली से बाहर निकलकर देखा, वहाँ कोई नहीं था। कहार धन-गहने के साथ हमारे कपड़े तक लूट कर भाग गये। हम समझ गये, कहारों ने अवश्य कोई मादक द्रव्य खाने में मिलाया होगा और मौके का फायदा उठाकर हमारा सब कुछ लूट लिया। उन्होंने ही रात में भात बनाया था। ''

यह सुनकर यशपाल भूयाँ को दुःख हुआ। उन्होंने पूछा, ''फिर आप लोग वन से कैसे निकले ? उसके बाद क्या हुआ ?''

''हमारे वदन पर पहने हुए कपड़ों के अलावा कुछ नहीं बचा। मेरी पत्नी मनोरमा को जोर से प्यास लगी। मैं इसे लेकर किसी तरह ब्रह्मपुत्र के तट पर पहुँचा। संयोग से हमारे सामने से एक नाव जा रही थी। नाव को किनारे की ओर आते देख मैं डर गया, पता नहीं अब कौन-सी विपदा आनेवाली है ! भगवद्कृपा से मेरा भय निराधार था। दरअसल नाव के मालिक की हम पर दृष्टि पड़ गयी थी और उसने अंदाज लगाया कि निर्जन वन में फँसे कोई दम्पती हैं। उसने नाव किनारे लगवायी। हमारी आपबीती सुनकर हमें अपनी नाव में बिठाया। पहनने को नये वस्त्र दिये। भोजन कराया। उसने अपना परिचय दिया, ''मेरा नाम हरसिंह बोरा है। आहोम राज्य में उजीर (वजीर यानी मन्त्री) हूँ। राजकीय कार्य से पश्चिम के किसी मुकाम पर गया था। वहाँ से अपने घर नारायणपुर लौट रहा हूँ।''

फिर घाघरी माँझी की ओर गोविन्दगिरि ने संकेत कर कहा, ''नाव खे रहे मल्लाओं का सरदार यह गोविन्द माँझी मेरा पूर्व परिचित निकल आया। यह अपनी नाव लेकर टेम्बुवनी और बरदोवा आया करता था। पहले बण्डुका आने पर भी यह मुझसे मिला करता था। इससे हमारे बीच बढ़ती घनिष्ठता आत्मीय सम्बन्धों में बदल गयी। लोग इसे घाघरी माँझी कहकर पुकारते हैं, परन्तु मेरा तो यह मीत है। हमारी नाव को शिलिखागुड़ी घाट तक पहुँचने में कई दिन लगे। वहाँ से नारायणपुर जाने के लिए कुछ दूर चलना पड़ता है। हरसिंह के लिए पालकी आयी हुई थी। उसने एक और पालकी की व्यवस्था करवायी वह हमें भी अपने साथ घर ले गया।''

गोविन्दगिरि ने आगे वताया, ''किसी अनजान व्यक्ति के घर जाकर रहने में वहुत संकोच हो रहा था। हरसिंह ने हमारी दुविधा दूर करते हुए कहा, 'मेरे माता-पिता नहीं हैं। अव उनकी जगह आप हैं। इस सम्बन्ध से

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आप लोगों को अपने घर ले जाने के अधिकार से क्या अपने पुत्र को वंचित करेंगे !' अव हम क्या कहते। उसके घर में कुछ दिन रहे। वहाँ सारी सुख-सुविधाएँ, दास-दासियाँ थीं। हमारे बहुत आग्रह पर उसने अपने घर के पास के क्षेत्र लेटेकुपुखुरी में हमारे लिए नया घर बनवा कर हमारी जरूरत की सारी चीजों की व्यवस्था करवा दी।

''समय पर मनोरमा को प्रसव पीड़ा शुरू हुई, तब हरसिंह और उसका परिवार ही हमारे काम आया। शक संवत् 1411, (सन् 1489)जेठ माह, कृष्ण प्रतिपदा की अर्ध रात्रि को मनोरमा ने इस पुत्र माधव को जन्म दिया।''

बीच में घाघरी माँझी बोल पड़ा, ''बरकणागिरि देव ! इन्हें ज्योतिषी की भविष्यवाणी क्यों नहीं बताते।'' फिर उसने यशपाल भूयाँ से कहा, ''भूयाँ देव ! उन्होंने गणना कर बताया, इसका जन्मनाम माधव होगा। यह बुद्धि में बृहस्पति, धैर्य में पृथ्वी, गाम्भीर्य में समुद्र और गुरुसेवा में मार्कण्डेय के समान होगा।''

''घाघरी ! अपने पुत्र की प्रशंसा अपने मुख से नहीं करनी चाहिये।'' गोविन्दगिरि इतना कह कर अपनी आपबीती आगे बताने लगे, ''माधव पढ़ने लायक हुआ तो हरसिंह बोरा ने वह व्यवस्था भी वहीं करवा दी। नारायणपुर में कोई पाठशाला नहीं थी। उसने कामाख्या से दो विद्वान पण्डितों को वहाँ बुलाया। दोनों शाक्त थे। हम भी शाक्त हैं। माधव ने उनसे अक्षर-भाषा सीखकर कुछ शास्त्र भी पढ़े। किन्तु मुझ अकेले से परिवार का भरण-पोषण नहीं हो पा रहा था। इसलिए माधव को भी मेरे साथ खेती के काम में लगना पड़ा।

''इसी बीच हरसिंह बोरा का किसी वात रोग से अचानक देहान्त हो गया और हम पर फिर विपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ा। प्रकृति भी शायद हमसे रूठी हुई थी। उस साल वहाँ ऐसी भयंकर बाढ़ आयी कि पूरी खेती नष्ट हो गयी। अकाल पड़ गया। खाने के लाले पड़ गये। हमें विवश हो कुछ लोगों के पास जाकर सहायता मांगनी पड़ी। किन्तु हमें तिरस्कार के सिवाय कुछ नहीं मिला। फिर इस घाघरी माँझी का ख्याल आया तो हम इसके पास गये।

''यह घाघरी नहीं होता तो पता नहीं हमारी क्या दशा होती। इसने बड़े आत्मीय भाव से हमें अपने पास रखा। अपनी जमीन हमें जोतने को देकर माधव को खेती के काम में लगाया। माधव ने परिश्रम कर कुछ धन कमा अपनी माँ के पास जमा किया। माँझी के घर ही मेरी पुत्री उर्वशी का जन्म हुआ। उर्वशी सात वर्ष की हुई तब से इसकी माँ को इसके विवाह की चिन्ता सता रही है। हमारे इलाके में कायस्थ परिवार नहीं हैं। घाघरी माँझी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के घर, इसकी छत्रछाया में हमें रहते अठारह वर्ष हो गये। इसका और हरसिंह बोरा का उपकार हम कभी नहीं भुला सकते। इसी ने हमें आपके परिवार के बारे में बताया। संयोग देखिये, आपका पुत्र गयापाणि हमें घाट पर ही मिल गया और अपने घर ले आया। अब आपसे विनम्र निवेदन है कि आप हमारी कन्या उर्वशी को अपने घर की बहू के रूप में स्वीकार करें।''

यशपाल भूयाँ को उर्वशी पहली नजर में ही भा गयी। उनका पुत्र गयापाणि भी विवाह योग्य हो चुका था। उन्होंने बरकणागिरि के परिवार के लिए रहने को घर बनवाया और शुभ लग्न देखकर गयापाणि और उर्वशी को विवाह सूत्र में बांध दिया।

कुछ दिनों बाद बरकणागिरि को अपने पहले पुत्र दामोदर की याद आयी। वे माधव को लेकर बण्डुका के लिए रवाना हुए। कुछ दिनों की नाव-यात्रा कर सभी सकुशल गन्तव्य पर पहुँचे। पिता-पुत्र का काफी वर्षों बाद मिलना हुआ। बेटे और बहू शची ने बरकणागिरि को प्रणाम किया। उन्होंने सबसे माधव का परिचय कराते हुए कहा, ''दामोदर ! यह तुम्हारा भाई है माधव।'' और शची की ओर उन्मुख होकर बोले, ''तुम्हारा छोटा देवर है।'' माधव ने दोनों की चरणवन्दना की। बरकणागिरि ने अपनी आपबीती बेटे-बहू को बतायी।

दामोदर ने पिता से कहा, ''इतने वर्षों तक आपका कोई समाचार नहीं मिला तो आपके बारे में हमने पता नहीं क्या-क्या ऊल-जलूल सोच लिया। आप लौट आये, यही हमारा कम बड़ा सौभाग्य नहीं ! अब आपको कहीं नहीं जाने देंगे। माँ को भी यहीं बुला लेंगे।''

इस मिलन से सबके मन में अपार आनन्द हुआ। दामोदर को कोई सन्तान नहीं थी। उसने माधव को ही अपना पुत्र मान लिया। बण्डुका में सब प्रकार की सुविधाएँ थीं। मजुमदारी और खेती की आय से दामोदर सुखी-सम्पन्न था। उसने माधव को आगे पढ़ने के लिए वहीं गुरु राजेन्द्र भट्टाचार्य के यहाँ व्यवस्था करा दी। शुभ्रकेशी दीर्घदेही राजेन्द्र भट्टाचार्य विदग्ध विद्वान थे। वे पहले दिन ही माधव के व्यक्तित्व से आकर्षित हो गये। उन्होंने माधव को वेद, न्याय, तर्क, पुराण आदि अनेक शास्त्र पढ़ाये। माधव भी बचपन से बुद्धिमान था ही। गाँव में ली हुई प्रारम्भिक शिक्षा उसकी सहायक हुई। अल्प समय में ही माधव ने कई शास्त्र पढ़ लिये। साथ ही इसने वहाँ बही-खाता लिखने की कायस्थिका विद्या भी सीखी।

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गयापाणि उर्फ रामदास

गयापाणि नवद्वीप से शास्त्रों का अध्ययन कर जब से अपने गाँव लौटा था, उसका मन उचाट रहने लगा। नयी पत्नी उवर्शी का आकर्षण भी उसे नहीं बांध पा रहा था। गाँव में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं था, जिससे वह बौद्धिक स्तर पर अध्यात्म-चर्चा कर सके। इससे हताश होकर वह जगन्नाथपुरी चला गया।

नित्य-नियम की तरह गयापाणि भगवान् जगन्नाथ के दर्शन करने मन्दिर पहुँचा। वहाँ मन्दिर-प्रांगण में मिले एक वृद्ध पण्डित ने उसे बातों-बातों में शंकरदेव के बारे में बताया। उसने यह भी कहा कि वह अपनी ज्ञान-पिपासा उनके साथ धर्म-चर्चा कर मिटा सकता है। गयापाणि को भी पुरी में रहते काफी दिन हो गये। वह अपने गाँव लौट आया।

गयापाणि का मन शंकरदेव से शास्त्रार्थ करने के लिए उत्प्रेरित हो रहा था। उसने अपने क्षेत्र में भी शंकरदेव और उनके एकशरणिया नामधर्म के बारे में सुना तो उनसे मिलने के लिए और उतावला हो गया। अपने गाँव से वह धुवाहाटा आया। नामघर हरिनाम कीर्तन की ध्वनि से गुँजायमान था। वातावरण में चारों ओर जैसे हरिनाम की पुण्यसलिला सरिता बह रही थी। उसे लगा, जैसे वह किसी पुण्यतीर्थ में आ पहुँचा है। आसन पर बैठे शंकरदेव का देवसुलभ व्यक्तित्व उसे किसी अगाध शास्त्रज्ञ पण्डित की तरह आकर्षक लगा। उसके मन में एक सन्तोष हुआ कि अब वह बौद्धिक चर्चा के सही पीठस्थान पर आ पहुँचा है।

भक्तों के संग धर्म-चर्चा में निमग्न शंकरदेव के पास जाकर गयापाणि ने नमस्कार किया। उन्होंने उसे बैठने के लिए कहकर उससे पूरा परिचय पूछा।

"मैं सरस्वती भूयाँ के वंशधर श्री यशपाल का पुत्र गयापाणि हूँ। मैंने आपका नाम जगन्नाथपुरी में सुना था। मैंने भी कुछ शास्त्रों का अध्ययन किया है, परन्तु मेरे मन को शान्ति नहीं मिली। मैं बहुत से साधु-सन्तों और विद्वानों से मिला, पर कहीं भी मेरे मन की पिपासा शान्त नहीं हुई। इसीलिए आपके पास आया हूँ।"

"अच्छी बात है। तुम्हें जो अच्छा लगता हो ऐसा कोई श्लोक सुनाओ।"

शंकरदेव के कहने पर गयापाणि ने एक श्लोक सुनाया—

तत्रैव गङ्गा यमुना च तत्र । गोदावरी सिन्धु सरस्वती च ।।
सर्वाणि तीर्थानि वसन्ति तत्र । यत्राच्युतोदार कथा प्रसंग ।।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"अब इसका अर्थ करो।" शंकरदेव ने कहा।

गयापाणि उस सीधे श्लोक का भी सही अर्थ नहीं कर पाया और बगलें झाँकने लगा। वह समय पर उसका अर्थ भूल गया। उसकी दशा दयनीय हो गयी।

"पुत्र ! तुम इसे बार-बार दोहराओ। ऐसा करने पर इसका अर्थ तुम्हें याद आ जाएगा।"

गयापाणि ने श्लोक को फिर से दो-तीन बार दोहराया। फिर भी वह उसका अर्थ नहीं बता पाया। इस पर शंकरदेव ने अर्थ बताते हुए कहा, "अच्युत अर्थात् श्रीकृष्ण का नाम-प्रसंग जहाँ होता है, वहीं गंगा-यमुना-गोदावरी-सिन्धु-सरस्वती के तटों पर स्थित सभी तीर्थ आ विराजते हैं।"

शंकरदेव द्वारा श्लोक की सुन्दर और सहज व्याख्या सुनकर गयापाणि अभिभूत हो गया। उसने उन्हें दण्डवत प्रणाम कर अपनी शरण में लेकर दीक्षित करने का अनुरोध किया। इस पर उन्होंने कहा, "इस समय तुम भावुक हो। यहाँ नित्य आओ। यहाँ के नाम-प्रसंग में तुम्हारी रुचि बनी रही तो तुम्हारी बात पर अवश्य विचार होगा।"

वह नित्य नामघर में आने लगा। हरि के नाम-धर्म के प्रति उसका समर्पण भाव देख, एक दिन शंकरदेव ने शरण देकर उसे नया नाम रामदास दिया।

उधर बरकणागिरि को बण्डुका में काफी लम्बा समय बीत गया। उसे अपनी पत्नी, पुत्री और जंवाई की याद सताने लगी। वे यह आस भी लगाये थे कि क्या पता इतने दिनों में वे नाना बन चुके हों ! वे माधव को कुछ और समय तक वहीं छोड़कर भाण्डारीडूबी लौटने के लिए व्यग्र हो उठे। किन्तु विधि को कुछ और ही स्वीकार था। वे अचानक ऐसे बीमार पड़े कि उनका प्राणान्त हो गया।

पिता की अकस्मात मृत्यु से माधव का विचलित होना स्वाभाविक था। दामोदर का तो भरा-पूरा परिवार था। माधव के सिर पर विधवा माँ का जिम्मा भी आन पड़ा। पिता के श्राद्ध-कर्म के बाद वह भाण्डारीडूबी लौट गया। माँ को पिता की मृत्यु के बारे में बताना भी आवश्यक था। कई दिनों की नौका-यात्रा के बाद घर पहुँचकर उसने सबसे पहले गयापाणि को यह दुःखद समाचार सुनाया। अब समस्या थी कि माँ और उर्वशी को यह बात कैसे बतायी जाए।

"माधव !मन को मजबूत करो। यह बात माँ को तो बतानी ही होगी। जन्म-मरण पर कोई जोर नहीं।" कहकर गयापाणि ने माधव को सांत्वना दी। उसने आगे कहा, "तुम ही इतने अधीर हो, फिर माँ और उर्वशी की क्या अवस्था होगी ! मरण अवश्यम्भावी है। किन्तु कोई भी इसे सहज रूप में नहीं स्वीकारता। तुम माँ के पास अकेले जाओगे तो तुम्हारा उतरा चेहरा और माथे पर बंधा

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गमछा देखकर ही वह समझ जाएगी। शायद तुम्हें कुछ कहना ही न पड़े।''

माधव के सिर पर बंधा गमछा और उसका उतरा मुख देखकर मनोरमा सशंकित हो गयी। पति की मृत्यु के बारे में जानकर वह पछाड़ खाकर गिर पड़ी; सारे सुहाग-चिह्न मिटा दिये। कुछ दिनों के बाद माँ का मन थोड़ा स्थिर हुआ तो माधव ने कहा, ''माँ ! मुझे बण्डुका जाने की आज्ञा दो। भैय्या दामोदर के पास मेरे लायक जरूर जीविकोपार्जन का कोई काम निकल आयेगा।''

बण्डुका पहुँचने पर दामोदर ने माधव का स्वागत कर सबका कुशलक्षेम पूछा और उसका मन्तव्य जानकर कहा, ''माधव ! तुम मजिन्दारी के काम में मेरा हाथ बंटाओ।'' माधव ने मन लगाकर काम सीखने की चेष्टा की, फिर भी उससे हिसाब-किताब रखने में भूल हो जाती। माधव का मन नये-नये शास्त्र-पुराण पढ़ने में लगा रहता। देवी-भक्त होने के कारण श्रीमद्‌देवीभागवत और मार्कण्डेय पुराण के अन्तर्गत दुर्गा-सप्तशती का उसने सांगोपांग अध्ययन किया। उसे लेटेकुपुखुरी का वह पण्डित याद आया जिसके साथ उसने कामरूप के देवी-पीठों की यात्रा की थी। देवी के सामने दी जानेवाली बलि पर उसका अटल विश्वास था। किन्तु उसका मन वामाचार पद्धति से होने वाली देवी-पूजा में नहीं रमता था।

एक दिन दामोदर ने बहुत नाराज होकर माधव से मजिन्दारी के काम को छोड़ देने के लिए कहा। इससे वह प्रसन्न ही हुआ, चलो, उकताहट भरे काम से पीछा छूटा। उसका जन्मजात भावुक मन भला ऐसे नीरस काम में कैसे रमता ! वह फिर से शास्त्र-अध्ययन में लग गया।

एक दिन दामोदर ने उससे कहा, ''मेरे पास जो सम्पत्ति है वह पैतृक है। इसमें तुम्हारा भी हिस्सा बनता है। तुम अपना आधा भाग लेकर सुख से रहो। तुम्हारा किसी भी प्रकार भला हो, मैं तो यही चाहता हूँ।''

इससे माधव का मन अस्थिर हो गया। उसमें जन्मजात वैराग्य भाव था। उसने सोचा, इस माया ठगिनी को एक बार गले लगाया तो यह सर्पिणी की भाँति मन-बुद्धि पर कुण्डली मारकर बैठ जाएगी। इससे भौतिक सुख तो मिल सकता है, परन्तु मेरा अन्तस जो चाहता है, उससे सदा के लिए वंचित हो जाऊँगा। यह धन-सम्पत्ति और संसार तो असार है। व्यापार कर अपना पेट भरना कोई बहुत अच्छी बात नहीं। इसमें भी झूठ का सहारा लेना होता है। मनुष्य असत्य के जाल में कब फँस जाता है, उसे स्वयं को ही पता नहीं चलता।

माधव को विधवा माँ की याद आने लगी। वह पछताने लगा कि वह केवल पाँच दिन ही माँ के पास रहकर बहन-बहनोई के भरोसे उसे छोड़कर बण्डुका क्यों चला आया। उसका मन उर्वशी और गयापाणि से मिलने के

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लिए भी तड़पने लगा। वह उसका बहनोई मात्र नहीं, प्राण-सखा भी बन गया था।

उसने भाई से कहा, "आपकी बड़ी कृपा है जो आपने ऐसा कहा। मैं इसे लेकर क्या करूँगा। माँ भाण्डारीडूबी रहती है। वह यहाँ आकर रहना शायद ही पसन्द करे। ऐसे में यह सम्पत्ति मेरे किस काम आयेगी ! आपने कह दिया, इतना ही पर्याप्त है। अब मेरा मन बण्डुका में ऊब रहा है। आपकी आज्ञा हो तो मैं माँ के पास लौटना चाहता हूँ।"

नाव चलने से पहले ही माधव को संग्रहणी हो गयी। यह जानकर नावरिया ने उसे साथ ले जाने से मना कर दिया। उसे उसी अवस्था में तट पर छोड़ वह चल दिया। इसका दामोदर को पता लगा तो उसे घर लाकर उपचार कराया। काफी दिन हो गये, उसका रोग ठीक नहीं हो रहा था। माधव ने मन ही मन माँ दुर्गे से प्रार्थना कर उसे बकरा चढ़ाने की मनौती की। यह बात उसने भाभी को बतायी। उसने उसकी इच्छानुसार बलि दिलाकर मांस-प्रसाद माधव को खाने के लिए दिया। संयोग की बात थी या दैवी कृपा, वह ठीक हो गया। अब उसके मन में दृढ़ विश्वास हो गया कि बलि देने से ही वह ठीक हुआ है।

भाण्डारीडूबी से आये किसी व्यक्ति से माधव को अपनी माँ के बीमार होने का पता चला। वह घर लौटने के लिए व्यग्र हो उठा। रास्ते भर देवी दुर्गा से माँ को ठीक करने की प्रार्थना करता रहा। देवी को दो सफेद बकरों की बलि चढ़ाने की उसने फिर से मनौती की। वह घर पहुँचा तब तक माँ स्वस्थ हो गयी। उसने इसे माँ दुर्गा की कृपा मानकर महीने भर बाद आने वाली दुर्गा पूजा के समय अपनी मनौती पूरी करने का संकल्प किया।

माधव ने कुछ धन जुटाने के लिए फिर कोई व्यवसाय करने का मन बनाया। वह ताम्बूल-पान की खरीदी-बेची में लग गया। यात्रा में नाव से निकलने के पहले उसने गयापाणि को दो सफेद बकरों की बलि देने की मन्नत के बारे में बताया। फिर उसने उत्साह से कहा, 'गयापाणि ! मैं अभी व्यापार करने जा रहा हूँ। भवानी की कृपा रही तो इस यात्रा में अच्छी कमाई होगी। इस वर्ष हम शारदीय पूजा धूमधाम से मनायेंगे। इस बार माँ की प्रतिमा नाव से नहीं, अपने कन्धों पर उठाकर लायेंगे। वर्षा भी कब की रुक चुकी है। आकाश निर्मेघ है। रास्तों पर भी कोई फिसलन नहीं। माँ को हम अपने कन्धों पर उठायेंगे तो वह कितनी प्रसन्न होगी ! उसके तुष्ट होने पर मनुष्य को यश, रूप, स्वास्थ्य, समृद्धि सब कुछ स्वतः मिल जाता है। महामाया की माया को कोई नहीं समझ सकता। हाँ ! मेरी बात याद रखना, बलि के दो बकरे खरीद कर रखना। या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता, नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कुछ दिनों बाद माधव लौटकर आया। उसने बकरों के बारे में गयापाणि से पूछा। उसके मौन रहने पर माधव बहुत नाराज होकर बोला, "तुम मेरा इतना-सा काम नहीं कर पाये, मुझ पर यदि कोई बड़ी विपत्ति आ गयी तो तुम हमारी क्या सहायता करोगे !"

गयापाणि अब वैष्णव धर्म के रंग में रँग कर रामदास बन चुका था। पहले वह शान्त रहा, कोई उत्तर नहीं दिया।

फिर उसे समझाते हुए कहा, "माधव ! मैं बलि के विरुद्ध हूँ। जीव-हिंसा करने से देवी प्रसन्न होती है, यह तुम्हारा भ्रम है। जीव मात्र उसकी सन्तान है। भला, कोई माँ अपनी सन्तान का वध किया जाना चाहेगी ? यह सब शाक्त ब्राह्मणों का रचा हुआ प्रपंच है। मैं जिस काम को करना पाप समझता हूँ, उसमें तुम्हारी सहायता कैसे कर सकता हूँ !"

"तुम अपना थोथा ज्ञान अपने पास रखो। यह परम्परा मैंने नहीं चलायी। कामाख्या कितना प्राचीन शक्तिपीठ है ! वहाँ माँ को तुष्ट करने के लिए पशु-बलि के साथ नर-बलि भी दी जाती है या नहीं ! तुममें प्राचीनकाल से चले आ रहे बलि-विधान का विरोध करने का साहस कहाँ से आ गया ! तुम कभी-कभी अपने किसी गुरु शंकर की बात किया करते हो, कहीं उसने तो तुम्हारे मन में परम्परा का विरोध करने का भाव नहीं भरा है !"

"माधव ! अपनी बात पर अड़े रहने से कुछ नहीं होगा और न ही इससे मेरी धारणा या विश्वास बदल जायेंगे। तुम अपने आपको बहुत बड़ा पण्डित मानते हो क्या ! तुम्हें यदि सचमुच अपनी बात को तर्क पर तोलना है तो मेरे साथ धुवाहाटा गुरु शंकर के पास चलो। वे यदि तुम्हें सन्तुष्ट नहीं कर सके तो जैसा तुम कहोगे मैं मानने को तैयार हूँ।" फिर उसे ललकारते हुए कहा—

मोर आगत तुमि आछा बरगोट ।
शंकरर ओचरत हबा लोट सोट ॥

"अच्छी बात है। मैं तुम्हारे गुरु के पास चलने को तैयार हूँ। मेरे शास्त्र-सम्मत तर्कों के सामने वे कैसे टिकते हैं, अब तो यही देखना है।"

रामदास समझ गया कि यह माधव का अहंकार बोल रहा है। इसने अनेक शास्त्र तो पढ़े हैं, परन्तु उनके मर्म को नहीं समझ पाया। दूसरे दिन सुबह धुवाहाटा जाना तय हुआ।

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मणि-कांचन संयोग

मिसिंगों की बस्ती से गुजरते हुए गयापाणि ने माधव को बताया, "मिसिंग यहाँ के पुरातनवासी हैं। ये हमारी तरह कहीं बाहर से आकर यहाँ नहीं बसे। कृषिजीवी मिसिंग लोगों की भाषा-संस्कृति भी बड़ी उन्नत है। मिसिंग महिलाएँ कुशल बुनकर होती हैं। करघे पर ही कपड़ों में सुन्दर फूल-लताएँ बुन लेती हैं।

"पिछले साल की बात है, ये अपने 'नराचिगा बिहू' में 'मिगम बरा' यानी सम्मानीय अतिथि बनाने के लिए शंकरदेव के पास नामघर में आये थे। मैं भी उनके साथ उत्सव में गया। केले के गाछों से इन्होंने बड़ी सुन्दर सजावट कर रखी थी। ढोल बजाकर और 'गुमराग' नृत्य कर इन्होंने हमारा स्वागत किया। यह लो, बातों में पता ही नहीं चला कि हम नामघर पहुँच गये।"

नामघर में हरि-प्रसंग चल रहा था। शंकरदेव का दिव्य कान्तिमय रूप देखकर माधव के मन में स्वतः एक श्रद्धाभाव उत्पन्न हुआ। किन्तु उस समय उसकी बुद्धि पर ज्ञान के अहंकार का पर्दा पड़ा था। शंकरदेव अपने कार्य से मुक्त हए तो रामदास ने उसका परिचय दिया, "गुरुदेव ! यह माधव भूयाँ है, मेरा साला लगता है। बण्डुका के बरकणागिरि का पुत्र है। यह शाक्त है, बलि-विधान पर इसका अटूट विश्वास है। मेरे से यह हठ करने लगा कि बलि दिये बिना देवी प्रसन्न नहीं होती। मैं इसे अपनी बातों से सन्तुष्ट नहीं कर सका। अब यह आपसे शास्त्रार्थ करना चाहता है।"

शंकरदेव मन्द-मन्द मुस्काये, माधव को ध्यानपूर्वक देखा। युवक के पौरुपदीप्त चेहरे पर गाम्भीर्य भाव था। आकर्षक व्यक्तित्व के माधव से मत-भिन्नता होकर भी उससे मिलकर उन्हें प्रसन्नता ही हुई। एक भक्त ने ताम्बूल-पान का बोटा माधव की अभ्यर्थना करने के लिए उसके सम्मुख रखा।

शंकरदेव ने कहा, "पुत्र ! लगता है, तुम मनोरमा बहन के बेटे हो ! इसके पहले तुम्हें कभी देखा नहीं, कैसे पहचानता !"

माधव ने कहा, "उस रिश्ते से आप मेरे मामा हो गये। मैं माँ से आपके बारे में सुना करता था। यह गयापाणि तो आपका पक्का भक्त है। किन्तु मैं इसकी कही उस बात को कैसे मान लूँ जिस पर मेरा मन विश्वास नहीं करता !"

"तुम्हारा अभिप्राय जानकर मैं प्रसन्न हुआ। रामदास ने बताया है कि तुम मुझसे शास्त्रार्थ करना चाहते हो। किन्तु मैं शास्त्रार्थ करने को अच्छा नहीं समझता। इससे दोनों पक्षों का अहं टकराता है।"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"आप जब तक मुझसे शास्त्रार्थ कर सन्तुष्ट नहीं करेंगे, मुझे चैन नहीं पड़ेगा।" माधव ने अपने मन की बात बिना किसी लाग-लपेट के कही।

शंकरदेव ने उसका हठ देख शास्त्रार्थ करने की अनुमति दे दी। फिर नामघर में उपस्थित भक्तों से उसका परिचय कराया। दोनों एक दूजे के सम्मुख आसनों पर बैठ गये। माधव ने अपनी बात रखी, "हम प्राचीन काल से दुर्गा पूजा करते आ रहे हैं। दुर्गा पूजा तथा यज्ञ में बलि-विधान अपरिहार्य है। इस पुराणोक्त कर्म को न करना कैसे उपयुक्त है ? यही बात मनु स्मृति में कही गयी है—

यज्ञार्थं पशवः सृष्टा स्वमेव स्वस्तुवा ।
यज्ञस्य भूतो सर्वस्य तस्माद् यज्ञे वधोऽवधः ।।"

शंकरदेव ने विचार कर कहा, "श्लोक का अर्थ तुम जैसा सोचते हो, वैसा नहीं है। यहाँ 'यज्ञार्थ' शब्द में तात्पर्य यज्ञ नहीं, विष्णु है, यज्ञो वै विष्णुः। इसलिए यज्ञार्थ का आशय है कि विष्णु की इच्छा से ब्रह्मा ने प्रभु आज्ञा से विश्व-प्राणि की सृष्टि की। उसी विष्णु के निमित्त किये गये कर्म अर्थात् यज्ञ में प्राणि-हिंसा करने पर हत्या करने का पाप लगेगा। अपनी इस व्याख्या को मनु के ही एक श्लोक से और स्पष्ट करता हूँ। श्लोक इस प्रकार है—

सर्वकर्मस्वहिंसाहि धर्मात्मा मनुरब्रवीत् ।
कामचारात् विहिंसन्ति बहिर्वेद्यां पशून् नराः ।।
योऽहिंसकानि भूतानि हिनस्त्यात्मसुखेच्छया ।
स जीवंश्च मृतश्चैव न क्वचित् सुखमेधते ।।

"मनु ने कहा है कि हमारे सब कार्य अहिंस होने चाहिये। किन्तु कामाचार में लिप्त व्यक्ति अहिंसा को न मानकर यज्ञ में पशु-हत्या करते हैं। इसके उपरान्त मनु ने यह भी कहा है—

नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसनुत्पद्यते क्वचित् ।
नच प्राणिवधः स्वर्ग्यः तस्मात् मांसं विवर्जयेत् ।।
अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी ।
संस्कर्त्ताचोपहर्ता च खादकाश्चेत यातकाः ।।

"अर्थात् प्राणी हिंसा किये बिना मांस का उत्पादन नहीं हो सकता। अन्य अर्थ में प्राणि-वध करने वाले को कदापि स्वर्ग नहीं मिल सकता और न ही उसकी इच्छित कामना ही पूरी होगी। इसलिए मांस का क्रय-विक्रय दोनों वर्जित हैं।"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शंकरदेव ने अपनी बात को पुष्ट करने के लिए आगे कहा, "मनु ने प्राणीवध न करने के पक्ष में इसी बात को ऐसे भी कहा—

योबन्धनवधक्लेशात् प्राणिनां न चिकीर्षति ।
स सर्वस्य हितप्रेप्सुः सुखमत्यन्तमश्नुते ।।
वर्षेवर्षेऽश्वमेधेन यो यजते शतं समाः ।
मांसानि च न खादेत् यः तयोः पुण्यफलं असम् ।।

"अर्थात् जो व्यक्ति किसी जीव को बांधकर या वध कर कष्ट देने की कामना तक नहीं करता, वही सबकी भलाई की चिन्ता में निमग्न रहकर सुख का उपभोग कर सकता है।

"माधव ! उपरोक्त मत मनु के हैं। अब दुर्गा पूजा में बलि देने की तुम्हारी बात पर आता हूँ। पद्मपुराण में स्वयं पार्वती शिव को कहती हैं—

ये ममार्चनमित्युक्त्वा प्राणिहिंसनतत्पराः ।
तत्पूजनं ममामेध्यं यद्दोषात् तदधोगतिः ।।
मदर्थे शिव कुर्वन्ति जीवघातनम् ।
आकल्पकोटि निरये तेषां वासो न संशयः ।।
यस्तु यज्ञे पशून् हत्वा कुर्यात् शोणितकर्दमम् ।
सः पचेत् नरके तावत् यावत् लोमानि तस्य वै ।।

"पार्वती कहती हैं कि मेरे नाम पर प्राणीहिंसा कर मेरी जो भी पूजा की जाती है वह मेरे लिए अपवित्र है। इस दोष को करनेवाले की अधोगति होगी। हे शिव ! तमोगुणी लोग मेरी पूजा करने के लिए जीव-हिंसा करते हैं। जीव-हिंसक को आकल्पकोटि काल तक नरक भोगना पड़ता है, इस बात में कोई सन्देह नहीं। जो पशुवध कर मिट्टी में रक्त का कर्दम अर्थात् कीचड़ करता है, उसे उस जीव के शरीर में जितने रोम हैं, उतने वर्षों तक नरक भोगना पड़ता है।

"माधव ! तुम स्वयं पण्डित हो, गम्भीरता से विचार कर देखो। प्राणी हत्या जैसा जघन्य कोई महाापप नहीं। तुम्हारे मन में जो शंका उठ रही है, वह मैं तुम्हारे कहे बिना ही समझ गया। तुम अश्वमेध यज्ञ का उदाहरण देना चाहते हो। किन्तु पुत्र ! अश्व का अर्थ केवल घोड़ा ही नहीं होता। अश्वमेध यज्ञ का मतलब घोड़े की बलि देने का यज्ञ नहीं।

"अश्व वै अन्नम् वा अश्नाति इति अश्वः । ब्राह्मण और निरुक्त नामक शास्त्रों में अश्व का अर्थ अन्न है। उसी प्रकार मेध का अर्थ वध नहीं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मेध का अर्थ है सींचना या दान देना। इसलिए अन्नदान करने को अश्वमेध कहते हैं। वेद में भी कहीं घोड़े की बलि देने का उल्लेख नहीं है। साधारण लोग अश्वमेध शब्द का सही अर्थ न कर पाने के कारण भ्रम में पड़ जाते हैं। क्या अब मैं यह आशा करूँ कि बलि-विधान के विषय में तुम्हारे मन में जो भ्रम थे, वे दूर हो गये !''

तरुण माधव के मन में छायी शंकाओं का अभी तक पूरा निराकरण नहीं हुआ था। उसका भ्रमित मन उहापोह में फँसा था। शंकरदेव ने उसके मन के भावों को पढ़कर उसे हरिनाम-महिमा के बारे में बताते हुए कहा, ''पुत्र ! धर्म, व्रत, पूजा, तर्पण, होम, ध्यान, धारणा सभी विष्णुस्वरूप है, सभी हरिमय है। इसी बात को गरुड़ पुराण में कहा है–

धर्मोविष्णुः व्रतो विष्णुः पूजा विष्णुश्च तर्पणं ।
होमः सन्ध्या तथा ध्यानं धारणा सकलं हरिः ।।

माधव ने अपने मन की शंका रखते हुए कहा, ''केवल हरिनाम की महिमा के बखान मात्र से कैसे मान लिया जाए कि इससे मनुष्य की मुक्ति हो जाएगी। हरिनाम पर आप इतना जोर क्यों दे रहे हैं ?''

''पुत्र ! हरिनाम का महत्त्व सदैव रहा है। इसे जपकर ही बालक ध्रुव, बालक प्रह्लाद ने हरि को पाया। रत्नाकर जैसा दस्यु राम-राम को उल्टा मरा-मरा जपकर आदिकवि वाल्मीकि बन रामायण की रचना करता है। हरिनाम का महत्त्व सतयुग, त्रेता और द्वापर में सदैव रहा है। इस कलियुग में हो रहे पापाचार अभी और बढ़ेंगे। लोगों में धार्मिक उन्माद-विद्वेष फैलेगा। आसुरी शक्तियाँ अपने मत को ही श्रेष्ठ मानकर अन्य मतावलम्बियों को अपना मत मानने के लिए ललचा-फुसलायेंगी और आतंकित करेंगी। जो उनके मत को नहीं मानेंगे उन्हें नाना प्रकार के कष्ट दिये जाएँगे।

''कलियुग के पापों से बचने का एकमात्र उपाय 'नाम-संकीर्तन' है। एक तरह से देखा जाए तो इसे कलियुग का गुण ही मानना चाहिये कि इसमें केवल हरिनाम संकीर्तन करने मात्र से ही दुर्लभ मनुष्य-जन्म सार्थक हो जाता है। श्रीमद्भागवत पुराण में कलियुग के धर्म के बारे में इस प्रकार कहा गया है–

कले दोषनिधेर्विप्रा अस्तिह्येको महान् गुणः ।
कीर्त्तनादेव कृष्णस्य मुक्तबन्धः परं व्रजेत् ।।
कृते यत् धार्यते विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

द्वापरे परिचर्य्यां कलौ तद्धरिकीर्तनात् ।।
तस्मात्ध्येयो हरिर्नित्यं ध्येयः पूज्यश्च शौनक ।।

"अर्थात् पापों के सागर इस कलिकाल में एक महान गुण भी है, इसमें हरि-कीर्तन करने मात्र से ही मनुष्य संसार के बंधन से मुक्त होकर परमपद को प्राप्त कर लेता है। सतयुग में तप-ध्यान, त्रेतायुग में यज्ञ और द्वापरयुग में दान-पूजा कर जो फल मिलता है वह कलियुग में हरि-कीर्तन करने मात्र से मिल जाता है। इसलिए कलियुग को हरिसेवा के लिए श्रेष्ठ युग माना गया है।"

माधव को मौन देखकर शंकरदेव ने हँस कर कहा, "उपरोक्त तथ्य ही हमारे एकशरणिया नामधर्म में समाये हैं। यह निवृत्ति मार्गी है, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। किसी कार्य सिद्धि के लिए कर्म करना प्रवृत्ति मार्ग है। दूसरे शब्दों में प्रवृत्ति मार्ग बड़ा दुष्कर है। किन्तु निवृत्ति मार्ग अति सरल है। हमारे पास जो भी है उसे यदि केवल मात्र मन से भी वासुदेव को अर्पण कर दें तो कार्य सिद्ध हो जाता है। 'त्वदीय वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये' का भाव ही निवृत्ति मार्ग में समाया है।"

माधव ने अपना तर्क दिया, "संसार में कर्म ही सार वस्तु है। पुराणों और गीता में भी लिखा है, कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।"

प्रत्युत्तर में शंकरदेव ने कहा, "यह बात तो सर्वमान्य है। गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को यह भी कहा है, 'सर्वधर्मान् परितज्य मामेकं शरणं व्रज', अर्थात् हम जो भी कार्य करें, वह ईश्वर को समर्पण कर, उसकी आज्ञानुसार ही करते रहना चाहिये। हमारे सभी कार्य निष्काम भाव से श्रीकृष्ण को समर्पित हैं, इस भावना से होने चाहिये।"

माधव ने अपने मन में बैठी बात को फिर दोहराया, "किन्तु लोगों का तो कहना है कि देवी पूजा नहीं करने पर अमंगल होता है। जीवन में अघटित घटना घट जाती है। हमारा धन-जन-ऐश्वर्य-विभूति सभी नष्ट हो जाती हैं !"

शंकरदेव ने व्याख्या करते हुए कहा, "पुत्र ! हम निवृत्ति मार्गी विष्णु-भक्त ऐसी सम्भाव्य विपदाओं की चिन्ता नहीं करते। हमारे लिए सुख-दुःख, सम्पद-विपद सब एक समान है।"

माधव ने फिर तर्क दिया, "किन्तु देवता जिस प्रकार परमेश्वर के अंश हैं, उसी प्रकार देवी भी तो उनकी अंश है। उसे नहीं पूजने पर क्या हम अपराधी नहीं होंगे ! वह हम पर रुष्ट नहीं होगी !"

"भागवती भक्ति करनेवाले वासुदेव-भक्तों की ऐसी धारणा नहीं होती। हमारे लिए समग्र भक्ति का एकमात्र सार है श्रीकृष्ण। एक श्रीकृष्ण को

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सन्तुष्ट करने पर सब देवी-देवता अपने आप सन्तुष्ट हो जाते हैं।''

इस तरह दोनों पण्डितों में चल रहा शास्त्रार्थ सन्ध्या तक चलता रहा। कोई भी एक दूसरे से सहमत नहीं हुआ। माधव श्लोकों द्वारा अपनी बात रखता और शंकरदेव अपने तर्कों से उसका खण्डन कर देते। आखिर उन्होंने अपने मत के समर्थन में माधव को श्रीमद्भागवत का एक श्लोक कहा—

यथा तरोर्मूलनिषेचनेन । तृप्यन्ति तत्स्कन्ध भुजोपशाखाः ।।
प्राणोपहाराश्च यथेन्द्रियाणां । तथाच सर्वार्चनमुच्यतेभ्यः[1] ।।

संस्कृत श्लोक सुनाकर शंकरदेव ने कहा, ''पुत्र ! साधारण लोगों की भी समझ में आने के लिए कामरूपी में इसका पद्यानुवाद इस प्रकार है—

वृक्षर मूलत येन दिले आनि जल ।
होवय तृपिति तार पत्र पुष्प फल ।।
डाले पाते सिंचे यदि मूलत नेदय ।
कदाचितो डाले पाते तृपिति नहय ।।
क्षुधातुर नरे यदि अन्नक भुंजय ।
तृपिति होये तार इन्द्रिय अतिशय ।।
भोजन विहिने पिन्धे वस्त्र अलंकार ।
इन्द्रियर किछु प्रीति नहय ताहार ।।
कृष्णक पूजिले समस्तरे पूजा हय ।
पृथके पूजिले केहु पूजा न लवय ।।

पद्यानुवाद द्वारा श्लोक की व्याख्या करने के उपरान्त शंकरदेव ने कहा, ''माधव ! निवृत्ति मार्ग का सर्व सुलभ, सहज, श्रेष्ठ और बैकुण्ठ के कल्पतरु के समान शास्त्र श्रीमद्भागवत पुराण है। यह सभी पुराणों में सर्वश्रेष्ठ है, इसमें तुम जरा भी सन्देह न करो। यों तो नाना मुनियों के नाना मत हैं, जिनसे लोग कभी-कभी भ्रमित भी हो जाते हैं। केवल श्रीमद्भागवत ही

---

1 श्लोक का भावार्थ : वृक्ष की जड़ में जल देने मात्र से उसकी डालियों-पत्तियों और फलों की तृप्ति हो जाती है। किन्तु वही पानी जड़ में न देकर यदि पेड़ की डालियों-पत्तियों पर डाला जाए तो वह सूख जाएगा। उसी प्रकार क्षुधातुर व्यक्ति के भोजन करने पर उसकी समस्त इन्द्रियाँ तृप्त हो जाती हैं। किन्तु व्यक्ति यदि भोजन की जगह वसन-भूपण ही केवल धारण करें तो उसकी इन्द्रियाँ तृप्त नहीं हो सकतीं। उसी प्रकार श्रीकृष्ण को न पूज कर अन्य किसी को पूजने से देवता भी तृप्त नहीं होते।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है जो मनुष्य के मन की शंकाओं का निवारण कर उसे हरिभक्ति की ओर ले जाता है। इसमें अनेक कथाएँ हैं जो नामधर्म की अपार महिमा बताती हैं। यह पुराण जीव को मोक्षलाभ देकर भवसागर से पार लगाता है। इसलिए सब मतों को छोड़कर एकमात्र हरि को भजो। माधव ! मैं समझता हूँ कि अब तुम्हारे मन की शंकाओं का निवारण हो गया होगा !''

शंकरदेव की ये बातें सुनकर माधव के मन में चल रही उथलपुथल में थोड़ी स्थिरता आयी। उसने पूछा, ''हरिभक्ति का क्या उपाय है ?''

शंकरदेव ने पुलकित होकर कहा, ''इसका एकमात्र उपाय है साधुसंगत अर्थात् सत् पुरुषों का संग। माधव ! सत्संग की महिमा अपार है। सत्संग भी दो प्रकार का है, बाहरी और भीतरी। माता-पिता, सन्तान, परिवार-परिजन, पड़ोसी, मित्र आदि बाहरी सत्संग है। इनकी प्राप्ति हमें अपने पूर्व जन्म के प्रारब्ध से होती है। हमारे भीतरी सत्संगियों में हमारी पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच तन्मात्रा (इन्द्रियार्थ पंचगुण--- गन्ध, रस, रूप, शब्द व स्पर्श), मन बुद्धि और चित्त हैं। भीतरी सत्संग को बाहरी सत्संगी अत्यधिक प्रभावित करते हैं। इसलिए बाहरी सत्संग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। बाहरी सत्संग करते हुए सावधान रहना आवश्यक है। हमें अपने विवेक से सत्संगी और कुसंगी के बीच भेद कर सही चुनाव करना होता है। कुसंगी मधुर वचन बोलता है। उसके वचनों की मधुरता से हमें वैसे ही बचना चाहिये जैसे शर्करा रोगी शक्कर से परहेज करता है। माधव ! यह संसार असार है। इसमें क्षण मात्र के लिए भी हमें साधुसंग मिल जाए तो हमारे जीवन की दशा और दिशा बदल सकती है। एक जगह लिखा है—

असार संसार यात नाहि एको सिद्धि ।
भकतर संग अर्धक्षणों नवनिधि ।।
साधु संगे सबारे निर्मल होवे मति ।
सघने उपजे कृष्ण चरणर रति ।।
हैन जानि प्रथमे लैबक साधुसंग ।
करिवेक आन विषयत मन संग ।।

माधव ने अपनी समस्त शंकाओं से निवृत्त होकर शंकरदेव के चरणों में घुटनों के बल झुककर प्रणाम किया। शंकरदेव ने उसके सिर पर हाथ फेर कर आशीर्वाद दिया। माधव योग्य गुरु का शिष्यत्त्व पाकर, माधव से माधवदेव हो गये। माधव ने अपने मन में गयापाणि (रामदास) का बहुत उपकार माना

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जिसके चलते ही उन्हें योग्य गुरु मिले जिन्होंने उनके ज्ञानचक्षु खोल दिये।

दूसरे दिन माधव नैवेद्य और वस्त्र लेकर गुरु शंकर से शरण लेने आये। उन्होंने संसार की माया का परित्याग कर दत्तचित्त हो हरिनाम लेने का मन ही मन संकल्प किया और आजीवन गुरु की सेवा में रहने का प्रण भी। शंकरदेव और माधवदेव का अद्‌भुत मिलन मणि-कांचन संयोग था। भारत के आकाश पर माधवदेव के रूप में एक उज्ज्वल नक्षत्र का अविर्भाव हुआ।

शंकरदेव को बदरीनाथ में देखे स्वप्न का स्मरण हो आया। उद्धव की कही बात सच घटित होनी ही थी। माधव के आने से एकशरणिया नामधर्म के प्रचार में तेज गति आयी। अब लगने लगा कि नामधर्म के माध्यम से पाटकाई पर्वत से लेकर करतोया नदी तक फैले भूखण्ड की भाषा-संस्कृति और अधिक समृद्ध होगी। माधवदेव गुरु के प्राणबांधव बन गये। गुरु उन्हें अपने पुत्र की भाँति मानने लगे।

माधव की स्मृतिशक्ति देखकर सब विस्मित थे। उनके पास भी गुरु शंकर जैसा सुमधुर कण्ठ था। उन्होंने शंकरदेव के गीतों का विभिन्न रागों में गायन कर नामघर के कीर्तन को और सरस बना दिया। लोगों की संख्या दिन प्रति दिन बढ़ने लगी। माधव गुरुसेवा में लगे रहते। उनके उठने के पहले वे गुरु के दातुन, गरम पानी, तेल, धोती, गमछा सब की व्यवस्था स्वयं करते। भोजन के बाद उनके हाथ-मुँह धुलाते। फिर स्वयं अन्न ग्रहण करते। उनके साथ ही कीर्तनघर जाते। नाम-प्रसंग करते। गुरु के विश्राम करने के बाद ही स्वयं विश्राम करते। उन्हें इस प्रकार गुरुसेवा करते देख कालिन्दी उन्हें टोका करती, ''माधव ! सब काम तुम्हीं करोगे तो फिर मैं क्या करूँगी ! तुम इतना कष्ट क्यों करते हो ! घर में दास-दासी भी तो हैं।''

माधवदेव कहते, ''माता ! आप अनुग्रह कर इस काम से मुझे वंचित मत कीजिये। यह मेरा कर्तव्य है। गुरुदेव की उम्र अधिक हो गयी है। अभी उन्हें बहुत काम करने हैं। वे जो कार्य कर सकते हैं, उन्हें अन्य कोई कदापि नहीं कर सकता। इनके स्वास्थ्य का दिनरात ध्यान रखना अति आवश्यक है। ये नियम-प्राणायाम से चलते हैं। हरि ने चाहा तो ये शतायु से अधिक जीवित रहेंगे। इनका दीर्घजीवी होना आवश्यक है, हमारे लिए, धर्म-संस्कृति के लिए और अपने राष्ट्र के लिए भी। माता ! मेरा मन कहता है कि अब ये अपने कार्य को और तेज गति से बढ़ायेंगे।''

माधवदेव जैसे परम सुन्दर और गुणी पुरुष को देखकर कालिन्दी ने अपनी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वारह वर्षीय पुत्री रुक्मिणी के लिए उन्हें उपयुक्त वर मान लिया। रुक्मिणी का भी अपने केशौर्य स्वभावानुसार उनसे हेलमेल बढ़ता गया। इसे कालिन्दी ने अपनी बेटी का उनके प्रति सहज आकर्षण समझा। वे मन ही मन माधव को अपना जंवाई बनाने के ताने-बाने बुनने लगीं। एक दिन अवसर देखकर उन्होंने अपने मन की बात पति को बतायी। शंकरदेव अपने शिष्य के मन को पढ़ चुके थे। वे जानते थे कि माधव का क्या उत्तर होगा। किन्तु पत्नी के बार-बार टोकने पर एक दिन उन्होंने माधव से कहा, "पुत्र ! तुम्हें अपने घर-संसार के वारे में भी सोचना चाहिये। और कितने दिन यों ही एकाकी जीवन जीओगे ? तुम कहो तो मैं तुम्हारे लिए किसी योग्य कन्या की खोज करूँ !"

माधव को मौन देखकर शंकरदेव ने उसे पुनः कहा, "माधव ! यह संसार एक समरभूमि है। इसमें व्यूह रचना कर युद्ध करना ही उचित रहता है।"

माधवदेव सारी वातें समझ रहे थे। उन्होंने विनम्रतापूर्वक शंकरदेव से कहा, "गुरुदेव ! व्यूह रचना कर युद्ध करने वाला योद्धा होता है, परन्तु विना किसी व्यूह रचना के जो युद्ध करता है वह तो महायोद्धा हुआ न !"

शंकरदेव को माधव से ऐसे ही उत्तर की अपेक्षा थी। फिर भी उन्होंने कहा, "माधव ! इतना आत्मविश्वास तुमने कहाँ से प्राप्त किया !"

माधव ने पहले की भाँति ही विनम्रता से कहा, "गुरुदेव ! यह सब आपके आशीर्वाद का प्रताप है। अन्यथा इस माधव में क्या था। पान-ताम्बूल खरीद-वेचकर अपना पेट भरता था।"

ये वातें सुनकर कालिन्दी ने जो भी सोचा हो, परन्तु शंकरदेव अति प्रसन्न हुए। उन्होंने सोचा, मैं भी माधव की तरह दृढ़प्रतिज्ञ रहता तो घर-संसार के जाल में नहीं फंसता। मानना पड़ेगा, माधव कुछ बातों में मुझसे भी बढ़कर है। मैं प्रथम पुत्र रामानन्द के जन्म के समय कितना विचलित हुआ, तभी तो मैंने 'पावे परि हरि, करोहु कातरि, प्राण राखवि मोरे' गीत रचा। फिर अपने भावों को 'गोपाल कि गति कैले, गोविन्द कि मति दिले' में व्यक्त किया। किन्तु अव घर-संसार वसा ही लिया है तो यह सव सोचने से क्या लाभ होगा ! मुझे राजा जनक की तरह गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए निर्लिप्त संसारी की भाँति जीवन व्यतीत करना होगा।

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शंकरदेव का बढ़ता प्रभाव

आहोम स्वर्गदेव सुहुंग्मुंग धुवाहाटा में वास कर रहे भूयाँओं के प्रति सदय था। इसमें मुख्य भूमिका जगतानन्द की थी। उसका आहोम दरवार में बरावर आना-जाना था। आहोम राजा ने उसके व्यवहार से प्रसन्न होकर धुवाहाटा का राजकार्य चलाने का जिम्मा उसे दे दिया। रामराय की उपाधि से विभूषित जगतानन्द इस कार्य को शंकरदेव के दामाद हरि भूयाँ के साथ मिलकर सुचारु रूप से चलाने लगा।

सुहुंग्मुंग के शासनकाल में मुसलमानों ने उसके राज्य पर तीन वार आक्रमण किये। पहले हमले में उन्हें हराकर आहोम सेना के हाथ बड़ी मात्रा में गोला-वारूद और तोपें लगीं। आहोम पहली बार तोप-बारूद से परिचित हुए। उसके चार साल बाद ही सेनापति तुरबक के नेतृत्व में मुसलिम सेना का फिर हमला हुआ। उनसे लड़ने के लिए आहोम राजकुमार सुक्लेनमुंग के अधीन नामरूप के राजा का बेटा फाचेंग्मुंग बरगोहाँई भी गया। आहोम सेना के हार जाने और फाचेंग्मुंग के युद्ध में मारे जाने पर उसकी पत्नी मुलागाभरु बहुत आहत हुई। उसे इस वात का मलाल था कि युद्ध में जाते हुए पति को वह एक रात में सूत कात-बुन कर मन्त्र सिद्ध कवच-कापोर (कवच-कपड़ा या कवच-वस्त्र) नहीं भेंट कर पायी। यह दिया होता तो शायद वह नहीं मरता। वीरांगना मुलागाभरु घोड़े पर सवार होकर अपनी स्त्री-सेना लेकर तुरबक से युद्ध करने गयी और अपने प्रोणोत्सर्ग किये।

उस हार का वदला लेने कनसेंग बरपात्रगोहाँई ने नयी सुसज्जित सेना को लेकर योजनाबद्ध तरीके से तुरवक से घमासान युद्ध किया, जिसमें तुरबक और उसका साथ दे रहे हुसैन खाँ मारे गये। विदेशी आक्रान्ताओं को करतोया नदी के पार तक खदेड़ा। इसी तरह सुहुंग्मुंग की सेना ने नोगाँव के कोलियाबर में भी मुसलमानों के तीसरे हमले को निरस्त किया।

दिहिंगिया राजा सुहुंग्मुंग द्वारा सुतिया और कछारी राज्यों को परास्त कर अपने राज्य में मिला लेने के वाद आहोम राज्य पूर्व में सदिया से लेकर पश्चिम में धनश्री नदी की उपत्यका तक विस्तारित हो गया। उसने हिन्दू धर्म अंगीकार कर अपने राज्य में शक संवत् का प्रचलन किया। ब्राह्मणों को अपनी राजसभा में स्थान दिया। राज्य का संरक्षण पाकर ब्राह्मण वर्ग स्वेच्छाचारी बनता गया। राजानुग्रह प्राप्त होने पर उनके पास भूमि की कोई कमी नहीं रही। साधारण भूमिहीन किसान उनकी जमीन में हलवाहों का

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

काम कर अपनी जीविका चलाने के लिए विवश थे। ब्राह्मणों में अनेक ज्ञानी, अध्ययनशील और शास्त्रों के ज्ञाता भी थे, परन्तु कर्मकाण्डी अपने स्वार्थ के वशीभूत होकर लोगों को रूढ़िवादिता में जकड़े रखते। केवल ब्राह्मणों को ही शिक्षा प्राप्त करने का अधिकारी माना जाता, जबकि साधारण लोग विद्या-अध्ययन से वंचित थे। हाँ, कुछ उच्च वर्णीय कायस्थ आदि अवश्य अध्ययनशील थे। हिन्दू प्रजा अपनी श्राद्ध-विधि तथा धार्मिक कार्य पुरोहितों द्वारा कराते आये थे। किन्तु पर्वतों पर और वनों में बसे लोगों पर ब्राह्मणों का प्रभाव नहीं था, क्योंकि वे अपने-अपने प्रचलित धर्म-विश्वासों पर चलते थे। हिन्दू धर्म की बारीकियों को आहोम राजा नहीं समझता था। यह स्वाभाविक भी था। वह उसी बात को सत्य मान लेता जो उसे उसकी राजसभा के पुरोहित समझाते।

उधर कमता राज्य में विश्वसिंह ने हुसैन शाह से कमता राज्य को जीत कर अपने कोच राजवंश के नाम पर कोच राज्य की सन् 1515 में नींव डाली थी। उसने करीव अठारह वर्ष तक शासन किया। विश्वसिंह की कामरूप, मिथिला, वाराणसी, नेपाल, कश्मीर आदि स्थानों की अठारह रानियाँ थीं जिनसे उसे अठारह पुत्र थे। उनमें मल्लदेव और शुक्लध्वज की शिक्षा-दीक्षा वाराणसी में हुई। बड़ा पुत्र मल्लदेव नरनारायण (सन् 1533-1584) के नाम से पिता का उत्तराधिकारी बना। उसने अपने छोटे भाई शुक्लध्वज को, जो चीलाराय के नाम से प्रसिद्ध हुआ, अपना मन्त्री व सेनापति बनाया। तीसरे भाई गोहाँईकमल को राज्य की धन-सम्पद्धा का भार सौंपकर अर्थमन्त्री बनाया गया। स्वयं नरनारायण विद्योत्साही और शास्त्रज्ञ था। शाक्त धर्म में उसकी अटूट श्रद्धा थी। वह माँ कामाख्या का परम भक्त था। धर्मप्राण लोगों के लिए वह सदय था।

चीलाराय रणविद्या में निपुण सुदक्ष सेनापति था। उसके पिता विश्वसिंह के मन में दिग्विजय करने की जो कामना थी, वह उसके जीते जी पूरी न हो सकी। अव चीलाराय आहोमों के हाथों हुई अपने पिता की हार का बदला लेना चाहता था। उसने आहोम राज्य को जीतने के उद्देश्य से अपने राज्य की सीमा उस राज्य तक बढ़ायी।

शंकरदेव के शिष्यों में माधवदेव के साथ व्यास कलाइ, हरि मिश्र, जगन्नाथ जैसे कुछ ब्राह्मण भक्त भी थे। उनके द्वारा सर्वसाधारण के लिए खोले गये भक्ति-द्वार से आकर्षित होकर असम (आहोम) राज्य में रहनेवाले अनेक किरात, कछारी, खासी, गारो, मिरी (मिसिंग), यवन, कंक, ग्वाल, धोबी, तुर्क,

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कोच, म्लेच्छ, चण्डाल जाति के लोग भी नामघर में आने लगे। शंकरदेव का मानना था कि ये सभी कृष्ण-सेवक के संग मात्र से पवित्र हो जायेंगे। ये भक्ति प्राप्त कर इस संसार से तर कर सुखपूर्वक बैकुण्ठ को जायेंगे। उन्होंने अपने मत को शब्दों में ढालते हुए इस प्रकार लिखा—

किरात कछारी खाछि गारो मिरी,
यवन कंक गोवाल।
असम मुलुक रजत तुरुक
कुवाच मलेच्छ चण्डाल ।।
आनो यत नर कृष्ण सेवकर
संगत पवित्र हय।
भकति लभिया संसार तरिया
बकुण्ठे सुखे चलय ।।

शंकरदेव ने अनुभव किया, अपने को उच्च जाति के बताने वाले हरि-भक्ति से विमुख होते जा रहे हैं। उन्होंने एक जगह लिखा है—

ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इटो तिनि जाति ।
नुशुनिबे हरि भकतिक काण पाति ।।
शूद्र सब अनेक कैवर्त आदि करि ।
अन्त्यजे पर्यन्त भजिबेक महाहरि ।।
अप्रयासे लभिब ईश्वर महाज्ञान ।
एतेके कलित शूद्र कैवर्त प्रधान[1] ।।

नववैष्णव धर्म के प्रभाव को ब्रह्मपुत्र की उपत्यका में विस्तार पाते देखकर कर्मकाण्डी ब्राह्मणों को अपनी आजीविका की चिन्ता सताने लगी। श्राद्ध-कर्म में मृतक की आत्मा की शान्ति के लिए साधारण व्यक्ति भी अपनी भूमि बेचकर या कर्जा लेकर ब्राह्मण-भोजन कराते। समाज में प्रचलित प्रथा के नाम पर कर्मकाण्डियों को शैय्यादान तथा अन्य अनेक प्रकार के दान देने पर लोग विवश थे।

देवी के सामने दी जाने वाली वलि के शंकरदेव प्रवल विरोधी थे।

---

1 पद का भावार्थ : अर्थात् अब ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन तीनों जाति के लोग हरि भक्ति की वातों पर अपने कान (काण) नहीं देते यानी नहीं सुनते। इस कलिकाल में शूद्र कहे जाने वाले कैवर्त, अन्त्यज ही महाहरि को भजकर बिना प्रयास के ईश्वर के महाज्ञान का लाभ करेंगे। कलि में शूद्र कैवर्त ही प्रधान होंगे यानी इन्हीं का राज्य होगा।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उनका मानना था कि जो अहंकारी पूजक बलि-विधान से पूजा-अर्चना करता है वह श्वपच, महामलेच्छ से भी अपवित्र है। समाज चाण्डाल को अछूत मानता है परन्तु बलि-विधान करनेवाले पापी पर तो दृष्टि पड़ना भी पाप है। जंगत-पिता श्रीकृष्ण कहते हैं, मैं प्रत्येक जीव का पिता हूँ। बलि देना मेरा अपमान करना है। जो यह घृणित कार्य करता है, उसके जैसा कोई और पापी इस ब्रह्माण्ड में नहीं। वही राक्षस है, वही बड़ा असुर है, उसमें अनेक जन्मों के अनन्त पाप समाये हैं। मुझे छोड़कर जो अन्य को पूजता है, जीव की बलि देता है वह इसका परिणाम भी भुगतता है। चाहो तो इसका प्रमाण ले लो। इस बात को उन्होंने इस प्रकार लिखा—

जिटो महा मलेच्छ खाइ कुकुरक मारि ।
तातो करि अपवित्र सि सि अहंकारी ।।
देखि बुर दिबे लागे नाहिं आत छिद्र ।
चाण्डालरो अशोच्य हेन चे अपवित्र ।।
मइ निज पितृक करिल अपमान ।
ब्रह्माण्ड तो नाहि पापी ताहार समान ।।
सेहि से राक्षस सेहि परम असुर ।
अनेक जन्मर आछे पातेक प्रचुर ।।
ताते न आनक पूजे करै बलिदान ।
मोहोर वाक्यर सखि लैयोक प्रमाण ।।

बलि का विरोध शाक्त ब्राह्मणों को भी नहीं सुहा रहा था क्योंकि बलि न दिये जाने पर उन्हें मिलने वाले मांस में कमी आ गयी थी। शंकरदेव के प्रति उनका विद्वेष इतना अधिक बढ़ गया कि वे उनके अनुयायियों को खुले आम गालियाँ देने लगे, कभी-कभार मारपीट तक भी कर लेते। इस पर भी शंकरदेव अपने भक्तों को नामधर्म का पालन करते हुए शान्त रहने की ही शिक्षा देते।

रतिकान्त भी उन शाक्त और कर्मकाण्डियों के साथ मिला हुआ था। विरोधी एकशरणिया वैष्णव धर्म के विरोध में गुप्त सभाएँ कर शंकरदेव को नीचा दिखाकर आहोम राजा से दण्ड दिलाने का षड्यन्त्र रचने में लगे थे।

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सतत रचनाशीलता

नामघर में नित्य चल रहे कीर्तन के साथ शंकरदेव का लेखन भी चलता रहा। उधर कर्मकाण्डी निरन्तर उनके दुष्प्रचार में लगे थे। ऐसे मानसिक तनाव के क्षणों में भी उनका मन कुछ नया रचने के लिए उत्प्रेरित हो रहा था। इन कर्मकाण्डी और तथाकथित वेदज्ञानी, घमण्डी ब्राह्मणों के अहंकार को चूर करने के उद्देश्य से उन्होंने भागवत के दशम स्कन्ध के तेईसवें अध्याय की कथावस्तु पर आधारित 'पत्नी प्रसाद' नामक नाटक लिखा। इस रचना में भागवत में वर्णित श्रीकृष्ण अपनी वाल-लीला करते हुए क्षुधार्तु गोप-वालकों को खाद्य सामग्री लाने के लिए यज्ञ करते हुए ब्राह्मणों के पास भेजते हैं, परन्तु दम्भी ब्राह्मण ''हामे वेदत शास्त्रत परम पारंगत, यज्ञव्रतदाने परम पवित्र, हामो सव भूदेवता, हामाक सर्वलोके यजय। नन्दसुत कृष्ण हामाक आगु कोन हय''[1] कहकर उन गोपबालकों का अपमान कर लौटा देते हैं। किन्तु श्रीकृष्ण पर श्रद्धा रखनेवाली ब्राह्मण-पत्नियाँ अपने पतियों की बात न मानकर उनसे छिपकर अनाज की थालियाँ भर-भर कर कृष्ण-दर्शन को निकल पड़ती हैं। एक ब्राह्मणी को उसके पति द्वारा घर में वंदी बनाकर रखने पर वह अपने प्राण-त्याग कर श्रीकृष्ण में लीन हो जाती है। अहंकारी ब्राह्मणों को अपनी पत्नियों के सौभाग्य के बारे में जानकर अपनी भूल पर बहुत पछतावा होता है। अपनी पत्नियों की कृष्ण-भक्ति देखकर उनका ज्ञानान्धकार दूर होता है और वे ''श्रीकृष्ण शरण लैया गर्व सव छाड़ि श्रवण-कीर्तन करिये''[2] कहकर क्षमा याचना करते हैं।

'पत्नी-प्रसाद' में यज्ञ-याग और ब्राह्मण पत्नियों की श्रीकृष्ण-पूजा के पारस्परिक द्वन्द्व और अन्ततः श्रीकृष्ण-पूजा की श्रेष्ठता के निरूपण द्वारा भक्ति की विजय प्रतिपादित की गयी। मानसिक तनाव में शंकरदेव इस रचना के प्रारम्भ में नान्दी पाठ और अन्त में भी कोई मुक्तिमंगल भटिमा नहीं लिख पाये। सोद्देश्य लिखी गयी इस नाट्यकृति से उन्हें कितना मानसिक सन्तोष मिला होगा !

अव उन्होंने पद्म पुराण के स्वर्ग-खण्ड के आधार पर 39 पयार छन्दों

---

1 तथा 2. ये दोनों गद्यांश हरिनारायण दत्तवरुवा द्वारा सम्पादित 'श्रीशङ्कर वाक्यामृत' के 'पत्नी प्रसाद' नाटक से लिये हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

में 'नामापराध' को रचा। इसमें नामत शरण की महत्ता-गायन के साथ-साथ नाम-स्मरण के क्रम में भक्तों द्वारा होनेवाले दस अपराधों की चर्चा की गयी है।

शंकरदेव के तो रोम-रोम में भागवत बसी थी। इस पर आधारित श्रीकृष्ण की 'शिशुलीला' (120 पद) और 'कालिय-दमन' (45 पद) में श्रीकृष्ण के बचपन से कालिय-दमन तक की लीलाओं का संक्षिप्त किन्तु संलिष्ट वर्णन किया गया।

फिर 218 पदों में 'रासक्रीड़ा' की रचना की। इसमें सौमनस्य और शृंगार के वियोग एवं संयोग दोनों रूपों का वर्णन है। इसी तरह 214 पदों में 'कंसवध' रचना को ओज-गुण और नाटकीयता से परिपूर्ण भाषा में लिखा।

उनकी लेखनी सतत चलती रही, जिससे 11 पदों में 'कुजीर बांछा पूरण' (कुबड़ी कुब्जा की कामना पूर्ति) और 12 पदों में 'अक्रूरर बांछा पूरण' (अक्रूर की कामना पूर्ति) जैसी वर्णनात्मक कीर्तन शैली में लिखी रचनाएँ प्रस्फुटित हुईं।

अब शंकरदेव के मन में श्रीमद्भागवत् के दशम स्कन्ध में वर्णित 'गोपी-उद्धव संवाद' की कथा पदबद्ध करने की प्रेरणा जागी। वे कल्पना करने लगे, गोकुल से श्रीकृष्ण के मथुरा चले जाने पर गोपियाँ बड़ी व्यग्र हैं। वे जानती हैं, भक्ति से ही श्रीकृष्ण को पाया जा सकता है। किन्तु उद्धव को अपने शास्त्रज्ञान का बड़ा अभिमान है। वे सोचते हैं, ज्ञानमार्ग से ही ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है। इसकी चर्चा वे अपने मित्र श्रीकृष्ण से करते हैं। वे उनके मन में छाये ज्ञान के अभिमान को ताड़ जाते हैं। वे विरह में जी रहीं गोपियों की सुध लेने और उन्हें अपना ज्ञान देने उद्धव को गोकुल जाने को कहते हैं।

गोपियाँ उद्धव को अपनी विरह-कथा बताती हैं। वे कुछ दिन उनके पास रहकर ज्ञान-प्रवचनों से गोपियों का विरह कम करने की चेष्टा करते हैं।

गोपियाँ उल्टे उद्धव को श्रीकृष्ण-प्रेम की महिमा समझाने लगीं। उन्होंने कहा, "भक्ति को भला ज्ञानी कैसे समझ सकता है। हे उद्धव ! तुम अपने ज्ञान से हमारी भक्ति को कम नहीं कर सकते। भक्ति में तर्क नहीं चलता। तर्क करनेवाले के मन में भक्ति की भावना नहीं जागती। भक्ति के लिए किसी प्रकार के ज्ञान की आवश्यकता नहीं।" उद्धव को अपने ज्ञान-प्रवचन का गोपियों पर कोई असर नहीं होते देख, वे स्वयं अपना ज्ञान-मार्ग विसरा कर भक्ति के मार्ग पर चल पड़ते हैं। इसके साथ उनके मन का

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अभिमान भी समाप्त हो जाता है।

पूरे प्रसंग को शंकरदेव ने विभिन्न रागों और स्वरों में कुल चौबीस (24) पदों में साँचिपात पर उतारा। उन्होंने काव्य की पंक्तियों में जैसे स्वयं को गोपियों की विरह वेदना में डुबो दिया। गोपियाँ कहती हैं–

कान्दि कान्दि सोधे कथा कहियो उद्धव ।
आर कि देखिबो सिटो प्राणर माधव ।।
कैसानि आसिबे कृष्ण कैयो निष्ट करि ।
आशातेसे आछो कथमपि प्राण धरि ।।

इसके साथ ही भक्ति की महिमा बताती हुई गोपियाँ कहती हैं, "भक्ति मात्र से हमें मुक्ति मिल जाएगी। प्रेम और विरह के योग से हमें मोक्ष मिल जाएगा।" शंकरदेव ने आगे लिखा–

एक गोपी स्त्री जाति, आरो व्यभिचारी आति
सदाय वनत भ्रमे मात्र ।
आश्चर्य आश्चर्य किनो, एसम्बो कृष्णर पुनु
परम भक्तिर भैल मात्र ।।
कृष्ण चरणे, गोचर आमार
जनाइबा उद्धव प्राण ।
ताने पावे मात्र, थाकोक भकति
नमागोहो आन दान ।।
कृष्णर चरण, पंकजत सिटो
नेरोक आमार मने ।
रामकृष्ण नाम, सदा नछारोक
आमार इटो वचने ।।

रचना पूरी कर शंकरदेव का मन महातृप्ति से भर गया। भला इस बात को कोई कैसे समझता कि उन्होंने कैसा अद्भुत काम किया। उन्होंने रामराम, जगतानन्द और अन्य बन्धुओं को बुलाकर अपनी रचना को सस्वर गाकर सुनाया। रचना में भक्ति की महिमा सुनकर सभी मुग्ध हो गये। इससे प्रेरित होकर शंकरदेव ने निर्णय किया कि इसी प्रकार सम्पूर्ण श्रीमद्भागवत का कामरूपी में पद्यमय प्रणयन करना है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

एक दिन शंकरदेव कथा-प्रसंग में माधवदेव को नवधा भक्ति के बारे में बताने लगे, "माधव ! भक्ति नौ प्रकार की होती है, श्रवण, कीर्तन, स्मरण, अर्चन, पदसेवा, दास्य, सांख्यभाव, वन्दन और देहार्पण। ये नवधा भक्ति कहलाती हैं। इनमें श्रवण और कीर्तन को ही सर्वश्रेष्ठ भक्ति माना गया है। मेरी समस्त रचनाओं में इसी का प्रतिपादन हुआ है।"

थोड़ा रुककर वे आगे बोले, "पुत्र ! मैं जानता हूँ कि तुममें भी रचनाधर्मिता है। तुम भी अपनी रचनाओं में श्रवण और कीर्तन को ही विशेष स्थान देना। गीतों में भिन्न-भिन्न प्रकार के पद, छन्द, राग-रागिनियाँ होनी चाहिये जिससे भक्त उनमें अपना मन रमा कर हरि-भक्ति की ओर उन्मुख हो।"

शंकरदेव का मन फिर से गोपियों के प्रति श्रीकृष्ण की विरह वेदना को याद कर द्रवित हो उठा। गोपियों की भाँति श्रीकृष्ण भी उनके विरह में व्याकुल हैं। वे मन की व्यथा अपने सखा उद्धव को बताकर उन्हें गोकुल जाने के लिए प्रेरित करते हैं। अपने इन भावों को शंकरदेव ने राग 'श्री' में स्वरबद्ध इस गीत में रचा–

ध्रु– उद्धव चलहु गोकुले लाइ ।
हामु विने गोपीर तिलेके युग जाइ ।।
पद– हामु चित्तवित्त नित हामाकु धियाना ।
धरल नियोगे गोपी कथमपि प्राणा ।।
हामाकेसे आसे गोपी जीवे समुदाय ।
बहुरि आवव कृष्ण भेटब दुनाइ ।।
कह कृष्ण किंकर हरिक भज लोइ ।
हरि विन सुहृद वान्धव नाहि कोइ ।।

यह गीत लिखकर शंकरदेव गोपियों के विरह की कल्पना कर व्याकुल हो गये। उद्धव का परिचय जान गोपियाँ उन्हें बताती हैं कि अपने प्राण-वान्धव श्रीकृष्ण के विना वे अचेतन हो गयी हैं। वृन्दावन की गायें जव अपने वछड़ों को देखती हैं तो हमारे शरीर में आग लग जाती है। गोपियों के विरह भावों को उन्होंने राग 'तुर वसन्त' में रचे एक अन्य गीत में यों व्यक्त किया–

ध्रु– कहरे उद्धव, कह प्राण वान्धव हे, प्राण कृष्ण कवे आवे ।
पूछये गोपी प्रेम आकुल भावे, नाही चेतन गावे ।।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पद-बासुरि ध्वनि सुनि गोवत्स पेखि । लागे आगि गावे उद्धव सखि ।।
कालिन्दी पेखी सखि फूटय बुक । एथाये खेलाइछिल से चान्द मुख,
हरि नयन सुख ।।
विरिन्दावन बैरि हामारि भेलि । पेखिते ना विछुरु गोपाल केलि ।।
ध्वज ब्रज यव पंकज चाइ । तथाये कान्दो हामो लोटाया काय,
गुण गोविन्द गाय ।।
कृष्ण सूर्य विने ब्रज आन्धार । ने देखो ए दुख आवधि पार ।।
आर कि पेखबो गोपाल प्राण । कृष्णर किंकर शंकर भाण ।।

बारिश थमने का नाम नहीं ले रही थी। चार दिनों से लगातार पानी गिर रहा था, फिर भी नामघर में हरि-कीर्तन समयानुसार नियमित चलता रहा। कीर्तन में कभी 'प्रह्लाद-चरित्र', कभी 'रासक्रीड़ा' के गीत गाये जाते। एक दिन रामराम ने गुरु शंकर रचित 'कंस वध' का एक गीत गाकर सुनाया–

पारे भिरि ताक करि आक्रान्त ।
लैलन्त उभारि हस्तीर दाँत ।।
हस्ती हस्तियार दुइको जपाइ ।
मारिलन्त गज-दाँते कोबाइ ।।
मरा कुवलियापीड़क एरि ।
पशिला रंग-शाला राम हरि ।।

रामराम ने व्याख्या कर कहा, "श्रीकृष्ण ने कुवलय नामक हाथी को मार, उसके दाँतों को उखाड़ अपने कन्धों पर रख बलराम के साथ कंस की रंगशाला में प्रवेश किया।"

उस दिन के प्रसंग को वहीं विराम देते हुए रामराम ने कहा, "आगे की कथा कल कहेंगे।"

शीत काल आया। खेतों से फसल कटकर खलिहानों में आ गयी। नये अनाज के साथ दूध-दही की भी घरों में भरमार हो गयी। नदी-पोखरों में मछलियों की वहुतायत थी। ऐसे ही समय में इन वस्तुओं का भोग करने का त्योहार भोगाली विहू आया। कड़कड़ाती ठण्ड में आग की तपस सबको सुहाती है। यों भी अग्नि का स्थान अपनी जगह सर्वोपरि है। इसी अग्नि को सन्तुष्ट करने के लिए माघ महीने की संक्रान्ति को आने वाले इस माघ विहू में गाँव के

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लोगों ने मिलकर खेतों में जगह-जगह भेलाघर या मेजी (बाँस-पुआल और केले के सूखे पत्तों के त्रिकोणी अग्नि मन्दिर) बनायीं। भेलाघर के साथ केले का पौधा रोपकर धान के फूस से 'धर्मर पूंजी' (छोटा-सा पूजा-घर) बनाये गये।

भोगाली बिहू की पूर्व सन्ध्या 'उरुका' पर सामूहिक प्रीति-भोज के लिए नामघर की रसोई में चावल के आटे से अनेक प्रकार के पीठा तैयार किये गये। तिल-गुड़ के लड्डू और 'हापनिया' पीठा विशेष रूप से बनाये गये। नारियल पीठा, घीला पीठा, चुंगा पीठा, महुरा पीठा आदि पकवान भी बने। दूध-दही, गुड़, केलों के साथ चिवड़ा और कोमल भात भी गृहणियाँ अपने घरों से बनाकर ले आयीं।

नामघर में रात को हुए हरिकीर्तन में जैसे पूरा धुवाहाटा और आसपास के गाँवों के लोग उमड़ पड़े। पाँव रखने की भी जगह नहीं रही। शंकरदेव लोगों का ऐसा समागम और उत्साह देखकर अत्यन्त प्रसन्न थे। उनके नामधर्म का उद्देश्य ही आपसी भेदाभेद भूलकर, एक साथ जमा होकर सामूहिक हरिकीर्तन करते हुए अपने जीवन का उत्थान कैसे किया जाए, यही लोगों को सिखाना था। कीर्तन करते पूरी रात बीत गयी।

सुबह शंकरदेव ने सबके साथ नदी में स्नान कर नवीन वस्त्र धारण किये। मेजी के पास पहुँचकर सर्वप्रथम 'धर्मर पूंजी-घर' और मेजी की श्रद्धापूर्वक पूजा कर तिल, चावल और भुने हुए उड़द अर्पण किये, फिर ताम्बूल-पान चढ़ा, अभ्यर्थना कर अग्नि का आह्वाहन किया—

अग्निं प्रज्वलितं वन्दे चतुर्वेदं हुताशनं ।
सुवर्णवर्ण अनलं ज्योतिरूपायते नमः ।।

मन्त्रोचार के साथ धर्मर पूंजी-घर को प्रज्ज्वलित कर मेजी को भी अग्नि को समर्पित करते हए उन्होंने ईश्वर की अभ्यर्थना की, "हे हरि ! इस मेजी की अग्नि में हमारे मन की सारी दुष्प्रवृत्तियाँ भी जल कर राख हो जाएँ और सभी के मन में हरि-स्मरण और सुसंस्कृति का प्रकाश आलोकित हो।"

सवने समवेत स्वर में 'हरि बोल, हरि बोल' के उद्घोष किये। सभी के शरीर की ठण्ड अग्नि की उस तपन में जैसे डूब गयी। धुवाहाटावासी होलिका-दहन जैसे आनन्दोत्सव में खो गये।

समय-चक्र के साथ फागुन आया। जाड़े से थोड़ी राहत मिली। नामघर में आनेवाले भक्तों की संख्या पर मौसम का कोई असर नहीं पड़ा। कीर्तन में भक्त रामदास ने गाया—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

केशव शिव शिव घोषिओ सदाय,
राम नाम बिने बान्धव नाइ ।

कीर्तन का समा बंध गया। रामदास ने भोर ताल वाद्य लिया और भक्त उनके गीत में तालियाँ बजाकर साथ देने लगे। वे फिर गाने लगे—

दुर्ल्लभ मनुष्य जन्म नकरा विफल ।
चिन्ता मने माधवर चरण कमल ।।
हेन जानि असुर स्वभाव सबे एरि ।
समस्त प्राणीक पूजा विष्णु बुद्धि करि ।।
स्वरूप कहिलो नाहि इहात संशय ।
बोला हरि हरि हौक पापर प्रलय ।।

शंकरदेव विरचित 'प्रह्लाद-चरित्र' के बारे में बताते हुए भक्त रामदास ने कहा, "नारद मुनि द्वारा प्रह्लाद ने अपनी माँ के गर्भ में भ्रूणावस्था में ही भागवत धर्म की महिमा सुनी। जन्म के पहले मिले संस्कारों से वे परम हरि-भक्त बन गये। हरि-भक्ति जैसे उन्हें घुट्टी में मिली। प्रह्लाद-चरित्र का एक पद वे भावभिभोर हो गाने लगे—

गाँत खानि कतो
पोते प्रह्लादक
करावे बिषक पान ।
हाते गले बान्धी
अग्नित पेहलावे
तथापि नचारे प्राण ।।

हरि-भक्ति का ही प्रभाव था कि वालक प्रह्लाद को विषपान कराने, अग्नि में जीवित फेंक देने पर भी उसका कुछ नहीं विगड़ा। इतना कहकर रामदास ने 'प्रह्लाद-चरित्र' में वर्णित नवधा-भक्ति का पद गाया—

श्रवण कीर्तन
स्मरण विष्णुर
अर्चन पदसेवन ।
दास्य सखित्व

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वन्दन विष्णुत
करिबे देहा अर्पण ।
नवविध भक्ति
विष्णुत आचारे
सेहिसे पाठ उत्तम ।

इस प्रकार नामघर में रोज नये प्रसंग गाये जाते। हरि-कीर्तन के साथ-साथ समय-चक्र भी आगे बढ़ रहा था।

शंकरदेव को भी धुवाहाटा में रहते काफी वर्ष हो गये। उनकी उम्र नब्बे की होने को आयी। इस उम्र तक पहुँचते-पहुँचते लोगों की जीवन लीला प्रायः शेष हो जाती है। किन्तु वे यम-नियम का पालन करते हुए आसन-प्राणायाम के निरन्तर अभ्यास से अपना जीवन यापन करते थे। कपिल और पातंजलि ऋषियों के ग्रन्थों पर उन्हें अपार श्रद्धा थी। युवावस्था से ही वे मिताहारी थे। भोजन भी एकदम सादा लेते थ।

एक दिन माधवदेव ने उन्हें हठयोग पर लिखे ग्रन्थ घेरण्ड संहिता का अनुवाद करने का आग्रह किया। गुरु शंकर ने उन्हें समझाया, "इसके पहले दो काम करने अति आवश्यक हैं। भागवत पर जो काम कर रहा हूँ उसे पूरा करना है। दूसरे हरि महिमा को व्याख्यायित करने वाले नाटक लिखने हैं। हठयोग आदि से लोग केवल अपने स्वास्थ्य को सुधार सकते हैं। हाँ, इससे ध्यान और समाधि लगाने में अवश्य सहायता मिलती है। मैं किसी को ऋषि या साधु बनने के लिए नहीं कहता, मैं तो उन्हें लौकिक जीवन जीते हुए, अपना काम-धन्धा, अपनी खेतीबारी करते हुए प्रभु-भक्ति में अपना मन लगाने का सन्देश भर देता हूँ। उनके लिए भक्तियोग ही लाभकारक है, हठयोग नहीं।"

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कर्मकाण्डियों का दुष्चक्र

एकशरणिया धर्म को प्रचारित हुए साठ साल हो गये। धुवाहाटा में ही रहते शंकरदेव को सत्रह वर्ष हो गये थे। चारों ओर फैलते उनके यश से जल-भुनकर श्रीधर भट्टाचार्य, कविराज मिश्र, बामणाचार्य, रत्नाकर कन्दली, ब्रह्मानन्द भट्टाचार्य आदि एकजुट होकर उनके मिथ्या प्रचार में लगे थे। वे उनके भक्तों को लांछित करते। विरोधी शास्त्रों के ज्ञाता थे, परन्तु उनकी सोच रूढ़िवादी थी। एक दिन कुछ लोगों के साथ श्रीधर भट्टाचार्य शंकरदेव के पास आये। वे क्रोध में बोले, "तुम देव-देवी की पूजा को व्यर्थ बताकर लोगों को हरिनाम लेने के लिए कहते हो। उन्हें अपना शिष्य बनाकर दीक्षा भी दी है। यह अधिकार केवल ब्राह्मण को है, किसी शूद्र को नहीं। शूद्र के लिए तो भागवत सुनना भी पाप है। फिर किस अधिकार से भागवत पढ़ते हो, उस पर रचनाएँ करते हो।"

शंकरदेव ने विनम्रतापूर्वक कहा, "ऐसा मत किस शास्त्र में लिखा है, मैं नहीं जानता।" वहाँ एकत्र भक्तों ने समवेत स्वर में 'हरि बोल, हरि बोल' की ध्वनि की। जयघोष में विरोध की आवाज दब गयी; श्रीधर भट्टाचार्य अपना-सा मुँह लेकर वहाँ से चले गये।

दूसरे दिन आचार्य ब्रह्मानन्द शंकरदेव के पास अपना विरोध लेकर आये तो उन्होंने विनम्रतापूर्वक उनसे पूछा, "आचार्यवर ! पापियों का धर्म पर अधिकार है या नहीं ! यदि नहीं है तो आप ही बताइये कि उनका उद्धार कैसे होगा ?"

आचार्य ने उदारतापूर्वक उत्तर दिया, "यह अधिकार तो उन्हें नहीं है, परन्तु प्रायश्चित करने का अधिकार अवश्य है। उनके लिए एकमात्र हरिनाम ही है जो उनकी आत्मा को शुद्ध कर सकता है।"

"हरिनाम लेने की जो निन्दा करते हैं, उनका क्या निस्तार होगा ?"

आचार्य ने कहा, "वे महापापी हैं, स्पर्श के योग्य भी नहीं।"

अब शंकरदेव ने भक्तों को सम्बोधित कर कहा, "आप लोगों ने आचार्यवर की कही बात सुनी। इनका कहा सत्य है। इस कलिकाल में नामधर्म के विना गति नहीं। इसलिए अन्य धार्मिक प्रपंच किये बिना केवल हरिनाम का स्मरण करो। हरिनाम लेने के लिए न कोई नियम है,

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

न ही कोई समय। हम खाते-पीते, काम करते कभी भी हरि का नाम ले सकते हैं।'' फिर आचार्य से कहा, ''क्यों आचार्यवर, मैंने कुछ गलत तो नहीं कहा न !''

इसका कोई उत्तर आचार्य ब्रह्मानन्द को नहीं सूझा। वे भी निरुत्तर होकर वहाँ से चले गये।

इस घटना से कर्मकाण्डी ब्राह्मणों को हताशा हुई। उन्होंने सोचा कि तर्क से शंकरदेव को नीचा नहीं दिखाया जा सकता। तब उन्होंने आहोम राज दरबार में जाकर शंकरदेव के विरुद्ध स्वर्गदेव के कान भरने का षड्यन्त्र रचा। ब्राह्मणों ने राजा से कहा, ''स्वर्गदेव ! शंकर नाम का एक शूद्र वैदिक आचार नष्ट करने पर तुला है। वह लोगों को श्राद्ध विधि नहीं करने के लिए उकसाता है। अस्पृश्यता के भेद को खत्म कर, म्लेच्छ-चण्डाल आदि जाति-अजाति का विचार किये बिना सब में धर्म प्रचार कर रहा है। श्रीमद्भागवत जैसे परम शास्त्र के रहस्य को स्त्री-शूद्र सबको खुले आम बता रहा है। इससे लोग विधि-विधान न मानकर भ्रष्ट हो रहे हैं। वह देव-देवियों की मूर्ति-पूजा का भी विरोध करता है। वह देवी को बलि देने से मना करता है। माँ दुर्गा यदि रुष्ट हो गयीं तो राज्य पर विपदा आ जायेगी। हे महाराज ! शंकर केवल धर्मद्रोही ही नहीं, देशद्रोही भी है। उसे यदि दण्ड नहीं मिला तो एक दिन आपकी राजसत्ता को भी खतरा हो सकता है। पता नहीं वह भीतर-भीतर कोच राजा के साथ मिलकर क्या षड्यन्त्र रच रहा है।''

आहोम राजसभा से शंकरदेव के लिए बुलावा आया। वे समझ गये कि उन्हें क्यों बुलाया गया है। उन्हें आनेवाले अनिष्ट का भान हो गया, पर वे विचलित नहीं हुए। उन्हें पता था कि जो भी व्यक्ति कुछ नया करना चाहता है उसे विघ्न-बाधाओं का सामना भी करना ही पड़ता है। पहले भी सन्त पुरुषों ने कम विपदाओं का सामना नहीं किया ! किन्तु विपदा से जीवन में गति भी आती है। विपदा जितनी बड़ी होती है, उससे मिलने वाली सिद्धि भी उसी अनुपात में बड़ी होती है। जिसके जीवन में विपदा नहीं, उसे सफलता भी कम ही मिलती है।

सर्वत्र चर्चा होने लगी कि आहोम राजसभा में शंकरदेव पर अभियोग चलेगा। शास्त्रकार, कवि, चित्रकार, नाट्यकार, अभिनेता, संगीतकार, समाज सुधारक और नववैष्णव धर्म के प्रचारक श्रीमन्त शंकरदेव पर अभियोग

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

और वह भी कुछ स्वार्थी-लोलुप पुरोहितों की शिकायत पर ! उनके भक्तों में उहापोह की स्थिति थी, न जाने अब क्या होगा ! सच है कि राजा-जोगी, अग्नि-जल इनकी उल्टी रीत।

तय तिथि पर राजसभा में शंकरदेव पहुँचे। उन्होंने रेशम के शुभ्र वस्त्र पहन रखे थे। दीर्घदेही गौरवर्ण वयोवृद्ध पुरुष को देखकर एक क्षण के लिए राजा खड़ा हो गया। यह देख शिकायतकर्ता क्षुब्ध हुए। राजा ने शंकरदेव से कहा, "आप पर अभियोग लगाया गया है कि आप अपना कोई अलग धर्म चला रहे हैं, जो पहले से प्रचलित धर्म से मेल नहीं खाता। आपका धर्म लोगों को भ्रमित कर उन्हें कुपथ पर ले जा रहा है। अपनी सफाई में आपको कुछ कहना हो तो कहें।"

शंकरदेव ने अपने विरोधियों के अभियोग का उत्तर अपने लिखे एक पद का उद्धरण देते हुए कहा—

ब्राह्मणर चण्डालर निबिचारि कुल
दातात चोरत यार बुद्धि एक तुल ।
नीचत साधुत यार भैल एक ज्ञान
ताहाकेहे पण्डित बुलिय सर्वजान ।।

"स्वर्गदेव ! सर्वप्रथम मैं अपने पर आरोप लगाने वालों को पूछना चाहता हूँ कि ये कैसे पण्डित हैं ? मनुष्य मात्र को एक मानने वाला व्यक्ति ब्राह्मण और चण्डाल के कुल का विचार नहीं करता। दाता और चोर के प्रति भी उसकी समदृष्टि होती है, क्योंकि धन है तो दान करने वाला दाता कहलाता है। विवश गरीब अज्ञानवश चोरी करता है। नीच और साधु को भी जिसके ज्ञान-चक्षु एक समान देखते हैं, उसे ही सर्वज्ञ पण्डित कहना चाहिये।"

शंकरदेव अविराम कहते जा रहे थे, "मुझ पर आरोप लगाने वाले शास्त्रज्ञों ने अपने स्वार्थवश मुझ पर दोषारोपण किया है। ये कहते हैं कि मैं अपना अलग धर्म चलाता हूँ जो पहले से प्रचलित धर्म से मेल नहीं खाता। उनका आरोप है कि मेरा धर्म लोगों को भ्रमित कर कुपथ पर ले जा रहा है। मेरा विनम्र निवेदन है कि इनके ये सारे आरोप मनगढ़न्त हैं। मैं जिस एकशरणिया नामधर्म का प्रचार करता हूँ, उसका उद्देश्य मानव-कल्याण ही है। यह वैदिक युग से चला आया है। गीता-भागवत में भी उसी वैदिक धर्म की व्याख्या हुई। धर्म वही है जो मनुष्य

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मात्र को सत्य की ओर ले जाए, उसे मिथ्याचार में भ्रमित न करे। मैं अपने एकशरण धर्म में उन्हीं बातों का प्रचार करता हूँ। इससे प्रजा का उपकार ही हुआ है। वे रूढ़िवादिता को छोड़ कर हरिशरण में आ रहे हैं। मेरा सोचना है कि किसी प्रकार का आडम्बर किये बिना केवल हरि-स्मरण करने मात्र से ही मानव का कल्याण हो सकता है।

"यदि किसी को कोई देवी-देवता या वृक्ष को पूजकर भी शान्ति मिलती है, तो मुझे कुछ नहीं कहना। शान्ति पूर्णतया अपने मन की बात है। किन्तु देवी-देवता को न पूजने पर घोर अनिष्ट होने का भय दिखाकर भोलीभाली जनता से धन और वस्तु लेकर उनका शोषण करने वाले लोगों को धर्म का अधिकार कहाँ से मिल गया !"

शंकरदेव ने आगे कहा, "मैं कृष्ण-भक्त वैष्णव हूँ। भारत में इसे माननेवाले जगह-जगह हैं। यह लोक-कल्याणकारी है।" उन्होंने राजा को सम्बोधित करते हुए आगे कहा, "स्वर्गदेव ! जैसा कि मुझ पर अभियोग लगाया गया है; वह झूठ है। लोगों में मतभेद करा, राज्य को शक्तिहीन करनेवाले धर्म का प्रचार मैं नहीं कर रहा। मैं तो वैष्णव धर्म के माध्यम से लोगों को जोड़नेवाले पन्थ का ही प्रवर्तन कर रहा हूँ।" इतना कहकर उन्होंने सभासदों की ओर ताक कर अपने एक पद का उद्धरण दिया—

सुना सभासद पद येते कृष्ण कथा ।
भारत भूमित जन्म न करियो वृथा ।।

"हे सभासदों ! जहाँ कृष्ण-कथा होती रहती है और कृष्ण के चरण पड़े हैं, ऐसी भारत भूमि में यों ही अपने (मनुष्य) जन्म को वृथा न करो।" इतना कहकर शंकरदेव मौन हो गये।

शंकरदेव की बातों से स्वर्गदेव सन्तुष्ट हुए। वे सच्चाई को समझ गये। राजा ने उन पर अभियोग लगाने वालों से कड़े स्वर में कहा, "आप लोगों का काम जनता को धर्ममार्ग पर चलाना है। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि आप लोगों का उद्देश्य उन्हें धर्म के तत्त्व को समझाना नहीं, बल्कि उन्हें भ्रमित कर अपनी जीविका चलाना मात्र हो गया है। आप सब को शंकरदेव के सामने लज्जित होना चाहिये। इनसे क्षमा याचना करनी चाहिये। मैं आप सब को सावधान करता हूँ, फिर ऐसा झूठा आरोप लेकर मेरे पास कभी न आयें।"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

राजसभा से शंकरदेव ने धुवाहाटा लौटकर सारी बातें माधवदेव को बतायीं। फिर उनके सामने अपने विचार रखते हुए कहा, "माधव ! मेरे विरोधी अब चुप नहीं बैठेंगे। वे लोग मौका देखकर राजा के कान फिर भरेंगे। एक ही बात को बार-बार सुनकर झूठ भी सच लगने लगता है। राजा के मन की गति को कोई नहीं जान सकता। अब यहाँ रहना निरापद नहीं। स्वर्गदेव सुहुंग्मुंग ने तो मेरी बातों को युक्तियुक्त मान लिया। इसकी जगह कल कोई और राजा आयेगा, वह मेरी बात को कितनी सुनेगा, नहीं कहा जा सकता।

"इसलिए माधव ! अब यह स्थान छोड़ देने में ही भलाई है। इसके लिए मैं मन से तैयार हूँ। इससे पहले भी हमें स्थान परिवर्तन करने पड़े हैं। जितने स्थान बदले, उतनी जगह एकशरणिया नामधर्म का प्रचार बढ़ा। धर्म की कोई सीमा नहीं। इसे सीमाओं में बांधा भी नहीं जा सकता। भारत में जन्मे बौद्ध धर्म को ही देखो; आज वह बाहर अनेक देशों में फैल गया है। तुम्हारा क्या कहना है !"

"गुरुदेव ! आपसे भिन्न मेरी क्या राय हो सकती है। आपका चिन्तन सही है। अब हमें इस स्थान को छोड़कर और कहीं जाने पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिये।"

शंकरदेव पर चले राजाभियोग से धुवाहाटा के लोग चिन्तित हो गये। उन्हें यह भनक भी मिली कि गुरुदेव इस स्थान को छोड़ने का विचार कर रहे हैं। उनके यहाँ आने से स्थानीय लोगों के सामाजिक जीवन में एक आध्यात्मिक परिवर्तन आया था। वे किसी भी हालत में नहीं चाहते थे कि गुरु शंकर उन्हें छोड़कर और कहीं जाएँ। इसके साथ उन्हें भविष्य की चिन्ता भी सता रही थी।

उन्हीं दिनों गांमौ से शंकरदेव के भक्तों की एक मण्डली आयी। उन्हें भी इस बात का पता चला। शंकरदेव से मिलने पर इसकी चर्चा चल पड़ी। शंकरदेव ने उन्हें समझाया, "विश्व में कुछ भी शाश्वत नहीं। मैंने भी जीवन में अनेक जगहें बदली हैं। इसमें जहाँ अनेक कष्ट उठाने पड़े वहीं नामधर्म का प्रचार भी गाँव-गाँव में हुआ। परिवर्तन जीवन का नियम है।"

"किन्तु गुरुदेव ! इस बार तो स्वर्गदेव सुहुंगमुंग ने आपको आरोप-मुक्त कर दिया। कल उसका वेटा सुक्लेनमुंग गद्दी पर बैठेगा।, वह अपने पिता की तरह न तो समझदार है और न ही सहृदय। कर्मकाण्डियों ने यदि

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उसके भी कान भरे तो वह विवेकहीन आपको किसी भी विपदा में डाल सकता है। हमारा आपसे अनुरोध है कि आप फिर से गांमौ में आकर बस जायें। आपके वहाँ से आने के बाद भी नामघर का काम पहले की तरह ही सुचारु चल रहा है।''

शंकरदेव ने कहा, ''किसी बसे-बसाये स्थान को इतनी जल्दी कैसे छोड़ा जा सकता है। इसमें कुछ समय तो लगेगा। रही बात गांमौ जाकर फिर से बसने की। मैं ऐसा नहीं करना चाहता। किसी नयी जगह का चयन कर वहाँ जायेंगे। नये स्थान पर जायेंगे तो वहाँ के लोगों को भी नामधर्म का लाभ मिलेगा। तुम लोग अभी से इतनी चिन्ता मत करो। श्रीकृष्ण-कृपा से जो भी होगा अच्छे के लिए ही होगा। अब तुम लोग मेरे साथ भोजन करो।''

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आहोम राजा के अत्याचार

स्वर्गदेव सुहुंग्मुंग उर्फ दिहिंगिया राजा की किसी कछारी व्यक्ति द्वारा हत्या कर दिये जाने पर उसका बेटा सुक्लेनमुंग (सन् 1539-1552) अब आहोम राज्य की गद्दी पर बैठा। उसने अपनी नयी राजधानी गढ़गाँव में बनायी। इससे उसे गढ़गयाँ राजा भी कहा जाता था। आहोमों की पन्द्रहवीं पीढ़ी का सुक्लेनमुंग हिन्दू धर्म अपनाने के बाद दूसरा राजा था। वह हिन्दू धर्म को कितना समझ पाया, नहीं कहा जा सकता।

एक दिन उसकी राजसभा में रतिकान्त कुछ कर्मकाण्डी पुरोहितों को साथ लेकर पहुँचा। उसने भूमिका बनाते हुए आहोम राजा से कहा, "स्वर्गदेव ! आप चाहे मुझे काटें या मेरे टुकड़े-टुकड़े कर दें, परन्तु सत्य आपको कहे बिना नहीं रह सकता। मैं और मेरा परिवार आपके राज्य के आश्रय में रहकर यहाँ का अन्न-जल ग्रहण करते हैं। यहाँ कोच राजा का आधिपत्य हो जाए, यह हम कभी नहीं सहन कर सकते। जगतानन्द, जिसे आपके पिता ने रामराय की उपाधि देकर सम्मानित किया, वह कोच राजा से मिला हुआ है।"

उसके साथ श्रीधर भट्टाचार्य, बामनाचार्य, कविराज मिश्र, ब्रह्मानन्द भट्टाचार्य जैसे पण्डित भी राजसभा में आये थे। रतिकान्त ने कुछ देर रुकने के बाद राजा से आगे कहा, "आप मुझ अधम को चाहें तो सूली पर चढ़वा दें, परन्तु असल बात आपको कहकर रहूँगा। आपके राज्य में गम्भीर अभिसन्धि चल रही है। रामराय और शंकर दोनों साथ मिलकर भीतर-भीतर कोचों को आपके राज्य की सूचनाएँ पहुँचाते हैं। रामराय के लिए आपके पिता ने क्या नहीं किया। उसे माजुली का राजकार्य चलाने का अधिकार दिया, लेकिन वह कृतघ्न उन सब उपकारों को भूल कर आपके विरुद्ध ही षड्यन्त्र करने में लगा है।"

इतना कहकर रतिकान्त ने राजा के भावों को पढ़ने का प्रयास किया। स्वर्गदेव के मन में आयी अस्थिरता उसके चेहरे पर साफ झलक रही थी। सही अवसर देखकर श्रीधर भट्टाचार्य ने बात आगे बढ़ाते हुए कहा, "स्वर्गदेव ! सचमुच आज आहोम राज्य पर विपदा के दिन आ गये हैं। शंकर ने नाच-गान-नाटकों से हजारों लोगों को भ्रमित कर धर्म की मर्यादा

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

को समाप्त कर दिया है। भगवान् के पौराणिक आख्यानों को तोड़-मरोड़ कर देवभाषा संस्कृत के बदले आम लोगों की बोली में नाच-गाने के रूप में दिखाकर वह उनका हृदय-सम्राट बना दम्भ से अपनी गुरुआई चला रहा है।''

धूर्त बामनाचार्य जानता था कि अब उसे क्या कहना है। उसने राजा को विश्वास दिलाने के लिए कहा, ''स्वर्गदेव ! कल को यदि कोच सेना हम पर आक्रमण कर देती है तो शंकर अपने सजातीय भूयाँओं और हजारों भक्तों को लेकर उसका स्वागत करेगा। ऐसे में आहोम राज्य की क्या अवस्था होगी, आप अच्छी प्रकार समझ सकते हैं।''

उनकी बातें सुनकर आहोम राजा का चेहरा क्रोध से तमतमाने लगा। उसने हाथ में पकड़ा ताम्बूल-पान का बीड़ा वापस बोटा में रख दिया। राजा ने सोचा, शंकर और उसके साथियों को ऐसी सजा दी जाये कि वे दोबारा अपने सिर न उठा सकें, उनके कलेजे कांप जायें। एकाएक उसे सूझा, राज्य की हाथीशाला में हाथियों की कमी है। क्यों न शंकर और उसके भूयाँवंशियों के साथ नामधर्म को मानने वाले समस्त भक्तों को भी हाथी पकड़ने के काम में लगा दिया जाय। इससे उसे दण्ड मिलने के साथ राज्य में हाथियों की कमी भी पूरी हो जाएगी। फिर अपने सेना नायक को कहा, ''शंकर और उसके लोगों से हाथी पकड़ाने का काम तुम्हारे जिम्मे है। तुम धुवाहाटा जाकर सब को वन से हाथी पकड़कर बाड़े में बंद करने का आदेश सुना दो। यदि बाड़े से एक भी हाथी भाग जाए तो बिना किसी सुनवाई के मृत्यु दण्ड दे दिया जाए।'' राजा का ऐसा आदेश सुनकर सभी षड्यन्त्रकारियों की बाँछें खिल गयीं।

स्वर्गदेव सुहुंग्मुंग की राजसभा से शंकरदेव के लौटने के बाद नामघर में नववैष्णव धर्म का प्रवाह सतत चल रहा था। राजशक्ति की ओर से कोई नयी बाधा खड़ी की जा सकती है, इसका लेश मात्र भी अन्देशा नहीं था। किन्तु विपदा जब आती है तब द्वार खटखटा कर थोड़े ही आती है ! अचानक नये राजा सुक्लेनमुंग के सैनिक नामघर में आये। शंकरदेव भागवत के तत्त्वों के बारे में भक्तों को बता रहे थे। सैनिकों ने सब बंद करा राजाज्ञा सुनायी। फिर सब को अपने साथ पकड़ कर ले गये और हाथी पकड़ने के काम में लगा दिया। शंकरदेव की उम्र का भी कोई लिहाज किये बिना उन्हें सबका मुखिया बना दिया।

धुवाहाटा के पूर्व में घनघोर वन था, जहाँ बहुतायत में हाथी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विचरण करते थे। वन की सीमा पर पेड़ कटवाकर उनके कुन्दों से घेरकर विशाल मजबूत बाड़ा बनवाया गया। उसमें आने-जाने का एक दरवाजा रखा गया। हाथियों को पकड़कर उसमें बंद करना और उनकी देखभाल करना भूयाँओं और भक्तों के जिम्मे था। राजा का आदेश था कि ज्यादा से ज्यादा हाथी पकड़े जाने चाहिये। यदि उनमें से एक हाथी भी बाड़े से भाग गया तो मृत्यु-दण्ड दिया जाएगा।

हाथी पकड़ने के लिए गड्ढे खोदे गये। उनको पेड़ की डालियों-पत्तों से ढँका गया। हाथियों को गड्ढे के पास लाने के लिए भूयाँ और भक्त हाँका करते वन में भटकते। बहुत मेहनत करने पर कोई हाथी गड्ढे में गिरता। फिर उसे मोटे रस्सों से बांधकर ऊपर खींचकर बाड़े में बंद कर दिया जाता।

राजा के इस बेतुके फरमान से शंकरदेव अत्यन्त क्षुब्ध थे। उन्होंने माधव से कहा, "तुम राजा के इस आदेश का क्या अर्थ समझते हो ?"

माधव ने कहा, "गुरुदेव ! बात कुछ समझ में नहीं आ रही। हम वैष्णव हैं, हमें हाथी पकड़ना नहीं आता। इस बात को स्वर्गदेव अच्छी तरह जानते हैं, फिर भी हमें जानबूझ कर इस काम में लगाया गया। हाथी को बाड़े में बंद रखना हमारे बूते की बात नहीं, यह भी राजा से नहीं छिपा। इस आदेश का मतलब हमें किसी बहाने प्राणदण्ड देना है।"

पास ही बैठे हरि भूयाँ ने कहा, "मैं कितने वर्षों से जगतानन्द के साथ माजुली का शासन सँभाल रहा हूँ। राजा चाहे तो वह काम रतिकान्त को दे देंवे। यह सारी आग उसकी और कर्मकाण्डी पुरोहितों की लगायी हुई है।"

शंकरदेव ने कहा, "हम वैष्णव हैं। हमें किसी की निन्दा नहीं करनी चाहिये। आ नो भद्राः क्रुतवो यन्त विश्वतः ....। इस समय हमें यह सोचना है कि राजकोप से कैसे बचा जाए !"

पौष की आधी रात। हड्डियों को कंपा देने वाली शीतलहरी चल रही थी। कुछ भूयाँ और भक्त बाड़े के बाहर पहरे पर अलाव जलाये बैठे थे। समय व्यतीत करने के लिए सब हरि-कीर्तन में लगे थे। आधी रात के बाद उन्हें नींद के झोंके सताने लगे, पर पूरी रात जागना था। एक भी हाथी के भाग जाने पर सभी को मौत की लटकती तलवार सामने दिख रही थी। किन्तु नींद पर किसी का बस चलता है क्या ! वही हुआ जिसका डर था। बाड़े के पश्चिमी छोर को तोड़ कर कुछ हाथी भागने लगे। उधर के पहरेदारों ने उन्हें रोकने के भरसक प्रयास किये। उन विशालकाय हाथियों को रोक पाना उनके लिए

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

असम्भव था। सुबह सेना-नायक ने सैनिकों को शंकरदेव को पकड़ने भेज दिया।

इस बात का पता शंकरदेव को भी चल गया। वे राजकोप से चिन्तित हो गये। सब ने पहले से घने वन में शरण ले रखी थी। शंकरदेव सैनिकों के हाथ नहीं लगे तो वे चिन्ता में पड़ गये कि अपने नायक को क्या जवाब देंगे। उन्हें सामने से आते माधवदेव और हरि भूयाँ दिखे। उन्होंने उन्हें ही पकड़कर नायक के सामने प्रस्तुत कर दिया। नायक भी शंकरदेव को नहीं पहचानता था। दोनों को राजधानी गढ़गाँव ले जाकर काल कोठरी में कैद कर दिया गया। वहाँ घुप्प अन्धेरा था। छत इतनी नीची थी कि ठीक से खड़ा होना भी असम्भव था। ओढ़ने-बिछाने के कपड़ों का नितान्त अभाव था। खाने के नाम पर अधपका और बहुत थोड़ी मात्रा में भात दिया जाता। अध-भूखे पेट ठिठुरती रात में नींद भी कैसे ठीक से आती। ऐसी त्रासदी में दोनों को बस हरिनाम का ही सहारा था। दो महीने बाद दोनों की राज्य के सेना नायक के सामने पेशी हुई। उसने पूछा, "तुम लोग अपना परिचय बताओ। वहाँ क्या कर रहे थे !"

माधवदेव ने कहा, "मेरा नाम माधव है, यह मेरा बंधु हरि है। मैं शंकरदेव का शिष्य हूँ। हरिनाम गाते घूमता हूँ।"

नायक को पता चला कि हरि विवाहित है और माधवदेव वैरागी साधु। उसने सोचा कि वैरागी को मारने पर इसे रोने वाला कोई नहीं। इसलिए हरि का ही सिरच्छेद किया जाए। उसने अपना निर्णय दोनों को सुना दिया।

हरि ने माधव से कहा, "मेरी मृत्यु अवश्यम्भावी है। किन्तु मैं हरि-संकीर्तन करते हुए मरना चाहता हूँ। माधव ने उसे धीरज बंधाया। सैनिक हत्या करने आये तो हरि ने उन्हें अपनी अन्तिम इच्छा बतायी। इसके साथ हरि ने यह भी विनती की कि वह हाथ से संकेत करे तब उसका सिर काटा जाए। वे इसके लिए मान गये। हरि का मन स्थिर करने माधवदेव गम्भीर आवाज में गाने लगे—

भयो भाई सावधान ।
जावे नाहि छूटे प्राण ।।
गोविन्दर फरमान ।
निकटे मिलव जान ।।
जीवन यौवन ठोर ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सर्व मायामय चोर ।।
दुख सब कर दूर ।
हरि पदे मन पूर ।।
तेज सबे अभिलाश ।
दूर करा मोह पाश ।।

गीत पूरा होने पर हरि ने भूमि पर माथा टेक कर ईश्वर को प्रणाम किया और हाथ का संकेत किया। इसके साथ ही वधिक ने अपना खडग उसकी गरदन पर चलाया। हरि का कटा सिर उछ्ल कर माधव के चरणों के पास आ गिरा। भूमि लहूलुहान हो गयी। सैनिकों ने माधव को पकड़कर फिर से कैद में डाल दिया। उन्हें कारागार में बंद हुए महीनों बीत गये।

उधर शंकरदेव चिन्तित थे। उन्हें इस बात का पता लग गया था कि हरि और माधव को सैनिक पकड़कर ले गये। किन्तु दाद-फरियाद किसके सामने करते। बहकावे में आया हुआ राजा अन्धा-बहरा बना था। राजा जब निरंकुश हो जाता है तब एकपक्षीय निर्णय लेता है। ऐसे राजा के न्याय पर पर कैसे भरोसा किया जा सकता है। चापलूसों के जाल में फँसने वाला राजा कभी न्यायप्रिय नहीं हो सकता। चापलूस राजा का अनुग्रह प्राप्त कर स्वयं भोग-विलास में रम जाते हैं। राज्य के धन का दुरुपयोग करते हैं। प्रजा को नाना प्रकार के कष्टों का सामना करना पड़ता है।

शंकरदेव का एक-एक क्षण युगों की तरह व्यतीत होने लगा। वे अभी हरि-माधव की चिन्ता से उबरे नहीं थे कि विधि का क्रूर खेल हुआ। उनका मझला पुत्र कमललोचन अचानक चल बसा। उन पर विपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ा। आगे और क्या बदा था, वह भविष्य के गर्भ में था।

माधव की खोज-खबर लेने मनोरमा, उर्वशी और रामदास धुवाहाटा आये तो वहीं रहकर उसकी प्रतीक्षा करने लगे। माधव और हरि के न लौटने पर सभी चिन्तित थे। मनु जरा-सी आहट होने पर द्वार की ओर दौड़ पड़ती। वहाँ पति को न देख, टकटकी बांधे द्वार पर ही घण्टों बैठी रहती। उसकी भूख मर गयी थी। रातों की नींद आँखों से उड़ गयी। उसके ओंठों पर सदैव कृष्ण-हरि का जाप रहता। माँ कालिन्दी और पिता के लाख समझाने पर भी उसका धीरज नहीं बंधता। शंकरदेव से बेटी की विरह-वेदना नहीं देखी जाती, पर उपाय भी क्या था। उन्हें हरि के साथ माधव की भी चिन्ता हो रही थी।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रामराय की पहुँच भी अब आहोम दरबार में नहीं रही। माधव और हरि के बिना धुवाहाटा छोड़कर भी नहीं जा सकता। 'हारे को हरि नाम।' शंकरदेव ने नामघर में फिर से कीर्तन शुरू कर दिया। सात दिनों का अखण्ड कीर्तन 'पालनाम' रखा गया। कुछ लोगों ने उन्हें राजकोप के प्रति सावधान किया। उन्होंने सब से एक ही बात कही, "जो होगा, हरि की इच्छा से होगा। वे चाहें जिसे मारें या जियायें।"

भक्त निर्भीक होकर भक्तिभाव से खोल, मृदंग आदि वाद्य लेकर हरि-कीर्तन में लग गये। नामघर में कीर्तन गूँजने लगा—

तेजरे कमलापति परभात निन्द ।
तेरि चान्द मुख पेखुँ ऊठरे गोविन्द ॥

....

नन्द गेल बाथाने गुवाल गेल पाल ।
सुरभि चारिते गेल उठरे गोपाल ॥

कीर्तन का सातवाँ दिन था। माधव को यकायक आया देख शंकरदेव हर्षातिरेक से आह्लादित हो गये, जँवाई हरि को साथ में न देखकर क्षण मात्र में ही उनका हर्ष सम्भावित अनिष्ट की आशंका से दहल गया। माधव ने हरि की हुई पाशविक हत्या के बारे में सारा घटनाक्रम बताया। घर में कोहराम मच गया। मनु धरती पर पछाड़ खाकर रोने लगी। अपने सुहाग चिह्न नोच-नोच कर फेंक दिये। माथे का सिन्दूर-बिन्दिया पोंछ डाली। माता कालिन्दी स्वयं रो रही थी, वे उसे क्या धीरज बंधातीं। मनोरमा, उर्वशी तथा अन्यान्य महिलाएँ माँ-बेटी को सँभाल रही थीं। शंकरदेव अपने दुःख को अन्दर ही अन्दर पीकर अपनी स्थितप्रज्ञता की परीक्षा ले रहे थे। माधव सबको धीरज बंधा रहे थे। शंकरदेव ने मन ही मन धुवाहाटा को यथाशीघ्र छोड़कर और कहीं चले जाने का निर्णय लिया। उनके सामने समस्या थी कि आखिर कौन-सी निरापद जगह जाया जाए। सब राज्यों के राजाओं का स्वभाव तो एक जैसा होता है। सही निर्णय होने तक धुवाहाटा में और कुछ दिनों तक रहना उनकी विवशता थी।

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आहोम राज्य का त्याग

आहोम राज्य को अब अहम कहते-कहते असम कहा जाने लगा। आहोम राजा पर शाक्त पुरोहितों का इतना प्रभाव था कि वह उनके कहे को ही सही मानता। राजा और पुरोहितों से दुःखी शंकरदेव बड़े असंमजस में थे कि धुवाहाटा से कहाँ जायें। उन्हीं दिनों उनके पास चार संन्यासी उत्तर दिशा से आये। उनमें से दो वयोवृद्ध संन्यासी योगेश्वरानन्द और नित्यानन्द ब्रह्मचारी शंकरदेव के पूर्व परिचित थे। दोनों से उनकी काशी में अपनी तीर्थयात्रा के समय मुलाकात हुई थी। अरूपानन्द और प्रज्ञानन्द माधव के समव्यस्क थे। वे मकर संक्रान्ति पर परशुरामकुण्ड जाने के लिए आये तो शंकरदेव से मिलने धुवाहाटा भी चले आये। उनका यथोचित सत्कार करने के बाद शंकरदेव ने उन्हें अपनी आपबीती बताकर किसी निरापद जगह के बारे में पूछा।

माधव ने कहा, ''वर्तमान आहोम राजा अविवेकी, निष्ठुर, स्वेच्छाचारी और अत्याचारी है। उसने बात की तह में गये बिना ही शाक्त पुरोहितों की बातों को सत्य मानकर हमें इतने कठोर काम में लगाया और निर्दोष हरि को प्राणदण्ड दिया। ऐसे राज्य में रहकर वैष्णव धर्म का प्रचार कैसे किया जा सकता है !''

तरुण संन्यासी अपरूपानन्द ने कहा, ''धर्म को व्यवसाय बनाकर अपनी जीविका चलाने वाले कुचक्री आपको सब जगह मिलेंगे। किन्तु जहाँ का राजा भी अविवेकी और निष्ठुर हो, उस जगह का त्याग करना ही ठीक है।''

नित्यानन्द ब्रह्मचारी ने कहा, ''कामरूप होते हुए असम में प्रवेश करने पर हमने आहोम राजा के बारे में एक अविश्वसनीय बात सुनी। एक बार कोई किसान अपनी बाड़ी में लगे मीठे आम लेकर उसे भेंट देने गया। राजा को आमों का स्वाद इतना भाया कि उसने राजाज्ञा दी, 'इस किसान को पकड़ कर इसके आमों सहित मेरे पिता की मैदाम (मृतक का समाधि-स्थल) में दबा दिया जाए। इसके मीठे आमों को खाकर मेरे पिता अत्यन्त प्रसन्न होंगे।' इसलिए ऐसे अविवेकी राजा के राज्य में रहना आप के लिए जरा भी निरापद नहीं।''

प्रज्ञानन्द ने अपनी सलाह देते हुए कहा, ''मेरी समझ में सभी राजा ऐसे अविवेकी नहीं होते। मेरी मानें तो आप लोग नरनारायण के कोच राज्य

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

में चले जाइये। वह विवेकशील और साधु-सन्तों का सम्मान करने वाला है। उसकी सभा में अनेक विद्वान पण्डित है। वह साहित्य-कला को प्रश्रय देने वाला है। यहाँ से उसका राज्य ज्यादा दूर भी नहीं।''

माधव ने जिज्ञासा की, ''नरनारायण के बारे में आप इतने विश्वासपूर्वक कैसे कह सकते हैं ? आप लोग उसके राज्य से होते हुए ही यहाँ आये हैं। अवश्य उसकी प्रशंसा करने का कोई विशेष कारण होगा।''

योगेश्वरानन्द जो अब तक शान्त बैठे उनकी बातें सुन रहे थे, ने कहा, ''नरनारायण संस्कारवान राजा है। उसे ये संस्कार काशी में मिले। उसने और उसके छोटे भाई शुक्लध्वज ने काशी में ब्रह्मानन्द संन्यासी के गुरुकुल में रहकर कई वर्षों तक शिक्षा ग्रहण की है। यह उसका विवेक ही था जो उसने एक साधारण श्रमिक को भी उसकी भूल के लिए क्षमा कर दिया।''

माधव ने कौतूहल से पूछा, ''स्वामी जी ! ऐसी क्या घटना हुई !''

योगेश्वरानन्द ने बताया, ''नरनारायण ने अपने राज्य के एक आयुर्वेदाचार्य को विभिन्न जड़ी-बूटियों के मिश्रण से शरीर-दर्द के लिए कोई कारगर तेल बनाने के लिए कहा। उसने एक वर्ष की मेहनत से तेल बनाकर राजा के नाम पर उसका नाम महानारायण तेल रखा। राजा ने तेल का प्रयोग करने पर उसकी बात को सत्य पाया। उसने आयुर्वेदाचार्य को अधिक मात्रा में तेल तैयार कर लाने को कहा। संयोग की बात थी कि तैयार तेल से भरे मिट्टी के कलशों का भार लेकर जो श्रमिक आ रहा था, वह रास्ते में ठोकर खाकर गिर पड़ा और कलश भी गिर कर टूट गये। सारा तेल मिट्टी में मिल गया। राजा को इस बात का पता चला तो उसने सच्चाई को समझकर श्रमिक को क्षमा कर दिया और आयुर्वेदाचार्य से नया तेल तैयार करने को कहा। कहने का तात्पर्य है कि नरनारायण की जगह कोई अविवेकी राजा होता तो उस निर्दोष श्रमिक को अवश्य दण्ड देता।''

नित्यानन्द स्वामी ने योगेश्वरानन्द का अनुमोदन करते हुए कहा, ''आपके साथ जो घटित हुआ, वह यहाँ के राजा के अविवेक के कारण ही हुआ। जिस राजा में जरा भी विचार-शक्ति नहीं, जो अज्ञानी है, जो बिना कारण ही प्रजा को प्राण-दण्ड दे, ऐसे राजा के राज्य में रहना आत्महत्या करने के समान है। किन्तु सभी राजा ऐसे नहीं होते। अतः आप लोगों का नरनारायण के कोच राज्य में चले जाना उचित रहेगा। इस समय उससे ज्यादा अच्छा कोई निरापद स्थान नहीं।''

''गुरुदेव ! लगता है कि हरि का भी यही संकेत है कि हम लोग

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कोच राज्य में जाकर रहें और वहाँ हरि-भक्ति नामधर्म का प्रचार करें। करुणामय श्रीकृष्ण हमारी सहायता करेंगे।'' शंकरदेव से इतना कह कर माधवदेव मीठे स्वर में गीत गाने लगे–

करुणामय राम करुणामय ।
करिओ कृपा येन उचिंत हय ।।
तुमिसे राम कृपा रासर निधि ।
तोमार कृपा बिने नाहिके सिद्धि ।।
तोमार कृपालेसे करिछो आश ।
अरुण पदताल दियाके बास ।।

शंकरदेव ने पता लगाया कि उनके ही वंश के प्रताप राय भूयाँ और गाभरु भूयाँ नरनारायण के राज्य में उच्च पदों पर आसीन हैं। प्रताप राय ने अपनी बेटी का विवाह भी राजा नरनारायण से कर दिया है। उन्हें लगा कि कोच राज्य में रह कर वे अपने भक्तों के साथ शान्तिपूर्वक अपने नामधर्म का प्रचार कर सकेंगे। इसे उन्होंने उपयुक्त समय समझकर माधवदेव तथा अन्य भक्तों को धुवाहाटा से यथाशीघ्र प्रस्थान की तैयारी करने को कहा।

धुवाहाटा छोड़ते समय शंकरदेव बड़े भावविह्वल हो गये। गांमौ से आकर अपने हाथों लगाये पेड़ों को उन्होंने जी भरकर देखा, उन्हें सहलाया। अपने घर के बाहर लगाये आम और कटहल के पेड़ अब बड़े होकर फल देने लगे थे। उनका जी भर आया।

ब्रह्मपुत्र के तट पर खड़ी बड़ी-बड़ी बीस पालदार नौकाओं में सामान लादा जाने लगा। भक्तों के ओढ़ने-बिछाने, खाने-पकाने की रोजमर्रा की चीजों के अलावा नामघर का भी काफी सामान हो गया। सबसे बहुमूल्य निधि शंकरदेव के रचे हुए ग्रन्थों की साँचिपात पर लिखी हुई पाण्डुलिपियों के भारी-भरकम गट्ठर थे।

नावें कमती पड़ने लगीं तो केले के गाछों को आपस में बांधकर कई बेड़े तैयार किये गये। धुवाहाटा में पीढ़ियों से बसे मिसिंग, देउरी, कछारी, सोनोवाल जातियों के लोग उन्हें इस काम में सहयोग कर रहे थे। उनके हृदय शंकरदेव को वहाँ से जाते देख क्रन्दन कर उठे। वे नहीं चाहते थे कि वे वहाँ से जायें, पर राजा द्वारा किये गये अत्याचार भी उनसे नहीं छिपे थे। ऐसे में वे चाहकर भी उन्हें रुकने के लिए कहते भी तो कैसे !

इतने दिनों जिन लोगों के साथ एक परिवार की तरह रहे, उन्हें छोड़कर जाते शंकरदेव के मन में एक टीस उठ रही थी। उन्होंने वहाँ के

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

निवासियों से कहा, "आप लोगों के साथ बहुत दिनों तक स्नेहभाव से हम लोग रहे। यहाँ से जाते समय मेरा मन बहुत दुःखी है, परन्तु मनुष्य को नये सत्य की खोज में आगे बढ़ना होता है। आहोमों के इस असम राज्य में इतने वर्षों रहने के बाद हम कामरूप जाकर नये सत्य की खोज करेंगे। भक्ति ही मेरा जीवन-पथ है। भक्ति-यात्रा करने के लिए किसी धन की आवश्यकता नहीं। जीवन में दुर्योग आते रहते हैं। दुःख-यातना, बाधा-विघ्नों से स्वयं को उबार कर हमें आगे बढ़ना है। मेरे पास आप लोगों को देने के लिए नाम-मन्त्र के सिवाय और कुछ नहीं। विश्वास है कि आप हरिनाम को कभी नहीं बिसरायेंगे। आप लोगों की याद मेरे मन में सदैव बनी रहेगी।"

माधवदेव के घाट पर नहीं पहुँच पाने के कारण नावों को छोड़ने में विलम्ब हो रहा था। जब वे आये तो शंकरदेव ने देरी लगने का कारण पूछा। उन्होंने बताया, "गुरुदेव ! अपने दो भक्त अनिरुद्ध और सिन्दूरा नहीं पहुँच पाये थे। उन्हीं को लेकर आने में विलम्ब हो गया।"

दोनों भक्तों के साथ सामान इतना अधिक था कि उन्हें नाव पर चढ़ाना खतरे से खाली नहीं था। अन्य कोई उपाय न देख माधवदेव ने अपनी सारी वस्तुएँ नाव से फेंक दीं। इस प्रकार नाव का भार कम कर उन्होंने दोनों को नाव पर चढ़ा लिया। उनके इस निःस्वार्थ भाव और त्याग को देखकर शंकरदेव ने उनकी भूरि-भूरि प्रंशसा करते हुए कहा, "भक्तों का मूल्य तो माधव ही समझता है।"

नावें तट छोड़ने के लिए तैयार थीं। नावों के पाल खोल दिये गये। पालों में हवा भर गयी। मल्लाहों ने चप्पू पानी में डाल दिये। तट पर खड़े धुवाहाट वासी अश्रुपूरित नयनों से अपने मन की व्यथा को नामघर में शंकरदेव से सीखा गीत गाकर व्यक्त कर रहे थे–

कि कहब उद्धव कि कहब प्राण ।
गोविन्द विने भयो गोकुल उछान
शून्य भैल आंगिना विरिन्दा विपिन ।
ना शोभे रजनी यैछे चान्द विहीन ॥
नाहि चारव धेनु कालिन्दी कूल ।
आर न शुनवो वेणु कदम्वक मूल ॥

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चौथा खण्ड

परिणती

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

धुवाहाटा से चूनपोरा

नये स्थान की खोज में यात्रा फिर आरम्भ हुई। ब्रह्मपुत्र का लम्बा जलमार्ग। नावें ज्यों-ज्यों आहोम राज्य की सीमा से दूर जा रही थीं, शंकरदेव और भक्तों के मन में उत्साह बढ़ता जा रहा था। रात होते देख नावों को एक गाँव के तट पर बांधा गया। वहाँ केले के गाछों की भरमार थी। गाँव का नाम कोलाकटा था।

अगली रात वे साधना घाट पर ठहरे। वहाँ से मानव-बस्ती दूर थी। किन्तु नावों पर प्रचुर मात्रा में रसद थी। वहाँ रात्रि-विश्राम कर वे खागरिकटा, कलियाबर होते हुए दो-तीन दिनों के बाद शिंगरी घाट पहुँचे। घाट के सामने दक्षिणी तट पर बरदोवा था। अपनी जन्मभूमि को याद कर शंकरदेव भावुक हो गये। वे माधवदेव को बताने लगे, "माधव ! बरदोवा से कछारियों के भय से पलायन कर हम लोग यहीं आये थे। बरदोवा छोड़ते समय मैं कितना दुःखी था। वहाँ मैंने कितने मन से हरि मन्दिर, नामघर आदि बनाये। मेरे जीवन का लम्बा समय वहाँ बीता। वहाँ के हरितकी पेड़ के नीचे वैठकर मैंने अपनी प्रथम रचना लिखी। वह वृक्ष अब भी वहाँ खड़ा मेरी प्रतीक्षा कर रहा होगा ! बरदोवा धीरे-धीरे एक तीर्थ के रूप में मान्य होने लगा था। मेरे पुरखे भी वहीं जाकर बसे थे। किन्तु हमारे पड़ोसी कछारियों से हमारा सदैव मनमुटाव चलता रहा। हममें से कुछ भूयाँओं की नासमझी ने आग में घी डालने का काम किया। उन्होंने धोखे से कछारियों को भोज पर बुलाकर उनकी हत्या कर दी। उस दुर्दिन को मैं कभी नहीं भुला सकता। उसी अपराध के कारण हम सबको बरदोवा छोड़ना पड़ा।

"पुत्र ! नये स्थान पर हम बड़ी आशा के साथ जा रहे हैं। देखें, ईश्वर की आगे क्या इच्छा है। यह मेरे जीवन का उत्तरार्द्ध है। मैं चौरानवे वर्ष का हो गया ! और कितनी साँसें बची हैं, कौन जाने !"

"गुरुदेव ! आप ऐसा क्यों सोचते हैं। आपको अभी वहुत वर्ष जीवित रहकर अनेक कार्य करने हैं।" माधवदेव ने कहा।

"पुत्र माधव ! जीवन तो क्षणभंगुर है, परन्तु मैंने जो ग्रन्थ लिखे हैं, नृत्य-गीत, संगीत, वाद्य-ध्वनियों की रचना की हैं, वे मेरे जाने के बाद भी रहेंगे। किन्तु अब इन कामों को तुम्हें आगे वढ़ाना है। मैं जानता हूँ, तुम ग्रन्थ लिखने के साथ गीत भी लिख सकते हो। तुममें गायन-वादन दोनों कलाएँ हैं। तुम एक अंकीय नाट्य लिखो, मुझे पूर्ण विश्वास है कि तुम यह सब कर

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सकोगे। बोलो, तुम यह सब करोगे न !''

माधवदेव यह सुनकर बड़े संकोच में पड़ गये। वे क्या उत्तर देते। वे थोड़ी देर मौन रहे। फिर उन्होंने कहा, ''गुरुदेव ! आपने जो काम किये हैं, मैं मूढ़मति भला वैसे काम कैसे करूँगा !''

''तुममें कितनी योग्यता है, मैं जानता हूँ। तुम इसे मेरा आदेश ही समझो।'' इस पर माधव चुप हो गये। उनका अनालाप ही उनकी स्वीकृति थी। शंकरदेव शिष्य के मौन में छिपे संकल्प को समझ गये।

ब्रह्मपुत्र के बीचों-बीच खड़ा उमानन्द द्वीप नौका-यात्रियों को दूर से ही दिखायी देने लगा। नजदीक पहुँचने पर उसके पास के और दो छोटे द्वीप उर्वशी और कर्मनाशा भी दिखे। नावें थोड़ी दूर जाकर एक घाट पर बांधी गयीं। वहाँ रोजमर्रा की चीजों की बड़ी हाट लगी थी। वहाँ से उन लोगों ने आवश्यक अनाज आदि खरीदकर नाव पर रखा और आगे के लिए निकल पड़े।

नावें अब कामाख्या के नीलाचल के नीचे बहती हुई पाण्डु घाट होकर आगे बढ़ रही थीं। रास्ते में रुकते हुए, रात्रि-विश्राम करते हुए, बरकुँवार गाँव पहुँचे। वहाँ से बरपेटा की ओर अग्रसर हुए। गजला नाले के पास एक गाँव आया। वहाँ लोगों की चहल-पहल देख वे कुछ दिनों के लिए गाँव में रुक गये। स्थानीय लोगों का सहयोग मिला। कुछ ही दिनों में वहाँ नामघर, मणिकूट बन गये। एकशरणिया धर्म से प्रभावित होकर कई लोगों ने शंकरदेव की शरण ली।

किन्तु वहाँ का हवा-पानी सबको माफिक नहीं हो रहा था। भीषण बारिश के बीच घने वनों से घिरे उस स्थान में भक्तों में जूड़ी ताप (मलेरिया) और हैजा फैल गया। कुछ भक्त वहीं बीमार होकर अकाल मृत्यु के ग्रास बन गये। माधव की माँ मनोरमा को भीषण जूड़ी ज्वर हो गया। कुछ दिनों के उपचार के बाद वह ठीक हुई तो शंकरदेव वहाँ से कपला सरोवर घाट पर पहुँचे। नजदीक के कपलावाड़ी गाँव में आश्रय लेकर वहाँ भी नामघर-मणिकूट बनाये। नामघर में खोल-ताल पर गीत-पद गूँजने लगे। किन्तु वहाँ का पानी भी स्वास्थ्यकर नहीं था। मनोरमा फिर बीमार हो गयी और दो दिनों के बाद उसकी मृत्यु हो गयी। वहीं उसका दाह-संस्कार कर दिया गया।

माँ का श्राद्ध करने की व्यवस्था वहाँ नहीं हुई तो गुरु आज्ञा से माधवदेव ने अपने बहनोई रामदास को साथ लेकर पास के गाँव बारादि में बूढ़ा दलै के घर आश्रय लेकर श्राद्ध सम्पन्न किया और वे वहीं ठहर गये।

शंकरदेव अन्य भक्तों के साथ आगे के गाँव चूनपोरा में जाकर टिक गये। कुछ ही दिनों में वहाँ भी नाम-ध्वनि गूँजने लगी।

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भवानन्द उर्फ नारायणदास उर्फ ठाकुर 'आता'

चाउलखोवा ब्रह्मपुत्र की उपनदी है। एक बड़ी नौका धीरे-धीरे इसमें प्रवाहित होती इसकी उपशाखा खोवा नदी में प्रवेश कर गयी। नौका को दुकान का रूप दिया हुआ था। नवद्वीप की रेशमी साड़ियाँ, ढाका की मलमल, कामरूप में बने रेशमी मेखला-चादर, एण्डी-मूँगा के वस्त्र, सोना-चान्दी से गढ़े गहने, हाथी दाँत से बनी कलाकृतियाँ, दाव-कटारी, ताम्बूल-पान, तिताबर में बने काँसा-पीतल के लोटे-कटोरियाँ, सार्थेबारी में बने काँसा के बरतन, हाजो में बने पीतल के कलश, शराइ, बोटा के साथ जगन्नाथपुरी के लकड़ी के खिलौने और स्थानीय कुम्हारों द्वारा बनाये माटी के खिलौनों को देखकर बच्चे तो बच्चे, नारियाँ भी उन्हें लेने के लिए मचल जातीं। घर-गृहस्थी की हर चीज नाव पर थी। भवानन्द सौदागर सजी-सजायी दुकान जैसी अपनी नाव पर गाँव-गाँव के घाट-घाट पर जाकर माल बेचता। नाव पर मल्लाहों के अलावा छह लोग और भी थे।

कुछ वर्षों पहले तक धर्म कायस्थ के पुत्र भवानन्द के पास क्या था। माता-पिता उसे छोटी उम्र में ही छोड़कर स्वर्ग सिधार गये। अनाथ भवानन्द को उसके चाचा चैतन्य कायस्थ ने गुरुकुल में डाला, जहाँ उसने संस्कृत के अनेक शास्त्र पढ़े। तीक्ष्ण बुद्धि का होकर भी भवानन्द को बड़े होने पर बुरे लोगों की संगत में बैठकर जूआ खेलने की लत लग गयी। यह तो चाचा चैतन्य ने उसे काम-धन्धे पर लगा दिया। उसने पहले पान का व्यापार किया और धंधा चल पड़ा। फिर नाव में सामान रखकर गाँव-गाँव बेचने लगा।

धन कमाने के लिए उसने छल-प्रपंच का सहारा भी लिया। वह लोगों में अपने आपको राजा का भानजा बताकर रौब गाँठता। एक दिन इस बात का पता राजा को चला तो उसे पकड़वा कर दरबार में उपस्थित किया गया। उसने बिना डरे अपना अपराध स्वीकारते हुए राजा को एक कथा सुनायी, "महाराज ! वन में एक बकरा रहता था। उसे हिंसक पशुओं का भय सदा सताता रहता था। वह स्वयं को वनराज सिंह का भानजा बताकर सबको डराता, जिससे उसका कोई शिकार नहीं करता था। इस तरह वह वन में हरी घास चरता हुआ अपने दिन आराम से गुजार रहा था। एक दिन उसका सामना सचमुच में सिंह से हो गया और उसकी पोल खुल गयी। सिंह उसकी बात सुनकर मुस्काया और उसे छोड़ दिया। इतना ही नहीं, उसे वन में स्वच्छन्द विचरण करने की छूट भी दे दी। महाराज ! मेरी दशा भी उस

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बकरे जैसी ही है। अब आप चाहे मुझे मारे या छोड़े।''

भवानन्द की युक्तिपूर्ण बात सुनकर राजा को हँसी आ गयी। राजा ने भी उसे न केवल छोड़ दिया अपितु अपने राज्य में व्यापार करने की सनद भी दे दी। धीरे-धीरे उसने पैसों के साथ अपनी प्रतिष्ठा भी बना ली। अब वह भवानन्द सौदागर के नाम से प्रसिद्ध हो गया। लोगों की याददाश्त कमजोर होती है। अच्छे दिन फिरते हैं तो लोग बुरे दिन जल्द ही भूल जाते हैं।

नदी-तट पर घना वन था। हेमन्त ऋतु की सुहानी बयार बह रही थी। दूर से सुनायी देता मीठा-मन्द स्वर धीरे-धीरे स्पष्ट होता जा रहा था–

ध्रु– कह रे उद्धव, कह प्राणेर बान्धव हे, प्राण कृष्ण कबे आवे ।
पूछ्ये गोपी प्रेम आकुल भावे, नाहि चेतन गावे ।।
पद– बाछुरि ध्वनि शुनि गोवत्स पेखी, लागे आगि गावे उद्धव सखि ।
कालिन्दि पेखी सखि फूटय बुक, एथाये खेलाइछिल से चान्द मुख ।।
हरि नयन सुख, बिरिन्दा बन बैरी हामारि भेलि ।
पेखिते ना बिछुरु गोपाल केलि, ध्वज ब्रज यव पंकज चाइ ।।
तथाये कान्दो हामो लोटाया काय, गुण गोविन्द गाय ।
कृष्ण सूर्य बिने ब्रज आन्धार, ने देखो ए दुख आवधि पार ।।
आर कि पेखबो गोपाल प्राण, कृष्णर किंकर शंकर भाग ।
हरिक हृदये जान[1] ।।

वन के बीच ऐसे मधुर स्वर में संगीत के साथ कौन गा रहा होगा ! इसे किसने रचा होगा। भाषा भी कितनी सरल और प्रांजल है ! गीत में 'कृष्णर किंकर शंकर' में शंकर नाम सुनकर भवानन्द की स्मृति पर कुछ उभरने लगा। कृष्णर किंकर शंकर ! कौन है यह शंकर ! इसके साथ ही दूसरे सुललित गीत के सुर उसके कानों में अमृत रस घोलने लगे–

---

1 राग तुरवसन्त में लिखे इस गीत में गोपियाँ कहती हैं, "ओ उद्धव! ओ हमारे प्राणों के बान्धव ! बताओ, हमारे प्राण-प्रिय कृष्ण कब लौटेंगे ?" प्रेमाकुल-भाव से गोपियाँ चेतना विहीन-सी हो गयीं। वे फिर पूछती हैं, ओ उद्धव ! बछड़ों की बोली सुन, जब हम उन गोवत्सों को देखती हैं, तो हमारी छाती फटने लगती है। जिस वृन्दावन में जाने पर हरि को देख हमारे नयनों को सुख मिलता था, वही अब हमारा बैरी बन गया है। गोपाल के जो-जो खेल हमने देखे थे, वे हमसे भुलाये नहीं जाते। हम उनके ध्वज, वज्र, जौ, कमलांकित चरण-चिह्नों को देखती हैं, वहीं लोट-लोटकर रोती हैं और गोविन्द के गुण गाती हैं। हे उद्धव! श्रीकृष्ण रूपी सूर्य के बगैर ब्रज अँधियारा हो गया है। अब तो इस दुःख की अवधि का जैसे कोई अन्त ही दिखायी नहीं देता। तुम ही बताओ उद्धव ! हमारे प्राण-प्रिय गोपाल के दर्शन फिर कब होंगे ? कृष्ण-किंकर यह शंकर कहता है कि हरि हृदय में ही हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ध्रु– उद्धव बन्धु, मधुपुरी रहल मुरारु ।
काहे नाहेरि रहब अब जीवन, बन भयो भवन हमारु ।।
पद– याहे वियोग आगि अंग तावय तिल एकु रहये न पारि ।
सोहि ब्रज सुर दूर गयो गोविन्द, दिश दश दिवसे आन्धारि ।।
हयो मरण ओहि सोहि हरि-चरणकु बिछुरे रहये नपाय ।
देखत कालिन्दि गिरि बिरिन्दा बन, तनु मनु दहये सदाय ।।
ब्रज जन जीवन बाहुरि नाहि आवत, हामाकु करत अनाथा ।
गोपिनी प्रेम परशि पीर झुरय, शंकर कह गुणगाथा[1] ।।

इस गीत में भी 'शंकर कह गुणगाथा' में दूसरी बार शंकर का नाम सुना तो उसे भास्कर पण्डित की बातें याद आयीं। उस घोर कर्मकाण्डी और शाक्त ब्राह्मण के मुँह से वैष्णव धर्म की महिमा का बखान सुन उसे अचरज हुआ था। भवानन्द वैष्णव धर्म के बारे में थोड़ा बहुत समझता था। वह अपना माल खरीदने-बेचने चैतन्य महाप्रभु की लीलाभूमि नवद्वीप जाया करता था। चैतन्य के दर्शन करने का सौभाग्य तो उसे नहीं मिला, वे अपनी इहलीला समाप्त कर चुके थे। किन्तु वे धराधाम छोड़ने से पहले नवद्वीप को दूसरा वृन्दावन बना गये थे। गली-गली में 'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे, हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे' के संकीर्तन पर ढोल-मृदंग की ताल पर उछल-उछल कर नाचते वैष्णव भक्तों को उसने देखा था। तब वह वैष्णव का अर्थ पूरी तरह नहीं समझता था।

भास्करपण्डित ने उसे अपने क्षेत्र के वैष्णव सन्त महापुरुष श्रीमन्त शंकरदेव के बारे में बताया था। उसने यह भी बताया कि कैसे उसने कर्मकाण्डों को छोड़कर हरि-भक्ति में लग उनकी शरण ले ली। उसकी बातों से भवानन्द के मन में शंकरदेव से मिलने की इच्छा इतनी तीव्र हुई कि वह समय निकाल कर धुवाहाटा जाने को भी तैयार था। आज उसने उसी शंकर

1 राग कल्याण में लिखे इस गीत में गोपियाँ उद्धव से कहती हैं, ओ बन्धु उद्धव ! मुरारी तो अब मधुपुरी (मथुरा) में रहते हैं। उन्हें बिना देखे बिना भला हम जीवित कैसे रह सकती हैं। हमारा यह भवन जैसे वन वन गया है। वियोग की यह आग हमारे अंगों को ऐसा तापित कर रही है कि हमें पलभर भी चैन नहीं मिल पा रहा। जो ब्रज के सूर्य थे, वही गोविन्द दूर हो गये, अब तो दिन में भी दसों दिशाएँ अँधेरी ही लगतीं हैं। इससे हमारा तो मरण ही हुआ समझो। फिर भी उस हरि के चरणों को हम भुला नहीं पातीं। यमुना, गोवर्धनगिरि, वृन्दावन आदि को देखते ही हमारे तन-मन जलने लगते हैं। ब्रज-जनों के जीवन-गोपाल फिर लौट कर नहीं आये, हम तो पूर्णतया अनाथ हो गयीं। गोपियों की व्यथा का वर्णन करते यह शंकर कहता है, गोपियों का यह प्रेम देखकर उद्धव की आँखों से नीर का नीर्झर फूट पड़ा।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के गीतों को सुना तो वह अपने आप को रोक न सका। अपनी नाव को किनारे लगवाकर आवाज की दिशा में चल पड़ा।

तट से थोड़ी दूर जाने पर भवानन्द ने देखा कि खेत में हल जोतता एक किसान उन गीतों को गा रहा था। पूछने पर उसने बताया कि यह चूनपोरा गाँव है। तुम जिस शंकर की बात कर रहे हो, ये गीत उन्हीं के लिखे हुए हैं। पास में ही उनका नामघर है। वहीं सुनकर मैंने इन्हें याद किया है। तुम चाहो तो उनके दर्शन कर आओ। उसने शंकरदेव के पास जाने से पहले सोचा, वहाँ मुझे खाली हाथ नहीं जाना चाहिये। फिर अपनी नाव में लौटकर भेंट स्वरूप देने के लिए कुछ सामग्री अपने आदमी के साथ लेकर रवाना हुआ।

घर-गृहस्थी में रहकर भी शंकरदेव का मन गार्हस्थ जीवन में कभी आबद्ध नहीं हुआ था। न ही कभी उन्होंने घरेलू दैनन्दिन काम आनेवाली चीजों की चिन्ता ही की। वे अपने नववैष्णव धर्म और साहित्य रचना में निमग्न रहते। उनका मन वहाँ कुछ नया रचने के लिए व्याकुल था। किन्तु साँचिपात की व्यवस्था नहीं हो पा रही थी। जहाँ चाह थी वहाँ राह भी निकल ही आयी।

शंकरदेव अपने लेखन में निमग्न थे कि उनकी पत्नी ने आकर उन्हें उलाहना देते हुए कहा, "आज तक घर-गृहस्थी के लिए मैंने आपको कभी कुछ नहीं कहा। धुवाहाटा छोड़ने के बाद मैं जैसे-तैसे काम चला रही हूँ। किन्तु आज तो दोपहर का भात पकाने के लिए भी घर में चावल का दाना तक नहीं। आप अपनी ही धुन में लगे रहते हैं। इस तरफ भी तो थोड़ा ध्यान दीजिये।"

"ऐसी बात है।" कहकर शंकरदेव मुस्काये। फिर 'नारायण-नारायण' का उच्चारण कर अपना सिर ऊपर उठाया तो सामने खड़े एक पुरुष को देखा। उसने साथ लाये चावल, दाल, नमक, तेल आदि रख उनके चरणों में लेट कर दण्डवत प्रणाम किया। गुरु ने उसे उठाया। उससे परिचय कर उन्होंने कहा, "मैंने नारायण नाम उचारा और तुम सामने दिखे। तुम्हें नारायण दास कहकर पुकारूँ तो कोई आपत्ति नहीं है न !"

"आपकी वाणी से निकला शब्द मात्र मेरे लिए प्रसाद है, गुरुदेव ! कहा भी है– सत् गुरुर कृपाहे जीव तारणर मूल वस्तु। मैंने आपके बारे में जब से भास्कर पण्डित से सुना है, आपसे मिलने के लिए बेचैन था। मैं तो आपसे मिलने के लिए धुवाहाटा जाने की सोच रहा था। यह मेरा सौभाग्य है कि आपके दर्शन मुझे यहीं हो गये।"

एक भक्त ने नारायण दास के आगे ताम्बूल-पान का बोटा रखा।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गुरु आज्ञा से उसने ताम्बूल का एक टुकड़ा उठाकर निवेदन किया, ''मैं जीविकोपार्जन में लगा जगह-जगह भटकता हूँ। मोह-माया में फँसा संसारी जीव हूँ। मेरा उद्धार कैसे होगा ?'' शंकरदेव ने कहा, ''नारायण ! मनुष्य संसार-धर्म का पालन करते हुए भी निर्लिप्त रहकर परमात्मा की भक्ति कर सकता है। संसार में रहते हुए भी माया-मोह से अपने आप को जो बचा लेता है वही पूर्ण मानव है। तुम अपने मन के संशय को दूर करो, अपने पुत्र-परिवार के संग रहकर हरि भक्ति करो। मुझे तुम में और माधव में बहुत समानता लगती है। वह संसारी नहीं है। उसने अपनी गृहस्थी नहीं बसायी। फिर भी वह अपनी अन्तर्दृष्टि से जगत को समग्र रूप से समझता है। सचमुच, माधव सबसे अलग है। इस समय वह अपनी माँ का श्राद्ध करने के लिए पास के गाँव बारादि में बूढ़ा दलै के घर पर रुका हुआ है। आज आना चाहिये। तुम्हें उससे मिलकर प्रसन्नता होगी।''

संयोग से कुछ समय बाद ही माधवदेव चूनपोरा लौट आये। शंकरदेव ने नारायण का माधव से परिचय कराया। दोनों में काफी देर तक चर्चा चलती रही, आपस में अपनी-अपनी रामकहानियाँ एक दूसरे को बतायीं। एक ही दिन में दोनों के बीच प्रगाढ़ मैत्री स्थापित हो गयी।

एक प्रहर बाद गुरु शंकरदेव लौटे तो उन्होंने माधवदेव से कहा, ''पुत्र ! तुम्हारी माँ की आत्मा की शान्ति के लिए यहाँ नामघर में एक दिन हरि-संकीर्तन करते हैं।'' अवसर देख माधवदेव ने भी उनके सम्मुख कीर्तन के बाद 'पत्नी-प्रसाद' नाटक चूनपोरा के लोगों के सामने प्रस्तुत करने का प्रस्ताव रखा। गुरु आज्ञा मिलते ही इसकी तैयारियाँ होने लगीं। दो दिनों पश्चात् कीर्तन होने के उपरान्त धुवाहाटा में लिखे जाने के बाद एक अंकीय नाटक 'पत्नी प्रसाद' का वहाँ पहली बार मंचन आरम्भ हुआ–

लक्ष्यायोक नते नते । पादपद्मे भवभवाभञ्जके ।।
वन्दे नन्दनिवासवास । दनुजश्रीक चिदा गर्व्वितम् ।।
पद्मामोदनसुन्दरेन्दो । दलितप्राय प्रकाश प्रभो ।।
भोगव्याल बलावलेप । परमाकेना मृतं देहिभो ।।

भटिमा

जय जय यादव दैत्य पराभव
कारि माधव,
भकत जन यो मुकुति साधव ।।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सूत्रधार– आहे सामाजिक लोक, योहि जगत परम गुरु पुरुषोत्तम, सोहि नन्द नन्दनरूपे कहो। अन्न प्रार्थना छले विप्रसबक कर्म्म गर्व्व दूर कयल। पत्नीसबक प्रसाद देलह, बालक सबक षड़रस अन्न भोजन करावल। सोहि पत्नी प्रसाद नाट ओहि सभा मध्ये करब। ताहेक देखक शुनह। निरन्तरे हरि बोल हरि। प्रथमे विप्रसब जैसे प्रवेश कयल, ताहे देखह।

भवानन्द उर्फ नारायण दास को चूनपोरा में रहते सात दिन हो गये। घर छोड़े भी लम्बा समय हो गया था। अपने गाँव 'हालधि-आटि' लौटने के लिए गुरु से आज्ञा लेकर वह नाव पर सवार हुआ। उधर घर पर उसकी पत्नी बरावाही पति की चिन्ता में व्याकुल थी। कहीं व्यापार में उन्हें नुकसान तो नहीं हो गया ! कहीं वे बीमार तो नहीं हो गये ! कहीं नाव किसी नदी में उलट तो नहीं गयी ! कहीं किसी सुन्दर नारी के मोह में फँस कर मुझे त्याग तो नहीं दिया !

अपनी मानसिक दुविधा में फँसा नारायण दास हालधि-आटि के घाट पर पहुँचकर भी अपने घर नहीं गया, तीन दिनों तक नाव पर ही डेरा डाले पड़ा रहा। पत्नी को इस बात का पता चला तो वह घाट पर आयी। पति-चरणों में प्रणाम कर उसने घर चलने को कहा। नारायण ने घर चलने से मना कर दिया। बरावाही का मन अस्थिर हो गया। किन्तु उसने मन में धीरज रखकर कारण पूछा। नारायण ने कहा, "अपना मनुष्य जीवन तारने के लिए मैं अब शंकरदेव का शरणागत हूँ। मैंने पक्का निर्णय कर लिया है कि उन्हींके बताये वैष्णव धर्म पर चलूँगा। मैं उनसे दीक्षा लेने फिर वहाँ जा रहा हूँ। तुम भी यदि मेरे साथ उस धर्म का पालन करने को तैयार हो तो घर चल सकता हूँ, अन्यथा यही समझो कि मैंने गृहस्थी का त्याग कर दिया है।"

दोनों पति-पत्नी चूनपोरा में गुरु शंकर की शरण में आ गये और पास के ही मानदिया गाँव में घर बनाकर रहने लगे। इससे उन्हें नामघर जाने की सुविधा हो गयी। नाव पर रहनेवाले छहों व्यक्ति भवानन्द के विश्वासी थे। वे अपने मालिक की अनुपस्थिति में उसका कारोबार सँभाल लेते थे।

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विश्वास और अन्धविश्वास

नामघर में गुरु आसन के सम्मुख आज शास्त्रीय नृत्य[1] की प्रस्तुति होने वाली थी। स्थानीय नर्तकों को शंकरदेव ने बड़े परिश्रम से पद संचालन, हस्त मुद्राओं, चेहरे की भाव-भंगिमाओं, लय-ताल आदि का ज्ञान करा कर यह नृत्य सिखाया था। उन्होंने नियम बनाया था कि इस नृत्य को केवल कीर्तन घर या नामघर के गुरु आसन के सम्मुख ही भक्ति भाव से किया जाना चाहिये।

धवल वस्त्रों में, धवल ही तिकोनी पगड़ी धारण किये नर्तकों का प्रवेश हुआ। चूनपोरावासी पहली बार यह नृत्य देख रहे थे। खोलों तथा अन्य वाद्यों की ताल और नर्तकों के पद संचालन के साथ शंकरदेव गा रहे थे—

श्रीमंघ्रिकमलं नमः कि नमः नमः । गोविन्द मुकुन्द पद विनायक वृन्दं ।
श्रीमंघ्रिकमलं नमः कि नमः नमः । गोविन्द मुकुन्द पद विनायक वृन्दं ।
तापित वेपित व्रेजेनिति त्राणं ।
त्रिधिना धेना धेना त्रिधिना त्रिधिनां । त्रिधिना धेना धेना त्रिधिना त्रिधिनां ।
त्रुम ताता नाता त्रिनिति त्रिमि त्राता । प्रीतिका तिका धेः धेः ।।
ध्रिगिति ध्रिगि ध्रिगि त्रादिङि धामामामा ।
ध्रिगिति ध्रिगि ध्रिगि त्रादिङि धामामामा ।
त्रादिङि ताक ताक ताक । तागेरा गेरा गेरि चा ।
खेखेता खेता खेता खेखेता खेखेतां । खेत् ता खेत् ता तिखि चा ।।

नृत्य से अभिभूत हुए लोगों से प्रेरित होकर रामराय (जगतानन्द) ने एक दिन शंकरदेव से श्रीकृष्ण की रासलीला पर नाटक लिखने के लिए आग्रह किया। इस पर पहले उन्होंने चिन्तन-मनन किया। फिर नाटक के लिए भागवत के अतिरिक्त विष्णुपुराण और हरिवंश से भी कथावस्तु का चयन किया। रासलीला-प्रसंग के साथ किसी भी पुराण में शंखचूड़-प्रसंग का वर्णन नहीं है परन्तु शंकरदेव ने एकशरणिया धर्म की प्रयोजनसिद्धि के लिए इस कथा को जोड़कर नाटक का नाम 'केलि-गोपाल' रखा और गाँव के लोगों को ही

1 शास्त्रीय नृत्य : यह नृत्य ही आगे चलकर 'सत्रिया नृत्य' के नाम से विख्यात हुआ। इसे 'राष्ट्रीय संगीत नाटक अकादेमी' द्वारा मान्यता प्राप्त है। अब यह कीर्तनघर या नामघर से निकलकर सर्व भारतीय नृत्य जगत में प्रतिष्ठित हो गया है। साथ ही नारी पात्र का अभिनय-नर्तन अब पुरुष नहीं, नारी द्वारा ही किया जाने लगा है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सिखा कर उसका मंचन भी कराया।

नामघर में आकर शंकरदेव के आसनासीन होने पर नाम-कीर्तन प्रारम्भ हुआ। एक भक्त गीत गा रहा था—

नालागे भक्तित देव द्विज नृप हैबे ।
नालागे सम्भृत शास्त्र विस्तर जानिबे ।।
तप जप याग यज्ञ सबे विड़म्बन ।
केवले भक्तित तुष्ट होन्त नारायण ।।

इसकी व्याख्या करते हुए गुरु शंकर ने कहा, "वैष्णव धर्म धारण करने के लिए कोई धन-सम्पत्ति नहीं चाहिये। उच्च वर्णी या राजा-महाराजा होने की भी आवश्यकता नहीं। शास्त्रों का ज्ञान जरूरी नहीं, तप-जप, यज्ञ-याग करने का भी कोई प्रयोजन नहीं। अपने मन में दृढ़ विश्वास रख भक्ति करने मात्र से ही नारायण सन्तुष्ट हो जाते हैं।"

उन्होंने आगे कहा, "हे भक्तजनों ! हम वैष्णव पथ के यात्री हैं। इसी पथ पर चलते हुए बरदोवा से गांमौ, धुवाहाटा आदि होते हुए आपके वीच चूनपोरा में आये हैं। अब हम सभी सहयात्री हैं। हमारे पथ में विघ्न-बाधाएँ भी आती रहीं। हमारा पथ कण्टकाकीर्ण है। रास्ते से काँटों को दूर कर हमें हरिभक्ति के राजमार्ग पर आगे बढ़ते रहना है।

"वैष्णव अपना काम स्वयं करता है। हम जो भी करें ईश्वर का स्मरण कर सत्यता के साथ करें। हमारे हृदय में सबके प्रति दयाभाव रहना चाहिये। भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने महाप्रयाण के पहले उद्धव को कहा था—

अनेक एकत्र हुया करि हरि रव ।
कराइवा मोहार महायात्रा महोत्सव ।।
मोर गुण गाया जिटो जने करे नृत्य ।
नाहि तार चिन्ता किछु भैल कृतकृत्य ।।

"इसी आदर्श को मन में रखकर हम कीर्तन, नृत्य, नाटक, भाउना करते हैं।" इतना कह कर शंकरदेव एक पल के लिए ठहर गये। उन्होंने किसी भक्त को कुछ कहने के लिए खड़े होते देखकर उससे कहा, "तुम कुछ कहना चाहते हो ? निसंकोच होकर अपने मन की वात यहाँ कह सकते हो।"

भक्त ने हाथ जोड़कर कहा, "हाँ गुरुदेव ! आपकी कृपा से हमने

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

'पत्नी प्रसाद' के बाद आपका लिखा 'केलि-गोपाल' नाटक भी देखा। इसमें भी श्रीकृष्ण की बाललीला का प्रदर्शन हुआ। वैकुण्ठ के नारायण का रूप अपनी आँखों से देखा। इनके साथ ही हमें आपके अपूर्व नृत्य को देखने का सौभाग्य भी मिला। हममें ज्यादातर हलवाहे और मेहनत-मजूरी कर अपनी जीविका चलानेवाले हैं। हम पढ़े-लिखे भी नहीं। फिर भी हमारे लड़कों ने आपके सिखाने पर अभिनय किया, गीत गाये, नृत्य किया, खोल-ताल भी बजाए। हमने मुखौटे बनाये, रंग बनाये। राजा-महाराजा, ऋषि-मुनियों की पोशाकें और दाढ़ी-मूँछें बनायीं तथा सभी अभिनेताओं को सजाया-सँवारा। आपके साथ बैठकर नाम-कीर्तन तो रोज करते ही हैं। अचरज होता है कि अपने नित्य के काम करने के बाद भी हम यह सब कैसे कर पाते हैं ! इसके लिए आपका साधुवाद हम किन शब्दों में करें।'' इतना कहकर उसने गुरु को प्रणाम किया।

नारायण एक दिन अपने साथ एक व्यक्ति को लेकर शंकरदेव के पास आया। उसने उसका परिचय कराते हुए कहा, ''गुरुदेव ! यह माधव है, जयन्तिया पहाड़ का रहनेवाला। यह पढ़ालिखा पण्डित है। इसकी धन-सम्पत्ति सब नष्ट हो गयी। फिर भी विषय-बाधाओं से यह अपने को मुक्त नहीं कर सका। यह सदा हरिनाम का जप करता रहता है। किन्तु इससे भी इसे शान्ति नहीं मिली। एक दिन यह मुझे मिल गया। मेरे कहने पर ही यह आपकी शरण लेने आया है।''

उसकी भाव-भक्ति देखकर शंकरदेव अभिभूत हुए और उसे शरण दी। कुछ दिन वहाँ रहकर वह जयन्तिया पहाड़ लौट गया। वहाँ अपनी दोनों पत्नियों से मिल कर उसका मन फिर से विषय-भोग में फँसने लगा। मानसिक द्वन्द्व फँसे माधव उसकी दोनों पत्नियों ने ही उद्धार किया। एक ने कहा, ''स्वामी ! आप जब से लौटकर आये हैं, हम आपके मुख से सदा शंकर का नाम सुन रही हैं। आपको ईश्वर से मिलने का यह सुयोग मिला है। आप के महाभाग्य हैं। हम अवला नारी हैं, तो भी अपना उद्धार करना चाहती हैं। आप कहें तो हम भी आपके साथ चलें !''

दूसरी ने कहा, ''स्वामी ! हरिनाम लेने मात्र से क्या हम अवलाओं की मुक्ति भी सम्भव है ?''

माधव ने उत्साह से कहा, ''तुम लोग ऐसा क्यों सोचती हो। दुःखी और अवलाओं के जीवन का उद्धार करने के लिए ही शंकरदेव ने नामधर्म का प्रचार किया है। वहाँ स्त्री-पुरुष, ब्राह्मण-शूद्र का कोई भेद नहीं। कोई भी नामधर्म पर चल सकता है। इसका पालन करना भी अति सुगम है।''

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अब दोनों शंकरदेव के दर्शन करने के लिए उत्कण्ठित हो गयीं। उन्हें अपने मन में विश्वास हो गया कि गुरु के दर्शन करने मात्र से ही उन्हें मुक्ति-मार्ग मिल जाएगा। दोनों ने नामधर्म ग्रहण कर लिया। जयन्तिया के माधव के मन की दुविधा का भी अन्त हुआ।

चूनपोरा के पास एक छोटे-से गाँव में राभा, कोच, बोड़ो जनजातियों की वस्ती थी। बोगीराम राभा की पत्नी अचानक अजीब हरकत करने लगी। वह अपने बाल बिखेर कर झूमने लगी। हाथों को जमीन पर पटकने लगी। न जाने क्या अण्डबण्ड बके जा रही थी। उसका पति और पड़ोसवाले, देखते-देखते गाँववाले भी वहाँ जमा हो गये। किसी औरत ने कहा, ''बोगीराम ! तेरी औरत पर मनसा देवी आयी है। तू जल्दी से उसकी पूजा कराने की मनौती कर। नहीं तो तेरा बहुत अनिष्ट हो जाएगा। तुझे क्या बेहुला-लखिन्दर की कहानी पता नहीं ? मनसा देवी ने नाराज होकर उन्हें कैसे-कैसे कष्ट दिये थे !''

बोगीराम भयातुर हो गया। वह अपने शरीर पर देवी को धारण की हुई पत्नी के चरणों में लोटपोट हो क्षमा याचना करने लगा और अगले श्रावण की संक्रान्ति को तीन दिवसीय मनसा-पूजा करने की मनौती की। होश में आने के वाद पत्नी ने कहा, ''मनसा पूजा पर मैं अपने मायके से ओझा और उसकी मण्डली को बुलाऊँगी। अपने बाप के घर कितनी ही बार उसका गायन-वादन सुना है। और हाँ ! उस समय देओधनी नृत्य भी होगा। पूजा में कोई कमी नहीं रहनी चाहिये। देवी का प्रसाद पूरे गाँववालों को खिलाना होगा।''

बोगीराम पूजा का सामान जुटाने में लग गया। पर यह इतना आसान न था। उसने कुछ अपने पास से और कुछ लोगों से उधार लेकर सामान इकट्ठा किया। बड़ी धूमधाम से पूजा का आयोजन हुआ। देवी के लिए फूल-फल, मिष्टान्न, धूप-धुना की कोई कमी न रखी। बोगीराम और उसकी पत्नी अपने परिवार पर किसी भी प्रकार का अमंगल नहीं चाहते थे। पूजा-प्रसाद के बाद बाहर से आये ओझा और उसकी मण्डली ने ओजापालि का गायन शुरू किया। ओझा ने सिर पर पगड़ी, कमर में गमछा और पाँवों में घुँघरू वांध रखे थे। साथ की मण्डली ने गायन-वादन से उसकी संगत की। पहले ओझा गाता फिर उसके साथ वाले उसे दोहराते। उसने पद्मपुराण की वेहुला की कथा में चान्द सौदागर की शिव-भक्ति का बखान किया। 'सर्प देवी मनसा' चाहती थी कि चान्द शिव की तरह उसकी भी पूजा करे। उसके मना करने पर देवी उसके

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सभी पुत्रों को अपने भेजे साँपों द्वारा डँसवाने के बाद छोटे पुत्र लखिन्दर को भी उसकी सुहागरात के दिन नाग से मरवा देती है। लखिन्दर की सती पत्नी बेहुला ने अपने मृत पति को अपने सत के प्रताप से जीवन दान दिलवाया और मनसा देवी का क्रोध भी शान्त हुआ। ओझा ने इस कथा को सुनाकर सबको मन्त्रमुग्ध कर दिया। अब ओझापालि के बाद बारी थी देओधनी अर्थात् देवध्वनि नृत्य की।

बोगीराम की पत्नी के साथ ही गाँव की और दो-तीन औरतों पर भी देवी की छाया आयी। वे अपने तन-मन की सुध खोकर नाचने लगी। ढोल-मजीरे जोर से बजने लगे। वाद्यों की ताल के साथ उनका नाच भी तीव्र होता गया। उन्होंने अपने केशों को बिखेर लिया। वे कभी हवा में जोर से उछलतीं, कभी जमीन पर पछाड़ खातीं। अपनी उन्मत्तावस्था में देवी के सामने उत्सर्गित किये पशु-मांस को कच्चा चबाने लगतीं। बलि के बाद उनके रक्त से भरे कटोरे को उठा कर पीने लगतीं। दर्शकों में से कोई-कोई उन्हें जीवित कबूतर पकड़ाते और वे उनकी चोंच समेत गरदन अपने दांतों के बीच लेकर काट डालतीं। धरती पर गिरे खून से लोग टीका लगाते।

नाच के बीच थोड़ी देर रुककर कोई झूमने लगती, फिर कुछ बड़बड़ाती। इसे देव-वाणी मानकर वहाँ खड़े लोग समझने का प्रयास करते। उनके मन का विश्वास कहता कि इस समय वह जो भी कहेगी, देओधनी यानी देवध्वनि होगी। उनका कहा हुआ सत्य घटित होगा। कितनी औरतें उन्हें अपने-अपने पारिवारिक दुखड़े बताकर उसके निदान पूछतीं। उनके दिये उत्तर कुछ समझ में आते, कुछ कयास लगा लिये जाते कि देवी ने ऐसा कहा होगा।

देओधनी नृत्य खत्म होने पर माछ-मांस का सामूहिक भोज कर सब अपने-अपने घर गये। वह आयोजन देखने जलेश्वर तालुकदार अपने मित्र के साथ आया था। वह स्वयं अच्छा गायक-वादक और अभिनेता था। उसने जब से वैष्णव नामधर्म अपनाया, उसे ऐसे कार्यक्रमों में निमन्त्रण नहीं दिया जाता। फिर भी वह ओजापालि देखने-सुनने चला आया। उसने अपने मित्र से कहा, ''इस नृत्य का लोगों ने अपने स्वार्थ के लिए सत्यानाश कर दिया। जीवित कबूतरों को इस तरह दांतों से काटकर मारना कितना नृशंस और वीभत्स है।''

मित्र ने कहा, ''ये लोग शक्ति के उपासक हैं। इनका विश्वास है कि रक्त देकर ही देवी को प्रसन्न किया जा सकता है।''

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"जो भी हो, मैं यह सब देखने यहाँ नहीं आया और न ही मैं इनकी कोई निन्दा ही करूँगा। गुरु शंकर कहते हैं 'पर धर्म हिंसा नकरिबा, ननिन्दिबा नबन्दिया।' हम यहाँ नाच-गान देखने आये थे। ये लोग विषधर साँप को ईश्वर मानकर पूजते हैं और हमारे आराध्य श्रीकृष्ण ने तो यमुना में रहने वाले कालिया नाग के फण को कुचलकर उसे पाताल भेज दिया था।"

सिद्धि प्राप्त करने के लोभ में वृद्ध ब्राह्मण गोविन्द गरमाली ने छाती को चीरकर अपना रक्त देवी को अर्पण किया। उस दुर्घोष देवी-पूजक को दृढ़ विश्वास था कि इससे देवी प्रसन्न होकर उसे सिद्धि प्रदान कर देगी। मन वांछित कामना तो क्या पूरी होनी थी, वह तन और मन से दारुण यन्त्रणा में पड़ गया। हताश होकर, वह गाँव की हाट में पड़ा अपनी मृत्यु की प्रतीक्षा करने लगा। उसने अनाहार रहकर देवी दुर्गा के नाम पर अपने प्राण त्यागने का संकल्प कर लिया।

नारायण मनदिया में रहते थे और माधवदेव बारादि में। नारायण मनदिया से रास्ते में पड़ने वाले बारादि से माधवदेव को साथ लेकर शंकरदेव से मिलने चूनपोरा जा रहे थे। उन्होंने गोविन्द की दुरवस्था देखी। उसके छाती के घाव पर मक्खियाँ भिनभिना रही थीं। कोई उसके पास फटकने को भी तैयार नहीं था। दोनों ने उसके पास जाकर उसका परिचय पुछा।

उसने कांपते ओंठों से अस्फुट शब्दों में कहा, "मैं गोविन्द गरमाली देवी दुर्गा का भक्त हूँ। देवी की पूजा-अनुष्ठानों और बलि देने में अपना सब कुछ खोकर अब दर-दर का भिखारी हो गया हूँ। इस पर भी माँ दुर्गा को प्रसन्न नहीं कर सका। अब अपने शरीर को सुखाकर प्राण त्यागने के लिए यहाँ पड़ा हूँ।"

उन्होंने गोविन्द को सांत्वना दी। उसके घाव को पानी से धोया। पास के वैद्य के पास ले जाकर उसकी मरहम-पट्टी करवायी। फिर उसे अपने साथ शंकरदेव के पास ले गये। उस पर गुरु के शब्दों और वहाँ के वातावरण का असर हुआ। गुरु की शरण लेकर वह अपना नया जीवन प्रारम्भ कर अपना घर-संसार चलाने के लिए एक नाव पर सामान लादकर व्यापार करने लगा। अब पशु बलि या आत्मबलि जैसे कुसंस्कारों से उसका विश्वास उठ चुका था। एकशरण भागवत धर्म ही उसके मन का दृढ़ विश्वास बन गया।

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हरि-नाम का मरहम

चूनपोरा में रहकर नामधर्म का प्रचार तो चारों ओर हुआ, परन्तु वहाँ के नदी-घाट पर आनेवाली नावों के कारण वहाँ अत्यधिक गन्दगी रहने लगी। उस नदी का पानी ही सब लोग नहाने और खाना बनाने के काम में लेते थे। नावरियों को सफाई बनाये रखने के लिए समझाया गया। किन्तु नित्य दूर-दूर से आने वाले सब नाविकों को समझाना मुश्किल था। आखिर परेशान होकर भक्तों ने नयी जगह की खोज शुरू की। वैसे भी वहाँ रहते एक वर्ष हो गया था।

नारायण दास को लोग अब ठाकुर 'आता' (सत्रों में पिता, गुरु, वृद्ध या माननीय पुरुष को 'आता', 'आतै' या 'आताइ' भी कहा जाता है) कहने लगे थे। वे विद्वान तो थे ही, अब गुरु के परमभक्त भी बन गये। एक दिन उन्होंने नजदीक स्थित किसी कुमारकुची गाँव के बारे में शंकरदेव को बताया।

शंकरदेव के चूनपोरा छोड़कर जाने की बात सुनकर वहाँ के लोग दुःखी हो गये। गुरु ने उन्हें समझाते हुए कहा, "भक्तो ! आप सब जानते हैं कि मैं भूयाँ राज्य से आहोम राज्य में गया था। वहाँ से यहाँ कोच राज्य में आया। स्थान-स्थान पर नामघर बने, भक्त बने। जहाँ-जहाँ रहा वहाँ नामधर्म का प्रचार हुआ; नाम-कीर्तन, नाटक-भाउना का अभिनय हुआ। मुझे वहाँ बने नामघर, मणिकूट आदि छोड़कर आना पड़ा। किन्तु वहाँ नामधर्म आज भी चल रहा है। कल यहाँ भागवत के अष्टम स्कन्ध से ली हुई कथा बलि-छलन पर व्याख्यान होगा। फिर हम यहाँ से कुमारकुची चले जायेंगे।"

कुमारकुची में भी गुरु आज्ञा से ठाकुर 'आता' ने नामघर, मणिकूट और भक्तों के लिए हाटियाँ बनवा दीं। कम ही समय में आसपास के गाँवों के लोगों की जबान पर कुमारकुची का नाम चढ़ गया।

एक दिन शंकरदेव माधवदेव, ठाकुर 'आता', जयन्तियीवासी माधव और सर्वजय के साथ ब्रह्मपुत्र में नौका विहार करने निकले। सर्वजय ने ताम्बूल-पान से सब की मनुहार की। उसका मान रखने गुरु ने ताम्बूल का एक टुकड़ा मुँह में रखा। गुरु के संकेत पर शेष सब ने भी ताम्बूल-पान लेकर सर्वजय की बात रखी। नाव पर बने छपरे की छाँव में बैठे लोग तट के वनों को निहार रहे थे। नद के बीच आयी सापरी के किनारे पर जलपक्षी किल्लोल कर रहे थे, वहीं बालू पर पसरे कछुए धूप सेंक रहे थे। बहती बयार सब के वदन को सुहानी लग

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रही थी। माधवदेव ने प्रसन्न मन से विनम्रतापूर्वक गुरु से कहा, मैंने गुरुभटिमा रची है। आपकी आज्ञा हो तो सुनाऊँ। गुरु आज्ञा ले वे गाने लगे—

जय गुरु शंकर सर्व गुणाकर जाकेरि नाहिके उपाम ।
तोहारि चरण रेणु शत कोटि बारेक करोहो प्रणाम ।।
दरशित सुन्दर गौर कलेवर जैसन सुर परकाश ।
सकल सभासद रञ्जन जाकेरि दरशने पाप विनाश ।।
बिने अंग भूषण पेखि सुशोभन गहीन गम्भीर धीर मति ।
आयत कमल नयन बर सुन्दर बयन चान्दकहु ज्योति ।।
लीला गजगति गमन विलोकन वाणि मेघ गम्भीर ।
पाखण्ड मर्दन कलिको काले जाकु सम नाहि धीर ।।
पण्डित मानि वेद बखानि गरव कयलि सवचूर ।
गीत कवित्व गुण शंकरदेवर कीरिटि गयो बहु दूर ।।
हरि कहु मुरुति सुरुति मन मगन मज्जल आनन्द सिन्धु ।
ऐचन निरमल हृदय विकशित भकत कुमुद कूल इन्दु ।।
कि कहब शंकरदेवर महिमा जानि ज्ञानी अन्त नपाय ।
जाकेरि चरणक रेणु शिरे परशि मुकुति सुख सुखे पाय ।।
माधव दीन मुरुख मति कहय वाणी गुन सव लोइ ।
विने गुरु चरण भकति रकति मुकुति कबहु नहोइ ।।

शंकरदेव रचना को आँखें मूंदे सुन रहे थे। वे माधव के मीठे स्वर में खो गये। गायन पूरा होने पर कुछ पल चुप रहने के बाद उन्होंने कहा, "पुत्र ! तुम्हारी दृष्टि में क्या मैं वैसा ही हूँ जैसा तुमने कहा !"

"गुरुदेव ! आपके प्रति मन के भावों को ही शब्दों में मैंने उतारने का प्रयास किया है। इसमें किंचित मात्र भी अन्तर नहीं।"

ठाकुर 'आता' ने भी गुरु महिमा में अपना रचा पद सुनाया—

जय जय अनादि शंकर मइ तुवा दासको दास ।
उजानर हन्ते आसि प्राणप्रभु निकटते लैला वास ।।

शंकरदेव अपने प्रति दोनों की अचल भक्ति देखकर भावविभोर हो गये। उन्होंने नम आँखों से कंपित स्वर में कहा, "माधव ! नारायण ! ये मेरे प्रति तुम्हारे भावों का अतिरेक है। इसीलिए तुम लोग ऐसा कहते हो। किन्तु मैं इस स्तुति के लायक नहीं।"

नामघर में सब कुछ ठीक चल रहा था। किन्तु भक्तों को कुमारकुची पसन्द

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नहीं आया। माता कालिन्दी तो एकदम असन्तुष्ट थीं। वहाँ पानी का नितान्त अभाव था। ठाकुर 'आता' ने इस कमी को दूर करने एक कुआँ भी खुदवाया था। दूसरी बात यह थी कि वहाँ के बाशिन्दे बड़े गन्दे और झगड़ालू स्वभाव के थे। ये बातें जानकर शंकरदेव ने माधव से कहा, "पुत्र ! यहाँ के लोगों को ऐसी अवस्था में छोड़कर हमारा जाना उचित नहीं। इनके स्वभाव को हमें संस्कारित करना होगा। ये धर्म की राह पर चलें, इसके लिए क्या करना चाहिये, अब यह सोचना है।"

"गुरुदेव ! इनमें व्याप्त कुप्रथाओं को दूर करना और नामधर्म का प्रचार करना ये दानों काम एक साथ करना सम्भव नहीं। यहाँ से हमारा पाटबाउसी चले जाना ही उचित रहेगा।"

"माधव ! वहाँ जाने में मुझे कोई आपत्ति नहीं। किन्तु इन लोगों को अपने हाल पर कैसे छोड़कर चला जाऊँ ! केवल हमारे भक्तों के हरिनाम लेने से समाज नहीं सुधरेगा। इन्हें भी आचार-व्यवहार सिखा कर इनका जीवन स्तर ठीक करना क्या हमारा कर्त्तव्य नहीं ? हमारे शास्त्र भी यही बात कहते हैं।"

"अब आपकी उम्र पहले वाली नहीं रही। यह काम कैसे सम्भव होगा !"

"माधव ! उपाय है। मेरी उम्र भले अधिक हो गयी। किन्तु तुम्हारी कार्यक्षमता पर मुझे पूरा विश्वास है। अभी तक हम अपनी शरण में आने वाले को हरिनाम, भक्ति, देव और गुरु ये चार बातें ही समझाते आये हैं। अब इन्हें शरीर को ठीक रखने के नीति-नियम और आचार-विचार भी सिखाने होंगे। इन नियमों को भी नामधर्म में सम्मिलित करना होगा। मानव का समुचित विकास होना नितान्त आवश्यक है। गीता में मनुष्य के सर्वांगीण उत्कर्ष की बात ही कही गयी है। हमारे शास्त्र भी कहते हैं कि तन और मन की शुद्धि के बिना परमब्रह्म को नहीं पाया जा सकता। मनुष्य मनसा-वाचा-कर्मणा दोष शून्य होना चाहिये। अब हमारे कीर्तन-भजनों में स्वास्थ्यविधि और आचरणविधि भी समाहित रहेगी।" ये बातें सुनकर माधवदेव के मन में गुरु के प्रति श्रद्धा और बढ़ गयी।

कुमारकुची छोड़कर पाटबाउसी जाना लगभग तय था। किन्तु विधि को कुछ और ही स्वीकार था। गुरु पुत्री रुक्मिणी (विष्णुप्रिया) अचानक बीमार पड़ी। फिर वह बिस्तर से नहीं उठी। उठी तो उसकी अरथी उठी। अभी उसका विवाह भी नहीं हुआ था। यौवनावस्था में ही वह काल का ग्रास बन गयी।

इस घटना से शंकरदेव और कालिन्दी मानसिक रूप से टूट गये। बेटी की अन्त्येष्टि के बाद कालिन्दी एक दिन भी कुमारकुची में नहीं रहना

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चाहती थीं। माधवदेव गुरु को ढाढ़स बंधवा रहे थे, "गुरुदेव ! काल की गति न्यारी है। ज्ञानी काल की गति से विचलित नहीं होते। कमल जल में रहकर भी जल से निर्लिप्त रहता है, उसी प्रकार ये सांसारिक संताप आपको नहीं छू सकते। अब अपने मन को दृढ़ कीजिये। आपने जन-जन को तारने के लिए ही यह 'नर तनु' धारण किया है। मैं अकिंचन भला आपको क्या समझाऊँगा !"

शंकरदेव अपने को सँभालते हुए बड़े ही आर्द्र स्वर में बोले, "पुत्र ! तुम्हारी बात मैं सब समझता हूँ। तुम असंसारी हो, मैं तो गृहस्थ हूँ। अभी मैं मोह के अन्धकूप में पड़ा हूँ। मोह से मुक्त होने में कुछ समय तो लगेगा। अपनी बेटी को इतनी जल्दी कैसे बिसरा दूँ ! उसने जीवन में क्या देखा। पता नहीं यह उसके प्रारब्ध का दोष था या हमारा ! कदाचित, मेरे, कालिन्दी और रुक्मिणी के भाग्य में यही लिखा था। उसकी माँ की अवस्था मुझसे नहीं देखी जा रही। पिता का हृदय कठोर हो सकता है। किन्तु वह तो आखिर माँ है न ! मेरा मन विचलित है। शायद तुम ही मुझे इस मोहजाल से निकाल सको। कोई नाम-प्रसंग सुनाओ।"

माधवदेव गुरु के आदेश पर सस्वर गाने लगे—

ए हरि हरि हरि कि काम करिलों आमि ।
साधुसंग लैया तोमाक नभजि भैलो किनो अधोगामी ।।

"माधव ! एक गीत और गाओ। लगता है, मेरा मन कुछ-कुछ स्थिर होने लगा है।" माधवदेव ने दूसरा गीत गाकर सुनाया—

हियार माजे नामर भाण्डार मुखे बाज हय ।
राम-नामे मारणा मारे पापकटकर क्षय ।।
पाप विपक्षक संहरि नामे खलखलि हासे ।
सकले सुखर उपरे बसिया हरिर नाम प्रकाशे ।।

नामघर भक्तों से भरा था। सब गुरु और गुरुपत्नी के दुःख में सम्मिलित थे। रुक्मिणी की आत्मा की शान्ति के लिए हरि-कीर्तन रखा गया था। माधव के गायन के पश्चात् ठाकुर 'आता' ने कुछ नाम-प्रसंग सुनाये। रामराम गुरु, रामदास, जयन्तिया के माधव आदि सभी ने कोई न कोई हरि-भक्ति का गीत गाया।

चारों ओर निस्तब्धता छायी थी। गुरु शंकर आज मौन श्रोता थे। उनके दुःख पर हरिनाम मरहम का काम कर रहा था। वे मन ही मन हरि से स्वयं को मोह से उबारने के लिए प्रार्थना करते रहे।

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जीवन में स्थायित्व

पाटबाउसी का पुराना नाम पाटनगर था। धेनुखोदा सरोवर के पास के वन को काटकर भक्तों और स्थानीय जनता ने मिलकर नामघर-मणिकूट, हाटी तैयार कर उसे किसी ऋषि के आश्रम जैसा रूप दे दिया। नामघर में रंग-चूना होकर गुरु सिंहासन सज गया। दीवारों पर नाना पौराणिक चित्रों का अंकन हो गया। सबसे ज्यादा सन्तोष की बात यह थी कि वहाँ का हवा-पानी सबके मन भा गया। स्वस्थ, सुन्दर परिवेश मिला तो सबके तन-मन स्फूर्ति-उत्साह से भर गये।

धेनुखोदा के स्वच्छ जल में जलपक्षियों का किल्लोल देखते ही बनता था। उनमें कई पंछी तो सुदूर हिमालय के उस पार से विहार करने आते थे। पानी में खिले कमलों से इसकी शोभा द्विगुणित हो गयी। स्थानीय लोगों में इससे जुड़ी एक कथा प्रचलित है। कुण्डिलनगर (आज के अरुणाचल में स्थित) से रुक्मिणी का हरण कर श्रीकृष्ण वायु वेगगामी अपने रथ पर द्वारका जा रहे थे। यहाँ पहुँचते-पहुँचते रथ की तीव्र गति से रुक्मिणी अपनी सुधबुध खोकर बेहोश हो गयी। आसपास में पानी नहीं मिला तो श्रीकृष्ण ने अपने धनुष से जमीन को खोद कर पानी निकाला और रुक्मिणी के मुँह पर छींटे मारकर उसे होश में लाये। उसी गड्ढे को लोग धेनुखोदा सरोवर बताते हैं।

धुवाहाटा से कपलाबाड़ी, चूनपोरा, कूमारकुची आदि में तीन वर्षों के भटकाव के बाद शंकरदेव को पाटबाउसी में स्थायित्व मिला। उनके वहाँ पहुँचने से पहले ही उनकी ख्याति वहाँ पहुँच गयी। वहाँ सब के मन में उत्साह इस कदर था कि कुछ ही दिनों में पाटबाउसी बरदोवा जैसा पावन तीर्थ बन गया। वहाँ के लोगों को लगने लगा कि शंकरदेव अपने वयोवृद्ध रूप में मानो वहीं जन्मे हैं।

चाउलखोवा और नाखुण्डी नदियों से नौकाओं में सवार होकर आसपास के गाँववाले वहाँ नित्य आने लगे। पुत्री विष्णुप्रिया (रुक्मिणी) के मोह से गुरु शंकर ने तो अपने आप को पहले ही उबार लिया था, अब माता कालिन्दी का दुःख भी नये परिवेश में आकर कम होने लगा। वह पास के घरों की बाड़ियों में लगे नूनि गाछों पर पलते रेशम के कीड़ों से बनाये जाते धागों की विधि देखतीं। करघों पर स्निग्ध-धवल कपड़े के साथ उस पर बुनी जातीं छोटी-छोटी रंग-बिरंगी बूटियों को देखकर उन्हें अपने पति की पाण्डुलिपियों पर शब्दों के साथ की गयी चित्रकारी याद हो आती।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पाटबाउसी मानो भूयाँओं की बस्ती बन गयी। इधर-उधर बिखरे भूयाँ परिवार भी वहाँ आकर बस गये। उनके साथ ही रतिकान्त और हातिया भी वहीं आ बसे। वे शंकरदेव के प्रति अपनी इर्ष्या के वशीभूत होकर उनके पीछे-पीछे चले आते। उनमें इतना साहस नहीं था कि अकेले कहीं बस जाते। उनके साथ रहने पर उनमें सुरक्षा भाव रहता। क्योंकि शंकरदेव या उनके भक्तों से तो उन्हें किसी अनिष्ट की आशंका थी नहीं। अब उनका स्वभाव किसी से छिपा नहीं रहा। उनके विषवमन का लोगों पर कोई असर नहीं पड़ता।

माधवदेव को बारादि से नित्य पाटबाउसी आने में काफी कष्ट होता था। वे ठहरे केवलिया ब्रह्मचारी भक्त। वे गृहस्थ भक्तों के साथ कैसे रहते ! शंकरदेव ने इस समस्या के निदान के लिए पाटबाउसी के पास ही गणककुची में जमीन का एक टुकड़ा उनके लिए खरीद दिया। धीरे-धीरे वहाँ भी नामघर-मणिकूट-हाटी ब़न गये।

अति वृद्धावस्था में भी शंकरदेव में न जाने कौन-सी आत्मशक्ति थी जो वे पाटबाउसी आने के बाद एक के बाद एक ग्रन्थों की रचना करने लगे। सुबह उठकर स्नान-ध्यान से निबट कर नामघर में नाम-कीर्तन, कृष्ण कथाओं पर व्याख्यान करने के पश्चात् भी उन्हें किसी ने विश्राम करते नहीं देखा। उनका पूरा दिन प्रायः नामघर में ही बीतता। कदाचित वहाँ के वातावरण का असर था कि वे अपने रचना-कर्म में दत्तचित्त होकर लगे रहते। भक्ति प्रदीप में नया अध्याय जोड़ा।

उधर माधवदेव भी अपनी रचनाधर्मिता में लगे थे। गुरुसेवा में लगे उन्हें पच्चीस वर्ष से ऊपर हो गये। नाम-कीर्तन करने के साथ उन्होंने भी कई गीत रचे। वात्सल्य रस के रसिक माधव ने अब परमब्रह्म श्रीकृष्ण की शिशुलीलाओं पर अनेक रचनाएँ लिखीं। बालकृष्ण गोपियों के घर में चुपके से घुसकर दही-माखन चुराकर खाते हैं। ग्वाल-बालों के साथ गऊएँ चराते हैं। वाल सखाओं के साथ नाचते-कूदते हैं। यमुना किनारे गोप-बालकों के संग पाटवाउसी के बच्चों की भाँति गेंद खेलते हैं। वे अपने रचे गीतों को नामघर में गाकर सुनाते।

शंकरदेव ने भोजन कर हाथ धोये। उन्हें ताम्बूल-पान पकड़ाते हुए कालिन्दी ने पूछा, "स्वामी ! पाटवाउसी का अर्थ क्या होता है !"

"कालिन्दी ! इतने दिनों से तुम यहाँ हो। घर-घर में तुमने करघों पर बनते पाट-वस्त्रों को देखा होगा। पाट को उत्तर भारत में साधारणतया रेशम कहते हैं। हमारी कामरूपी का 'पाट' शब्द संस्कृत के पट, पटोर या

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पाटम्बर से आया है। यह स्थान पाट का उत्पादन और विक्रय स्थल होने के कारण पहले पाटनगर कहलाता था और अब पाटबाउसी। हमारे यहाँ रेशम कहने पर पाट, मूँगा और एरी तीनों समझे जाते हैं। तीनों किस्में कीटों से पैदा होती हैं। कहते हैं कि रेशम सबसे पहले चीन में बना था। इससे रेशम को चीनांशुक भी कहते हैं।''

उन्होंने पत्नी से आगे कहा, ''मुझे लगता है कि कामरूप के महाराज भास्कर वर्मन ने अपने मित्र सम्राट हर्षवर्धन के लिए जो उपहार भेजे थे, उनमें कामरूपीय चीनांशुक के पुत्रोर्णा, मूँगा के दुकूल और एरी के क्षौम वस्त्र थे, कदाचित वे इसी पाटबाउसी में बुने गये होंगे ! बेंत से बनी सुन्दर मंजूषा में सजाकर उन कौशेय वस्त्रों के साथ उन्होंने बहुमूल्य हाथी-दाँत और स्वर्ण-रजत के सुन्दर अलंकार, सुगन्धि वस्तु और साँचिपात पर लिखित पुस्तकें भी भिजवायी थीं।''

कालिन्दी ने बात बदल कर कहा, ''स्वामी ! आप दिनरात काम में लगे रहते हैं। पूरा-सा सोते भी नहीं। अपनी अवस्था का भी ध्यान नहीं रखते। मुझे आपकी बड़ी चिन्ता रहती है।''

शंकरदेव ने हँसकर कहा, ''यही बात एक दिन नारायण ने भी मुझसे कही थी। ईश्वर ने यह नर-तन दिया है। इसे मानव-उत्थान के काम में लगा रखा है। नर ही नारायण है। हमारा समाज समग्र रूप से उन्नत होगा तभी हम वैकुण्ठ की अनुभूति करेंगे। उन्नति के माने केवल भौतिक उन्नति नहीं होता। हमें अपने आध्यात्मिक उत्थान के लिए भाषा, साहित्य, संगीत, अभिनय आदि ललित कलाओं को भी उन्नत करना होगा।

''कालिन्दी ! अब मैं नामघर जाता हूँ। वहाँ भक्तगण मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे।''

''स्वामी ! आप भोजन के बाद थोड़ी देर तो विश्राम कर लिया करें। अपनी उम्र का भी ध्यान नहीं रखते।''

''तुम मेरी चिन्ता मत करो। मेरा जीवन ठीक चल रहा है। प्रातःकालीन योगाभ्यास के बाद नामधर्म का काम करना ही मेरे मन को भाता है। यह काम करने से मेरे मन में उत्साह बना रहता है, और यह उत्साह ही मुझे स्वस्थ बनाये हुए है।'' यह कहते हुए वे नामघर को निकल पड़े।

एक दिन माधवदेव और नारायण ठाकुर शंकरदेव द्वारा साँचिपात पर लिखे ग्रन्थों को सँभाल-सहेज रहे थे। नारायण ठाकुर के मन में विस्मय हुआ कि गुरुदेव को इतने कम समय में इतने ग्रन्थ रचने का समय कहाँ से मिला होगा।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लिखने के लिए पढ़ना भी होता होगा। रात में सोते भी होंगे। उन्होंने अपने मन की बात माधवदेव को बतायी, "मित्र ! गुरुदेव प्रतिदिन नियमित स्नान-ध्यान, आहार, नाम-कीर्तन करने के उपरान्त भक्तों के साथ बैठकर शास्त्रों पर चर्चा करते हैं। इसी में उनका पूरा दिन चला जाता है। रात में सोते भी होंगे। फिर उन्हें इतने ग्रन्थ रचने का समय कैसे और कहाँ से मिलता होगा ! माना कि गुरुदेव में ईश्वर का अंश है। किन्तु हैं तो वे मानव ही। मानव के लिए यह कैसे सम्भव है ! फिर मानवी क्षमताओं की भी एक सीमा होती है। मेरे मन की जिज्ञासा इसका रहस्य जानने के लिए मुझे उकसा रही है।"

माधव ने हँस कर कहा, "तुम स्वयं ही रात में आकर देख लो, वे कब कार्य करते हैं और कब सोते हैं !"

"ठीक है। आज मैं घर नहीं जाऊँगा। मेरे मन का कौतूहल मुझे चैन नहीं लेने दे रहा। आज रात यहाँ रहकर इस रहस्य को जानकर रहूँगा।"

निस्तब्ध रात्रि में सब अपने बिछौनों पर पड़े निद्रा की गोद में समाये थे। नारायण ठाकुर माधव को साथ लेकर शंकरदेव के कक्ष के पास गये। उन्होंने छिपकर दरवाजे की दरार से भीतर झाँका। अन्दर दो दीपकों के प्रकाश में शंकरदेव का देवसुलभ चेहरा आलोकित हो रहा था। उनकी दाहिनी ओर मसिपात्र और बायीं ओर ताम्बूलों से भरा बोटा रखा था। सामने रखे साँचिपात पर उनकी लेखनी अनवरत चल रही थी। वे कितनी ही देर खड़े वह अद्भुत दृश्य देखते रहे। गुरु की आँखों में न नींद की खुमारी थी और न उनके शरीर में किसी प्रकार का आलस्य। वे उनकी अद्भुत शक्ति देखकर परम विस्मित हुए। कितनी देर तक अपनी आँख दरार पर टिकाये रखी। उन्हें स्वयं को ही पता नहीं चला। यकायक उन्हें एक गम्भीर स्वर सुनायी दिया, "नारायण ! बाहर क्यों खड़े हो, भीतर आ जाओ।"

नारायण बड़े संकोच में पड़ गये। गुरु को मेरे बाहर खड़े होने का पता कैसे चला ! उनकी चोरी पकड़ी गयी परन्तु वहाँ से जा भी नहीं सकते थे। वे भीतर जाकर गुरु के चरण छूकर बैठ गये। शंकरदेव ने कहा, "नारायण ! तुम सीधे मेरे पास चले आते। यों छिप कर क्या देख रहे थे !"

"गुरुदेव ! आपसे क्या छिपाना। आपकी कार्यक्षमता के प्रति मेरे मन में जागे कौतूहल को मैं रोक नहीं पाया और यह धृष्टता कर बैठा। आप मुझ अधम के इस दोष को क्षमा कर दीजिये। मैं नहीं समझ पा रहा कि आप इतना कष्ट क्यों और किसके लिए कर रहे हैं ! इससे आपको क्या लाभ होगा !"

"पुत्र नारायण ! हर समय अपने ही लाभ का विचार नहीं किया जाता। तुम मेरे कष्ट की बात कह रहे हो। इस कष्ट के बदले मैं अपने समाज

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

को यदि कुछ दे पाता हूँ तो इससे बढ़कर मेरे लिए आनन्द की बात और क्या हो सकती है ! नारायण ! हमारे द्रष्टा ऋषियों ने युगों-युगों तक तपस्या-साधना कर नवीन सत्य की खोज की। मैं तो उनके द्वारा खोजे गये सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् को अपने समाज के सरल-निरक्षर साधारण लोगों के सामने लाने का प्रयास मात्र कर रहा हूँ। गूढ़ ज्ञान को जिस सरल-सहज भाषा में वे समझ सकें उसमें रचना कर रहा हूँ। प्राचीन ग्रन्थों का ज्ञान वे सहज रूप में समझ सकें, इसलिए गीतों के साथ-साथ नाटक और भाउना लिख रहा हूँ। वे संगीत के सुरों के साथ गीतमय काव्य सुनकर नाटक-भाउना देखकर सहज में ही गम्भीर बातों को समझकर आनन्द उठाते हैं। इससे अधिक प्रसन्नता की बात मेरे लिए अन्य नहीं। मेरे क्षणिक शारीरिक कष्टों से कोई क्षति नहीं होगी। वैसे भी मेरी आयु के सौ वर्ष पूरे होने में तीन-चार साल ही हैं। मैंने अपना जीवन भरपूर जीया है। अपने लोगों के लिए काम करते हुए यह शरीर छूट जाता है तो इससे बढ़कर सन्तोष की बात क्या होगी !''

नारायण ठाकुर गुरु के चरणों में गिर कर बोले, ''गुरुदेव ! आप मुझ मूर्ख को क्षमा कर दीजिये। मैं भला आप महापुरुष जैसी दूरदृष्टि से कैसे सोच सकता था। आपकी कृपा का ही प्रसाद है कि आज हमारे पूरे कामरूप में स्पृश्य-अस्पृश्य और जात-कुजात का भेदाभेद समाप्त हो रहा है। आपने यहाँ एक नयी संस्कृति गढ़ी है। हमें कामरूपी होने का गौरव प्रदान किया है। खेतिहर-श्रमिक जैसे साधारण लोगों तक में नयी चेतना का संचार किया है। वे भी आज संगीत-गीत को जानने-समझने लगे हैं। उनमें से कितने गीतकार, गायक, वादक और अभिनयकर्ता आपके प्रयास से ही पैदा हुए हैं।''

शंकरदेव ने कहा, ''अपने प्रश्नों का उत्तर तुमने स्वयं ही दे दिया। धर्म और अध्यात्म की चिन्ता-चर्चा द्वारा ही उनमें इन गुणों का प्रस्फुटन सम्भव हुआ है। जीवन के हर क्षेत्र में उनकी उन्नति हो, यही मेरी कामना है और संकल्प भी।'' मृदुल हास्य के साथ यह कहकर शंकरदेव ने बोटा से उठाकर चार ताम्बूल नारायण को दिये। नारायण दोनों हाथों की अंजलि बनाकर गुरु का प्रसाद ग्रहण कर मस्तक से लगा बाहर निकल आये। शंकरदेव अपनी कलम स्याही में डुबोकर लिखने में फिर से निमग्न हो गये।

नारायण ने दूर खड़े माधव को सारा वृत्तान्त बताकर गुरु-प्रसाद के दो ताम्बूल उन्हें भी भेंट किये।

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ब्राह्मण-अब्राह्मण शिष्य

धेनुखोदा सरोवर के उस पार बसे गाँव कटकतली में गारो जाति की बस्ती थी। वे अपने खेतों में दिन भर शरीर तोड़ मेहनत कर धान उपजाते। गारो जाति में घर पर बनी शराब और सूअर का मांस खाने का प्रचलन था। बाहर की दुनिया से उन्हें कोई मतलब नहीं था। उन्होंने पाटबाउसी में चलनेवाले नामधर्म का तो नाम भी नहीं सुना था। शंकरदेव ने अपने दोनों शिष्यों को उनकी खोज-खबर लेकर उन्हें नामधर्म में लगाने और उनका जीवन स्तर उन्नत बनाने के लिए कहा।

नारायण अपने गाँव मानदिया से गणककुची होते हुए माधवदेव को साथ लेकर पाटबाउसी जाया करते थे। रास्ते में कटकतली आता था। एक दिन दोनों वहाँ खड़े हो गये। एक गारो कड़ी धूप में अपने खेत में हल जोत रहा था। बदन पर पसीना चुहचुहा रहा था। उसके तन पर लंगोटी जैसे वस्त्र के सिवाय कुछ न था। काले रंग के ठिगने कद के इस गारो व्यक्ति के दांत काले थे। शायद ताम्बूल-पान ज्यादा खाने से काले पड़े होंगे। वह अपने बैलों को हे-हे कर हाँक रहा था। बीच-बीच में पास रखे मिट्टी की मटकी से कोई तरल द्रव्य निकाल कर पीता जाता था।

नारायण ने उसके पास जाकर उसे हे-हे कहने के बदले हरि-हरि कहकर बैलों को हाँकने को कहा। उसने हँस कर दांत दिखा दिये और अपनी धुन में बैलों को हाँकता रहा। नारायण को पता चला कि मटकी में शराब है जिसे वह बार-बार पीता रहता है। वे दोनों भी वहाँ से हटे नहीं और उसे बार-बार हे-हे के बदले हरि-हरि कहने के लिए प्रेरित करते रहे। किन्तु उनकी बातों का उस पर कोई असर नहीं हुआ। दोनों काफी समय तक डट कर अपना प्रयास करते रहे। देर होते देख नारायण ने माधवदेव को कहा, ''मित्र ! तुम नामघर जाओ। गुरु हमारी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। मैंने भी आज मन में ठान ली है कि इससे हरि-हरि कहला कर ही जाऊँगा।''

नारायण भी गारो के साथ-साथ खेत में चलने लगे। वे अनवरत हरि-हरि ध्वनि कर रहे थे। उसे सुनते-सुनते आखिर उसके मुँह से भी एक बार हरि-हरि निकल ही गया। उसने हल जोतना वंद कर पूछा, ''तुम मेरे पीछे क्यों पड़े हो ? मुझे बार-बार हरि-हरि कहने को क्यों कहते हो ? इससे क्या होता है ?''

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"हरि का नाम व्यक्ति का कल्याण और जगत का उद्धार करता है। यह बात तुम एक दिन में नहीं समझ सकते। आज से तुम नियम ले लो कि काम करते, उठते-बैठते, नहाते-खाते हरि-हरि उच्चारोगे। कुछ ही दिनों में तुम्हें इसका महत्त्व समझ में आने लगेगा। कभी मौका मिले तो पास के पाटबाउसी के नामघर में आना। तुम्हें अपनी सब बातों का जवाब वहाँ मिल जाएगा।"

माधव और नारायण की उससे रोज मुलाकात होने लगी। उसने अपना नाम तोगन पूर्णो बताया। उन्होंने देखा कि तोगन उन्हें देखता तो दूर से ही 'हरि-हरि' कहता। एक दिन तोगन ने उन्हें रोक कर कहा, "तुम्हारे हरि-हरि ने बहुत काम किया। रात सपने में मैने देखा कि दो काले-कलूटे भूत मुझे पकड़ने आये। मैं उनके साथ जाना नहीं चाहता था। उन्हें डराने के लिए जोर से हरि-हरि कहा तो वे भाग गये। एक दिन मुझे भी अपने साथ नामघर ले चलना।"

माधव और नारायण को एक नये व्यक्ति के साथ नामघर में आया देख शंकरदेव ने हँसकर कहा, "लगता है कि तुम लोगों को कोई नया मित्र मिल गया है !"

माधव-नारायण ने गुरु के चरण स्पर्श किये तो तोगन ने भी उनका अनुकरण किया। वह मन्द-मन्द मुस्काता गुरु की ओर ताकता रहा। उसे उनका सौम्य रूप पहली दृष्टि में ही आकर्षक लगा। गुरु ने उसे अपने पास बुलाकर पूछा, "कहो मैं तुम्हारा क्या उपकार कर सकता हूँ !"

तोगन ने हाथ जोड़कर कहा, "तुम्हें देखते ही मुझे लगा कि मैं किसी देवता से मिल रहा हूँ। तुम्हारे दोनों आदमी कई दिनों से मेरे पीछे पड़े थे। वे मुझे बार-बार हरि-हरि कहने को कहते। मैं उनकी बात मानकर हरि-हरि कहने लगा। इसका लाभ भी हुआ। क्या मैं भी इनके जैसा भक्त बन सकता हूँ !"

"हाँ-हाँ, क्यों नहीं !" फिर उसकी परीक्षा लेने के लिए उससे पूछा, "तुम मद्य-मांस का सेवन करते हो; क्या तुम इन्हें छोड़ सकोगे ?"

"इसके पहले आज तक किसी ने मुझे ये सब खाने के लिए मना नहीं किया। हमारे यहाँ तो सभी ये वस्तुएँ खाते-पीते हैं। ये सब बुरा है क्या ?"

इसका उत्तर देना सहज न था। यह उनके समाज में प्रचलित खान-पान था। शंकरदेव ने कुछ सोचकर कहा, "मैं तुम्हें ये सब एकदम छोड़ने के लिए नहीं कहता। किन्तु इन्हें खाना छोड़ सको तो अच्छा है। इन्हें छोड़ दोगे तो हरि को बहुत अच्छा लगेगा और मुझे भी। इन्हें छोड़ने से तुम्हारा भी कोई

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नुकसान नहीं।''

''ठीक है, हरि की कृपा होगी तो मैं यह सब खाना-पीना छोड़ दूँगा। सूअर-मुर्गे के अलावा भी खाने के लिए बहुत-सी चीजें हैं।''

तोगन अपने काम से समय निकाल रोज नामघर आने लगा। वहाँ नाम-प्रसंगों को सुनकर उसमें नया उत्साह भर गया। खेत में नयी फसल तैयार हुई तो एक दिन वह धान लेकर गुरु को भेंट करने आया। उन्हें प्रणाम कर उसे अपनी शरण देने के लिए विनती की। गुरु शंकर ने उसे हृदय से लगाकर कहा, ''आज से तुम्हारा नाम गोविन्द है।''

सत्संग के प्रभाव से गोविन्द धीरे-धीरे एकशरणिया वैष्णव धर्म में दीक्षित होकर ब्राह्मण-कायस्थों के साथ नामघर में अगली पंक्ति में बैठने लगा। अब लोग उसे सम्मान से गोविन्द 'आता' कह कर पुकारने लगे।

नामघर के बाहर खड़ा एक व्यक्ति नाम-कीर्तन सुन रहा था। वह भीतर जाने का साहस नहीं जुटा पा रहा था। ऊँची कदकाठी के उस व्यक्ति के चेहरे पर आठ-दस रोज की बढ़ी अधपकी दाढ़ी थी। घुटनों तक मैली-कुचैली धोती पहनी थी। बदन के कपड़े में अनगिनत छेद थे। उसके कन्धे पर एक कुदाल था। उसे देखकर कोई भी उसकी दीन-हीन अवस्था का अन्दाजा लगा सकता था। गीत गाते शंकरदेव की दूर से उस पर दृष्टि गयी। उन्होंने एक भक्त को भेजकर उसे अन्दर बुलवाकर बिठाने को कहा। वह बड़े संकोच से कुदाल को बाहर छोड़ भीतर आकर बैठा।

नाम-प्रसंग पूरा होने पर गुरु ने उसे पास बुलाकर कहा, ''तुम बाहर क्यों खड़े थे। यहाँ आने की किसी को कोई मनाई नहीं।'' फिर उससे उसकी कुशलक्षेम पूछी। वह बड़े दयनीय भाव से अपनी दुर्दशा की कथा बताने लगा, ''आप मुझे नहीं जानते पर मैं आपको जानता हूँ। आपके पूर्वज चण्डीवर के साथ ही कन्नौज से मेरे पूर्वपुरुष रघुनाथ भट्टाचार्य भी आये थे। मेरे पिता सतानन्द बरदोवा के पास के गाँव में जा बसे थे। वहीं मेरा जन्म हुआ। वहीं मैंने एक गुरु के यहाँ शिक्षा लेकर कई शास्त्र पढ़े। वहाँ हमारी आजीविका अच्छी चल रही थी। मेरे पिता सतानन्द का आपके पिता कुसुमवर के पास आना-जाना था। दुर्भाग्य से बरदोवा में कछारियों के भय से लोग भागे तो हमारा परिवार भी वहाँ से पलायन कर यहाँ धेनुखोदा के पास के गाँव में आकर बस गया। मेरा नाम दामोदर भट्टाचार्य है।'' ऐसा कहते-कहते उसका गला भर आया।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शंकरदेव ने उसे जल पिलाकर ढाढ़स बंधाया। फिर कहा, "तुम कहते जाओ। किसी बात का संकोच मत करो। मैं शायद तुम्हारी कोई सहायता कर सकूँ।"

थोड़ा आश्वस्त होने पर उसने फिर से कहना शुरू किया, "अपने परिवार के पाँच लोगों का पेट भरने में भी मैं सक्षम नहीं। ब्राह्मण होने के कारण खेत में हल भी नहीं जोत सकता। क्योंकि ब्राह्मण के लिए हल जोतने की मनाई है। इसलिए कुदाल से जमीन खोदकर खेती करता हूँ। इससे छह महीने तो किसी प्रकार आजीविका चल जाती है, शेष समय भिक्षाटन या उपवास में निकालना पड़ता है। खेत में जाते समय रोज नामघर के सामने से निकलता हूँ। यहाँ होता नाम-कीर्तन मेरे कानों में पड़ता। मेरा मन यहाँ बैठने का करता, परन्तु अपने फटे हाल देखकर भीतर आने का साहस नहीं होता था। आज आपकी कृपादृष्टि हुई तो मैं अन्दर आया।"

शंकरदेव को उसकी दयनीय अवस्था जानकर दया आयी और उसका दुःख दूर करने का भरोसा दिलाया। उसे चावल-दाल, नमक-तेल देकर विदा किया। दामोदर के मन में विश्वास जागा कि शंकरदेव कोई सामान्य व्यक्ति नहीं। अब उसका जीवन बदलने लगेगा। वह नित्य प्रतिदिन नाम-प्रसंग में आने लगा। एक दिन उसने उन्हें अपनी शरण देने का आग्रह किया। शंकरदेव ने किसी कर्मकाण्डी ब्राह्मण और राजा को शरण नहीं देने का नियम ले रखा था। वे बड़ी दुविधा में पड़ गये। वे जानते थे कि दामोदर अब उनका समर्पित अनुयायी बन चुका है। अब क्या किया जाय ? मन ही मन गहन विचार कर उन्होंने कहा, "दामोदर ! तुम ब्राह्मण हो और मैं कायस्थ। मैं भला तुम्हें कैसे शरण दे सकता हूँ ! एक काम हो सकता है कि तुम रामराम से शरण ले लो। वह भी ब्राह्मण है।"

"नहीं, आपको ही शरण देनी होगी। शरण उसी से ली जाती है, जिसके प्रति मन में श्रद्धा हो। मैंने अपने मन में आपको ही गुरु-स्थान दे रखा है।"

इस दुविधा से निकलने के लिए उन्होंने श्रीमद्‌भागवत की प्रति उसके हाथ में देकर कहा, "तुम पढ़े-लिखे हो ही। अब इस भागवत के मतानुसार अपने धर्म का पालन करो। आज से तुम ब्राह्मणों के आचार्य हो। ब्राह्मणों को एकेश्वरवादी नामधर्म के लिए शरण देने का अधिकार मैं तुम्हें देता हूँ। मैं तो नामधर्म का प्रचार चाहता हूँ, गुरु कहलाने की मेरे मन में कोई महत्त्वाकांक्षा नहीं। आज से तुम्हारा नाम दामोदर भट्टाचार्य

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नहीं देव दामोदर होगा।

दामोदर भट्टाचार्य की दीन-हीन अवस्था देखकर शंकरदेव के मन में कोई विचार आया। उन्होंने माधवदेव, रामराय और नारायण ठाकुर को बुलाकर मन्त्रणा की, ''नामघर में ऐसी कोई वित्तीय व्यवस्था की जाए कि कुछ धन हमारे पास जमा होता रहे, जिसका उपयोग हम जरूरतमन्दों के लिए कर सकें।'' आपसी सलाह-मशवरे से तय हुआ कि सम्पन्न लोग अपने लड़के-लड़की के विवाह के समय कुछ धन नामघर में दिया करेंगे। इस धन को स्थानीय गरीब निवासी अपने बच्चों के ब्याह के समय उधार ले सकेंगे। सूद के रूप में उधार लेने वालों को 'माघ बिहू' और 'बहाग बिहू' के दिनों में उधार-राशि के हिसाब से एक या अधिक घड़ा गुड़ देना होगा। यह गुड़ भी चिवड़ा और दही के साथ बिहू के दिनों में परिवारों में बाँट दिया जायेगा। इससे गरीब से गरीब परिवार को भी बिहू मनाने के लिए खाने की चीजें आसानी से उपलब्ध हो जाया करेंगी।

नारायण 'आता' पाटबाउसी की तरफ के ही रहनेवाले थे। उनका बहुत लोगों से परिचय था। पाटबाउसी अब नामधर्म का विख्यात केन्द्र हो चुका था। एक दिन नारायण अपने साथ परमानन्द, माधव, गोपाल और मुकुन्द नामक व्यक्तियों को साथ लेकर आये और उन्हें शंकरदेव की शरण दिलवायी।

चिलाग्राम का चक्रपाणि द्विज भी नारायण का पूर्वपरिचित था। वह उनके चाचा चैतन्य के पास आया करता था। एक बार वह बीमार पड़ा तो चाचा ने ही उसकी चिकित्सा करवायी। चक्रपाणि ने शंकरदेव के बारे में काफी सुन रखा था। एक दिन वह साठ ब्राह्मण परिवारों को लेकर नारायण के साथ नामघर आया और एकशरणिया नामधर्म स्वीकार कर लिया। चक्रपाणि के राम और वैकुण्ठ नामक दो पुत्र और भूषण द्विज नामंक पोता था। सभी नामधर्म में दीक्षित हो गये। (आगे चलकर भूषण द्विज ने शंकरदेव पर गुरु-चरित लिखा)

इसी तरह मणियरी गाँव का हरिदेव विप्र शंकरदेव का गुणग्राही था। उसने भी नामधर्म अपना लिया। मुरारि गाँव के किसान हरिहर ने भी गुरु-शरण ली।

विजनीकुची का पण्डित वैकुण्ठनाथ भट्टदेव महातान्त्रिक था। उसने

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दामोदर जैसे नैष्ठिक ब्राह्मण द्वारा शंकरदेव से शरण लेने की बात सुनी तो स्तम्भित रह गया। उसने पाटबाउसी आकर देव दामोदर से अनेक तर्क-वितर्क किये। किन्तु वह दामोदर को अपने तर्कों से नहीं हरा सका। देव दामोदर की तर्क-युक्तियों से वह इतना प्रभावित हुआ कि उसने भी उनसे शरण ले ली। आगे चलकर भट्टदेव ने नामधर्म के प्रचार में बहुत अवदान दिया। उन्होंने अनेक रचनाएँ लिखीं। गीता-भागवत पर गद्य लिखा, भक्ति-विवेक लिखा।

शिमलुवा गाँव के रहनेवाले श्रीराम की कुछ दिनों पहले ही नारायण 'आता' के साथ मुलाकात हुई। उसने नारायण को अपनी घोर दरिद्रता के बारे में बताते हुए कहा, "मैं बड़ा दम्भी-अहंकारी था। घर में खाने को दाना भी नहीं रहा। भूख और बीमारी से मेरी पत्नी, बेटा-बेटी सब मर गये। इसके साथ मेरे मन में बैठे दम्भ-अहंकार भी मर गये। इस समय मुझे ऐसे किसी आश्रय की जरूरत है जहाँ मुझे दो जून की रोटी के साथ मन की शान्ति भी मिल सके।" इस पर नारायण ने उसे शंकरदेव के बारे में बताकर उनसे शरण लेने के लिए प्रेरित किया और उसने नारायण के साथ पाटबाउसी आकर गुरु शंकर की शरण ले ली।

श्रीराम के बाद आये गोकुलचन्द ने भी गुरु की शरण ली। इसी तरह गुरु की बातें सुनकर जटीराम भी उनका भक्त बन गया। उसके सिर पर बड़ी-बड़ी जटाएँ थीं जिससे लोग उसे जटीराम कहते थे।

शंकरदेव का प्रभाव दिन प्रति दिन बढ़ता जा रहा था। अब ब्राह्मण भी उनकी शरण लेने आने लगे। सार्वभौम भट्टाचार्य और अनन्त कन्दली की तरह ही हरिचरण, श्रीचन्द्रभारती, भागवत भट्टाचार्य और कितने ही अन्य पण्डितों ने आकर एकशरण नामधर्म को ग्रहण कर लिया।

नामघर से नदी तक एक पगडण्डी जाती थी। उसी से होकर शंकरदेव नित्य अपने भक्तों के साथ स्नान करने जाया-आया करते थे। एक दिन रास्ते में कुष्ठ रोग ग्रस्त एक मनुष्य जमीन पर पड़ा मिला। उसके शरीर पर जगह-जगह हुए घावों से पीप बह रहा था और असह्य दुगर्न्ध निकल रही थी। उसके बढ़े हुए केश-दाढ़ी, धूल-धूसरित देह को देखकर लगता था कि कई दिनों से वह नहाया नहीं। उसके कांपते ओंठों से अस्पष्ट-सी आवाज आ रही थी— पानी।

उसकी दुर्दशा देखकर शंकरदेव का हृदय करुणा से भर उठा। नदी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

से पूजा के लिए लाया पानी उसे पिलाया। फिर उसे उठाकर नदी तक ले जाकर नहलाया, उसके कपड़े धोये। उस रोगी को नामघर की हाटी में ले आये। गुरु का यह कार्य देखकर भक्त अचम्भित थे। उन्होंने कहा, "गुरुदेव! इसे अपने हाल पर छोड़ दीजिये। इसके घरवालों ने ही जब इसे निकाल दिया है तब आप इस संक्रामक रोगी को क्यों यहाँ रख रहे हैं ?"

शंकरदेव ने भक्तों को समझाया, "तुम लोग रोज नामघर में कीर्तन करते हो। मुख से यह भी कहते हो– 'जत जीव जंगम कीट पतंगम, अग नग जग तेरि काया।' किन्तु तुम लोगों ने इसका मर्म नहीं समझा। सभी कीट-पतंगों तक में उसी नारायण का वास है। फिर यह तो मनुष्य है। इतने पर भी नारायण को तुम लोग नहीं पहचान पाये। मानव-सेवा ही सच्ची नारायण-सेवा है।"

शंकरदेव स्वयं उसकी सेवा-सुश्रुषा करते। कुछ महीनों में रोगी चलने-फिरने और अपना काम करने लायक हो गया।

श्रीमन्त शंकरदेव की नाम-महिमा हैड़म्ब वंशीय कछारी राजा तक पहुँची। उसने उनसे शरण लेने की इच्छा से अपने दूत पाटबाउसी भेजे। शंकरदेव मन में समझते थे कि सब राजाओं का स्वभाव एक जैसा होता है। उन्हें कछारियों द्वारा किये गये हमलों की वजह से बरदोवा छोड़ना पड़ा। आहोम राजा के अत्याचार के कारण धुवाहाटा का त्याग करना पड़ा। उन्होंने सोचा, राजा ने दूत भेजे हैं तो उसकी बात का औपचारिक मान तो रखना ही चाहिये। अन्यथा यह मेरा दम्भ होगा। उन्होंने माधवदेव और नारायण 'आता' को दूतों के साथ राजा के पास भेजना तय किया। वहाँ जाने के पहले उन्होंने उन्हें समझाया, "राजा एकशरणिया नामधर्म का पालन भर कर लेता है तो बहुत है। किन्तु उसे शरण मत देना। क्योंकि राजा हमारे नियमों का पालन नहीं कर सकता।"

गुरु का आशीर्वाद लेकर दोनों राजा के पास पहुँचे। राजसभा में उनका यथोचित आदर-सत्कार किया गया। राजा शरण देने की बात पर आया तो माधवदेव ने कहा, "राजन ! केवल शरण लेने से ही कोई भक्त होकर भगवान् का कृपा-पात्र नहीं बन जाता। अपने राजधर्म का पालन करते हुए हरिभक्ति में मन लगाने मात्र से भगवान् को पाया जा सकता है। मन का शुद्ध होना सबसे बड़ी बात है। राजा के लिए शरण लेना आवश्यक नहीं।"

"किन्तु श्रीमन्त शंकरदेव तो सबको शरण देते हैं !"

माधव ने कहा, "बात सही है। किन्तु आपकी बात अलग है। आप

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

राजा हैं। गुरु की शरण में आनेवाला अपना सब कुछ उन्हें सौंप देता है। किन्तु कोई राजा ऐसा नहीं कर सकता और करना भी नहीं चाहिये। राजा के ऊपर अपनी प्रजा का पालन करने और बाहरी शत्रुओं से उनकी रक्षा करने का दायित्व होता है। उसे समय-समय पर प्रजा-हित में कठोर फैसले लेने होते हैं। अपराधी को दण्ड भी देना पड़ता है। ऐसी स्थिति में राजा के लिए एकशरणिया नामधर्म के नियमों का पालन करना न तो सम्भव है और न ही व्यावहारिक।''

''मैं अपना उद्धार चाहता हूँ। इसलिए मुझे भी शरण चाहिये।''

''राजन ! आप जैसे सर्वगुणी राजा को शरण नहीं दे पाने का हमें भी अत्यन्त दु:ख है। आप एक राज्य के एकछत्री प्रजापालक हैं। आपके सम्मुख सब अपना शीश झुकाते हैं। किन्तु आप अपना सिर किसी के सामने झुकायें, यह शोभा नहीं देगा। गुरु से शरण लेने पर आपको उनके चरणों में साष्टांग प्रणाम कर नतमस्तक होना पड़ेगा। यह राजा के लिए उचित नहीं होगा। हे राजन ! राजशक्ति के बिना राज्य नहीं चल सकता।''

राजा ने कहा, ''मैं अपने राज्य का परित्याग करने को तैयार हूँ। मुझे बस गुरु की शरण चाहिये।''

माधव ने कहा, ''राजन ! आपको अपना राज्य त्यागने की आवश्यकता नहीं। आप केवल अपने धर्म का पालन कीजिये। नाम-कीर्तन कीजिये। भागवत आदि शास्त्रों को पढ़ने में अपना मन लगाइये। इतने मात्र से ही आपकी आत्मा का उद्धार हो जाएगा।''

राजा ने शरण लेने की हठ छोड़ दी। अब वह वैष्णव बन गया। दोनों भक्तों को उसने आदरपूर्वक अपने राज्य से बहुत-सी भेंट देकर विदा किया। माधवदेव और नारायण के मन में सन्तोष हुआ कि वे गुरु-आज्ञा का पालन करने में सक्षम हो सके।

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शंकर कहतु उपाय

गौड़ प्रदेश के अफगान सुलतान सुलेमान करनानी का सिपसालार कालापहाड़ गाँवों को लूटता, निरीह लोगों का कत्लेआम करता आगे बढ़ रहा था। ग्रामवासियों में यहाँ तक बातें हो रही थी कि कोच राज्य के सेनापति चीलाराय को कैद कर गौड़ भेज दिया गया है। चारों ओर अफरा-तफरी का माहौल था। पाटबाउसी में आतंक फैला था। घुड़सवारों और पैदल सेना के झुण्ड के झुण्ड वहाँ से होकर पूर्व की ओर बढ़ रहे थे।

ऐसी स्थिति में नामघर का कार्य बाधित होना स्वाभाविक था। शंकरदेव की अवस्था भी सत्तानवे साल की हो गयी। कुछ दिनों बाद समाचार आया कि पूर्व की ओर गये कालापहाड़ ने ब्रह्मपुत्र के किनारे स्थित नीलाचल के कामाख्या और शुक्रेश्वर मन्दिरों को तोड़ने के बाद हाजो के हयग्रीवमाधव मन्दिर को भी ध्वस्त कर डाला।

ग्रामीण आपस में बात कर रहे थे। एक ने कहा, "सुनने में आया है कि कालापहाड़ पहले नवद्वीप का ब्राह्मण था और इसका असली नाम था कालाचन्द बन्द्योपाध्याय। उसने नवाब की लड़की से निकाह कर इस्लाम कबूल कर अपना नाम कलामुद्दीन खाँ रख लिया। उसके पुराने नाम कालाचन्द और विशाल काया के कारण उसे कालापहाड़ कहा जाने लगा।"

दूसरे ने उसकी बात काटते हुए कहा, "मैंने तो सुना है कि वह उड़ीसा का ब्राह्मण था। निकाह करने के बाद उसने इस्लाम अपनाया था, परन्तु बाद में वह वापस हिन्दू बनना चाहता था। वह जगन्नाथ पुरी गया। वहाँ के पण्डों से अपना शुद्धिकरण करने की मिन्नते कीं। किन्तु रूढ़िवादी ब्राह्मणों ने उसकी एक नहीं सुनी और उसका अपमान कर वहाँ से निकाल दिया। तब से उसके मन में हिन्दू धर्म के प्रति विद्रोह पैदा हुआ। उसने उड़ीसा पर आक्रमण कर वहाँ के राजा मुकुन्ददेव को मार डाला और अनेक मन्दिरों को तोड़ा।"

"जो भी हो, वह वंग का हो या उड़ीसा का, इससे क्या फर्क पड़ता है। आखिर जन्म से तो वह ब्राह्मण ही था। हमारी रुढ़िवादिता के कारण ही अपने ही लोग विद्रोही बन जाते हैं। वह जब वापस अपने धर्म में आना चाहता था तो ब्राह्मणों को अड़ंगा नहीं लगाना चाहिये था। नुकसान किस का हुआ ? अपना ही न !" तीसरे ग्रामीण ने कहा।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"चलो थोड़ी देर के लिए नामघर चलते हैं। हरि-कीर्तन करने से मन को कुछ पलों के लिए तो शान्ति मिलेगी।" यह कहकर अन्य ग्रामीण ने बात का रुख मोड़ा और सबको अपने साथ नामघर ले गया।

नामघर में शंकरदेव भक्तों से कह रहे थे, "इस संकट की घड़ी में हमें अपने मन को स्थिर रखना है। हमारी आपसी फूट का लाभ सदैव आक्रमणकारी को मिलता है। लड़ाई में जीत किसी की भी हो, परन्तु भुगतना निरीह जनता को ही पड़ता है। प्रभु ही हमारी रक्षा करेंगे। सब को सद्बुद्धि देंगे। वे ही दुष्टों का उसी तरह विनाश करेंगे जैसे प्रभु राम की सेना ने अहंकारी रावण का किया था। अब आप सभी मेरे साथ मिलकर यह गीत गाइये। गीत आसावरी राग में है। तो सभी गाइये–

शुन शुनरे सुरवैरी प्रमाणा, निशाचर नाश निदाना ।
राम नाम यम समरक साजिये, समदले कयलि पयाना ।।
ठाट प्रकट पटु कोटि कोटि कपि, गिरि गड़ गड़ पद घावे ।
बारिधि तीर तरि, करे गुरुतर गिरि, धरि धरि समरक धावे ।।
हाट घाट बहु बाट बियापि, चौगड़े बेढ़लि लंका ।
गुरु घन घन घोष, घरिषण गर्ज्जन, श्रवणे जनमय शंका ।।
धीर वीर शूर शेखर राघव, रावण तुवा परि झाम्पे ।
सुर नर किन्नर फणधर तरतर, महीधर तरसि प्रकाम्पे ।।
अन्ध मुगुध, दशकन्ध पाप बुध, जानकी शिरत चराइ ।
रघुपति पदवर धर रजनीचर, शंकर कहतु उपाय ।।

गीत पूरा होने पर इसकी व्याख्या करते हुए शंकरदेव ने कहा, "अरे प्रमाणित सुर-वैरियों सुनो, सम्पूर्ण निशाचरों के नाश के लिए राम नाम रूपी यम युद्ध करने के लिए दल-बल सहित प्रयाण कर चुका है। उसकी निपुण सेना में करोड़ों कपि हैं। उनके चरणों के प्रहार से पर्वत गड़-गड़ करते हुए काँप रहे हैं। वे समुद्र पार कर तट पर आ अपने हाथों में विशाल भारी पर्वत उठाये समर के लिए तैयार हैं। उन्होंने लंका के सभी हाट-घाट-बाटों को चारों ओर से घेर लिया है। उनका प्रचण्ड, सघन-घोष, घर्षण, गर्जन सुनकर शत्रुओं के मन में शंका हो रही है, वे दहल रहे हैं। राघव धीर, वीर तथा शौर्य में अतुलनीय हैं। रे रावण ! वे अब तेरे ऊपर वेग से आक्रमण करने ही वाले हैं। उनके महापराक्रम से संत्रस्त होकर देवता, नर, किन्नर, नाग, पृथ्वी को धारण करनेवाले शेषनाग भी थर-थर काँप रहे हैं। अरे पाप बुद्धि वाले अन्धे, मूढ़ निशाचर दशकन्धर, तुझे यह शंकर बता रहा है कि तेरी रक्षा का उपाय अब

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भी है। तू जानकी को सिर पर बिठाकर रघुवर की शरण में जाकर उनके पावन चरणों को पकड़ ले।''

नामघर से सभी भक्त नये उत्साह के साथ बाहर आये। थोड़े दिनों बाद लूट-पाट, तोड़-फोड़ कर कालापहाड़ लौट गया। कुछ महीनों पश्चात् समाचार मिला कि सेनापति चीलाराय गौड़ के नवाब की कैद से मुक्त होकर कामरूप लौट आया है। नवाब सुलेमान करनानी की माँ को साँप ने डँस लिया था। बहुत से हकीम-ओझाओं से उसका उपचार करवाया गया परन्तु वह ठीक नहीं हुई। कैद में बंद चीलाराय ने पहरेदारों से यह बात सुनी तो उसने नवाब को खबर भिजवायी कि वह उसकी माँ को ठीक कर सकता है। नवाब ने उसे बुलवाया। उसने सचमुच उसकी माँ को ठीक कर दिया। इससे प्रसन्न होकर करनानी ने उसे मुक्त कर बहुत-से उपहार देकर उसके कोच राज्य में भेज दिया।

कालापहाड़ द्वारा की गयी लूटपाट को लोग भुला भी नहीं पाये थे कि सावन-भादों में ब्रह्मपुत्र और इसकी चाउलखोवा आदि उपनदियों में आयी भीषण बाढ़ में खड़ी फसलें खराब हो गयीं। किसानों के खलिहान खाली हो गये। आश्विन के बाद आये कार्तिक के साथ काती बिहू आया। अनाज की कमी से यह त्योहार सभी के लिए कंगाली बिहू बन गया। अब मौसम में ठण्ड थिराने लगी थी।

लोक मान्यता रही है कि कार्तिक में रात के समय धान्यलक्ष्मी धरती पर विचरण करती हुई जिस खेत में उजाला देखती हैं, वहाँ वास करती हैं। अँधेरे में लक्ष्मी के लौट जाने की आशंका से पूरे कार्तिक खेतों को आलोकित रखने के लिए किसानों ने बाँस के दो-ढाई हाथ ऊँचे ठिहों पर सरसों-तेल से लबालब भरे दीयों में बत्तियाँ प्रज्ज्वलित कीं। इसके अलावा खेतों के बीच लम्बे बाँस गाड़कर उनके सिरों पर रस्सी के सहारे खपच्चियों से बने छिद्रिल घड़ोलों में 'आकाश बन्तियाँ' (आकाश दीप) झूलायीं। साथ ही अपने-अपने घरों के तुलसी-चौरों पर भी दीप जलाये।

पूरे कार्तिक सन्ध्या समय नामघर में हरिनाम स्मरण के विशेष आयोजन किये गये। दिन भर खेतों में थके माँदे किसान अपने परिवार के साथ वहाँ बैठ हरि कीर्तन कर अपने कष्ट भुलाते।

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गृहस्थी के जंजाल

नदी में चंचल मीन की तरह तैरती युवती को पास से गुजरती नाव से एक पुरुष देख रहा था। युवती की तीन सखियाँ भी जल में किल्लोल कर रही थीं। युवती डुबकी लेती तो उसके लम्बे काले केश नागशिशुओं की भाँति जल-सतह पर छितरा जाते। सखियाँ एक दूसरी पर पानी उछालती हँस रही थीं। उनकी दन्तावली हँसी के साथ मोतियों की तरह चमक उठती।

युवती की दृष्टि भी पुरुष पर पड़ी। वह लजा गयी। दोनों की आँखें मिलीं। कुछ देर तक वे एक दूसरे को देखते रहे। सद्यस्नाता युवती संकोचवश नदी से निकलकर किनारे चली आयी। भीगे बदन पर चिपके वस्त्र में उसे देखकर पुरुष के मन में और आकर्षण पैदा हुआ। उसने उसे भरपूर देखा। मृग जैसे बड़े-बड़े नयनों के बीच तीखी नासिका। घुटनों को छूते लम्बे काले बाल। दीर्घ गौरवर्णी सुडौल देह देखकर पुरुष उसके रूप पर मुग्ध हो गया। वह उसे अपनी जीवनसंगिनी बनाने के लिए लालायित हो उठा।

पुरुष और कोई नहीं, कोच वंशीय शुक्लध्वज उर्फ चीलाराय था। उसने नाव किनारे लगवाकर अपना आदमी भेज युवती के बारे में पता करवाया। युवती शंकरदेव के चचेरे भाई रामराय (जगतानन्द) की पुत्री भुवनेश्वरी बतायी गयी। ताऊ शंकरदेव उसे प्यार से कमलप्रिया कहते थे। चीलाराय ने वस्त्र-आभूषणों के साथ रामराय के पास विवाह प्रस्ताव भिजवाया। किन्तु वे नहीं चाहते थे कि उसकी पुत्री शुक्लध्वज की अनेक पत्नियों के बीच दासी बनकर रहे। उन्होंने शंकरदेव के पास जाकर सारी बातें बता कर कहा, ''गहन विपदा आन पड़ी है। अपनी पुत्री को राजपरिवार में देने को मेरा मन जरा भी नहीं। राजाओं के साथ हमारा मेल नहीं बैठता। अब क्या उपाय करना चाहिये ? आप ही बतायें।''

शंकरदेव भी चिन्ता में पड़ गये। फिर उन्होंने विचार कर कहा, ''शुक्लध्वज की बात मान लेने में ही भलाई है, जगतानन्द ! चीलाराय राजपुरुष है। वह काशी में पढ़ा शास्त्रों का ज्ञाता है। इसके साथ ही वह वीर भी है। वह चाहता तो अपने राजमद में जोर-जबरदस्ती भी कर सकता था। ऐसा करने पर हम सबको बहुत नीचा देखना पड़ता। ऐसी स्थिति में तुम ही सोचो, राजशक्ति के सामने हमारा क्या वश चलता ! किन्तु उसने मर्यादा का ध्यान रख सामाजिक व्यवहार से विवाह-प्रस्ताव भिजवाया है। हो सकता है कि इसमें भी ईश्वर की कोई भलाई छिपी हो। बहुत बार हम अपनी इच्छा

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के अनुसार नहीं चल पाते। मेरी राय में उन दोनों का विवाह कर देना व्यवहारिक होगा। सम्भव है कि इस विवाह-सम्बन्ध से हमें अपने नामधर्म प्रचार में भी कोई सहायता मिल सके।''

शुभ मुहुर्त देखकर दोनों का विवाह सम्पन्न करा दिया गया। शुक्लध्वज ने अपने श्वसुर को बहुत-से उपहार देने चाहे। किन्तु उसने विनम्रतापूर्वक यह कह कर मना कर दिया कि बेटी के घर का धन हम भला कैसे रख सकते हैं। इससे चीलाराय के मन में उसका मान और बढ़ गया। अब रामराय के साथ शंकरदेव भी राज-श्वसुर बन गये।

शंकरदेव का बड़ा पुत्र रामानन्द भी विवाह-योग्य हो गया था। उसने चक्रपाणि से मजुमदारी का काम सीखा था। सम्भ्रान्त कुल का कामेश्वर चौधरी अपनी पुत्री सुमति का विवाह उससे करने का प्रस्ताव लेकर आया। कन्या रूप-गुण में अनुपम थी। दोनों का विवाह सम्पन्न करा दिया गया। तीसरे पुत्र हरिचरण का विवाह भी कुछ दिनों बाद गयापाणि और उर्वशी की पुत्री से हो गया। इस सम्वन्ध से माधवदेव हरिचरण के ममिया ससुर बन गये।

मनु बीमार पड़ी तो फिर बिस्तर से नहीं उठी। उसकी मृत्यु से शंकरदेव अत्यन्त दुःखी हो विलाप करने लगे, ''इसके पति का वध हुए सात साल हो गये। हरि के जाने के बाद इसने एक दिन भी सुख से नहीं बिताया। जन्म के नौ महीने बाद ही इसकी माँ सूर्यवती का आकस्मिक देहान्त हो गया। दस वर्ष की हुई नहीं कि इसका विवाह हरि से कर दादी खेरसुती की देखरेख में इसे छोड़कर मैं भारत-भ्रमण पर निकल गया और बारह वर्ष के बाद लौटा। इसने अपने जीवन में क्या सुख देखा !'' फिर स्वयं ही अपने को जैसे ढाढ़स बंधाते हुए कहने लगे, ''विधि के लिखे को कोई नहीं बदल सकता। सब अपना प्रारब्ध लेकर जन्म लेते हैं। मैं ही यदि गृहस्थी में नहीं पड़ा होता तो अपनों का मृत्यु-शोक तो नहीं मनाता। मेरे भाग्य में माता-पिता का प्यार नहीं लिखा था। पत्नी सूर्यवती भी चली गयी। घरवालों ने जोर जबरदस्ती फिर मुझे घर-गृहस्थी के खूँटे से वांध दिया। बुढ़ापा शुरू हो चुका तो मैं तीन पुत्र और एक पुत्री का पिता बना। मझला बेटा कमललोचन मेरे देखते-देखते इस संसार से चला गया। विधाता के लेख को भला कोई टाल सका है !''

गुरु शंकर को अति भावुक होते देख सगे-सम्बन्धियों और भक्तों ने मनु की अरथी उठाने में ज्यादा विलम्ब नहीं किया।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चेचक महामारी की तरह फैलती हुई पाटबाउसी के घरों में भी आ गयी। लोग, विशेष कर बच्चे इससे मरने लगे। घरों में कोहराम मच गया। चेचक के प्रकोप से बचने के लिए शीतला माता की पूजा और आईनाम (माता के गीत) के जगह-जगह आयोजन हुए। व्यासकलाइ के तीन बेटे इसकी भेंट चढ़ चुके थे। चौथा भी अपनी अन्तिम साँसें गिन रहा था। व्यासकलाइ ने भी अपने घर पर शीतला पूजा करवायी। इतना करने पर भी वह अपने पुत्र को नहीं बचा पाया।

व्यासकलाइ एकशरणिया नामधर्म में दीक्षित था। इस बात का पता शंकरदेव को चला। वे उसके पुत्रों की असामयिक मृत्यु पर अत्यन्त दुःखी हुए। उन्हें जब इस बात का पता चला कि उसने शीतला पूजा करवायी थी तो वे बहुत क्षुब्ध हुए। उन्होंने भक्तों से कहा, ''व्यासकलाइ के पुत्रों के मरने का मुझे बहुत दुःख है। हम एकशरणिया भागवत धर्म के नियमों का पालन करने वाले हैं। हमारे लिए किसी भय-बाधा से घबरा कर अपने पथ से भटकने को सही नहीं कहा जा सकता। व्यासकलाइ ने नियमों का पालन नहीं किया। शीतला पूजा करा कर भी वह अपने बेटे को नहीं बचा पाया। वह अब हमारे पन्थ का भक्त नहीं रह सकता। वेद-वेदान्त भी स्पष्ट रूप से यही कहते हैं कि मनुष्य को सांसारिक मोह का परित्याग कर अपने हृदय की दुर्बलता के वश में नहीं होना चाहिये। भक्तो ! यह निर्णय लेते हुए मेरा मन क्षुब्ध है। किन्तु नियम सबके लिए होते हैं। आज उसे क्षमा कर देता हूँ तो कल दूसरा भी नियमों को तोड़ेगा। ऐसा करने पर लोगों के मन में अनास्था का बीजारोपण होगा। हरि-हरि राम हरि।''

ताँतीकुची (आज का बरपेटा) वासी कमला एक बार शंकरदेव से बड़ा आग्रह कर उनके ब्रजावली में लिखे गीतों की पाण्डुलिपि अपने घर ले गया। दुर्योग ऐसा हुआ कि उसके घर में अचानक अग्निकाण्ड हो गया और सारे गीत जलकर स्वाहा हो गये। इससे गुरु को अत्यन्त दुःख होना स्वाभाविक था। अनुमान है कि उन गीतों की संख्या दो सौ चालीस थी। वह क्षतिपूर्ति होनी तो सम्भव नहीं थी। माधवदेव और भक्त उन गीतों को याद कर उनमें मात्र सैंतीस (37) गीत ही संकलित कर पाये। ये संकलित गीत अल्प होकर भी भारतीय भक्ति-साहित्य के अमूल्य रत्न हैं।

रामानन्द के पहला पुत्र हुआ। शंकरदेव ने अपने पोते का नाम पुरुषोत्तम रखा। कुछ महीनों बाद हरिचरण भी बाप बना। गुरु ने अपने दूसरे पोते का नामकरण चतुर्भुज किया। एक बार पुरुषोत्तम बीमार हुआ। उसकी माँ सुमति

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उसके लिए कोई ताबीज बना लायी। शंकरदेव को पता चला। उन्होंने कहा, ''बहू ! तन्त्र-मन्त्र, ताबीज-डोरे से कुछ नहीं होने वाला। तुम कृष्ण का ध्यान कर उनका स्मरण करो। तुम्हारा बच्चा ठीक हो जाएगा।'' वहीं सुमति का बाप कामेश्वर चौधरी खड़ा था। उससे कहे बिना रहा नहीं गया, ''आप फिर एकादशी व्रत क्यों करते हैं !'' कहने को तो उसके मुँह से यह बात निकल गयी, फिर वह अपनी भूल पर सहम गया। शंकरदेव ने उससे हँस कर कहा, ''चौधरी ! आप जैसा समझते हैं वैसा नहीं है। एकादशी व्रत करना एक वैष्णव के लिए अपरिहार्य है। साथ ही यह स्वास्थ्य के लिए भी लाभदायक है। उपवास से मन का संयम बढ़ता है। इससे बहुत-से रोगों का अपने आप शमन हो जाता है। इसके औषधीय लाभ को समझकर ही हमारे ऋषि-मुनियों ने एकादशी करने के लिए कहा है।''

सुन्दरीदिया गाँव अपने नाम के अनुरूप ही था। पाटबाउसी से कुछ ही दूरी पर स्थित सुन्दरीदिया की स्त्रियाँ अपनी सुन्दरता के लिए पूरे इलाके में मशहूर थीं। लोक-विश्वास था कि यहाँ आने के बाद कैसा भी ब्रह्मचारी हो वह गाँव की रूपसियों के रूप पर रीझे बिना नहीं रह सकता। शंकरदेव को अपने प्राण-बान्धव माधवदेव के एकाकीपन की चिन्ता सताती रहती थी। वे जगत में रहते हुए भी एक संन्यासी की भाँति अपना जीवन यापन करते थे। अकेलेपन के कारण उन्हें कुछ कठिनाइयाँ भी थीं। गुरु ने सोचा कि शिष्य को सुन्दरीदिया में भेजा जाय। यदि किसी सुन्दरी के मोह में फँसकर अपनी गृहस्थी बसा लेता है तो उसके जीवन का एकाकीपन मिट जाएगा। मेरे लिए इससे अधिक हर्ष की और क्या बात होगी। अगर वह ऐसा नहीं करता है तो उसे गृहस्थी बसाने को फिर कभी नहीं कहूँगा। यह एक तरह से उसकी परीक्षा भी होगी।

एक दिन शंकरदेव शिष्य को साथ लेकर सुन्दरीदिया गाँव गये। वहाँ अनेक सुन्दरियाँ उनके सम्मुख आयीं। एक पेड़ के नीचे बैठे दोनों गुरु-शिष्य सुस्ता रहे थे। अवसर देख गुरु ने पूछा, ''माधव ! तुमने यहाँ क्या देखा ?''

''मैं कुछ समझा नहीं, गुरुदेव !''

''मैं तुम से यहाँ की सुन्दर नारियों की बात पूछ रहा हूँ।''

माधवदेव गुरु शंकर के प्रश्न का आशय समझ गये। उन्होंने उत्तर दिया, ''गुरुदेव ! पूरे रास्ते मैंने आपके श्रीचरणों के अतिरिक्त और कुछ नहीं देखा।'' यह उत्तर सुनकर गुरु अत्यन्त प्रसन्न हुए। वे समझ गये कि माधव किसी भी अवस्था में गृहस्थी के जंजाल में नहीं पड़नेवाला।

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वृन्दावनी वस्त्र

भ्रम मनुष्य को किंकर्त्तव्यविमूढ़ कर देता है। राजा नरनारायण स्वयं पण्डित-ज्ञानी था। किन्तु उसकी सभा के ज्योतषियों ने उसे यह कहकर भ्रम में डाल दिया कि "महाराज ! आप पर शनि की साढ़ेसाती चल रही है। इस वक्त आपका राजधानी में रहना उचित नहीं। शनि-दशा के चलते आपके लिए छत्रभंग योग भी बनता है। हमारी सलाह है कि आप इस समयावधि को राजधानी से कहीं दूर रह कर बितायें तो अच्छा होगा।"

पिछले दिनों गौड़ के नवाब करनानी के सेनापति कालापहाड़ के हाथों हुई चीलाराय की हार नरनारायण को याद आयी। उस आक्रमणकारी ने कितने ही मन्दिरों को तोड़ा था। यहाँ तक कि उसके पिता विश्वसिंह द्वारा बनाया गया कामाख्या मन्दिर भी उसके हाथों ध्वस्त हो गया। इसके साथ उसे इस बात का सन्तोष अवश्य था कि उसने कामाख्या मन्दिर को दोबारा और सुन्दर बनवाने का आदेश दे दिया है। मन्दिर की दीवारों पर अनेक मूर्तियाँ उत्कीर्ण हो रही हैं। वहाँ विधि-विधान से पूजा करने की व्यवस्था के लिए जमीन दान की है। इसके साथ ही उसे देवी के शाप की बात याद आयी तो उसका दिल दहक गया। वह मन में पछ्ता रहा था, मैंने ऐसी धृष्टता ही क्यों की ! किसी ने मुझे बहका दिया था कि माँ कामाख्या के सिद्ध साधक केन्दुकालाई को देवी रात में नित्य दर्शन देती हैं, उससे बातें करती हैं। यह जानकर उत्सुकतावश मैंने केन्दुकालाई के साथ रात को मन्दिर में रहने का हठ किया। उनके हजार समझाने पर भी मैं नहीं माना। मुझे माँ के दर्शन तो क्या होने थे ! सुबह केन्दुकलाई ने बताया था कि रात को स्वप्न में माँ उसे दिखायी दीं। वे अत्यन्त क्रुद्ध थीं। देवी का शाप है कि मैं और मेरे परिवार के किसी भी सदस्य के मन्दिर में आने पर मेरे वंश का समूल नाश हो जाएगा।

नरनारायण ने सारी परिस्थितियों को अपने विपरीत पाया। शनि-प्रकोप से भयभीत हो वह बरनगर में अपनी अस्थायी राजधानी बनाकर रहने लगा। बरनगर में ढाई वर्ष रहने के बाद वह डिङा नामक स्थान में अपनी राजधानी ले गया। राजा के साथ उसकी पूरी शासकीय व्यवस्था और रनवास भी जगह-जगह भटकने लगा।

भुवनेश्वरी रूपवती के साथ गुणवती भी थी। कुछ ही दिनों में वह अपने पति शुक्लध्वज की सब रानियों में सही अर्थों में उसकी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रियतमा बन गयी। एक दिन वह अपने सुमधुर स्वर में राग आसावरी का एक गीत गा रही थी—

जय जय यादव जलनिधिजाधवधाता, श्रुतमात्राखिल त्राता ।
स्मरणे करय सिद्धि दीनदयानिधि, भकति मुकुति पददाता ।।
जग जन जीवन, अजन जनार्दन, दनुजदमन दुखहारी ।
महदानन्द, कन्द परमानन्द, नन्द नन्दन बनचारी ।।
विविध विहार विशारद शारद इन्दुनिन्दि परकाशी ।
शेष शयन शिव केशी बिनाशन, पीत वसन अविनाशी ।।
जगत बन्धु बिधु माधव मधुरिपु, मधुर मूरति मूरनाशी ।
केशव चरण सरोरुह किंकर शंकर एहु अभिलाषी ।।

दीवानखाने में बैठा चीलाराय इस गीत को सुन रहा था। वह राग के माधुर्य और गीत के भाषा-लालित्य पर मुग्ध हो गया। उसने सारे काम छोड़ पत्नी के पास आकर पूछा, "यह तुम किसका गीत गा रही थी ? इसे सुनकर मैं कुछ क्षणों के लिए किसी अपार्थिव लोक में विचरने लगा।"

"स्वामी ! यह मेरे बरदेवता (ताऊ) श्रीमन्त शंकरदेव का लिखा गीत है। उन्होंने ऐसे बहुत-से गीतों की रचना की है। वे संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान हैं। वे हरि के सिवाय किसी देवता को नहीं मानते। उन्होंने श्रीमद्भागवत तथा अन्य पुराणों पर अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। उनके द्वारा प्रतिपादित एकशरणिया भागवत धर्म पर आज हजारों लोग चल रहे हैं। हमारे विवाह के दिन उनसे आपकी भेंट न हो सकी।"

"इसका भावार्थ तो मैं समझ गया, अब शब्दार्थ भी बताओ।"

"स्वामी ! इस गीत में कहा गया है कि श्रवण मात्र से अखिल विश्व के संकटों से त्राण दिलाने वाले, जलनिधि जाधव अर्थात् लक्ष्मी-पति, धाता याने विश्व का सर्जन करनेवाले, यादव श्रीकृष्ण की जय हो, जय हो। भक्तों को मुक्ति-पद प्रदान करने वाले उन दीन-दया-सागर के स्मरण मात्र से सिद्धि प्राप्त हो जाती है। जगत के जनों के जीवन, वे अजन्मा जनार्दन, दनुज-दमन करने वाले दुखहारी हैं। गोचारण हेतु वन में विचरण करने वाले, वे नन्द-नन्दन, महानन्द एवं मोक्ष-रूप परम आनन्दमय हैं। वे (भक्तों के साथ) अनेक प्रकार के लीला-विहार में विशारद हैं। उनका रूप शरद कालीन चन्द्रमा की अपेक्षा भी इतना अधिक उज्ज्वल है कि वह चन्द्रमा भी उनकी बराबरी नहीं कर सकता। वे शेषनाग पर शयन करनेवाले शिव (कल्याणकारी), केशी-असुर का नाश करने वाले, पीताम्बरधारी,

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अविनाशी हैं। चन्द्रमा के समान संसार का हित करने वाले मधुसूदन, माधव मुरारि का रूप बड़ा ही मोहक है। उनका वह रूप सदैव मेरे हृदय में बसा रहे, केशव-चरण पंकज के इस किंकर शंकर की यही अभिलाषा है।''

''प्रिय ! यह गीत सुनकर उनसे मिलने की मेरी अभिलाषा बड़ी तीव्र हो गयी है। तुम उन्हें शीघ्रातिशीघ्र यहाँ बुलाओ। उनसे मिलकर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता होगी। वे तुम्हारी बात नहीं टालेंगे।''

''वे मेरे कहने मात्र से नहीं आयेंगे। मैं किसी साधारण घर की बहू होती तो शायद वे आ भी जाते। उन्हें बुलाने के लिए आप राजकीय निमन्त्रण के साथ अपने दूत भेजिये। तब भरोसा है कि वे अवश्य आ जायेंगे।''

निमन्त्रण के साथ चीलाराय के द्वारा भेजी गयी राजकीय नाव से शंकरदेव डिङ पहुँचे। इस बीच चीलाराय ने अपने भ्राता महाराज नरनारायण के सामने उनकी विद्वता का बखान कर उनसे मिलने के लिए उन्हें भी प्रेरित किया। चीलाराय उन्हें लेकर राजसभा में पहुँचे। राजा स्वयं भी विद्वान था। उसने गुरु के साथ गीता-भागवत आदि पर शास्त्र चर्चा कर उनके नामधर्म के बारे में भी समझा। भागवत चर्चा करते हुए वृन्दावन की कृष्णलीला पर बात चल पड़ी। नरनारायण ने कहा, ''आपसे मिलकर मैं बहुत प्रसन्न हूँ। आप अनेक विद्याओं के ज्ञाता हैं। क्या ही अच्छा हो यदि वृन्दावन में घटी समस्त कृष्णलीला का सुन्दर चित्रांकन हो सके। आप क्या पाट के वस्त्र-पट पर रंग-बिरंगे धागों से ऐसा चित्रांकन कर सकेंगे ? ऐसा हो सके तो वह पट कितने ही वर्षों तक सुरक्षित रहेगा।''

शंकरदेव ने कुछ देर विचार कर अपनी सहमति दे दी। राजा ने आग्रहपूर्वक पूछा, ''उस पर क्या-क्या चित्र रहेंगे ?''

उन्होंने कहा, ''समग्र कृष्णलीला।''

राजा ने प्रसन्न होकर सभा में घोषणा की, ''सभावृन्द ! आज से मैं कुसुमवर भूयाँ के सुपुत्र श्रीमन्त शंकरदेव के गुणों पर मुग्ध होकर ताँतीकुची का राज्यभार चलाने का भार समर्पित करता हूँ। इसके साथ ही उन्हें पाटबाउसी का शिरोमणि बरभूयाँ बनाता हूँ।''

शंकरदेव यह घोषणा सुनकर बड़े असमजंस में पड़ गये। राजाज्ञा को ना भी नहीं कर सकते और राज्य चलाने की उनकी मंशा भी नहीं थी। उन्होंने मन में विचार किया कि जीवनभर राजरोष सहता आया हूँ। यहाँ मैंने ना किया तो फिर मेरे कार्य में रुकावट पैदा हो जाएगी। इसलिए इस वक्त मेरे पास मौन स्वीकृति देने के सिवाय कोई चारा नहीं। शंकरदेव को मिले सम्मान से शुक्लध्वज बड़ा प्रसन्न हुआ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पाटबाउसी लौटकर शंकरदेव का दायित्व बढ़ गया। उन्होंने रामराय, नारायण और अपने बेटे रामानन्द को राज्य का शासन चलाने का जिम्मा दिया। राज्य की ओर से उन्हें आवागमन के लिए पालकी और कहार मुहैया कराये गये। किन्तु उन्होंने पालकी में बैठने से मना कर दिया।

रतिकान्त ये बातें सुनकर जलभुन गया। उसकी ऐसी मानसिक दशा देखकर शंकरदेव ने एक कठोर निर्णय लिया। उसका सदा के लिए परित्याग कर उसके साथ जो औपचारिक सम्बन्ध थे, वे भी तोड़ लिये।

शंकरदेव को नामघर में शरण-भजन के अलावा वृन्दावनी वस्त्र बनाने की चिन्ता भी थी। उन्होंने पास के बुनकरों के गाँव ताँतीकुची के गोपाल ताँती से इस विषय पर बात कर सारी बातें समझायी। बचपन में सीखी बयन विद्या भी उनकी सहायक हुई। पट बनाने के लिए सफेद और रंग-विरंगे रेशम के धागों की व्यवस्था राजकीय कोष से हो गयी।

एक बड़ा करघा बनाया गया। शंकरदेव ने साँचीपातों पर कृष्णलीलाओं के चित्र अंकित कर दिये। गोपाल ताँती के सहयोग से उन्होंने करघे पर ही ऐसी व्यवस्था की कि पट बुनने के साथ रंगीन धागों से चित्र भी साथ-साथ बुने जाते रहें। परिवार की स्त्रियाँ भी बयन कार्य में लग गयीं। करघे की खटखट के साथ 'राम-कृष्ण-हरि' की धुन गूँजने लगी। निपुण शिपिनियाँ (बुननहारी) लाल, हल्दिया, काले, बैंगनी, गाढ़े नीले, पीले धागों से धवल कपड़े पर मानो कोई स्वप्न बुन रही थीं। काम की देखभाल करने शंकरदेव नित्य नाव से पाटबाउसी से ताँतीकुची आते। बहुत परिश्रम करने पर भी एक दिन में चार हाथ से ज्यादा पट नहीं बुना जा सकता था। धीरे ही सही, किन्तु जो बुना जा रहा था, वह जीवन्त लग रहा था।

एक बार शंकरदेव ने अस्वस्थ होने के कारण माधवदेव को अपनी जगह ताँतीकुची भेजा। उस दिन चार अंगुल ज्यादा पट बुना गया था। यह बात जब गुरु को पता चली तो वे बड़े प्रसन्न हुए। असीम धैर्य और परिश्रम के साथ काम करते हुए पूरे वस्त्र को तैयार होने में चार माह का समय लगा। वस्त्र को देखकर शंकरदेव आध्यात्मिक आनन्द में जैसे डूब गये। उसकी लम्बाई एक सौ बीस हाथ और चौड़ाई साठ हाथ थी। उसे समेटने और उठाने में अनेक लोगों की जरूरत पड़ती थी।

वृन्दावनी वस्त्र को पहले पाटबाउसी लाया गया। फिर राजा नरनारायण को दिखाने के लिए उनके पास ले जाया गया। किन्तु उसे दिखाया कैसे जाये, यह एक समस्या थी। इसलिए वस्त्र के नाप के अनुपात में लम्बा-चौड़ा और डेढ़-दो हाथ ऊँचा मंच बनाया गया जिस पर पट को खोला गया। अब मंच

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के चारों ओर परिक्रमा कर उसमें चित्रित कृष्णलीलाओं को देखना सबके लिए सहज हो गया। उसे देखकर नरनारायण, चीलाराय, भुवनेश्वरी तथा सभी सभासद अभिभूत हो गये। वस्त्र पर सर्वप्रथम श्रीकृष्ण की जन्मभूमि और सूतिका गृह, उसके बाद नवजात कृष्ण को लेकर वासुदेव का गोकुल-गमन, उफनती यमुना को पारकर नन्दबाबा के घर पहुँचना, पूतना वध, शकट भंजन, चक्रवातासुर का वध, मिट्टी भक्षण, दही की मटकियाँ फोड़ना, अर्जन वृक्ष-भंजन, अन्धासुर, बकासुर, वृत्तासुर आदि असुरों का संहार, वन भोजन, ब्रह्मा मोहन, धेनुकासुर वध, कालिय दमन, वनवह्नि-पान, गोपियों का चीरहरण, रासक्रीड़ा, शंखचूड़ वध, गोपियों का उद्धार, बलराम द्वारा प्रलम्बासुर का वध, अरिष्ट, व्योम, केशि आदि असुरों का वध, नारद का श्रीकृष्ण दर्शन, श्रीकृष्ण-बलराम को मथुरा ले जाने के लिए अक्रुर का आगमन तथा गमन, रजक वध, वेशकार की मुक्ति, कुब्जा का कुबड़ दूर करना, कंस का धनुर्भंग, कुवलय हाथी का वध, चाणुर-मुष्टिक से साथ मल्लयुद्ध कर उनका वध, कंस वध आदि समस्त लीलाएँ शंकरदेव ने उस वृन्दावनी वस्त्र पर प्रस्तुत कीं।

राजसभा से वे शुक्लध्वज के साथ उनके घर पहुँचे। चीलाराय ने उन्हें अपनी शरण देने का आग्रह किया। भतीजी भुवनेश्वरी ने विनती कर कहा, ''बरदेवता (ताऊ) ! मेरी और मेरे पति की बड़ी इच्छा है कि आप श्रीकृष्ण के आविर्भाव, लीलाओं से लेकर उनकी पूरी जीवनी पर कोई ऐसी पोथी लिखकर दें जिसका हम नित्य पाठ कर सकें।'' शंकरदेव ने कहा, ''अब मेरी अवस्था बहुत अधिक हो गयी है। किन्तु तुम चिन्ता मत करो। इस काम को करने के लिए माधव से कहूँगा।''

पाटबाउसी आकर उन्होंने माधवदेव से वह काम करने को कहा। माधव ने कुछ ही दिनों में 'जन्म रहस्य' नामक सात सौ पदों का एक ग्रन्थ लिख दिया। उसे देखकर शंकरदेव ने कहा, ''माधव ! यह नित्य पाठ करने के लिए बहुत बड़ा है। इसे संक्षिप्त कर सको तो अच्छा रहे।'' कुछ दिनों में माधवदेव उसे तीन सौ पदों में समेट कर संक्षिप्त करके ले आये। गुरु शंकर ने ग्रन्थ को ध्यानपूर्वक देखा। फिर प्रसन्न होकर कहा, ''पुत्र माधव ! मुझे विश्वास था कि तुम यह कार्य कर सकोगे। श्रीकृष्ण रूप-चित्रण की ये पंक्तियाँ मुझे बहुत भा रही हैं। इन्हें गाकर सुनाओ।'' माधव गाने लगे—

साक्षाते कृष्णक देखिलन्त मुनिवर । प्रकाशे शरीर कोटि सूर्य समसर ।।
मरकत सम स्याम ताते पीत बास । सजल मेघत येन बिजुली प्रकाश ।।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रसन्न बदन कोटि चन्द्र सम ज्वले । रत्नर किरीटि शिरे सम नाहि मोले ।।
कमल लोचन कर्णे मकर कुण्डल । तार रश्मि प्रकाशे पाण्डुर गण्डस्थल ।।
भ्रुव सुवलित दन्त मुकुतार पान्ति । ललाटत रत्नर तिलके करे कान्ति ।।
सुन्दर नासिका येन रत्न तिल फुल । इषत हसित चारु अधर रातुल ।।
अलका पंक्ति प्रकाशित अतिशय । पद्मक बेढ़िया येन भ्रमरे रंजय ।।
रुचिर चिबुक नील आंकुचित केश । चूड़ामणि रत्न ताते अधिके सुवेश ।।

माधवदेव से रूप-चित्रण का आगे तक पूरा गायन सुनकर शंकरदेव ने कहा, "माधव ! यह काम मेरे बस का नहीं था। मैं कथा को विस्तार तो दे सकता हूँ, परन्तु उसे संक्षिप्त करने की क्षमता मुझ में नहीं।"

"गुरुदेव ! मुझे क्यों लज्जित कर रहे हैं। आप ऐसा मेरे प्रति स्नेहवश कह रहे हैं। अन्यथा मैं क्या हूँ। यह सब आपके आशीर्वाद का ही प्रताप है।"

"पुत्र ! हम दोनों अभिन्न हैं। मुझ में जैसी शक्ति है, वैसी ही तुम में भी है। अब तुम आगे के काम में लग जाओ।"

"गुरुदेव ! एक बात आपको और बतानी है। ताँतीकुची का गोपाल ताँती बयन कार्य में तो निपुण है ही, अब वह भक्ति मार्ग पर भी लग गया है। मुझ से वह नित्य हरि चर्चा किया करता था। एक दिन वह शरण देने के लिए मुझसे वहुत आग्रह करने लगा। मैं उसके हठ को टाल नहीं सका और उसे शरण देकर मथुरा दास नाम दिया है। मैंने कोई भूल तो नहीं की ?"

"माधव ! कैसी बात कर रहे हो ! इतने वर्षों से साथ रहकर भी मुझे नहीं समझ पाये। मेरे मन में कभी ऐसा भाव नहीं रहा कि शरण मुझ से ही ली जाए। मैं तो एकशरणिया नामधर्म का प्रचार मात्र चाहता हूँ।"

"गुरुदेव ! मुझे यह विश्वास था, तभी तो आपको पूछे बिना उसे शरण देते हुए झिझका नहीं। आप महान हैं।"

कुछ क्षण रुककर माधवदेव फिर बोले, "गुरुदेव ! मैंने भी एक नाटक 'दधिमथन' लिखा है।" फिर उसकी कथावस्तु बताकर बोले, "आपकी आज्ञा हो तो एक दिन इसका मंचन किया जाये।"

शंकरदेव ने कहा, "हाँ हाँ, क्यों नहीं। तुम्हारे नाटक की कथा अच्छी है। नाटक में नन्द का अभिनय मैं करूँगा। तुम इसका मंचन करने की तैयारी करो। कलाकारों का चयन कर उनसे अभ्यास कराओ।"

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लेखन-यात्रा

वृन्दावनी वस्त्र बनाने के बाद शंकरदेव फिर से लेखन में लग गये। उन्होंने सोचा कि बरदोवा में शुरू किये गये 'बलि-छलन' को पूरा करना चाहिये और कुछ ही दिनों में कुल तैंतीस (33) पदों में उसे रच डाला। इस रचना में वामन-रूप विष्णु द्वारा बलि को छलने की घटना, शुक्राचार्य द्वारा जल से भरे कमण्डल में प्रवेश कर दान-संकल्प में बाधा डालना, कुश द्वारा शुक्र की आँखों का फूटना इत्यादि भागवतीय प्रसंगों का संक्षेप में वर्णन किया गया। इसके माध्यम से उन्होंने दास्यभक्ति को प्रतिपादित किया।

शंकरदेव ने भागवत के तीसरे स्कन्ध पर आधारित 'अनादि-पातन' नामक रचना दो सौ निनानब्बे (299) छन्दों में की। इसमें वामन पुराण का भी थोड़ा आधार लिया गया। रचना में क्रमशः मंगलाचरण और पृथ्वी की कथा, महाप्रलय और सृष्टि का पुरुष (ब्रह्म) में तिरोधान हो जाना, ईश्वरेच्छा से सृष्टि-रचना—चौबीस तत्त्वों, मन, सप्तवर्ग, वैकुण्ठ, सप्तपाताल, सप्तभूलोकों में जम्बूद्वीप और भारतवर्ष का वर्णन, त्रिगुणों के आधार पर त्रिदेव का प्रगटीकरण एवं उनके कर्तव्यों का निर्देश, मानव-शरीर में निहित चौबीस तत्त्वों, दस इन्द्रियों, विभिन्न नाड़ियों एवं षट्चक्रों का वर्णन, ज्योतिषीय चक्रों—सूर्य, बारह राशियों, सुमेरु, अष्टग्रहों का निरूपण, चन्द्रमा-नक्षत्र योग एवं पद्मकल्प का वर्णन एवं विभिन्न नरकों के वर्णन किये। ग्रन्थ के अन्त में पुनः श्रीमद्भागवत की महत्ता को शंकरदेव ने निरूपित किया।

'अनादि-पातन' में शंकरदेव कहते हैं कि विश्व में सबसे श्रेष्ठ 'भारत बरिष' (भारतवर्ष) है जिसमें जन्म लेने के लिए देवता भी आग्रह कर कहते हैं, हमें स्वर्ग से कोई प्रयोजन नहीं। भारत में जन्म लेने मात्र से सब पापों का नाश हो जायेगा। भारत में केवल दो दण्ड भक्ति करने पर ही नवनिधि और सिद्धि मिल जाती हैं। इन भावों को उन्होंने इस प्रकार लिखा—

सबात अधिक इटो भारत बरिष ।
यात जन्म लभिबाक देवरो हरिष ।।
नालागे आमाक स्वर्ग कल्पसीमा वास ।
भारतत जन्मिले अल्पते हैव नाश ।।
भारतत जन्मि येन पावे नवनिधि ।
दुइ दण्ड भकति करिले होवे सिद्धि ।।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इसी ग्रन्थ में शंकरदेव ने आगे यह भी लिखा कि भारत के मनुष्य कितने पुण्यवान हैं, इसका वर्णन प्रारम्भ कर समापन करना सम्भव नहीं है। हम जिस कार्य के लिए दिन-रात प्रयास करते हैं, ये सब यहाँ सरलता से प्राप्त किये जा सकते हैं। भगवान के हरिनाम श्रवण-कीर्तन की तुलना में स्वर्गसुख भी नगण्य है। देवता भी इस भारत में मनुष्य योनि में जन्म लेकर हरिभक्ति करने को आतुर रहते हैं। भारत जैसी पुण्यभूमि और कहीं नहीं है। भारत में जन्म लेकर मनुष्य हरिभक्ति और नाम संकीर्तन करके अप्रयास ही सब कुछ सिद्ध कर सकते हैं। उन्होंने लिखा–

भारत नरे आछे किनो पुण्य करि ।
तासग्वात केनमते तुष्ट भैला हरि ।।
रात्रि दिने आमि बांचा करो याक लागि ।
हेन भारतक पाइले किनो पुण्य भागि ।।
छार स्वर्गसुख आमि खुजिलो नाजानि ।
कदाचितो मुखे नासे रामकृष्ण बाणी ।।
हा हरि कैसानिबो लभिवो भारत ।
करिबो भकति मात्र कृष्ण चरणत ।।

गुरु शंकर की आज्ञा को शिरोधार्य कर माधवदेव ने भी माधव कन्दली की रामायण का खोया हुआ आदिकाण्ड (बालकाण्ड) लिखना प्रारम्भ कर दिया। इसके साथ ही वे भक्तिमूलक गीतों की रचना भी कर रहे थे। उनका विचार था कि गीतों के संग्रह का नाम 'नामघोषा' रखूँगा।

शंकरदेव में न जाने कौन-सी ऊर्जा थी कि अपनी ढलती उम्र में भी सतत लेखन करते रहे। उन्होंने 'जरासंध युद्ध', 'कालयवन वध' और 'मुचुकुन्द स्तुति' लिखने के पश्चात् 'स्यमन्तक हरण' तथा 'नारद-कृष्ण दर्शन' लिखे। 'विप्र-पुत्र आनयन' के इकहत्तर (71) पदों में श्रीकृष्ण द्वारा अपने गुरु के दस मृतक पुत्रों को पुनरुज्जीवित करने की घटना को कथा-गीति के रूप में लिखा। इसी तरह 'देवकीर पुत्र आनयन' के पैंतीस (35) पदों में कंस द्वारा वध किये गये माता देवकी के पुत्रों को श्रीकृष्ण-वलराम के पुनरुज्जीवित कर लाने की कथा है।

'दोमोदर विप्राख्यान' के चौंतीस (34) पदों में दामोदर (सुदामा) के दारिद्र्य का वड़ा मार्मिक वर्णन शंकरदेव ने किया। एक सौ नौ (109) पदों में लिखी गयी 'लीला माला' में श्रीकृष्ण के जीवन की समस्त घटनाओं के माध्यम

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

से उनकी अलौकिकता, परमब्रह्मत्व, भक्तवत्सलता इत्यादि का संक्षिप्त वर्णन उन्होंने किया। 'रुक्मिणीर प्रेम कलह', 'भृगु परीक्षा', 'वेद स्तुति', 'श्रीकृष्णर बैकुण्ठ प्रयाण' और 'भागवतर तात्पर्य वर्णन' की रचनाएँ कीं।

चतुर्विंशति अवतार का जो लेखन अधूरा रह गया था उसका शेष भाग शंकरदेव ने पूरा किया।

शंकरदेव का ध्यान माधव कन्दली कृत 'रामायण' के खोये हुए उत्तरकाण्ड (असमिया में उत्तराकाण्ड लिखा हुआ है) को लिखने की ओर गया। वे माधवदेव को आदिकाण्ड (बालकाण्ड) लिखने के लिए पहले ही कह चुके थे। अब श्रीराम-वन्दना से कथारम्भ करते हुए स्वयं उत्तरकाण्ड लिखना प्रारम्भ किया—

उत्तराकाण्ड

ॐ नमः श्रीकृष्णाय

सीतार बनवास

जय जय जगत जनक श्रीराम ।
पातकीयो तरे जार लैले गुण नाम ।।
जाक सुमरणे तरि दुर्घोर संसार ।
करो हेन रामर चरणे नमस्कार ।।
नमो नमो रघुकुल तिलक केशव ।
जय जय सीतार सन्तति कुश लव ।।
राम गैल स्वर्गे सीतार पाताले गमन ।
शंकरे रचिला पद रामर चरण ।।
राम पदपद्म दुइ हृदयत धरि ।
गुरुर चरण मने नमस्कार करि ।।
बिरचिबो उत्तरकाण्डर कथा सार ।
होक पद राम पाद प्रचारे प्रचार ।।

राम की वन्दना से प्रारम्भ कर वाल्मीकि रामायण के आधार पर कुल सात सौ बासठ (762) छन्दों में उन्होंने उत्तरकाण्ड लिखा। इसमें सीता-वनवास और वाल्मीकि आश्रम-गमन, लव-कुश का जन्म, राम का अश्वमेध यज्ञ, यज्ञ-मण्डप, सीता की स्वर्णमूर्ति एवं अट्टालिकाओं का वर्णन, लव-कुश का अयोध्या जाकर रामायण-गायन, हनुमान-जन्म विवरण, हनुमानादि द्वारा सीता को लिवा

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लाने का आग्रह, वाल्मीकि के साथ सीता का राम-सभा में आना और वाल्मीकि द्वारा सत्य-कथन, सीता का पाताल-प्रवेश, पृथ्वी के प्रति राम का क्रोध और ब्रह्मा द्वारा प्रबोधन, सीता सम्बन्धी पाताली वाणी, विभिन्न राजाओं का पराभव और लव-कुशादि को राज्यदान, राम द्वारा अयोध्या का त्याग, लक्ष्मण-वर्जन, राम का दुःख, लव-कुश का राज्याभिषेक और लक्ष्मण का अन्तिम-संस्कार और प्रेत-क्रिया, राम का स्वर्ग-गमन आदि का विस्तृत वर्णन किया।

उत्तरकाण्ड के अन्त में भी शंकरदेव ने राम की वन्दना की है—

रामे पितृ मातृ सुत सुहृद सोदर बन्धु
रामे आत्मा रामे जीव प्राण ।
रामे जप यज्ञ दान रामेसे परम ज्ञान
रामे कोटि शत तीर्थ स्नान ॥
राम मोर इंष्टदेव रामकेसे करो सेव
गति मोर रामर चरण ।
रामे धर्म्म रामे कर्म्म रामेसे बान्धव मर्म्म
जानि लैलो रामत शरण ॥ 760 ॥

हेन जानि मोर चित्त रामर चरण चिन्त
विषय चिन्ताय एरि काम
पापत पचा लोकचारि मोर मुखे आगबाढ़ि
सर्व्वदाय बोला राम राम ॥
तरिवार करा काम कर्णे शुना रामनाम
राममय देखिलो सकले ॥ 761 ॥

नमो प्रभु भगवन्त नाइ यार आदि अन्त
भकतिते याहार सन्तोष ।
हुया मूढ़ मतिमन्द करो रामायण पद
क्षेमा प्रभु बाढ़ा टूटा दोष ॥
सम्यके अमृत भाण्ड उत्तम उत्तराकाण्ड
एहिमाने भैला समाप्ति ।
कृष्णर किंकरे भणे राम राम घोषा घने
पापमाने याउक अधोगति ॥ 762 ॥

॥ उत्तराकाण्ड सम्पूर्णम् ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बहुत दिनों से शंकरदेव के मन में एक विचार आ रहा था कि भागवत पुराण, श्रीमद्भगवद्गीता तथा अन्यान्य पुराणों में भक्ति, ज्ञान, सत्संग आदि अनेक विचार पढ़ने को मिलते हैं, परन्तु समग्र ग्रन्थों को पढ़ना सब के लिए सम्भव नहीं। क्यों न उनमें से चुने हुए श्लोकों को एक ही पुस्तक में संकलित कर व्याख्यायित किया जाये। इस विचार के साथ उन्होंने संस्कृत में 'भक्ति रत्नाकर' ग्रन्थ रचना प्रारम्भ किया—

श्रीकृष्णाय नमः

श्रीशङ्करवाक्यामृतम्

भक्तिरत्नाकरः

प्रथममाहात्म्यम्

यन्नामधेयेन भवाब्धिमध्वा तर्य्या समुत्तीर्य्य नरः परं पदम् ।
प्राप्नोति पातक्यपि तं सनातनं सदासदानन्दमुपास्महे हृदि ॥१॥
यत्कृपालेशलाभेन लभतेऽभिमतं पदम् ।
तस्याजस्य जनो नौमि नित्यं पदपङ्कजद्वयम् ॥२॥
समुद्धृतं भागवताभिधानाद् दुग्धाम्बुधेर्यन्नवनीतपिण्डम् ।
श्रीशङ्करेणाच्युतकिङ्करेण बुद्ध्या जुषध्वं शितया सुधीराः ॥३॥
समस्तशास्त्रसत्सारमुद्धृत्य विदधेऽधुना ।
भक्तिरत्नाकराख्यं तं संग्रहं शङ्करः किल ॥४॥

अथ प्रथममत्र भक्ति-ज्ञानप्रदगुरुसेवामाहात्म्यमाह—

दशमस्कन्धे अशीत्यध्याये दरिद्रदामोदरं प्रति भगवद्वाक्यं ।
भक्ति-ज्ञानप्रदगुरुरत्यन्तः पूज्यः इत्याशयेन त्रीन् गरूनाह ।
स वै सत्कर्म्मणां साक्षाद्द्विजातेरिह सम्भवः ।
आद्योऽङ्ग यत्राश्रमिणां यथाहं ज्ञानदो गुरुः ॥१॥

इह संसारे यत्र सम्भवो जन्म मात्रं यस्मात् सः पिता तावदाद्यः प्रथमो गुरुः पूज्यः । कर्म्मविद्याप्रदं गुरुमाह, द्विजातेः पुंसः सत्कर्म्मणां यत्र सम्भवः उपनयनपूर्व्वकवेदाध्ययनं सः द्वितीयो गुरुः । यथामहीश्वरः तथा प्रथमादपि पूज्यः।

व्रह्मविद्याप्रदं गुरुमाह—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आश्रमिणामपि सर्व्वषां ज्ञानदो यो गुरुः स तु साक्षादहमेव । अतो ज्ञानप्रदं गुरुरूपमाश्रित्य ये संसारं तरन्ति ते बुद्धिमन्त इत्याह ।

नन्वर्थकोविदा ब्रह्मन् ! वर्णाश्रमवतामिह ।
ये महा गुरुणा वाचा तरन्त्यञ्जो भवार्णवम् ।।२।।

हे ब्रह्मन् ! ते वर्णाश्रमवतां मध्ये अर्थकोविदाः । इह मनुष्य जन्मनि । अत्रापि वर्णाश्रमवत्वे सति ये मया गुरुणा गुरुरूपेण वक्त्रा वाचा उपदेशमात्रेण सुखेनैव भवार्णवं तरन्ति, अतो ज्ञानदं गुरुमाश्रित्य ये संसारं तरन्ति ते बुद्धिमन्तः इत्यर्थः । ज्ञानप्रदाद् गुरोरधिकः सेव्यो नास्तित्युक्तम् । अतएव गुरुभजनादधिको धर्म्मो नास्तीत्यत आह ।

नाहमिज्याप्रजातिभ्यां तपसोपशमेन वा ।
तुष्येयं सर्व्वभूतात्मा गुरुशुश्रुषया यथा ।।३।।

इज्या गृहस्थधर्म्मः, प्रजातिः ब्रह्मचारिधर्म्मः ताभ्यां, तपसा वनस्थधर्म्मेन, उपशमेन सन्न्यासधर्म्मेन वाहं परमेश्वरी न तथा तुष्येयं यथा सर्व्वभूतात्मापि गुरुशश्रूषयेति ।

एकादशस्कन्धे तृतीयाध्याये निमिं प्रति प्रबुद्धवाक्यम् ।
तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम् ।
शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मनुपशमाश्रयम् ।।४।।

उत्तम श्रेयो ज्ञातुमिच्छुः । शाब्दे ब्रह्मणि वेदाख्ये न्यायतो निष्णातं तत्त्वज्ञं, अन्यथा संशयनिरासकत्वायोगात् । परे ब्रह्मन्यपरोक्षानुभवेन निष्णातम्, अन्यथा वोधसञ्चारायोगात् । परे ब्रह्मणि निष्णातत्व द्योतकमाह उपशमाश्रयमिति।

पञ्चमस्कन्धे रहूगणं प्रति भरतवाक्यम् । गुरुसेवयैव संसार निस्तार इल्याशयेनाह ।

भ्रातृव्यमेतं तददभ्रवीर्य्यमुपेक्षाध्येधितमप्रमत्तः ।
गुरोर्हरेश्चरणोपासनास्त्रो जहि व्यलीकं स्वयमात्ममोषम् ।।५।।

तस्माद् भ्रातृव्यं शत्रुं लिङ्गदेहमित्यर्थः । अध्येधितं सम्वर्द्धितं स्वयं व्यलीकं मिथ्याभूतं तथाप्यात्मानम् मुष्णातीति मोषकमित्यर्थः । गुरुरेव हरिः तस्य चरणोपासनमेवास्त्रं यस्य तथाभूतः सन् जहि घातय । तस्मात् गुरुसेवयैव संसारनिस्तारः नान्यथेति निर्णीतम् ।

इति भक्तिरत्नाकरे प्रथममाहात्म्यम् ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इस तरह 'भक्ति रत्नाकर' में कुल अड़तीस (38) अध्यायों में पाँच सौ चौंसठ (564) श्लोकों को शंकरदेव ने सम्पादित कर संकलित किया। इनमें चार सौ सैंतीस (437) श्लोक तो केवल श्रीमद्‌भागवत पुराण के विभिन्न स्कन्धों से ही लिये गये। शेष श्लोक श्रीधर स्वामी कृत भावार्थ दीपिका, श्रीमद्‌भगवद्‌गीता, नृसिंहपुराण, योगसार, वामन पुराण, ब्रह्म-नारदीय पुराण, विष्णु पुराण, पद्‌म पुराण, मत्स्य पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण, कूर्म पुराण के अतिरिक्त शिह्लन मिश्र कृत शान्ति-शतक आदि ग्रन्थों से भी लिये गये। प्रत्येक श्लोक के पश्चात् उसके स्रोत का उल्लेख भी उन्होंने किया।

इस ग्रन्थ में उन्होंने भक्ति-ज्ञानप्रदसेवा माहात्म्य, नृदेह माहात्म्य, सत्संग माहात्म्य, श्रीकृष्ण-गुण श्रवण माहात्म्य, हरिनाम कीर्तन माहात्म्य, कृष्णार्च्चन माहात्म्य, भागवत पुराण माहात्म्य आदि के बारे में लिखा। इसके साथ सगुण-निर्गुण भेद, भक्तियोग-निरूपण, अन्तरंग भक्ति-निरूपण, निर्गुण भक्ति-निरूपण, सप्रेम भक्ति-निरूपण, यम-नियम निरूपण की व्याख्या करते हुए सन्त, उत्तम भक्त, मध्यम भक्त, प्राकृत भक्त, आचारभ्रष्ट भक्त के लक्षणों को बताने के अलावा भारत-भू-प्रशंसा आदि अनेक तथ्यपूर्ण बातें भी लिखीं।

'इति भक्तिरत्नाकरे अष्टत्रिंशन्माहात्म्यम्।' लिखकर उन्होंने ग्रन्थ को पूर्ण किया।

'पत्नी प्रसाद' और 'केलि-गोपाल' नाटकों के मंचन के समय चूनपोरा की जनता पर पड़े दृश्य-श्रव्य के प्रभाव की बात शंकरदेव के ध्यान में थी। इससे वहाँ के स्थानीय लोग नाटक-गायन-संगीत में रुचि लेने लगे थे। उन्होंने सोचा, पाटबाउसीवासियों के बीच भी नाटक के मंचन होने चाहिये। यहाँ के लोगों के बीच से ही कलाकारों का चयन कर उनके द्वारा नये नाटक का प्रदर्शन करायेंगे। कथानक का नयापन दर्शकों के मन को भायेगा, साथ ही एकशरण धर्म का प्रचार भी होगा।

रामराय के आग्रह को रखकर शंकरदेव ने नया कुछ रचने की दृष्टि से अपने 'रुक्मिणी-हरण' काव्य को नाट्य-रूपान्तरित करने का मन बनाया। नाटकीयता को ध्यान में रखकर उन्होंने काव्य के कई प्रसंगों को छोड़कर 'सुरभि' और 'हरिदास' नामक भाटों के नये पुरुष पात्रों और नृत्य की दृष्टि से लीलावती तथा मदनमंजरी नामक नारी पात्रों को नाटक में समाहित करने की कल्पना की। उद्धव को मंच पर तो रखा परन्तु उनके मुँह से एक शब्द

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भी नहीं कहलवाया। काव्य के कई पात्र और घटनाओं को छोड़कर, भागवत का आधार लेकर कृष्ण के प्रति रुक्मिणी की नैष्ठिक भक्ति को प्रतिपादित करते हुए उन्होंने 'रुक्मिणी-हरण' नाटक लिखा। फिर स्थानीय लोगों में से कलाकारों की खोजकर उन्हें गायन-वादन सीखाने के साथ अभिनय करना भी सीखाकर नाटक का मंचन कराया।

उनका मूल उद्देश्य श्रीकृष्ण भक्ति के माध्यम से एकशरण धर्म का प्रचार कर लोगों में नव चेतना जगाना था। इसलिए उन्होंने अपने नाटकों में सूत्रधार से बार-बार 'देखह शुनह; निरन्तरे हरि बोल हरि' (देखो सुनो; निरन्तर हरि बोलो हरि) कहलाया। दर्शक भी नाटक के साथ एकाकार होकर सूत्रधार के संग 'हरि बोल हरि' के उद्‌घोष करते।

कृष्ण की कालिय-दमन लीला पर नाटक लिखने के लिए बहुत दिनों से रामराय का आग्रह हो रहा था। उनके आग्रह को रखकर शंकरदेव ने कृष्ण के भक्त-वत्सल और लोकरक्षक रूप का चित्रण करने के उद्देश्य से इसमें वनाग्नि-पान लीला को भी समाहित किया। इसमें कालीय नाग दुष्ट, दुराचारी, अनाचारी, अत्याचारी का प्रतीक है। इसके सिर पर श्रीकृष्ण नृत्य कर अपना चरण चिह्न देकर अभयदान देना वैष्णव धर्म की श्रेष्ठता का प्रतीक है। संवादों की अल्पता और वर्णन की प्रधानता को ध्यान में रखते हुए उन्होंने 'कालि-दमन'[1] का लेखन पूर्ण कर मंचन कराया।

शंकरदेव अपने लिखित-निर्देशित नाटकों के मंचन का जनता पर प्रभाव देखकर उत्साहित थे। उनकी बुढ़ायी धमनियों में न जाने कौन-सी अमृत-धारा प्रवाहित हो रही थी। अब उन्होंने 'पारिजात हरण' नाटक का लेखन किया। इसमें सत्यभामा के लिए श्रीकृष्ण द्वारा इन्द्र के दम्भ का दमन कर स्वर्ग से उसके पारिजात वृक्ष का हरण करने की कथा को नाटकीय रूप में लिखकर जनता के सामने मंचित कराया।

□□

1 कालि-दमन : नाटक का 'कालि-दमन' शीर्षक भ्रामक है। इसका नाम कालिय-दमन ही होना चाहिये। लगता है कि लिपिकारों ने भूल वश इसे कालि-दमन लिख दिया होगा, क्योंकि श्रीमन्त शंकरदेव जैसे सुविज्ञ पण्डित द्वारा भ्रामक नाम देना असंगत लगता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वृद्धावस्था का प्रवास

शतायु होकर शंकरदेव अपनी जीवन-सीढ़ी पर और एक सोपान चढ़ गये। इस पर भी उनकी कार्यगति में कोई शिथिलता नहीं आयी। एक दिन उन्होंने अपने मन में संजोयी साध माधवदेव को बताते हुए कहा, ''पुत्र! बहुत दिनों से मेरा मन फिर से तीर्थ यात्रा पर जाने को कर रहा है। अब देश में चारों ओर शान्ति है। तुम मेरे साथ चलो। भक्तों में से और किसी का भी मन हो तो वह भी चले। वहाँ नये-नये स्थानों पर जायेंगे। अनेक साधु-सन्तों से मिलेंगे। उन लोगों से नयी-नयी बातें सुनने-जानने को मिलेंगी। तुम्हारी भी यह इतनी लम्बी पहली यात्रा होगी।''

''गुरुदेव ! अब आपकी अवस्था यात्रा करने की नहीं रही। यह उम्र तो आराम करने की है। यात्रा के कष्टों को आप कैसे सह पायेंगे !''

''माधव ! यह तुम्हारे मन का भ्रम है। मन में उमंग हो तो शरीर भी नहीं थकता। जब तक साँस चल रही है, मैं विश्राम के बारे में सोच भी नहीं सकता। तुम अपने मन से मेरे शरीर की चिन्ता निकाल दो। यह काया तो नश्वर है। तीर्थ-भ्रमण करते यदि यह मेरी आत्मा का साथ छोड़ भी दे तो क्या अन्तर पड़ जाएगा ! तुम ये सब बातें छोड़ो। बस, हमें चलना है। नारायण ठाकुर से कहो, वह यात्रा की तैयारी करे।''

कालिन्दी को इस बात का पता चला तो वे अत्यन्त चिन्तित हो गयीं। उन्होंने माधव को बुलाकर कहा, ''माधव ! तुम्हारे गुरु की यह उम्र क्या यात्रा पर जाने की है ! तुम उन्हें किसी तरह समझा कर इस यात्रा पर जाने से रोको। यह काम केवल तुम ही कर सकते हो।''

''माता, मैं सारे प्रयास पहले ही कर चुका हूँ। उन्होंने मन में ठान ली है तो यात्रा पर जाए बिना नहीं मानेंगे। उनके आदेश पर नारायण ठाकुर सारी तैयारियाँ भी कर चुका है।''

''पुत्र ! तुम्हें मुझे यह वचन देना होगा कि उन्हें किसी भी हाल में कम से कम वृन्दावन तो नहीं जाने दोगे। वे अगर वहाँ चले गये तो फिर लौट कर यहाँ कभी नहीं आयेंगे। वे कृष्ण-प्रेम में ऐसे बावरे हैं कि उन्हें आठों प्रहर चारों ओर कृष्ण ही कृष्ण दिखते हैं।''

''ठीक है माता ! मेरा आपको यह वचन है कि मैं उन्हें किसी भी हाल में वृन्दावन नहीं जाने दूँगा। और उन्हें यात्रा से भी जितना शीघ्र सम्भव

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

होगा लौटा लाऊँगा। अब आपका आशीर्वाद चाहिये।'' कहकर माधवदेव ने गुरुआनी की चरण-वन्दना की।

यात्रा पर जाने के लिए माधवदेव, नारायण ठाकुर, रामराम विप्र, रामराय के अतिरिक्त कुल मिलकर एक सौ बीस लोग तैयार हो गये। शंकरदेव ने किसी को मना नहीं किया। नावें गंगा-तट पर पहुँचीं। यात्रियों में अधिकतर लोगों ने जीवन में पहली बार गंगा के दर्शन किये। गंगा का निर्मल जल और विशालता देख सभी मुग्ध थे। वहाँ से सभी जगन्नाथ के पथ पर पैदल चल पड़े। रास्ते में वाराहरूपी विष्णु के दर्शन कर महानदी के तट पर पहुँचे। वहाँ स्नान-ध्यान कर आगे अठरनला में रुक कर रात्रि-विश्राम किया। वहाँ से जगन्नाथपुरी ज्यादा दूर नहीं थी।

पुरी पहुँचकर सबके ठहरने की व्यवस्था मन्दिर के पास बने छत्ता मठ में हो गयी। इसी मठ में पहली यात्रा में भी ठहरे थे। शंकरदेव के पण्डे गोपालकृष्ण का स्वर्गवास हो चुका था। अब उसका बेटा गोविन्द उनके साथ था। समुद्र में स्नान कर सभी ने भगवान् जगन्नाथ के दर्शन किये। माधवदेव दर्शन कर ऐसे भावविभोर हुए कि एक गीत रचकर गाने लगे–

मोक देखिओ ना
केने आहे जगन्नाथ
मइ बर पापीर पापी ।
संसार कूपत
परिया तोमार
चरणे नधरों चापि ।।

भोर होने में देर थी। माधवदेव अपने कक्ष में बैठे दीपक-प्रकाश में कुछ रचने में तल्लीन थे। रात्रि का अन्तिम प्रहर हो चला। माधवदेव अपने लिखे को गुनगुनाने लगे। अब तक शंकरदेव भी उठ गये। उनके कानों को गुनगुनाहट सुनायी दी तो वे माधवदेव के कक्ष में आये। शिष्य ने उठकर गुरु को प्रणाम किया। उन्होंने कहा, ''माधव ! इसे सस्वर गाकर सुनाओ न।'' गुरु आज्ञा शिरोधार्य कर वे गाने लगे–

प्रातः समये यशोवा जननी, मुख चुम्बित श्याम जगावन को ।
उठ मेरे लाल मदन गोपाल, आवे तेरे ग्वाल बुलावन को ।।
अब रुटिया लेहु माखन चंकु पुरि, मुरली लेहु बजावन को ।
वृन्दावन जाहि आनन्द करु, यमुना तटे धेनु चरावन को ।।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

छोरि भवन चलहु नन्दनन्दन, गोधन चारण कारण रे ।
दाम सुदाम सखा सब मिलत, आनन्दे गोविन्द खेरि खेलावत रे ।।
शत शत वत्स विमल चरण, नवीन चबिन चलावत रे ।
शिंगा उपांग वेणु मुह बाजत, हेरि गोपाल भुलावत रे ।।
गिरिपति ध्यान तेजि अवधान, मुरारिक सान विमोहित रे ।
तुहों जगन्नाथ कि दास कि माधव, मुह भरि राम कहावत रे ।।

गीत सुनकर शंकरदेव तन्मय हो गये। उन्होंने कहा, ''माधव ! तुमने क्या सुन्दर प्रभाती गीत रचा है। इसकी जितनी प्रशंसा की जाये कम है।''

एक दिन शंकरदेव ने अपने पण्डे से उन्हें कबीर मठ ले चलने को कहा। गत यात्रा में भी उन्होंने कबीर-वाणी को जगह-जगह सुना था। अब कबीर के पद-गीत भारत के जन-जन की जबान पर लोकोक्तियों और मुहावरों की तरह चढ़ गये थे। कबीर अद्वैतवादी थे। वे किसी जाति-पांति, भेदभाव को नहीं मानते थे। और शंकरदेव भी उस दिशा में अपने एकशरणिया नामधर्म को चला रहे थे। हालांकि वे जानते थे कि सन्त कबीर को अपना शरीर छोड़े लम्बा समय हो गया। फिर भी वे उस मिट्टी को नमन करना चाहते थे, जहाँ ऐसे महान सन्त रहे। उनके लिए अच्छा संयोग रहा कि वहाँ उन्हें उनकी बेटी-जँवाई और नाती मिल गये।

पुरी से शंकरदेव अपने दल के साथ वृन्दावन जाने के लिए निकले। सात दिन चलकर वे एक रात कहीं विश्राम कर रहे थे। किन्तु माधवदेव के मन में चिन्ता थी कि उन्हें आगे जाने से कैसे रोका जाए। उन्हें गुरुआनी को दिया वचन बार-बार याद आ रहा था। सुबह उठ कर सब आगे जाने को जब तैयार हुए तो उन्होंने गुरु से कहा, ''गुरुदेव ! मैं वृन्दावन नहीं जाना चाहता। क्योंकि मेरे मन में वहाँ के बारे में जो कल्पनाएँ हैं, वे वहाँ जाने पर चूर-चूर हो जायेंगी। आप भी वहाँ जाकर निराश ही होंगे। आपके मन में भागवत के दशम स्कन्ध में वर्णित वृन्दावन की जो सुन्दर कल्पनाएँ हैं, सारी की सारी छिन्न-भिन्न हो जाएँगी। आपने जो वृन्दावन साठ-पैंसठ साल पहले देखा था, वह अब वैसा नहीं रह गया होगा। वहाँ जाकर आपका मन क्षुब्ध ही होगा। अब आपकी उम्र भी इतनी दीर्घ यात्रा करने जैसी नहीं रह गयी है। मैं आपके पाँव पकड़ कर विनती करता हूँ, आप अब यहाँ से घर चलिये। रास्ते में जो तीर्थ आयेंगे, उनके हम दर्शन करते चलेंगे।''

''माधव ! तुम ही वृन्दावन नहीं जाना चाहते तो मैं जाकर क्या करूँगा।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मैं तो तुम्हारे लिए ही विशेष कर वहाँ जाना चाहता था। जैसी कृष्ण-इच्छा !"

माधवदेव और रामराम के साथ वे लौट पड़े। शेष यात्री अपने कार्यक्रम के अनुसार आगे की यात्रा पर निकल गये। शंकरदेव असल बात को कभी नहीं जान पाये कि माधव उन्हें वृन्दावन जाने से कालिन्दी के कहने पर रोक रहे थे।

वे लोग वहाँ से कटक होते हुए महानदी के तट पर पहुँचे। वहाँ से बंग प्रदेश के विभिन्न स्थानों से होते हुए सब कामरूप राज्य की सीमा में प्रवेश कर कोचविहार क्षेत्र के भेलाडांगा गाँव में पहुँचे। वहाँ एक घने वृक्ष की छाँव तले अपने भक्तों के साथ बैठकर विश्राम करने लगे।

पेड़ पर बने मधुमक्खी के छत्ते से मधु टपककर नीचे गिर रहा था। उसे देखकर शंकरदेव को अपने बालपन की बात याद आ गयी। उन्होंने भक्तों से उस छत्ते का मधु निकलवाया। मधु का सबके साथ पान कर शंकरदेव ने यात्रा की थकान दूर की। वह स्थान उन्हें ऐसा मधुमय लगा कि वहाँ का नाम ही मधुपुर रख दिया। कुछ दिन वहाँ रहकर उन्होंने एक नामघर बनवाया, जो भविष्य में मधुपुर सत्र के नाम से विख्यात हुआ।

कुछ दिनों में सभी पाटबाउसी पहुँचे। वहाँ से माधवदेव गणककुची चले गये। इस यात्रा से शंकरदेव सन्तुष्ट नहीं थे। उन्होंने अपने मन की व्याकुलता को व्यक्त करते हुए गौरी राग में एक गीत रचा। एक दिन उस गीत को उन्होंने नामघर में सबको सस्वर गाकर सुनाया—

नाहि नाहि रमया बिने ताप-तारक कोई ।
परमानन्द पद मकरन्द सेवहु मन मोइ ।।
तीरिथ बरत तप, जप याग योग युगुति ।
मन्त्र परम धरम करम करत नाहि मुकुति ।।
मातृ-पितृ पतनी तनय जनय सब मरणा ।
छारहु धन्ध मानस अन्ध धरतु हरि चरणा ।।
कृष्ण किंकर शंकर कहु विछुरि विषय कामा ।
राम चरणे लेहुँ शरण जप गोविन्दक नामा ।।

ऋतु परिवर्तन के साथ शंकरदेव के मन में भी परिवर्तन हो रहे थे। उनका मन वृन्दावन जाने के लिए फिर से उत्प्रेरित हो रहा था। उन्होंने रामराय और रामराम के साथ फिर वहाँ जाने की ठानी। उनकी बात सुनकर सब असमंजस में पड़ गये। सबने मिलकर उनकी वृद्धावस्था का हवाला देकर उन्हें यात्रा पर न जाने के लिए अनुनय-विनय की। अन्ततः सब

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के बार-बार समझाने पर उन्हें अपने मन की इच्छा का शमन करना पड़ा।

नामघर में शंकरदेव कह रहे थे, "हे भक्तो ! मैंने अपने इतने लम्बे भ्रमण से एक ही सार निकाला है–

सर्व तीर्थ शिरोमणि नाम धर्म सार ।
नामर किंकर तीर्थ यज्ञ व्रताचार ।।
जानिया भकत नाम धर्मक धरियो ।
नामर प्रसादे तोरा वैकुण्ठे चलिय़ो ।।

नामधर्म ही सार वस्तु है। श्रीमद्भगवदगीता आदि शास्त्र भी हमें यही शिक्षा देते हैं। पुस्तकों के ज्ञान से भी बढ़कर तीर्थ-भ्रमण है। भ्रमण में हमें अनेक गुणी-ज्ञानी, साधु-संन्यासी के साथ मिलने के अवसर मिलते हैं। उनसे अनेक नयी-नयी बातें जानने-समझने को मिलती हैं। इससे हमारे चिन्तन में और गहराई आती है। मैं यह भी कहता हूँ, 'नाहि भकतित जाति अजाति विचार, कृष्णर भक्तित समस्तरे अधिकार।' भक्ति में किसी जाति अजाति का विचार नहीं किया जाता। कृष्ण की भक्ति पर सभी का अधिकार है। धर्म किसी उच्च श्रेणी या धनाढ्य व्यक्ति की बपौती नहीं। इस पर केवल पण्डितों का भी अधिकार नहीं है और न ही इसे केवल उन लोगों तक ही सीमित होकर रहना चाहिये। धर्म का साधारण लोगों के बीच भी प्रचार होना चाहिये। हम सभी लोगों के धर्म की रक्षा करेंगे तभी धर्म की रक्षा होगी। कहा भी है, धर्म रक्षति रक्षितः।" इतना कहकर शंकरदेव अपने आसन से उठे।

नामघर के कार्यों के साथ शंकरदेव अपने अधूरे पड़े ग्रन्थों को पूरा करने में भी लगे हुए थे। नये सुर-संगीत से सजे उनके रचे गीतों से पाटबाउसी का आकाश जैसे गुंजायमान हो गया। रंगमंच पर नये भाउना 'कंस वध' का मंचन हुआ। इसमें गायन-वादन, अभिनय करने वाले सभी स्थानीय ग्रामीण थे। भाउना देखने के लिए आस-पास गाँवों से लोगों का हुजूम उमड़ पड़ा। माधवदेव, रामराम गुरु, रामदास उर्फ गयापाणि, नारायण ठाकुर, रामराय, दामोदरदेव, हरिदेव, कण्ठभूषण, जयन्तिया का माधव, हरिदास बणिया, बलभद्र, बलराम आदि तो थे ही।

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्रीमद्भागवत का भावानुवाद

श्रीमद्भागवत को कामरूपी में भाषान्तर करने का सपना शंकरदेव ने मन में संजो रखा था। इस दिशा में कार्य को आगे बढ़ाने के पहले उन्होंने सोचा, भागवत का अक्षरशः अनुवाद करने के बदले एकशरण धर्म को व्याख्यायित करनेवाले प्रसंगों को विशेष रूप में लिखना चाहिये। इसके स्कन्ध अभी यदि क्रमशः नहीं भी लिखे जाते हैं इनको बाद में भी एक क्रम में किया जा सकता है। इसके कुछ स्कन्धों पर आधारित कई उपाख्यान तो पहले लिख ही चुका; इस समय श्रीकृष्ण की जैसी प्रेरणा होती है, लिखता चलता हूँ।

भागवत के दशम स्कन्ध के लेखन के लिए शंकरदेव का मन उत्प्रेरित हुआ तो उन्होंने पहले उसे रचा। कथा-लेखन पूरा हुआ तो उसे दो खण्डों में विभाजित किया– पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध। भक्तों ने पूर्वार्द्ध को 'आदि दशम' और उत्तरार्द्ध को 'कुरुक्षेत्र' नाम से अभिहित किया।

'आदि दशम' के दो हजार चार सौ तिरेसठ (2463) छन्दों में श्रीधर स्वामी की भागवत-व्यख्या को भी उन्होंने महत्त्व दिया। इसमें उन्होंने दार्शनीक तत्त्वों में ईश्वर के स्वरूप, ईश्वर की व्यापकता और समाधि-स्थिति, अद्वैत तत्त्व, नाम-महिमा, भक्ति में जाति-भेद निरपेक्षता, भारतवर्ष और कलियुग की प्रशंसा अनेक विषयों का निरुपण किया। मूल ग्रन्थ की दार्शनिक गुत्थियों का अपेक्षाकृत परित्याग किये जाने से रचना सरस और ललित बनकर सर्वसाधारण के लिए सर्वग्राही बन गयी।

दशम स्कन्ध के उत्तरार्द्ध में 'कुरुक्षेत्र' काव्य लिखा। इसके छह सौ दो (602) छन्दों में शंकरदेव ने द्वारकावासियों के साथ श्रीकृष्ण का कुरुक्षेत्र प्रवास, नन्द-यशोदा और गोप-गोपियों से कृष्ण-बलराम का मिलन, द्रौपदी के पूछने पर कृष्ण की आठ पटरानियों द्वारा अपने-अपने विवाह का वर्णन आदि की कथाएँ समाहित कीं।

शंकरदेव ने अब श्रीमद्भागवत के द्वादश स्कन्ध का पद्यानुवाद किया। फिर इसके प्रथम, द्वितीय, तृतीय, नवम स्कन्ध लिखे।

अब शान्तचित्त बैठकर शंकरदेव ने श्रीमद्भागवत का एकादश स्कन्ध लिखा। इसमें भक्ति का माहात्म्य बताते हुए लिखते हैं–

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जप तप संन्यास परम महादाने ।
नपावे आमाक सखि योग महाज्ञाने ।।
केवल भकति एक मोक करे वश्य ।
कहिलो उद्धव इटो परम रहस्य ।।

सब प्राणियों में विष्णु का स्वरूप देखते हुए उन्होंने इसमें लिखा—

कुक्कुर शृंगाल गर्दभरो आत्माराम ।
जानिया सबाको परि करिबा प्रणाम ।।
समस्त भूतल विष्णु बुद्धि नोहे यावे ।
काय वाक्य मने अभ्यासिबा एहि भावे ।।
विष्णुमय देखे यिटो समस्त जगते ।
जीवन्ते मुकुत होवे अचिर कालते ।।

एकादश स्कन्ध के आधार पर ही अपनी वैयक्तिक रुचि और मान्यताओं का समन्वय कर 'निमि नवसिद्ध संवाद' नाम तत्त्वमूलक ग्रन्थ अलग से लिखना प्रारम्भ किया। ग्रन्थ में विदेहराज निमि और नवसिद्धों— कवि, हवि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, अविर्होत्र, द्रुमिल, चमस और करभाजन के संवाद के माध्यम से विभिन्न दार्शनिक-आध्यात्मिक गुत्थियों को सुलझाया। राजा ने सिद्धों से नौ प्रश्न किये। ग्रन्थ में प्रश्नोत्तर द्वारा परम उपास्य पुरुष, भक्तों के लिए आचरणीय भागवत धर्म, माया और उससे मुक्त होने के उपाय, माया से मुक्ति हेतु एकमात्र आचरणीय भक्ति, नारायण-स्वरूप, चतुराश्रम में आचरणीय कर्मयोग, विभिन्न अवतार, भक्ति पर अविश्वास करनेवालों की विपन्नावस्था और विभिन्न युगों में आचरणीय उपासना पद्धतियों में एकशरण नामधर्म भक्ति की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया गया।

इसके साथ ही शंकरदेव ने 'निमि नवसिद्ध संवाद' में यह भी लिखा कि इस भूमि का नाम 'भारत बरिष' (भारतवर्ष) जिन भरत (ऋषभनाथ के पुत्र) के नाम से प्रख्यात हुआ, उन्होंने विषय-वासना रूपी सुखों को विष्ठा की तरह देखा। उन्होंने लिखा—

यार नामे ख्यात इटो भारत बरिष ।
देखिल विषय सुख विष्ठार सदृश ।।

इसमें शंकरदेव यह भी कहते हैं कि इस जन्म में भी मेरा सन्ताप दूर

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नहीं हुआ। इसलिए भारत में आया हूँ परन्तु काल रूपी चोर मेरा पीछा नहीं छोड़ता। यह काल मनुष्य-काया का यों ही अन्त कर देगा। उन्होंने लिखा—

इजन्मतो पाप नेराइलो सन्ताप ।
भारत बरिष पाया ।।
कैत कालचोरे प्राण नेइ मोरे ।
परिबे मनुष्य काया ।।

एक दिन माधवदेव शंकरदेव के पास बैठे थे कि कुछ लोगों ने आकर गुरु के चरणों में प्रणाम किया। वे धुवाहाटा के व्यापारी थे; नाव से गाँव-गाँव घूमकर माल बेचा करते थे। उनके साथ बंशीगोपाल नामक एक सुन्दर ब्राह्मण-पुत्र भी था। शंकरदेव ने सबकी कुशलक्षेम पूछकर लड़के की ओर संकेत कर पूछा, ''यह सुन्दर ब्राह्मणकुमार कौन है, कैसे आया ?'' व्यापारियों ने बताया, ''गुरुदेव ! यह मातृ-पितृ विहीन बालक है। हमारे साथ रहकर ही बड़ा हुआ है।'' उन्होंने फिर से कहा, ''आपने धुवाहाटा छोड़ा तब से हम अनाथ हो गये। आपके आने के बाद वहाँ भक्ति-धर्म का प्रचार भी थम गया है। हम आपके पास यही प्रार्थना लेकर आये हैं कि अपने किसी विशिष्ट भक्त को वहाँ धर्म-प्रचार करने हमारे साथ भेजें।

वंशीगोपाल का मन गुरु के आश्रय में रहने का था। उसने कहा, ''मैं यहाँ रहकर भक्त बनूँगा और बड़ा होकर धुवाहाटा में धर्मप्रचार करूँगा।'' गुरु ने भी उसे सत्र में रहने की अनुमति प्रदान कर दी। इस पर व्यापारियों ने कहा, ''गुरुदेव ! इसे यहाँ छोड़कर जाना सम्भव नहीं। आहोम सीमा पर सैनिकों ने सबके नाम लिखे थे। एक आदमी भी कम गया तो हम पर मुकदमा कर दिया जायेगा।''

शंकरदेव ने कहा, ''गोपाल ! अभी तुम सबके साथ लौट जाओ। फिर कभी आकर भक्ति-धर्म का लाभ लेना। वैसे यह कार्य तुम वहाँ रहकर भी कर सकते हो।'' ऐसी आज्ञा सुनकर असन्तुष्ट मन से बंशीगोपाल लौट गया।

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

राजकोप का शमन

वैष्णव नामधर्म के बढ़ते प्रचार से कर्मकाण्डी ब्राह्मण चिन्तित तो थे ही, इससे उनकी जीविका पर भी आघात हो रहा था। सबने मिलकर विद्यावागीश चक्रवर्ती की अध्यक्षता में एक गुप्त सभा की। चक्रवर्ती ने कहा, "शंकरदेव के नामधर्म प्रचार को यदि शीघ्र नहीं रोका गया तो हमें भूखों मरना होगा। शंकर कर्मकाण्ड का विरोधी है। यह वलि प्रथा का भी विरोध करता है। हमारे महाराज नरनारायण घोर शाक्त हैं। उन्होंने कालापहाड़ द्वारा तोड़े गये कामाख्या मन्दिर का पुनः निर्माण आरम्भ कराते समय एक सौ बीस लोगों की नरबलि दिलवायी थी। उनके मन में यदि इस शंकर के बारे में दुर्भावना बैठ दी जाए तो यह राजदण्ड का आरोपी हो जाएगा।"

"इसके के लिए हमें क्या करना होगा।" एक कर्मकाण्डी ने पूछा।

"अभी कुछ ही दिनों पहले दुर्गा पूजा का त्योहार गया है। नदी-तालाबों में विसर्जित दुर्गा की प्रतिमाएँ पानी में गल गयी होंगी। हम ऐसी एक प्रतिमा किसी पोखर से निकाल कर राजा को दिखाकर उसे बतायेंगे कि शाक्त विरोधी इस शंकर ने हमारी माता की प्रतिमा की क्या दुर्दशा की है।"

अपने षड्यन्त्र को पूरा करने के लिए वे लोग राजा के दरवार में पहुँचे। विद्यावागीश ने नरनारायण से कहा, "महाराज ! शंकर के कारण आपके राज्य पर अनेक संकट आये हैं। आपके वीर भाई शुक्लध्वज को कारावास में रहना पड़ा। आप भी एक स्थान पर स्थिर नहीं हो पा रहे हैं। शंकर न वेदों को मानता है और न ही गीता-शास्त्र को। यज्ञ-होम, पितृ-श्राद्ध आदि को पाखण्ड बताकर विरोध करता है। इससे आपके राज्य में व्यभिचार और अशान्ति फैल रही है। आपका राज्य भी नष्ट हो सकता है। शंकर को यदि आपने नहीं रोका तो न जाने वह और क्या अनर्थ फैलायेगा।"

राजा ने उनकी बात सुनकर कहा, "मैं शंकरदेव को जानता हूँ। वे एक धार्मिक और आस्थावान व्यक्ति हैं। तुम लोगों ने उन पर जो गम्भीर आरोप लगाये हैं, उनके क्या प्रमाण हैं ?"

"महाराज ! प्रमाण भी दे देंगे। शंकर का कोई आचार-विचार नहीं। वह अब्राह्मण होकर ब्राह्मणों को शरण देता है। उनका धर्मगुरु बनता है। शास्त्र विरोधी अपने एकशरणिया धर्म का प्रचार करता है। इससे लोगों में भ्रष्टाचार फैलता जा रहा है। यदि उसे नहीं रोका गया तो आपका छत्र-भंग

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

होना निश्चित है।'' इतना कहकर विद्यावागीश ने अपने साथी को इशारा किया।

बाहर रखी पानी में गली देवी-प्रतिमा लाकर दरबार में रखी गयी। उसे दिखाकर विद्यावागीश चक्रवर्ती ने फिर से कहना प्रारम्भ किया, ''महाराज! आप ही देखिये, उस शंकर ने हमारी माँ की प्रतिमा की क्या दुर्दशा की है! वह कहता है, जो देवी नर और पशु की बलि लेती है, उसकी पूजा करना पाप है। ऐसी देवी का तिरस्कार करो। महाराज! आप ही विचार कीजिये, क्या बलि दिये बिना देवी की पूजा पूरी हो सकती है!''

राजा नरनारायण पहले से ही ज्योतिष गणना से भयभीत था। उस पर शनि की साढ़ेसाती चल रही थी। फिर से छत्र भंग की बात सुनी तो उसके मन में घबराहट होने लगी। अपनी धर्मभीरुता के वशीभूत होकर उसने अपने मन्त्री को आदेश दिया, ''तुम अपने सिपाही भेजकर शंकर को तुरन्त पकड़कर मेरे सामने उपस्थित करो। लोगों का धर्मभ्रष्ट करने के अपराध में मैं उसकी चमड़ी से ढोल मढ़वाकर उसकी हड्डियों से उसे बजवाऊँगा और उसके मांस के टुकड़े-टुकड़े कर कुत्तों को खिलवाऊँगा।''

नरनारायण की बुद्धि को भ्रमित देखकर कर्मकाण्डियों के मन आनन्द से भर गये। किन्तु उन्हें इस बात का पता नहीं चला कि राजसभा में उस समय दीवान शुक्लध्वज के दो व्यक्ति उपस्थित थे। उन्होंने जाकर सारी बातें उसे बता दीं। दीवान ने अपने आठ सिपाहियों को द्रुत गति से पाटवाउसी जाकर शंकरदेव को सकुशल अपने साथ लेकर आने को भेज दिये।

राजा नरनारायण के सैनिकों को शंकरदेव नहीं मिले तो वे राजकोप के भय से उनके दो शिष्यों नारायण ठाकुर और गोकुलचन्द को अपने साथ पकड़ कर ले गये। उधर शंकरदेव और उनके साथ आये चार भक्तों को शुक्लध्वज ने अपनी फूलनवाड़ी की हवेली में ठहरा दिया।

नारायण ठाकुर और गोकुलचन्द ने शंकरदेव के बारे में कुछ नहीं बताया तो राजा ने क्रोधित होकर दोनों को कारागार में डलवा दिया। किन्तु अपार यातनाएँ सहने के बाद भी उन्होंने एक शब्द नहीं कहा। उनके मुँह से निरन्तर 'हरि राम हरि राम' का जाप ही चलता रहा। आखिर राजाज्ञा से दोनों को भोट देश के भोटिया व्यापारियों को बेच दिया गया। भूटान की सीमा तक पहुँचते-पहुँचते दोनों द्वारा निरन्तर किये जा रहे 'हरि राम हरि राम' के जाप का भोटों पर प्रभाव पड़ा। वे अपनी भूल समझ गये। उन्हें लगा कि हम किन्हीं साधु-सन्तों को खरीद लाये हैं। यदि इनसे बेगार ली या सताया तो इसका दुष्परिणाम होगा। वे उन्हें लेकर वापस लौटे और सैनिकों को सौंपकर अपनी धनराशि ले ली।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सैनिकों ने दोनों भक्तों को फिर से राजसभा में प्रस्तुत कर सारी बातें नरनारायण को बतायी। राजा दोनों की अपार गुरुभक्ति, धैर्य और ईश्वर के प्रति विश्वास देखकर अचम्भित हुआ। उसने सोचा भी न था कि भक्त की महिमा भी इतनी महान हो सकती है ! उसने दोनों को ससम्मान छोड़ देने का आदेश देते हुए कहा, "जिस गुरु के शिष्य इतने महान हैं तो उनका गुरु कितना महान होगा। ऐसे गुरु धन्य हैं।"

दोनों भक्तों को दीवान के आदमी शंकरदेव के पास ले गये। अब तक सैनिकों के मन में भी उन भक्तों के प्रति श्रद्धाभाव जाग उठा था। उन्होंने दोनों से क्षमा याचना कर उन्हें अपनी शरण देने की प्रार्थना की।

नरनारायण के मन में अब पश्चाताप हो रहा था कि वह कंर्मकाण्डियों के कुचक्र में फंसकर धर्मभीरुतावश गलत काम कर बैठा है। अब इसका परिमार्जन करने के लिए गुरु शंकर को सभा में बुलाकर क्षमा याचना कर उन्हें यथोचित सम्मान देना होगा। अब तक उसे पता चल चुका था कि शंकरदेव उसके भाई के पास सुरक्षित हैं। उसने उन्हें राजसभा में लाने के लिए अपने दरबारी भेजे। किन्तु शुक्लध्वज को राजा की बातों पर विश्वास नहीं हुआ। उसने उनसे कहा, "शंकरदेव से पहले भी मिलकर महाराज उनके साथ धर्म और शास्त्र पर चर्चा कर चुके हैं। उनके कहने पर गुरु शंकर ने वृन्दावनी वस्त्र बनाकर दिया। वे यह भी जानते हैं कि उनकी भतीजी मेरी पत्नी है। फिर भी कुछ कुचक्रियों की बातों में आकर उन्होंने ऐसा घोर अन्याय किया। उन पर कैसे विश्वास किया जा सकता है ? इसका क्या भरोसा कि महाराज उनका अनिष्ट नहीं करेंगे ?"

बहुत मान-मनुहार के बाद शंकरदेव को उनके भक्त परमा 'आता', परमानन्द और छोटा बलराम के साथ राजसभा में भेजने के लिए दीवान शुक्लध्वज राजी हुआ। रास्ते में परमा 'आता' ने गुरु से कहा, "गुरुदेव ! राजा के प्रति मन में रोष तो है परन्तु उसे त्यागना होगा।"

"रोष अनिष्टकारी है। मेरे मन में राजा के प्रति कोई रोष नहीं। हम धर्म प्रचारक हैं। हमें अपने व्यवहार से लोगों के मन को जीतना है। हम ही यदि क्रोध करेंगे तो हम में और साधारण लोगों में क्या अन्तर रह जाएगा !" शंकरदेव ने कहा।

शंकरदेव ने राजसभा में प्रवेश किया। राजा ने उन्हें अपने पास आने के लिए कहा। सिंहासन नौ सोपानों के ऊपर था। उन्होंने सीढ़ियों पर चढ़ते हुए तोटय (त्रोटक) छन्द में रची अपनी देव भटिमा का पाठ प्रारम्भ किया–

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मधुदानवदारण देववरम् । वरवारिजलोचन चक्रधरम् ।।
धरणीधरधारण ध्येयपरम् । परमार्थ विद्याशुभ नाशकरम् ।।१।।

करचूर्णित चेदिप भूरिभगम् । भगभुषण कोर्च्चित पादयुगम् ।।
युगनायक नागर वेशरुचिम् । रुचिरांशपिधान शरीरशुचिम् ।।२।।

शुचिचामरावायु निसेव्यतनुम् । तनुमध्यगदेह सुवेशहनुम् ।।
हनुमन्तहरिश सहायरतम् । रतराङ्गपरायण शत्रुनतम् ।।३।।

नतवर्त्तूलस्थूल सुदीर्घभूजम् । भुजगाधिपतल्प शयनमजम् ।।
अजरामर विग्रह विश्वगुरुम् । गुरु गोधनकामद कल्पतरुम् ।।४।।

तरुणी मनमोहन सर्व्वशुभम् । शुभमङ्गलदायक नीलनिभम् ।।
इभकुम्भज मौक्तिक माल्यवहम् । वहलोरसमिष्टप सर्व्वसहम् ।।५।।

सहजायति पद्मदलाक्षचिदम् । चिदानन्द विनोदन वेदविदम् ।।
विदुपामनमण्डन कम्बुगलम् । गलशोभित कौस्तुभ भीमबलम् ।।६।।

वलभद्रसहोदर सत्यवपुम् । वपुनिद्रित विश्वसुरारिरिपुम् ।।
रिपुयुथपयुथप दर्पहरम् । हरमौलि निघृष्टपदाब्जपरम् ।।७।।

परलोकसहाय सहस्रमुखम् । मुखरालिकुल कुलमाल्यसुखम् ।।
सुखमोक्षद दक्ष रमारमणम् । मनसोपरिमेय सहस्रफणम् ।।८।।

प्रणतोस्मिनतोस्मिनतोस्मिहरिम् । हरिवैरीहुताशन भोग्यहरिम् ।।
हरिकिंकर शङ्कर ईशपदे । पदमिच्छन गायतिचामृतदे ।।९।।

नौ श्लोकों में लिखे तोटय का सस्वर पाठ करते हुए शंकरदेव एक-एक सोपान चढ़ते गये। दरबार में विद्यावागीश चक्रवर्ती, कण्ठभूषण आदि शास्त्रज्ञ ब्राह्मण खड़े थे। सभी सुमधुर गायन सुनकर अवाक थे। उनके गले में तुलसी की कण्ठी, हाथ में कमल-पुष्पों की माला थी। एक सौ पन्द्रह वर्षीय वृद्ध की सीधी गोरी देह पर रेशमी धोती और उत्तरीय शोभा दे रहा था। कन्धे तक झूलते धवल केश और ललाट पर चन्दन का तिलक था। उन्हें देख सबको ऐसी अनुभूति हुई जैसे कोई देवपुरुष सभा में आ गया हो। सब उन्हें निर्निमेप निहारते रह गये।

नरनारायण ने झुककर श्रीमन्त शंकरदेव की चरण वन्दना की। राजा के संकेत पर उनके लिए आसन लगाया गया। वे राजा को

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

'कल्याणमअस्तु' कहकर आसन पर विराज गये। गुरु की राजसभा में गरिमामयी उपस्थिति देखकर कुटिल कर्मकाण्डियों के सीने पर साँप लोटने लगे। उन्हें अपना षड्यन्त्र विफल होते देख घोर निराशा हुई। गुरु शंकरदेव ने सभा में कहना प्रारम्भ किया, ''महाराज! और सभासद गण! मुझ पर अनेक आरोप लगाये गये हैं कि मैं वेद, गीता, भागवत के अतिरिक्त पूजा, तुलसी इत्यादि किसी को नहीं मानता। मैं शूद्र होकर ब्राह्मणों को शरण देता हूँ। इससे राजा और प्रजा के साथ राज्य का अमंगल हो रहा है। मैं दृढ़तापूर्वक अपने पर लगाये गये सभी आरोपों का खण्डन करता हूँ। वेद के एकेश्वरवाद और गीता के एकशरण, भागवत के सत्संग और सहस्रनाम पर मूल रूप से आधारित ही हमारा नामधर्म है। भागवत और गीता में ही नामधर्म की जड़ है। वेद-वेदान्त और अनेक शास्त्रों को पढ़ने के पश्चात् ही सनातन धर्म के सहज-सरल रूप समाज के लिए कल्याणकारी नामधर्म का मैं प्रचार कर रहा हूँ। मैंने किसी शास्त्र के विरुद्ध कोई प्रचार नहीं किया। मैं तुलसी को मानता हूँ या नहीं उसका प्रमाण मेरे गले की तुलसी माला है। श्रीकृष्ण का भक्त भला बिना तुलसी के कैसे रह सकता है!''

श्रीमन्त शंकरदेव ने आगे कहा, ''महाराज! भागवत पुराण ही हमें नवधा भक्ति में भगवान् की पूजा-अर्चना करने का विधान बताता है। श्रवण, कीर्तन, स्मरण, अर्चन, पदसेवा, दास्य, साख्यभाव, वन्दन और आत्म-निवेदन— ये नवधा भक्ति के नौ प्रकार हैं। इनमें श्रवण और कीर्तन को ही सर्वश्रेष्ठ भक्ति माना गया है। श्रीमद्भागवत पुराण हमारे दर्शन और साधना मार्ग का मूल आधार है।

''मुझ पर यह अभियोग भी है कि मैंने देवी-प्रतिमा भंग की है। यह आरोप लगाने वाले इस भरी सभा में ईश्वर की शपथ खाकर यह बात कह सकते हैं तो वे आगे आयें।'' इतना कहकर गुरु ने सभा में उपस्थित ब्राह्मणों की ओर देखा। वे सभी अपनी गरदन नीची किये हुए थे।

इसके पश्चात् श्रीमन्त शंकरदेव ने कहा, ''महाराज! शास्त्रों में प्रवृत्ति और निवृत्ति नामक दो मार्ग बताये गये हैं। इनमें किसी मार्ग की भी निन्दा करना पाप है। मेरे ऊपर यह भी अभियोग है कि मैं ब्राह्मण को शरण देता हूँ, किसी प्रकार की नीच-ऊँच जात-पाँत का विचार नहीं करता। इससे सनातन धर्म का नुकसान हो रहा है। 'एक देव वासुदेव, एक जाति मनुष्य जाति'— यही नामधर्म की मान्यता है। श्रीमद्भागवत में स्वयं भगवान् कृष्ण ने उद्धव को भक्ति का रहस्य बताते हुए कहा है—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ब्राह्मणर चण्डालर निविचारि कुल ।
दातात चोरत जार दृष्टि एकतुल ।।
विशेषत मनुष्य गणत जिटो नरे ।
विष्णु बुद्धि करि सर्वदाये मान्य करे ।।
इरिषा असूया अहंकार तिरस्कार ।
सबे नष्ट हवे जेरे तावैक्षणे तार ।।
नाहि भकतित जाति अजाति विचार ।
कृष्णर भक्तित समस्तरे अधिकार ।।

"भागवत के आदर्श का यह सार लेकर ही मैं सभी इच्छुक ब्राह्मण और अब्राह्मण को भगवान् कृष्ण के चरणों में शरण दिलाता हूँ।"

राजसभा में निस्तब्धता छा गयी। बाहर खड़े लोग 'कृष्ण कृष्ण हरि राम, कृष्ण कृष्ण हरि राम, कृष्ण कृष्ण हरि राम, कृष्ण कृष्ण हरि राम' जप रहे थे।

शंकरदेव ने पुनः कहना शुरू किया, "हे नृपवर ! और सभासदों !! मैं नव-वैष्णव धर्म के मूल सिद्धान्त अहिंसा, समानता और मानवता को ही लोगों में प्रचारित कर रहा हूँ। हरि नाम कीर्तन में न व्यय होता है और न ही किसी पूजा-अनुष्ठान या आडम्बर की आवश्यकता है। यदि यह मेरा अपराध है तो महाराज ! आप और आपके सभासद मेरे लिए उचित दण्ड की व्यवस्था कर सकते हैं।" इतना कहकर उन्होंने 'कृष्ण राम जय जग बन्धु जगन्नाथ' उच्चारा और अपने आसन पर बैठ गये।

महाराज नरनारायण ने कर्मकाण्डियों से क्रोधित होकर कहा, "अव तुम लोगों के पड्यन्त्र की पोल खुल चुकी है। तुम लोग यदि ब्राह्मण नहीं होते तो कड़ा दण्ड देता।" फिर अपने सैनिकों से कहा, "इनकी कर्मकाण्डी पोथियों के टुकड़े-टुकड़े कर नदी में बहा दो।" शंकरदेव ने ऐसा करने से राजा को मना किया। किन्तु तव तक सैनिक उनके हाथों से पोथियाँ छीनकर तत्परता से टुकड़े-टुकड़े कर चुके थे।

महाराज नरनारायण द्वारा शंकरदेव को निरपराधी घोषित किये जाने का समाचार सुनकर चीलाराय और भुवनेश्वरी की प्रसन्नता का पारावार नहीं रहा। अव शंकरदेव राजसभा में सम्मानित राजकवि पद पर आसीन थे। अव नित्य उनका राजसभा में जाना होने लगा। एक दिन उन्होंने राजा के सम्मान में लिखी राज भटिमा दरवार में सस्वर गाकर सुनायी—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जय जय मल्ल नृपति रसवान ।
जाकेरि गुणगण सम नाहि आन ।।
निज कुल कुमुद प्रकाशित इन्दु ।
गहीन गम्भीर धीर पेथित सिन्धु ।।
सभा एक पात्र आपन महाराज ।
देवक मध्ये बैसे सुरराज ।।
आपन भुजबले दण्डिये राजकुल पारत सकल हि काय ।
जय जय ईश्वर पाद प्रसाद मल्लदेव करु राज ।।
नटक भाटक पश्चिम देशक जत गत पण्डित आवे ।
घोटक कम्बल बहुत रजत आपनहि मन पूरि पावे ।।
अस्त्रत शस्त्रत शास्त्रत पार्गत विपक्षक आपन जान ।
देव ब्राह्मणक पितृक अर्चने जाकेरि नाहि समान ।।
आपन नृपवर धर्म युधिष्ठिर विचारत आपन सुजान ।
काव्य कवित्व शशधर पण्डित धनुर्धर अर्जुन समान ।।
मल्लत युद्धत आपन दृष्टित तुहुँ विने नाहि आन ।
आपन गुणयशे व्यापिये धरणी नृपत मध्यत देखि ।।
बाहु वक्षःस्थल कटि मध्य देखिजे कामिनी होवे बेड़ि लाज ।
यैसे राज हंसीक गमनी गहीन गम्भीर मृगराज ।।
कहलो तयु गुण हामु शिशुमति मरष सकल मह दोष ।
कहये शंकर नजानो सभासद पात्र मध्ये इ कथा पोछ ।।

नदिया (नवद्वीप) शान्तिपुर के उद्भट विद्वान कविचन्द्र पण्डित का अपने तिरेसठ शिष्यों के साथ कोचविहार में आगमन हुआ। उन्हें पता चला था कि शंकर नाम का कोई शूद्र कायस्थ अपने को पण्डित कहता है, श्रीमद्भागवत पुराण जैसे पवित्र ग्रन्थ की व्याख्या ही नहीं उस पर रचना भी करता है। वे शंकरदेव से शास्त्रार्थ कर उन्हें हराने के उद्देश्य से आये थे। किन्तु वे शंकरदेव के सामने नहीं टिक सके और रातों रात अपने शिष्यों को लेकर अपने गाँव पलायन कर गये।

एक दिन नरनारायण ने सभा में उपस्थित पण्डितों से कहा, ''आप लोगों में से कौन है जो पूर्ण भागवत का सार एक दिन में वता सकता है ?'' इस पर किसी ने दस दिन, किसी ने पन्द्रह-वीस दिनों का समय माँगा। एक ने कहा, ''महाराज ! भागवत पुराण हाथी के समान एक विशाल ग्रन्थ है। एक दिन

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रूपी लघु सन्दूक में भला इसे कैसे बन्द किया जा सकता है ?'' शंकरदेव का मौन देखकर राजा ने उनकी ओर ताका तो उन्होंने विनम्रता से कहा, ''महाराज ! प्रयास किया जा सकता है। इसके लिए आप मुझे इसी समय राजसभा से जाने की अनुमति दीजिये।''

आवास पर आकर शंकरदेव कलम-दवात लेकर बैठ गये। राजसभा में ही उन्होंने सोच लिया था कि बरदोवा में लिखी 'गुणमाला' को पूरा करने का अब समय आ गया है। शब्द साँचिपात पर अवतरित होने लगे—

राम निरंजन। पातक भंजन ।।

नमो नारायण संसार कारण। भकत तारण तोमार चरण ।।
तुमि निरञ्जन पातक भञ्जन। दानव गञ्जन गोपिका रञ्जन ।।
वेदान्त गायक बंशी वायक। जगत नायक मुकुति दायक ।।
भकतर ऋद्धि करा सर्व्व सिद्धि। विधातार विधि दीन दयानिधि ।।
भकति रोचन दुःख विमोचन। पातक मोचन कमल लोचन ।।
दैत्य अन्तकारी गोवर्धन धारी। भव भयहारी तुमिसि मुरारी ।।
कलिको दमिला पुतना शुषिला। देवक तुषिला व्रजक भूषिला ।।
केशी वत्स बक समस्ते दैत्यक। लगाइला चमक डकासला जमक ।।
तुमि वारम्वार हुया अवतार। पृथिवीर भार खण्डिला अपार ।।
इन्द्रदमिला ब्रह्मायो नमिला। वनत भ्रमिला गोपीक क्रीड़िला ।।
पशि रङ्गशाल जत महामाल। करिया आष्फाल बधिला गोपाल ।।
तयु गुण नाम धर्म्म अनुपाम। मोक्ष अर्थ काम साधा प्रभु राम ।।
मारि दशग्रीव जनकर जीव। पाइला सदाशिव तुमि जगजीव ।।
तोमार चरित्र पातकीर मित्र। परम पवित्र करिला विचित्र ।।
पतित पावन एभव भावन। असुर दावन तुमिसि वामन ।।
अगतिर गति त्रिजगत पति। तोमात भकति थाकोक सम्प्रति ।।
श्यामल शरीर जलद रुचिर। गहीन गम्भीर गुणर मन्दिर ।।
कुण्डले मण्डित असुर दण्डित। पातक खण्डित तुमिसि पण्डित ।।
दारिद्र मर्दन करुणा सदन। वंशी बदन मुरुति मदन ।।
हास्य दरिशन पाप करि छन्न। दोप मरिपण काम वरिषण ।।
जगत आधार देवकी कुमार। संसारत सार चरण तोमार ।।
तुमि भगवन्त महिमा अनन्त। तारिलाहा सन्त पुरुष महन्त ।।
तुमि सुवत्सल पुरुप निश्चल। नाहि किछु छल भकत वत्सल ।।
तुमि अवतरि असुर संहरि। सृष्टि आछा धरि देव श्रीहरि ।।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अघासुर घालि महबल शाली । दलिमाहा कालि तुमि वनमाली ।।
नरसिंह रिपु भैला दिव्यवपु । बधिलाहा रिपु हिरणाकशिपु ।।
भैला अदिदित वामन उदित । मुरुति ललित वलिक छलित ।।
जामदग्नि राम काटि चामे चामे । क्षत्रियर नाम नथैला संग्राम ।।
भैला कौशल्यात श्रीराम जात । रावण विघात करिला लङ्कात ।।
हुया कल्किचण्ड जतेक पाखण्ड । करि खण्ड खण्ड बिहिलाहा दण्ड ।।
धरि बारम्बार दश अवतार । पृथिवीर भार खण्डिला अपार ।।
कृष्णर किंकरे रचिला शंकरे । हरि हरि नरे बोला निरन्तरे ।।

लिखते-लिखते एक प्रहर बीता, दूसरा बीता। रात्रि हो गयी। कोई भक्त आकर दीप-स्तम्भ के दीपों को आलोकित कर गया। अक्षर ब्रह्म शब्दों में अवतरित होते गये। रात के अन्तिम प्रहर तक कृष्णगुण गरिमा से रंजित तीन सौ सतहत्तर (377) द्विपदियों में रचना पूर्ण की। उन्होंने विचार किया, अब जाकर इसका 'गुणमाला' नाम सचमुच में सार्थक हुआ है। ग्रन्थ को एक मंजूषा में रेशमी वस्त्र बिछाकर कर रखा। फिर मंजूषा पर हाथी का चित्र अंकित किया।

प्रातःकाल राजसभा में उसे देखकर नरनारायण ने उनका राजकीय सम्मान करने के पश्चात कहा, ''श्रीमन्त शंकरदेव की जितनी प्रशंसा की जाये कम है। हजारों श्लोकों में लिखी गयी श्रीमद्भागवत पुराण का इन्होंने काव्यमय संक्षिप्त सार एक रात में लिखकर प्रस्तुत कर दिया। इसे कहते हैं, 'भुरुकात हाती भराले'। भुरुका (मंजूषा) पर चित्रित हाती (हाथी) इस बात का प्रतीक है कि हाथी जैसे विशाल प्राणी को भी छोटी-सी सन्दूक में भरा जा सकता है। हम इनका अभिवादन करते हैं। इनके सम्मान में मेरे मन में कुछ भाव उपज रहे हैं जिन्हें आप सबको को सुनाना चाहूँगा।''

इतना कहकर राजा नरनारायण ने सस्वर पढ़ा—

धन्य धन्य शंकर पण्डित ।
जाहार भकत दुइ श्रेष्ठ रूपे गणि ।।
प्रभावते तासम्बक भोटोओ निनिला ।
शंकरक स्मरि दुःखे परित्राण पाइला ।।

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

धन्य धन्य भारत बरिष

कोचविहार आये शंकरदेव को तीन महीने हो गये। अब वे पाटबाउसी लौटना चाहते थे। उनके लिए राजकीय नाव की व्यवस्था की गयी। उनके जीवन के उत्तरार्द्ध का भी लगभग अन्तिम अध्याय चल रहा था। किन्तु उनकी कार्यशीलता में कोई ठहराव नहीं आया था।

आज नामघर में भक्तों की ज्यादा ही भीड़ थी। कई महीनों बाद गुरु का प्रवचन हो रहा था। आसनासीन होने के बाद शंकरदेव ने पहले हरि संकीर्तन किया। फिर कहा, "भक्तो ! हरि नाम मनुष्य मात्र को इस जग से तार देता है। विशेष बात यह है कि हमें भारत बरिष (भारतवर्ष) में जन्म मिला और वह भी इस कलिकाल में। राजा परीक्षित को महाभागवत सुनाते हुए शुकदेव मुनि कहते हैं कि भारत जैसी कोई और पुण्यभूमि नहीं है। भारत में यदि हरि-भक्ति की जाये तो बिना प्रयास किये ही सद्गति मिल जाती है। इस कलिकाल में तो भारत में जन्म पाना और भी अधिक फलदायी है। इसलिए कहता हूँ कि यह मनुष्य योनि बड़े भाग्य से और वह भी भारत में मिली है। सदैव हरि को भजो—

राजाक कहन्त शुक महामुनिबरे । नाहि पुण्य भूमि आर भारतत परे ।।
भारतत नरे अप्रयासे साधे गति । यदि एक चिते करे हरित भकति ।।
भारतत जन्म अति कलित अधिक । येन तेन मते मात्र भजोक हरिक ।।

भक्तो ! भागवत शास्त्र भी यही बात कहता है कि भारत में मनुष्य तनु (तन) पाना बहुत कठिन है। कोटि-कोटि कल्प के पश्चात् ही अनेक पुण्यों के संचय से ही जीवात्मा को यह नरदेह मिलती है—

भारते मनुष्य तनु सेंथरे नपाइवा पुनु महभागवत शास्त्रे कय ।
कोटि कल्प अनन्तरे जीवे नर देह धरे यदि थाके पुण्यर संचय ।।

इस भवसागर से तरने के लिए भारत वरिष, मनुष्य तन, कलियुग और हरिनाम— इन चारों का संयोग हमें कितने पुण्य से एक साथ मिला है—

भारत वरिष मनुष्य शरीर कलियुग हरिनाम ।
चारिरो संयोग कत पुण्ये पाइल करा तरिवार काम ।।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यदि हमने इन चारों अनुपम संयोगों– कलियुग, भारत बरिष, हरिनाम और कोटि कल्पों से मिले इस दुर्लभ मानव-तन का सदुपयोग नहीं किया तो ये उसी तरह चले जायेंगे जैसे स्वप्न में मिला हुआ धन चला जाता है–

कलियुग भारत बरिष हरिनाम। देवरो दुर्लभ नर तनु अनुपाम ।।
चारिरो संयोग कोटि कल्पतो नपाय। सपोनर निधि येन जागिले हराय ।।

विषय-वासना तो पशु भी करते हैं परन्तु श्रीकृष्ण की सेवा तो भारत में मिले इस नर कलेवर से ही की जा सकती है। इस बात की अनदेखी कर जो हरिनाम नहीं भजता उससे बढ़कर नराधम पामर भला और कौन होगा–

विषय पशुर योग्य कृष्णर सेवार योग्य भारतर नर कलेवर।
आक पाइ हेला करि सदा नुसुमरे हरि किनो नर अधम पामर ।।

शंकरदेव गद्‌गद होकर भारत भूमि की महिमा बता रहे थे, "काल किसको कब पकड़ कर ले जायेगा, इसका कोई ठिकाना नहीं है। इस भारत भूमि पर फिर से जन्म मिल ही जायेगा, यह भी क्या कोई आवश्यक है–

केति क्षणे धरे काले तारो नाइ थिर।
आरो कि मनुष्य हुइबा भारत भूमित ।।

भक्तो ! देवता भी भारत में नरकाया पाने को लालायित रहते हैं। महाभागवत में कहा है कि यह नरदेह हमें यहाँ बड़े पुण्य और ईश्वर की दया से मिली है–

देवर बांचनि भारत नरकाया। पुण्य बले पाइला ईश्वररो भैला दाया ।।
शुना सभासद पद महाभागवत। पाइला नर देह महभाग्ये भारतत ।।

हमें इस भारत में आसानी से नरदेह प्राप्त नहीं हुआ है, जब यह मिला है तो राम नाम के बांधव को सदैव अपने हृदय में बसाये रखो–

भारतत नर तनु नपाइबा सैंथरे।
राम नाम बान्धवक धरा निरन्तरे ।।

भक्तो ! याद रखना भारत में देवताओं के लिए भी नर तन पाना अति दुर्लभ है। यह कोटि-कोटि कल्पों के पश्चात् भी पुनः मिलना सम्भव नहीं–

देवरो दुर्लभ भारतत नर तनु।
कोटि कोटि कल्प अवसाने नपाइ पुनु ।।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तुम्हें फिर कहता हूँ कि देवताओं के लिए भी दुर्लभ, भारत में मिले इस नरजन्म को चिन्तामणि के समान मूल्यवान मानकर हाथों से न जाने देना—

देवरो दुर्लभ इटो जन्म भारतत ।
हराइ चिन्तामणि येन जानिबा हातत।।

बारवार दोहरा रहा हूँ, भारतभूमि पर दुर्लभ मनुष्य जन्म, विशेषकर इस कलिकाल में भाग्य से मिला है। इस युग का महाधर्म है, हरि कीर्तन। इसलिए अपनी जिह्वा से निरन्तर हरिनाम जपते रहो, तभी पापों से उद्धार होगा—

भारत भूमित लभि दुर्लभ मनुष्य जीवन आरो विशेषत कलिकाल ।
हरिर नामक मात्र जिह्वाये बुलिबे लागे एतेके पापर बुन्दमाल ।।

क्योंकि नर तन, भारत, कलियुग और हरिनाम, इन चारों का संयोग तुम्हें और कहाँ मिल सकता है ? हम पर प्रभु राम कृपा करो—

इटो नर तनु भारत बरिष कलियुगे हरिनाम ।
चारिरो संयोग आर कैत पाइबा कृपा करा प्रभु राम ।।

भक्तो ! और सुनो, यह संसार स्वप्नमय तथा मायामय है। अन्तक (यम) सबके केश पकड़े हुए है। इस भारत में जन्म मिला है। अतः विलम्ब छोड़कर निरन्तर राम-हरि का घोष (कीर्तन) करते रहो—

यतेक संसार नय सबे स्वप्न मायामय अन्तके केशत आछे धरि ।
भारतत जन्म पाइ विलम्बक नुयुबाइ सदाये घोषियो राम हरि ।।

भारत में मिले इस मनुष्य जीवन को विषय वासना के धंधे में व्यर्थ मत करो। माणिक को काँच के मोल मत बेचो—

जानिबे सब एरा भाप भूष । भाग्येसे भारते भैला मानुष ।।
आक व्यर्थ कर विषय भोले । माणिक बिका काचर मोले ।।

भक्तो ! भारत रूपी हाट में अनेक दोकानी (दुकानदार) हैं, जाँच-पड़ताल के बिना खरीदारी की गयी तो ठगे जाने की आशंका है। भारत की इस हाट में नर तन रूपी काष्ठ-नौका पचि (सड़) जायेगी। श्रीकृष्ण का यह किंकर कहता है, भाई ! अब तो सावधान हो जाओ—

भारत हाटत आछे अनेक दोकानी ।
निचिनि किनिले पुनु मिलिबे विझिनि ।।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भारत हाटत नर नाव पचि जाय ।
हुयो सावधान कृष्ण किंकरे गाय ।।

शंकरदेव का माधवदेव के प्रति विशेष स्नेह था। उन्होंने अपने नजदीक बैठे माधवदेव की ओर संकेत कर भक्तों से कहा, "पुत्र माधव ने भी हृदय खोलकर अपनी रचनाओं में भारतवर्ष का गुणगान किया है। इन्होंने भारत को तत्व रूपी रत्नों का द्वीप, मनुष्य शरीर को नौका और रामनाम को महामूल्यवान महारत्न बताया है। इस भारत-द्वीप पर शरीर रूपी नौका से आकर भी जो राम नाम रूपी महारत्नों का वाणिज्य नहीं करता उससे बढ़कर और कौन दुःखी होगा।" इतना कहकर उन्होंने माधवदेव से कहा, "पुत्र ! यह पद गाकर सुनाओ।" गुरु आज्ञा को शिरोधार्य कर माधवदेव गाने लगे–

भारत रत्नर द्वीप मनुष्य शरीर नौका राम नाम महारत्न सार ।
हेनय वाणिज्य पाइ यिटो जीवे नकरिल तात परे दुःखी नाइ आर ।।

गायन पूरा होने पर गुरु ने कहा, "माधव ! रुक क्यों गये ? अन्य पद भी गाओ।" गुरु को प्रणाम कर माधवदेव ने कहा, "भारत बरिष धन्य है और कलियुग भी। ब्रह्मा की श्रेष्ठ सृष्टि यह नर तन अत्यन्त अनुपम है–

भारत बरिष धन्य कलियुग हांरे हरि हरि ए
हरि हरि हरि ब्रह्मार प्रार्थनी नर तनु अनुपाम ।

माधवदेव ने आगे कहा, "गुरुदेव ने अनेक जगह भारत-महिमा लिखी है। इन्होंने शस्य श्यामला भारत भूमि का साक्षात दर्शन किया और उसके वैविध्य को देखकर अनेकानेक पदों में अभ्यर्थना की है। इनके लिखे के सम्मुख भला मैं क्या सुनाऊँगा ? गुरु आदेश से एक और पद सुनाकर अपनी वाणी को विराम देने की आज्ञा चाहता हूँ।" इतना कहकर माधव गाने लगे–

धन्य धन्य कलिकाल धन्य नर तनु भाल धन्य धन्य भारत बरिष ।
तप जप यज्ञ तजि तोमार चरणे भजि तुवा नाम घोषय हरिषे ।।

(भारत बरिष धन्य धन्य है, जहाँ मिला यह नर तन भी धन्य है। कलिकाल भी धन्य धन्य है जिसमें तप, जप, यज्ञ तजकर भी हरि नाम का घोष करने मात्र से ही प्रभु के चरण में शरण मिल जाती है।)

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पाटबाउसी-कोचविहार के बीच

मैले-कुचैले कपड़े पहने एक युवक नामघर में आया। शंकरदेव भक्तों के संग बैठे नाम-कीर्तन कर रहे थे। युवक ने अपने सिर पर रखा गट्ठर नीचे रखा और गुरु के चरणों में लोटपोट होकर विलाप करने लगा। शंकरदेव ने उसे उठाया तो वे उसे पहचान गये। वह विद्यावागीश चक्रवर्ती का साथी कण्ठभूषण था। उन्होंने उसे धीरज बंधाकर रोने का कारण पूछा। उसने नम्रतापूर्वक कहा, ''गुरुदेव ! मैं आपको शास्त्रार्थ में हराकर नीचा दिखाना चाहता था। इसलिए अधिक शास्त्र पढ़कर ज्ञान प्राप्ति करने की मंशा से काशी चला गया। वहाँ पण्डित ब्रह्मानन्द को गुरु मानकर शिक्षा लेने लगा। एक दिन गुरु ने भागवत पुराण पढ़ाते समय ब्रह्मस्तुति अंश पर चर्चा की। उसी बीच मैंने आपके द्वारा रची गयी यह ब्रह्मस्तुति उन्हें सुनायी—

अनेक विभूति, कृष्णर मूरुति, देखिया विस्मित, ब्रह्म हैल भीति ।
येन मृतवत, परिला हंसत, नाहि आर तत, चेतना गावत ।।
ब्रह्माण्ड मरन्त, देखि भगवन्त, रूप ढाकिलन्त, दुनाइ जीलन्त ।

''यह पद सुनकर गुरु ब्रह्मानन्द ने गद्‌गद होकर पूछा, 'भागवत के कठिन श्लोक को इतनी सरल-सरस भाषा में किसने रचा है ?' इस पर मैंने आपका नाम बताकर परिचय दिया। इसके साथ ही काशी में उनके पास आने का अपना मन्तव्य भी वताया। यह सुनकर पण्डित ब्रह्मानन्द ने कहा, 'सुनो कण्ठभूषण ! शंकरदेव के रूप में पूर्व में सूर्य का उदय हुआ है। तुम उनके साथ तर्क करने का ख्याल मन-मस्तिष्क से निकाल कर अपने देस लौट जाओ और उनसे क्षमा याचना करो। तुम अपने साथ मेरे गुरु विष्णुपुरी संन्यासी द्वारा रचित 'भक्ति-रत्नावली' ग्रन्थ भी उस महापुरुष को भेंट करने के लिए ले जाओ।''

इतना कहकर कण्ठभूषण ने गट्ठर से ग्रन्थ निकालकर शंकरदेव को दिया। उसे कुछ देर तक गम्भीरतापूर्वक उलट-पलट कर शंकरदेव ने देखा, फिर कहा, ''क्या सुन्दर दिव्य महाग्रन्थ है ! यदि मुझे यह पहले मिल जाता तो मैं अपने 'भक्ति रत्नाकर' का संकलन करने में समय व्यतीत नहीं करता। पुत्र कण्ठभूषण ! तुमने यह ग्रन्थ मुझे लाकर दिया। इसके लिए पण्डित ब्रह्मानन्द के साथ तुम्हारा भी अत्यन्त आभारी हूँ।''

माधवदेव को वह ग्रन्थ देकर शंकरदेव ने कहा, ''पुत्र माधव ! तुम इस

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दिव्य ग्रन्थ का काव्यमय भाष्य लिखो।'' कुछ ही दिनों में माधवदेव ने नाना छन्दों में नये ग्रन्थ की रचना कर उसका नाम भी 'भक्ति-रत्नावली' ही रखा।

पाटबाउसी आये शंकरदेव को एक महीना भी नहीं हुआ था कि भुवनेश्वरी और चीलाराय का दूत उन्हें बुलाने आ पहुँचा। उन्होंने नहीं सोचा था कि इतनी शीघ्र फिर से कोचविहार जाना पड़ेगा। वे मन में विचार करने लगे, पाटबाउसी में रहते अठारह वर्ष हो गये। यह भी बरदोवा की भाँति वैष्णव धर्म का केन्द्र बन गया है। यहाँ से चले जाना कदाचित उचित ही होगा। मेरी एक सौ पन्द्रह वर्ष की आयु हो गयी। कृष्ण-कृपा से मेरा शरीर अब भी सब काम करने के लिए सक्षम है परन्तु जीवन-दीप की बाती कब तक जलती रहेगी। न जाने कब इसकी ज्योति बुझ जाये ! मेरे बाद माधव मेरे छोड़े हुए सारे कामों को सँभाल लेगा; इसका मुझे पूरा विश्वास है। किन्तु मेरे यहाँ रहते वह सब काम स्वेच्छा से नहीं कर पा रहा। मेरी सेवा का ही अधिक ध्यान रखता है।

माधव ने 'राजसूय यज्ञ' का लेखन पूरा कर लिया। मेरे कहने पर उसने माधव कन्दली रचित रामायण के उपलब्ध अयोध्या काण्ड, अरण्य काण्ड, किष्किन्धा काण्ड, सुन्दर काण्ड, लंका काण्ड में आदि काण्ड (बाल काण्ड) लिखकर जोड़ दिया। मैंने भी उत्तरकाण्ड लिखकर रामायण को सप्तकाण्डी बनाने में सहयोग दिया। अब वह गणककुची में बैठा 'नामघोषा' के गीत लिख रहा है। मेरे यहाँ रहने पर उसकी प्रतिभा खुलकर सामने नहीं आयेगी। वह अपने लेखन की अपेक्षा मेरी सुख-सुविधाओं पर ज्यादा ध्यान देता है। उसके मन में मेरे प्रति बहुत सम्मान है। बरगद के नीचे जैसे अन्य पेड़-पौधे नहीं पनप पाते वैसे ही मेरे यहाँ रहते उसका समुचित विकास नहीं हो पायेगा। वह प्रेमवश 'सर्वगुणाकर' और 'भकत कुमुद कुल इन्दु' आदि न जाने क्या-क्या कहकर मेरी अभ्यर्थना करता है। किन्तु मैं तो एक साधारण धर्मगुरु हूँ, कोई देवता तो नहीं। मैं भी अन्य मनुष्यों की तरह हाड़-मांस का बना एक साधारण मानव हूँ।

कालिन्दी को भी मेरे बिना जीने की आदत डालनी होगी। वह वयस में मुझ से बहुत छोटी है। आखिर मैं कब तक उसका साथ निभाऊँगा।

मेरा कार्य भी प्रायः पूरा हो चुका है। इस जीवन में और कार्य नहीं कर पाऊँगा। मृत्यु अपने आगमन का संकेत दे रही है।

महाराज नरनारायण ने मुझे ताँतीकुची का राजकार्य चलाने का जो भार दे रखा है उससे भी मुक्ती पाने के लिए मुझे कोचविहार जाना होगा।

सब बातें विचार कर शंकरदेव ने रामानन्द तथा अन्य सात भक्तों को

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

साथ ले जाने, नारायण ठाकुर को नौका की व्यवस्था करने के लिए कहा।

गुरु को अपने बीच पाकर चीलाराय और भुवनेश्वरी के मन उमगे हुए थे। शंकरदेव और उनके भक्तों की फूलनबाड़ी में रहने की पहले जैसी सुव्यवस्था कर दी गयी। राजा नरनारायण को गुरु के आने का समाचार देने चीलाराय स्वयं गया। यह समाचार जानकर राजा ने प्रसन्न होकर कहा, "शुक्लध्वज ! यह हमारे लिए अति सौभाग्य की बात है जो श्रीमन्त शंकरदेव जैसे मनीषी हमारे राज्य में, हमारे साथ रह रहे हैं। मैं शीघ्रातिशीघ्र उनके दर्शन करने के लिए लालायित हूँ।"

राजा ने आगे कहा, "शुक्लध्वज ! उनके द्वारा बनवाये गये 'वृन्दावनी वस्त्र' में तो पूरी कृष्णलीला ही समायी है। मुझ जैसा घोर शाक्त भी उनकी कृष्ण-भक्ति के सामने नतमस्तक है। उनके एकशरणिया नामधर्म का चहुँ ओर प्रचार हो, यही मैं चाहता हूँ। कर्मकाण्डियों ने मुझे बरगला कर उन पर बहुत अत्याचार करवाये। आशा है, उनके लिए नामघर, मणिकूट आदि बनकर शीघ्र तैयार हो जायेंगे।"

एक दिन चीलाराय ने शंकरदेव के लिए रेशमी कुर्ता की सिलाई करने एक मुसलमान दर्जी चान्दसाई को उनके पास भेजा। वह नामघर जाकर शंकरदेव को देख आया और कुछ दिनों बाद उनके डील-डौल के अनुपात में अन्दाज से कुर्ता सिलकर ले गया। शंकरदेव ने उसे खोला तो देखा उसमें चार बाँहें थीं। उन्होंने पूछा, "यह तुमने क्या सिल दिया ?"

उसने भोलेपन से कहा, "जी देखिलूँ एहि सिलिलूँ।" अर्थात् जैसा मैंने आपको देखा वैसा ही सिया है।

अपने ओंठों पर अंगुली रख शंकरदेव ने उसे चुप रहने का इशारा किया। फिर कहा, "तुम ऐसी बात किसी के भी सामने न करना। इसे ले जाकर फिर से ठीक कर के लाओ।"

इस बहाने दर्जी का नामघर में बार-बार आना-जाना होने लगा। उस पर वहाँ के वातावरण का असर पड़ने लगा। उसने गीता-भागवत की अनेक कथाएँ वहाँ सुनीं। पहले वह उन्हें अपने अन्दाज में सलाम किया करता था। अब हाथ जोड़कर प्रणाम करने लगा। एक दिन उसने गुरु को अपनी शरण देने के लिए बहुत आग्रह करते हुए कहा, "मैं मुसलमान हूँ। क्या आप मुझे स्वीकार करेंगे !"

शंकरदेव ने कहा, "तुम ऐसा क्यों सोचते हो। वैष्णव सबको

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

समदृष्टि से देखता है। हम जात-कुजात के किसी भेद को नहीं मानते। भारत के समस्त वैष्णव गुरु भी इसी सिद्धान्त को लेकर चलते हैं। तुम अपने धर्म को मानते हुए भी श्रीकृष्ण की भक्ति कर सकते हो। ईश्वर तो एक ही है, भले ही लोग उसे अलग-अलग नामों से पुकारते हैं।"

यह सुनकर चान्दसाई दर्जी गुरु का भक्त बन गया। उसे ऐसी लगन लगी कि वह नित्य नामघर आने लगा। इसके साथ उसने लिखना-पढ़ना भी सीखना शुरू किया। एक दिन वह कुछ भक्तिगीत लिखकर गुरु के पास लाया। उन्हें देख वे अति प्रसन्न हुए। उन्होंने उन गीतों को 'चान्दसाई-गीत' नाम देकर कहा, "एक दिन माधवदेव और नारायण ठाकुर की तरह तुम्हारा नाम भी सदा के लिए विख्यात होगा। यह तुम्हें मेरा आशीर्वाद है।"

गुरु के बिना माधवदेव का अन्तरमन जैसे सूना हो गया। धीरे-धीरे उन्होंने अपने को सँभाला। अब उनका दायित्व बढ़ गया था। नामघर में नामकीर्तन के साथ नये भक्तों को शरण देना और नामधर्म का प्रचार करना भी उनके जिम्मे था। इतना होने पर भी वे गणककुची से नित्य पाटबाउसी आते और गुरुआनी तथा गुरु-परिवार की हर आवश्यकता का पूरा ध्यान रखते।

देखते-देखते शंकरदेव को कोचविहार गये डेढ़ वर्ष हो गये। माधवदेव के प्राण गुरु-दर्शन के लिए विकल होने लगे। उनके मन में अपने भाई दामोदर के पास बण्डुका जाने का विचार आया। उन्होंने सोचा, इस बहाने रास्ते में जाते-आते दो बार गुरुदेव से भी मिलने का सुयोग मिल जायेगा।

माधवदेव को अचानक कोचविहार फिर से दोबारा आया देखकर गुरु शंकर सोचने लगे, इसका मेरे प्रति मोह नहीं छूटा है। इसे अपने पास ज्यादा दिन रहने दिया तो इसका मोह और बढ़ेगा। अतः इसे शीघ्र ही वापस भेजना उचित होगा। यह विचार कर उन्होंने कहा, "पुत्र माधव ! तुम्हें पाटबाउसी छोड़े इतने दिन हो गये। बण्डुका जाने-आने और वहाँ रहने में कितने दिन लग गये। अब तुम लौट जाओ। तुम्हारे बिना नामघर का काम कैसे सुचारु चलेगा। मैं तुम सबसे मिलने एक बार पाटबाउसी अवश्य आऊँगा। अपने मन को मोह में मत फँसो। मोह अन्ध-कूप है। सच्चिदानन्द श्रीकृष्ण तुम्हें सुखी-सानन्द रखें। यह मेरा आशीर्वाद है। हरि-स्मरण कर अब तुम प्रस्थान करो।"

दो दिन गुरु के पास रहकर माधवदेव कोचविहार से लौट गये।

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शिष्य को अन्तिम संदेश

कोचविहार से लौटे माधवदेव को दस माह होने को आये। किन्तु अव भी उनका मन गुरु में ही अटका उनके आने की प्रतीक्षा कर रहा था। एक दिन नामघर में वे अत्यन्त भावविह्वल होकर भक्तों को गुरु-स्तुति सुनाने लगे—

दरशित सुन्दर गौर कलेवर जैसन सुर परकाश ।
सकल सभासद रंजन याकेरि दरसने पाव विनाश ।।
विने अंग भूषण पेखि सुशोभन गहीन गम्भीर धीर मति ।
आयत कमल नयन वर सुन्दर वयने चांद कहो ज्योति ।।
लीला गजगति गमन विलोकन वाणी मेघ गम्भीर ।

गीत पूरा भी नहीं हुआ कि एक भक्त ने आकर गुरु शंकरदेव के पाटवाउसी लौट आने की अचानक सूचना दी।

कुछ ही क्षणों पश्चात् रामानन्द और अन्य भक्तों के साथ शंकरदेव ने नामघर में प्रवेश कर अपना आसन ग्रहण किया। माधवदेव ने लक्ष्य किया कि वे धीर-गम्भीर हैं। उनके चेहरे पर चिन्ता की रेखाएँ उभरी हैं। उन्होंने विचार किया, ऐसा तो कभी नहीं हुआ। आज अवश्य कोई कारण है। एकान्त मिलने पर कारण जानने का प्रयास करूँगा।

नाम-कीर्तन पूरा हुआ तो माधवदेव ने पूछ ही लिया, "गुरुदेव ! क्या वात है ? आपका मन किस दुविधा में है ?"

"माधव ! मेरे प्रति नरनारायण की अति भक्ति ने मुझे दुविधा में डाल रखा है। उनकी राजसभा में मेरा नित्य जाना होता था। वहाँ आध्यात्मिक चर्चा होती थी। एक दिन राजा ने स्वयं को अपनी शरण देने का आग्रह किया। मुझे पहले तो आश्चर्य हुआ कि घोर शाक्त और वलि-प्रथा में अटूट विश्वास रखनेवाले राजा में इतनी कृष्ण-भक्ति कैसे जाग गयी। मैंने उन्हें समझाने का प्रयास किया, शाक्त और वैष्णवता साथ-साथ नहीं चल सकती। किन्तु वे टस से मस नहीं हुए। उन्हें यह भी समझाया, मैं कर्मकाण्डी व्राह्मण और राजा को शरण नहीं देता। इस पर भी जव उन्होंने अपना आग्रह नहीं छोड़ा तो मैंने उन्हें टालने के लिए कहा, 'राजन् ! राजा को अपना राजकार्य चलाने के लिए साम, दाम, दण्ड और भेद से काम लेना

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पड़ता है। समय-समय पर कठोर निर्णय भी लेने होते हैं। राजा का प्रथम कर्तव्य प्रजा-पालन है; यही उसके लिए सर्वोपरि है। ऐसी स्थिति में राजा नामधर्म के नियमों का पालन नहीं कर सकता।'

"पुत्र माधव ! मेरे कहे का राजा पर कोई असर नहीं हुआ। वे अपने आग्रह को बार-बार दोहराते रहे। अब मैं जीवन के एक सौ अठारह वर्ष पूरे कर एक सौ उन्नीसवें में चल रहा हूँ। तुम्ही बताओ, मैंने जो कार्य आज तक नहीं किया उसे जीवन की अन्तिम बेला में कैसे कर सकता हूँ ? अन्ततः मैंने राजा से कहा, "एक बार मेरी पाटबाउसी जाने की इच्छा है। वहाँ से शीघ्र ही लौटकर आपकी बात पर विचार करूँगा।"

"अब आपने क्या निर्णय लिया है। इस राजहठ से कैसे बचाव होगा ?" माधवदेव ने पूछा।

"माधव ! जीवन की अन्तिम बेला में अपने नियमों से मैं च्युत नहीं हो सकता। अगर मैंने राजा को शरण दी तो! मुझ में और साधारण धर्मव्यवसायी में क्या अन्तर रह जायेगा ? इससे तो देहत्याग कर देना ज्यादा उचित होगा। अब मेरी इहलीला पूरी हो गयी। परमब्रह्म श्रीकृष्ण मुझे अपनी शरण में बुला लें।"

"गुरुदेव ! आप शुभ-शुभ बोलिये। आपका शरीर स्वस्थ है। अभी आप हमारे बीच बहुत दिन रहेंगे। भगवान् इस दुविधा से निकलने की भी अवश्य कोई राह सुझायेंगे।" माधवदेव की आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी। वे अपने को सँभाल नहीं पा रहे थे।

"पुत्र ! इस प्रकार विलाप करना व्यर्थ है। इस पृथ्वी पर देह-त्याग किये बिना कौन जीवित रहा है ? अपनी मृत्यु के बाद मैं तुम में जीवित रहूँगा। मैं श्रीकृष्णनाम-कीर्तन में जीवित रहूँगा। हाँ ! तुम इस बात का अवश्य ध्यान रखना कि हमारे बीच से कोई ब्राह्मणविद्वेषी न निकले। यदि कुछ कर्मकाण्डी ब्राह्मणों ने हमारा विरोध किया है तो दूसरी ओर महेन्द्र कन्दली, रामराम गुरु, अनन्त कन्दली, चक्रपाणि विप्र, देव दामोदर आदि जैसे ब्राह्मणों ने हमारी सहायता भी की है।"

"गुरुदेव ! मैं आपका अनुमोदन करता हूँ। तिरहुत के जगदीश मिश्र और कण्ठभूषण जैसे विप्रों को भला हम कैसे विसरा सकते हैं ? मैं सदैव आपके आदेश का पालन करूँगा।"

माधव सोच रहे थे, गुरु के साथ रहकर सेवा करने से वंचित रह जाऊँगा। किन्तु गुरु-आज्ञा का आदर करना भी मेरा परम कर्तव्य है। उनकी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आँखों से अश्रुधारा बह रही थी। वे भावुकता में आत्मविभोर होकर गुरु-स्तुति गाने लगे—

तुहु परम गुरु निखिल भुवनपति
मानुष भांव तोहारि ।
चतुर नयन तेरि माया विमोहित
जाने नाहि जोग विचारि ।।

माधवदेव की कातर अवस्था देखकर शंकरदेव ने उनकी मनोदशा बदलने के लिए कहा, "पुत्र ! हो सकता है कि कोचविहार से फिर बुलावा आ जाये। जाने से पहले मैं तुमसे मिलकर जाऊँगा। मेरे पास जो भी है वह तुम्हारा ही है।"

पाटवाउसी के घाट पर गाँव के सब लोग उमड़ आये। रामानन्द तथा भक्तों के साथ वे नाव में बैठने लगे तो कालिन्दी विलाप करने लगी। उसे लग रहा था कि जैसे यह पति के अन्तिम दर्शन है। गुरु ने पत्नी को धीरज बंधाया। भक्त समवेत स्वर में गा रहे थे—

कि कहब उद्धव कि कहब प्राण । गोविन्द बिने भयो गोकुल उछान ।।
शून्य भैल आंगिना बिरिन्दा विपिन । नाशोभे रजनी जैछे चान्द बिहीन ।।
नाहि चारव धेनु कालिन्दी कूल । आर न शुनबो वेणु कदम्बक मूल ।।

पाटवाउसी से गणककुची गाँव ज्यादा दूर नहीं था। शंकरदेव को अचानक अपने यहाँ आया देखकर माधवदेव अति प्रसन्न हुए। बोटा में गुवा-पान तथा अंगवस्त्र रखकर उन्हें भेंट देकर साष्टांग प्रणाम कर यथोचित आसन दिया।

गुरु-शिष्य को वार्तालाप करते समय का भान नहीं रहा। गुरु ने रामानन्द से कहा, "रामानन्द ! आज मैं और माधव एक साथ एक थाली में भात खायेंगे। रात्रि में भी एक ही कक्ष में शयन करेंगे।"

माधवदेव ने अपने हाथों रसोई तैयार कर थाली में भात परोसा। गुरु-शिष्य ने एक साथ भोजन कर एक ही कक्ष में रात्रि-विश्राम किया।

सुबह शंकरदेव ने माधव से कहा, "पुत्र ! कल तुम्हारे साथ भोजन किया और एक साथ रात्रि व्यतीत की। मेरे पास जो कुछ भी था, अपनी भक्ति, शक्ति, वल, पराक्रम— सर्वस्य मैंने तुम्हें सौंप दिये हैं। अब मेरे

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जीवन-दीप का क्या पता, कब बुझ जाये। तुम नित्य की भाँति पाटबाउसी जाना। कालिन्दी का पूरा ध्यान रखना। कालिन्दी और सत्र का पूरा जिम्मा तुम पर है। हाँ, अपना लेखन कार्य सदैव करते रहना, इसे मत छोड़ना। अब मुझे अपनी यात्रा पर आगे जाने दो।" इतना कहते-कहते शंकरदेव की आँखें सजल हो गयीं, गला भर आया। फिर उन्होंने माधवदेव को अपने बाहुपाश में भरकर आलिंगन किया।

माधवदेव ने साश्रु नयन होकर उनके चरण थाम लिये। आँसुओं की कुछ बून्दें गुरु-चरणों पर गिरीं।

कैसा अद्‌भुत दृश्य था। कितने गम्भीर, कितने हृदय-द्रावक, कितने मार्मिक और कितने भावप्रवण रहे होंगे वे क्षण, जब यह सब हुआ होगा। गणकगुची से शंकरदेव की नाव खुल चुकी। माधवदेव की आँखें उन्हीं पर टिकी थीं। नाव धीरे-धीरे ओझल होती गयी। चिर कौमार्यव्रती, वीतरागी माधवदेव के लिए वह दृश्य असह्य हो उठा। उनका गुरु, पथ-प्रदर्शक, साक्षात श्रीकृष्ण का अंश भगवान् उन्हें कर्मपथ पर अकेले छोड़कर चला जा रहा था। मणि से कांचन अलग हो रहा था।

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्तिम रचना

कोचविहार लौटने पर श्रीमन्त शंकरदेव और उनके भक्तों का राजा नरनारायण और चीलाराय ने भव्य स्वागत किया। अव तक मधुपुर का सत्र भी वन चुका था। शंकरदेव अपने भक्तों के साथ वहीं चले गये। गुरु के वहुत समझाने पर भी राजा नरनारायण के मन से अव भी उनसे शरण लेने की कामना गयी नहीं थी। एक दिन उसने शुक्लध्वज को अपने मन की इच्छा बतायी।

इस पर शुक्लध्वज ने कहा, "महाराज ! इस समय वे मेरे आग्रह पर 'राम विजय'[1] नाटक लिख रहे हैं। मैंने ही उन्हें कहा था कि आपने श्रीकृष्ण पर अनेक रचनाएँ की हैं। मेरी हार्दिक इच्छा है कि आप विष्णु के अवतार श्रीराम पर भी कुछ लिखें। महाराज ! आप थोड़ा धीरज रखिये। उनका लेखन पूरा हो चुका है। मेरे कहने पर वे इसके मंचन की तैयारी कर रहे हैं। अपने राज्य के कलाकारों से नाटक का अभ्यास करा रहे हैं। शीघ्र ही नाटक देखने का सुअवसर आपको मिलेगा। तव आप ही उन्हें अपने मन की वात कहियेगा। वैसे उनका नियम है कि वे राजा-महाराजा को शरण नहीं देते, यह आप भी भलीभाँति जानते हैं।"

राजवाड़ी के सामने वड़ा पण्डाल वना था। राजकीय लोगों के साथ साधारण जनता भी नाटक देख सके, ऐसा सोचकर ही चीलाराय ने 'राम विजय' नाटक के मंचन की व्यवस्था खुले प्रांगण में करवायी थी। मंच मशालों से आलोकित था। नाटक प्रारम्भ होने की सव दर्शकों को उत्कण्ठा थी। कुछ समय वाद शंकरदेव मंच पर उपस्थित हुए। उन्होंने नाटक के प्रथम श्लोंकों का सस्वर गायन प्रारम्भ किया—

श्लोक— यन्नामाखिललोकशोकशमनं यन्नाम प्रेमास्पदं
पापापारपयोधि-त्तारणविधौ यन्नाम पीनः प्लवः ।
यन्नाम श्रवणात् पुनाति श्वपचः
प्राप्नोति मोक्षं क्षितौ ।

---

1 राम विजय : नाटक का यह नाम पढ़कर भ्रम होता है कि इसमें रावण के ऊपर राम की विजय का वर्णन होगा। यहाँ नाटककार ने दम्भी परशुराम के ऊपर राम की विजय को नाटक का आधार बनाया है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तं श्रीराममहं महेशवरदं
वन्दे सदा सादरम् ॥
येनाभाजि धनुः शिवस्य सहसा सीतासमाश्वासिता ।
येनकारि पराभवो भृगुपतेर्व्वासस्य रामस्य च ॥
वैदेह्याः विधिवद्विवाहमकरोत् निर्ज्जिता यः पार्थिवान् ।
युष्माकं वितनोतु शं स भगवान् श्रीरामचन्द्रश्चिरम् ॥

गायन पूरा कर नाटक को आगे बढ़ाने के लिए उन्होंने सूत्रधार को संकेत किया। सूत्रधार ने कथा को आगे बढ़ाते हुए पहले गीत गाया–

गीत– राग सुहाइ, एकताल

जय जगजीवन राम। कयलो पड़ि परणाम ॥
याहे नामगुण मुहे गाइ । पापी परम पद पाइ ॥
ओहि भवताप अपारा । याहे स्मरणे करु पारा ॥
अजगर भंजनकारी । पावल जनक कुमारी ॥
नृपसब छेदल वाणे । कृष्णकिंकरे एहु भाणे ॥

नान्द्यन्ते सूत्रधारः । अलमति विस्तरेण । प्रथमं माधवो-माधव इत्युक्त्वा श्रीरामचन्द्रं प्रणम्य सभासद सम्वोध्य आह ।

भो भो सामाजिकाः ! यूयं शृनुतावहितं बुधाः ।
श्रीरामविजयं नाम नाटकं मोक्षसाधकम् ॥

इसके पश्चात् भटिमा का सुमधुर गायन हुआ। नाटक की कथा आगे बढ़ती गयी। दर्शक दत्तचित्त हो नाटक में खोये हुए थे।

x x x x x x x x

सूत्रधार– दशरथ राजाक प्रवेश शुनह। ..... ऋषिराज कौशिक (विश्वामित्र) शिष्य सहिते आसि कहो राजा दशरथक आशीर्व्वाद करिये ये वोलल, ता देखइ शुनइ; निरन्तरे हरि वोल हरि।

x x x x x x x x

दशरथ– आहे मुनिराज ! हामार पुत्र राम-लक्ष्मण से वालक। ताहे राक्षसक दिते चाव ! ओहि कोन व्यवहार ! हा हा हे ऋषिराज, यज्ञ रक्षा निमित्ते हामाक निया जाव।

कौशिक– (राजाक वचन शुनिये कौशिक परम कोप भरचय) अये पापी असत्यवादी ! राम-लक्ष्मणक नाहि पाठावव। (कोपे कम्पमान हुया वेग चलल)

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

x x x x x x x x

कौशिक— रघुकुलकमलप्रकाणकसूर्य रामचन्द्र हामार आशीर्व्वादे पत्नी पुत्र सहित चिरजीबी भव। (ओहि बुलि आशीर्व्वाद तुलसी दिलह श्रीराम माथापाति लेलह।)

ऋषि बोल— हे रामचन्द्र ! तुहु हामार परम उपकारी। मारीच सुबाहु राक्षस मारि हामार यज्ञ सिद्ध कयल। तोहाक गुण सुजये नाहि पारि। सम्प्रति प्रत्युपकार तोहाक का करब ! (बिमरिषि पुनु बोल) आः साधु प्रयोजन मिलल। हे रघुनाथ ! आजु जानकीक स्वयम्बर मिलिछे। हामु जानल, महेशक धनु ये गुण दिते पारब से कन्या सोहि पावे। से भुवन-मोहिनी दुर्ल्लभ भाग्यवती यव तब गृहिणी हय, हामार परम आनन्द मिलय। हामु ये गबले जानो सोहि सीता पूर्व्व जनमत बहुत तप आचरि तोहोक स्वामी नपावल। ताहाके स्मरिये ओहि जनमे तोहार चरण चिन्ति सर्व्वथा थिक परम विरहातुर हुया तोहाक लागि रहेछे। से सुन्दरीक रूप सम्प्रति किछु कहब ताहे शुनह।

x x x x x x x x

श्लोक— सीताया रूपलावण्यं एवं निशम्य राघवः ।
ऋषिमाभाष्य भगवान् जगाम मिथिलां प्रति ।।

सूत्र— सीताक रूप-सम्प्रति शुनिये रामक मने किंचित भावास्तर मिलल। जानकी वियोग निमित्त निश्वास फोकारि ऋषिक सम्बोधि बोलल।

रामचन्द्र— हे महा मुनिराज, से महेशक धनु वज्राधिक कठोर।

x x x x x x x x

दर्शक नाटक को आद्योपान्त निर्निमेष देखते रहे। स्वयंवर के उपरान्त राम सीता से विवाह कर दशरथ आदि के साथ अयोध्यापुरी के लिए विदा होने लगे तो मिथिलावासी राग भटियाली यतिमान में लिखे विदाई-गीत को उच्च स्वर में गाने लगे—

करतु कौतुक चलतु रमया, रमणि संगहि जाइ ।
नील घने जैस विजुरि उज्जरि कुंजर गमनी माइ ।।
कनक कंकण झणके रणके ठमके कय लय लास ।
पिउक देखि मुख आंखि मुंदि रहु लज्जित ईपत हास ।।
मत्त मातंग संगे जैसन तरुणि करिणी आवे ।
जय जय रव चौदिशि उत्सव कृष्णकिंकरे गावे ।।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्लोक— ततः आगत्य तरसा भार्गवो भ्रुकुटि मुखः ।
स्कन्धे निधाय कठिनं कुठारं राममब्रवीत् ।।

सूत्रधार— ऐसन महोत्सवे रामचन्द्र सीताये सहिते चलैछे। तदन्तर महेश गुरुक धनुभंग शब्द शुनिये परम क्रोधे परशुराम प्रचण्ड मूर्ति हुया स्कन्धे कुठार धरिये रह रह बोलि रामचन्द्रक आग बेढ़ल।

x x x x x x x x

परशुराम का आगमन, लक्ष्मण से संवाद, परशुराम का दर्प-दलन आदि कथाओं के बाद नाटक के अन्त में शंकरदेव ने नाटक लिखने के प्रेरक रहे शुक्लध्वज (चीलाराय) का नाम भटिमा में 'श्रीशुक्लध्वज नृपति प्रधाना' लिखकर समाहित किया। अब मुक्तिमंगल भटिमा का सस्वर गायन हुआ—

जय जय ईश्वर राघव राम । पूरलो जो जानकी मनकाम ।।
जगजन जीवन सोहि मुरारि । मुकुति मंगल करतु तोहारि ।।
जोहि पालि पिताकेरि आश । सीता सहित खपल वनवास ।।
साधल जय यो राकस मारि । सोहि करतु नित्य मुकुति तोहारि ।।
बालि घालि सुग्रीवक पाट । देलहु जो लये वानरक ठाट ।।
बान्धल सेतु पयोधिक वारि । सोहि करतु नित्य मुकुति तोहारि ।।
ठाटे बेढ़ल चौदिक लङ्का । राकस मिलाव शङ्का ।।
छेदल जो रावणकेरि माथ । मुकुति करतु सोहि रघुनाथ ।।
आवल संगे वानरक ठाठ । राजा भेलि अयोध्याक पाट ।।
जो जानकी मन पूरल मुरारि । मुकुति मंगल करतु तोहारि ।।
रामक परम भकति रस जाना । श्रीशुक्लध्वज नृपति प्रधाना ।।
रामक विजय जो करावत नाट । मिलहु ताहेक वैकुण्ठक बाट ।।
रामक चरणे शरण लेहु जानि । सब अपराध मरष तोहो स्वामी ।।
कृष्ण किंकर शंकर बोल । कर नर अव सब हरि हरि बोल ।।

श्रीरामविजयं नाम नाटकं पूर्णताङ्गतम् ।

श्रीकृष्णपादपद्मस्य प्रसादेन सुनिश्चितम् ।।

रात्रि दो प्रहर बीत गये। नाटक देखकर सभी अति उत्साहित थे। राजा नरनारायण ने शंकरदेव का अभिनन्दन करते हुए उनसे अपने मन की इच्छा को फिर से दोहराते हुए स्वयं को शरण देने की प्रार्थना की।

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

महाप्रयाण

महाराज नरनारायण को शरण लेने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ देख शंकरदेव बड़ी भारी दुविधा में पड़ गये। उनका मन उचाट हो गया। मन को दिशा देने वे कुछ दिनों के लिए फिर पाटबाउसी चले गये। अपने शिष्यों माधवदेव, नारायण ठाकुर, देव दामोदर आदि से मिलकर उन्हें थोड़ा सन्तोष मिला।

पाटबाउसी आये डेढ़ महीना ही हुआ होगा कि उन्हें फिर कोचविहार से राजा का बुलावा आ गया। उनका मन जगन्नाथपुरी जाने का हो रहा था, परन्तु राजाज्ञा को भी सर्वथा टालना उचित न था। अतः कोचविहार होते हुए जगन्नाथपुरी जाने के विचार से यात्रा पर निकल पड़े।

राजकीय नाव ब्रह्मपुत्र से होती गंगाधर नदी, फिर तोरपा नदी में प्रवेश कर गयी। तोरपा के किनारे ही कोचविहार बसा है। गुरु आगमन की सूचना राजा और चीलाराय को अपने दूतों से पहले ही मिल चुकी थी। घाट पर सब उनका स्वागत करने को खड़े थे। गुरु शंकर रामानन्द और अन्य भक्तों के साथ नाव से उतरे। नरनारायण और चीलाराय ने उनकी चरण-वन्दना की। गुरु ने सबको आशीर्वाद देकर कहा, "महाराज ! मैं जगन्नाथपुरी जाने के उद्देश्य से पाटबाउसी से निकला हूँ। जीवन की अन्तिम घड़ियाँ वहीं प्रभु के चरणों में बिताना चाहता हूँ। आपके बुलावे और प्रेम के वशीभूत होकर यहाँ चला आया। अब आप मुझे जाने की आज्ञा दीजिये।"

नरनारायण ने कहा, "गुरुदेव ! आप कुछ दिनों यहाँ रहकर विश्राम कीजिये। फिर आप जैसा कहेंगे वैसे यात्रा की सारी व्यवस्था हो जायेगी।"

राजा का आग्रह रखकर गुरु शंकर रुक गये। वे दूसरे दिन राजसभा में गये तो राजा ने फिर उन्हें शरण देने की प्रार्थना की। कुछ दिनों तक तो वे राजा को टालते रहे। एक दिन राजा अपने राजदम्भ में विशेष हठ करने लगा। इस पर शंकरदेव ने कहा, "महाराज ! मैं पहले भी आपसे निवेदन कर चुका कि मैं राजा-महाराजा को शरण देने में असमर्थ हूँ। आप पर अपना राज्य चलाने का उत्तरदायित्व है। नामधर्म के नियमों का पालन करना आपके लिए न तो सम्भव है और न ही उचित। आपका पहला धर्म अपनी प्रजा का पालन करना तथा राज्य की रक्षा करना है। फिर शरण लेकर आप नियमों में क्यों बंधना चाहते हैं ? आप अपने राजधर्म का

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पालन करते हुए नाम-कीर्तन कीजिये। आप भागवत-गीता पढ़ने-सुनने में अपना मन लगाइये। इतने मात्र से ही आपकी आत्मा का उद्धार हो जायेगा।''

''गुरुदेव ! आप मुझे तर्क में उलझा रहे हैं। मैं हृदय से आपकी शरण लेने का अभिलाषी हूँ। विश्वास है कि आज आप मुझे निराश नहीं करेंगे। आपने यदि मुझे शरण नहीं दी तो अन्न-जल का त्याग कर दूँगा।''

महाराज नरनारायण का ऐसा हठ देखकर शंकरदेव असमंजस में पड़ गये। आखिर यह राजहठ था। उनका राजसभा से लौटना मुश्किल हो गया। बहुत समझाने पर भी राजा नहीं माने तो उन्होंने कहा, ''महाराज ! ठीक है, आप कल व्रत-उपवास रखिये, परमपिता श्रीकृष्ण की आज्ञा होगी तो आप की इच्छा पूर्ण होगी।''

इतना कहकर वे भैलाडांगा स्थित मधुपुर सत्र में लौट आये। बाहर रिमझिम बरसती बारिश ने मूसलाधार रूप धर लिया। काले बादलों ने आकाश पर अधिकार कर लिया। सूर्यास्त हुए बिना ही अँधियारा छा गया। भादों की वर्षा को विराम कहाँ, वह तो उमड़-घुमड़ कर नाच रही थी। काले-काले बदरा ऐसे बरस रहे थे मानो आकाश का सारा जल आज ही रीता हो जायेगा। साथ ही बार-बार चमकती बिजुरिया के साथ मेघ-गर्जना घड़घड़ाहट करते ताल दे रही थी। जोरों से चल रही हवा आँधी में बदल गयी।

शंकरदेव के मन में भी भावनाओं का झंझावात चल रहा था। उनका मन भीतर से उन्हें कचोट रहा था— जो काम उनके सिद्धान्त के विरुद्ध है उसे भला वे कैसे करें ! किन्तु राजा को वे उपवास रखने के लिए कह आये थे। उन्होंने अपने इष्ट श्रीकृष्ण से करुण पुकार की, ''इस धर्मसंकट से आप ही मुझे उबारिये। प्रभु ! आप ही इस अधम का उद्धार कर सकते हैं। आप समस्त जीवों के जीवनदाता हैं। हे पतितपावन, आप ही त्राणकर्ता हैं। मैं मन में ग्लानि लेकर इस संसार से नहीं जाना चाहता। आप भले ही मेरे प्राण ले लें, किन्तु मैं अपनी नीतियों का उल्लंघन कैसे करूँ ?''

उसी रात शंकरदेव के दाहिने हाथ के अँगूठे में फोड़ा निकला। पूरी रात फोड़े की असहनीय पीड़ा सहते बीती। शरीर में हरारत के चलते शिथिलता आ गयी। वे मन ही मन समझ गये, प्रभु ने उनकी सुन ली है। यह फोड़ा तो बहाना मात्र है।

सुबह हुई तो आकाश से मेघ पलायन कर चुके थे। वर्षा थम गयी थी। पूरी प्रकृति सद्यस्नाता गोपिका की तरह धानी चुनरिया ओढ़े जैसे अपने साँवरे

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कृष्ण-कन्हैया को अंक में समेटने के लिए तत्पर थी। पहला प्रहर बीता भी नहीं था कि राजा का दूत शंकरदेव को दरबार में बुलाने आ पहुँचा। गुरु की शारीरिक अस्वस्थता के बारे में बताकर रामानन्द उसे उनके पास ले गया। बिस्तर पर लेटे गुरु ने उसे कहा, "मेरी दशा तुम देख ही रहे हो। मैं फोड़े के दर्द से व्याकुल हूँ। बदन तवे की तरह तप रहा है। महाराज से कहना कि इस समय मैं आने की अवस्था में नहीं हूँ। उनसे यह भी कहना कि वे मुझे क्षमा करें।" दूत उनकी दशा देखकर लौट गया।

दूत के जाने के कुछ समय बाद शंकरदेव बिछौने से उठने लगे तो भक्तों ने उन्हें विश्राम करने का आग्रह किया। किन्तु उन्होंने किसी की नहीं सुनी। स्नान किया, नवीन वस्त्र पहने। भक्तों ने सोचा कि कदाचित वे राजा के पास जाने के लिए तैयार हो रहे हैं। किन्तु शंकरदेव के मन में कुछ और ही था। वे सत्र के मंध्य खड़े एक पेड़ के नीचे बने चौंतरे पर आसन बिछा पूर्वाभिमुख हो पद्मासन लगाकर बैठ गये। यह देखकर भक्त आतुर हो गये कि गुरुदेव अपनी नरलीला का योगाभ्यास से पटाक्षेप करने का उपक्रम तो नहीं कर रहे हैं। गुरु ने रामानन्द से कहा, "पुत्र ! सब भक्तों को मेरे पास बुलाओ।"

रामानन्द ने व्याकुल होकर कातर भाव से कहा, "पिता, मैंने आपसे कुछ भी नहीं पायां।"

"रामानन्द ! राजा से जो भी भेंट मिली वह तुम्हारी माँ के पास है। अब वह सब मेरे बाद तुम्हारा ही है। अपनी माँ का ख्याल रखना।"

रामानन्द ने आहत होकर कहा, "पिता ! मैं उस धन-सम्पत्ति का इच्छुक नहीं हूँ। मैं आपसे पारलौकिक धन पाने से वंचित रह गया।"

यह सुनकर शंकरदेव रामानन्द पर अति प्रसन्न होकर बोले, "पुत्र ! तुम्हारी बात सुनकर मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ। मैंने तो सोचा था कि तुम मेरे सांसारिक पुत्र मात्र ही हो। आज तुमने वास्तविक पुत्र-धर्म का निर्वाह किया है। इस समय मैं तुम्हें परमार्थ-धन देने में अक्षम हूँ। तुम मेरी अवस्था देख ही रहे हो। मेरा मन विकल है। किन्तु तुम चिन्ता मत करो। मैंने अपना बल, शक्ति, भक्ति और पराक्रम सब अपने प्रिय शिष्य माधव को पहले ही अर्पण कर दिया है। वह और मैं अभिन्न हैं। मेरे बाद उसे अपना गुरु मानना। उसके कहे अनुसार चलना। उससे ही तुम्हें परमार्थ-धन की प्राप्ति होगी।"

"पिता ! महाराज को शरण देने के विषय में क्या विचार किया ?"

"पुत्र ! अब इसका निर्णय तो मेरे आराध्य श्रीकृष्ण ही करेंगे।"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रामानन्द उनके कहे का तात्पर्य नहीं समझ पाया। अब तक सारे भक्त गुरु के आसपास जमा हो चुके थे। कुछ क्षण रुककर शंकरदेव ने सांसों को थामकर भक्तों से कहा, "सभी भक्त मेरे और निकट चले आओ। मेरी वाणी धीमी पड़ रही है। तुम लोगों के साथ बहुत लम्बा जीवन बिताया। तुम लोगों के लिए मैं क्या कर पाया, नहीं जानता। तुम लोगों को क्या दे पाया, यह भी नहीं कह सकता। लोगों में नामधर्म का प्रचार करने के लिए गीत, नाटक, कृष्ण-कथा का अमृत पान कराने का मैंने जीवन भर प्रयास किया। इस पुण्यभूमि भारतवर्ष में नर रूप में जन्म लेकर, श्रीकृष्ण का नाम लेकर, जीवन को धन्य करने की जो प्रचेष्टा की, पता नहीं उसमें मुझे कितनी सफलता मिली !

"हे मेरे प्रिय भक्तो ! सदा की भाँति आज अपने अन्तकाल में मुझे तुमसे इतना ही कहना है कि अपने हृदय और समस्त जगत में सदा सर्वव्यापी श्रीकृष्ण भगवान की उपस्थिति का अनुभव करना। इससे तुम्हारी मानसिक और सांसारिक अशान्ति दूर होगी।

"केवल शास्त्र पढ़ने मात्र से ही धर्म नहीं बढ़ता। तुम लोगों को स्वयं के उत्कर्ष के लिए प्रयास करने होंगे। निज की सत्ता में ऐश्वरिक अस्तित्व के सम्पर्क की भावना चेतन होने पर आध्यात्मिक उत्कर्ष सम्भव है। इसके फल स्वरूप मनुष्य का मनुष्य के प्रति आत्मीयता का बोध जागृत होगा। मानव मात्र के मंगल के लिए काम करने की प्रेरणा मिलेगी।

"तुम लोगों की श्रद्धा और स्नेह से ही मुझे शक्ति मिली, बुद्धि और ज्ञान मिला। जीवन के अन्तिम समय में मेरा स्नेह, श्रद्धा और भक्ति तुम लोगों को देकर अब विदाई माँगता हूँ।" इतना कहकर उन्होंने मन्द पड़ती वाणी में एक गीत गाना प्रारम्भ किया—

पावे परिहरि करोहो कातरि, प्राण राखबि मोर ।
ध्रु— विषय विषधर, विषे जरजर, जीवन नारहे थोर ।
अथिर धन जन जीवन यौवन अथिर एहु संसार ।
पद— पुत्र-परिवार सबहि असार करबो काहेरि सार ।
कमल दल जल चित्त चंचल थिर नोहे तिल एक ।
नाहिं भयो भव-भोगे हरि हरि परम पद परतेक ।
कहतु शंकर ए दुख सागर पार करा हृषिकेश ।
तुहु मति गति देहु सिरिपति, तत्त्व पन्थ उपदेश ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गीत पूरा हुआ तो पद्मासन में बैठे शंकरदेव ध्यानस्थ हो गये। रामानन्द और सब भक्तों के मन व्याकुल थे। उनके मन में विश्वास था थी कि ध्यान पूरा होने पर गुरु आँखें खोल देंगे। उन्हें क्या पता कि गुरु शंकर तो अपनी लौ भगवान् श्रीकृष्ण से लगा चुके हैं। कुछ समय पश्चात् सबने देखा कि शंकरदेव के ओंठों में हल्का-सा कम्पन हो रहा है। वे बुदबुदा रहे थे, 'पार करा रघुनाथ संसार सागर।' फिर 'कृष्ण कृष्ण कृष्ण' कहकर वे शान्त हो गये। शक संवत् 1490 (सन् 1568) के भाद्र शुक्ल की द्वितीया तिथि, बृहस्पतिवार, दिन के डेढ़ प्रहर पर उनकी आत्मा ने पंचभौतिक देह का त्याग कर दिया।

शंकरदेव के परलोक-गमन का दुःखद समाचार मिलते ही चीलाराय और भुवनेश्वरी भागे आये। दोनों गुरु के पाँवों में सिर रखकर फूट-फूट कर रोने लगे। चीलाराय ने नरनारायण को समाचार भिजवाया। भुवनेश्वरी ने अपने आपको सँभाला। उसने सबको शान्त रहने के लिए कहा और स्वयं मधुर राग में गीत गाने लगी—

ध्रु— पामरु मन, राम चरणे चित्त देहु ।
अथिर जीवन राम, माधव केरि नाम, मरणक सम्वल लेहु ।।
पद— रयनी दिवसे दूर आवि जावत अन्तक गरजि ।
कथि तनुपात मिलत मति मानी राम भजहु सब वरजि ।।
आशा-पाश परशि मानस पशु परलि बन्दि बेरि-बेरि ।
भव कारागार तारक नाहि आर बिने भकति रति तेरी ।।
अवनिशि सेवहु, राम परम पहु, रहु हृदि पंकज मेरा ।
कृष्ण किंकर भण, राम परम धन मरणहि संग ना छोड़ा ।।

शंकरदेव के महाप्रयाण का समाचार मिलते ही राजा नरनारायण नंगे सिर और नंगे पाँवों सत्र पहुँचे। उनके बदन पर धोती के सिवाय एक उत्तरीय मात्र था। वे गुरु-चरणों में सिर रखकर बालक की तरह विलाप करने लगे, "हाय ! यह मैंने क्या किया ! मेरे राजहठ के चलते ही गुरुवर को यह संसार छोड़ना पड़ा। मैं भी कैसा मूढ़ हूँ जो उनके संकेत को नहीं समझ पाया। अपने राजाभिमान में शरण देने की बार-बार रट लगाये रखी। दूत ने आकर बताया, तब ही मुझे समझ जाना चाहिये था कि कहीं कोई अनहोनी न घट जाये। साधु-सन्त से हठ करके भी भला कुछ पाया जा

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सकता है ! अगर कुछ मिल भी जाये तो उसका दुष्परिणाम ही भुगतना पड़ता है। मैं अव क्षमा भी माँगू तो किससे ? हा ! हा ! गुरुवर ! मैं आपको कभी नहीं समझ पाया। पहले कर्मकाण्डियों के छलावे में आकर आपको अपार मानसिक यातनाएँ दीं। आपके भक्तों के साथ अत्याचार किये। मैं यह भी नहीं समझ पाया कि शरण पा लेने मात्र से ही कोई शिष्य नहीं होता। आपको गुरु तो माना पर शिष्य का कर्त्तव्य अपने दम्भ के वशीभूत होकर कभी नहीं निभा पाया। आपको जगन्नाथपुरी जाने से भी मैंने ही अपने स्वार्थवश रोका।''

नरनारायण की आँखों से अश्रुधारा का जैसे निर्झर फूट पड़ा। चीलाराय के वार-वार धीरज वंधाने पर भी उनका विलाप नहीं थम रहा था। मन की ग्लानि आँसू वनकर वह रही थी। सत्र के वाहर राज्य की ओर से चन्दन, आम और अगरु की लकड़ी, घृत, कर्पूर, राजसी दुशाला आदि अन्त्येष्टि के सामान से लदी दो घोड़ा-गाड़ियाँ आकर खड़ी हुईं। चीलाराय ने आवश्यक सामग्री वहाँ उतरवाकर घी, लकड़ी से भरी गाड़ियाँ श्मशान रवाना करा दीं।

अन्तिम यात्रा की सारी तैयारियाँ हो चुकी थीं। गुरु शंकर की पार्थिव देह को अन्तिम स्नान कराया गया। नवीन वस्त्र पहनाये गये। गोपीचन्दन से मस्तक आलेपित कर उनके हृदय और कण्ठ पर वैष्णव चिह्न वनाये गये। नरनारायण ने गुरु के शरीर पर राजसी दुशाला ओढ़ाकर चरणों में पुष्पांजलि समर्पित की। नश्वर देह पंचभूतों में विलीन होने के लिए सज्जित थी।

शंकरदेव की अरथी को नरनारायण और चीलाराय ने सामने से कन्धे दिये। पुत्र रामानन्द अग्नि-पात्र लिये आगे-आगे चल रहा था। पीछे-पीछे अपार जनसमूह हरिनाम ध्वनि करता चल रहा था। राजा अपनी आँखों से वहते आँसुओं को उत्तरीय से पोंछता मन ही मन पश्चाताप कर रहा था, ''गुरुदेव, इस अधम को आप क्षमा कर दीजिये। आज तक आप कभी डोली में नहीं बैठे। अव आपको चार कन्धों पर चढ़कर अपनी अन्तिम यात्रा पर जाना पड़ रहा है।''

तोरषा नदी के तट पर नगरवासियों का जमघट लग गया। चिता सज गयी। उस पर श्वेत कमल तथा अन्यान्य फूलों की चादर-सी विछायी गयी। चिता पर लिटाये गुरु का चेहरा दिप-दिप कर रहा था। उनके मुख पर हल्की-सी मुस्कान थी। भक्तों को ऐसा लग रहा था कि गुरु गहन निद्रा में सोये हैं, अभी उठ जायेंगे, पर चिर निद्रा से भी भला कोई उठा है !

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चिता के चारों ओर खड़ा जन समुदाय हरि नाम की ध्वनि कर रहा था। गुरु की देह पर घृत का आलेपन कर समिधाएँ चढ़ायी गयीं। रामानन्द ने पिता को मुखाग्नि दी। चिता धू-धू कर धधक उठी। निर्धूम लपटें ऊर्ध्वगामी हो जैसे अम्बर को छूना चाहती थीं। इसके साथ ही पश्चाताप की एक सुषुप्त चिता महाराज नरनारायण के हृदय में जल रही थी।

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परिशिष्ट

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्रीमन्त शंकरदेव के नाटकों को यहाँ संकलित करना तो सम्भव नहीं। वैसे भी यह पुस्तक उनके कृतित्व पर नहीं, अपितु व्यक्तित्व पर है। फिर भी नाटकों के बीच-बीच के कुछ अंशों का लिप्यन्तरण यहाँ प्रस्तुत है, ताकि पाँच सौ साल पहले सुदूर असम में लिखे नाटकों की भाषा-शैली के साथ-साथ ब्रजावली की भी एक झलक पाठकों को मिल सके। उन्होंने नाटक से दर्शकों को जोड़े रखने के लिए बार-बार लिखा है— देखह शुनह; निरन्तरे हरि बोल हरि।

'केलि-गोपाल' नाटक

शंकरदेव ने 'केलि-गोपाल' लिखने के लिए श्रीमद्भागवत के अतिरिक्त विष्णुपुराण और हरिवंश से भी कथावस्तु का चयन किया। नाट्यवस्तु की घटनाएँ— शरत् पूर्णिमा की रात में कृष्ण के वंशीवादन, गोपियों का उन्मत्त होकर उनकी ओर दौड़ते हुए जाना, गोपी-कृष्ण संवाद, कृष्ण का गोपी विशेष (राधा) के साथ अन्तर्ध्यान होना, गोपी-विरह, कृष्ण का प्रकट होना, रासलीला-प्रसंग के साथ किसी भी पुराण में शंखचूड़-प्रसंग का वर्णन नहीं है परन्तु उन्होंने एकशरणिया धर्म की प्रयोजनसिद्धि के लिए इस कथा को नाटक में जोड़कर अपनी मौलिकता का परिचय दिया। यहाँ ध्यान देने योग्य एक बात है कि शंकरदेव ने इस नाटक के अतिरिक्त अपने समस्त वाङ्मय में कहीं भी राधा के नाम का उल्लेख नहीं किया है।

वृन्दावन की गोपियाँ सांसारिक माया-आवद्ध भक्तों का और श्रीकृष्ण मायामुक्त सर्वगुण सम्पन्न परम ब्रह्म के प्रतीक हैं। गोपियों द्वारा स्वजनों का त्याग सांसारिक माया-मोह-त्याग का प्रतीक है। भक्ति की दृष्टि से श्रीकृष्ण सर्व अन्तर्यामी, सकल मनोरथ पूर्ण करनेवाले तथा जिसके स्मरण मात्र से संसार को भूल जाते हैं, के रूप में वर्णित हैं। सूत्रधार का कथन है--- 'आहे लोकाई, पेखु-पेखु अज्ञानी, अनाचारी गोपी सब काम भावे केवल कृष्ण चरण चिन्ति तत्काले परमगति पावल। हरि भगतिक महिमा कि कहब ? इहा जानि निरन्तरे हरि बोल हरि।' यहाँ 'केवल कृष्ण चरण चिन्ति तत्काले परमगति पावल' ध्यान देने योग्य है। यह एकशरणिया धर्मानुकूल तो है ही, साथ ही, कृष्ण के ईश्वरतत्व का भी प्रतिपादन करता है। वस्तुतः अनेकेश्वरवाद तथा बहुदेववाद में भक्ति की स्थिरता उस हद नहीं आ पाती जिस हद तक एकेश्वरवाद या एकशरणिया धर्म में। तत्कालीन समाज में जो बहुदेववाद प्रचलित था, उसे महापुरुष शंकरदेव ने बहुत समीप से देखा तथा उपेक्षित

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जनता में परिव्याप्त असन्तोष, पीड़ा, व्यथा को परखा था। उनके उद्धार के लिए गुरु को बहुत तर्क-वितर्क करना पड़ा होगा, सरल-सहज मार्ग की खोज के लिए चिन्तन-मनन करना पड़ा होगा। जब समाज में विपन्नावस्था तथा विच्छिन्नावस्था आती है, तब लोकनायक, समाजनायक उसे दूर करने के लिए तत्पर होता है। फलतः लोकनायक श्रीमन्त शंकरदेव समाज हित के लिए एकशरणिया धर्म का प्रचार करना आरम्भ किया और लोगों के मन में उत्पन्न निराशा को आशारूप में परिणत किया।

इन्हीं भावों से शंकरदेव ने नाटक के प्रारम्भ में लिखा—

श्लोक

शरच्छशाङ्कद्युतिः कोमला यो, निशामु पश्यन् सह गोपिकाभिः ।
चकार केलिं कलगीतकण्ठः स गोपसूनुर्जयतीह कृष्णः ।।

अपि च (और भी)

वीक्ष्येन्दुमगुलमथ स्वमकुण्ठबोधो वृन्दावने वेणुमवादयन् मुदा ।
यो मोहनाय मधुरं व्रजसुन्दरीनां तं गोपवेशमनिशं प्रणतोहस्मी कृष्णम ।।

गीत— राग सुहाइ, एकताल

शरत शशि निशि धवली अधिक । लहु लहु मलय पवन तथि थिक ।।
बिरिन्दा बिपिन कुसुम परकाश । पेथि करल रास केलि विलास ।।
जय जय गोपीनाथ करो परणाम । पूरल कय केलि गोपीनक काम ।।
पंचम पूरि पुनु गावत गीत । मोहित हुयो व्रजयोसित चित ।।
हरलि चेतन मन मनसिज बान । कृष्ण किंकर एहु शंकर भाण ।।

नान्द्यन्ते सूत्रधारः प्रविशति। अलमति विस्तरेण। प्रथमतः माधवो माधवइत्युक्त्वा हरिं प्रणम्य सभासदो जनान् प्रत्याह।

x x x x x x x x

सूत्रधार— भो भो सभासदजन! गोपीजन सहिते श्रीगोपाल एआवत थिक। (सूत्रधार निष्क्रान्त)

गीत— राग श्याम, एकताल

श्याम मूरुति पीत-अम्वर-लास । नयन पंकज ज्योति ईपत हास ।।
आवत गोविन्द गोपीनी जीउ । संगे चलल गोपी भुलंल जीव ।।
अधर मधुर वेणु पंचम गान । कृष्ण किंकर एहु शंकर भाण ।।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्लोक

निरीक्ष्य रात्रिं स्वरविन्द-सुन्दरीं तद्रोचिषा चारुवनं विकसितम् ।
गीतं जगौ गोकुलकामिनीनां मोहं वितम्वन् नितराः मुरारिः ।।

सूत्रधार— श्रीगोपाल प्रवेश दिये कहु अधरे पंचम पूरि बे बजाइते लागल। ताहे शुनिये गोपीसब विमोहित हुया श्रीगोपाल समीप पावल। ताहे देखह शुनह; निरन्तरे हरि बोल हरि।

x x x x x x x x

सूत्रधार— आहे लोकइ, पेथु पेथु अज्ञानी अनाचारी गोपीसब काम भावे केवल कृष्ण चरण चिन्ति तत्काले परम गति पावल। हरि भकतिक महिमा कि कहब, इहा जानि निरन्तरे हरि बोल हरि। तदन्तरे ये गोपीसबक बन्धुबान्धवे राखये नाहि पारल; वृन्दावने गैया कहु सकले सुरासुरेश्वर शिर शिखर चूड़ामणि विराजित पाद पंकज परम ईश्वर श्रीगोपालक समीपे पावल ताहेक वृत्तान्त शुनह। से सबक हरि परिहासे स्वभावे पुछये लागल।

श्रीकृष्ण— हे सखिसब ! कमन उतपात गोकुले मिलल। कि निमित्ते रजनी लवरि कहु वन मध्ये इहा आवल।

गोपीसव— हे परमेश्वर ! नाहि नाहि किछु शंका।

ीकृष्ण— (विहसि बोलल) तोमार पति, पुत्र, पितामाता, भ्राता सब तोराक भेट ापाइ परम चिन्तित हुयाछे। तासम्बार आति सत्त्वरे भय दूर कर गिया। विलम्वक योग्य नहे। ऐहि चल ऐहि चल।
(गोपीसव बरिहास नाहि बुझल। कृष्णक कटाक्ष कोपे नीरेखिये गर्ज्जये लागल।)

श्लोक—दृष्ट्वा वनं विकसितं शीतलं शशिशोभितम् ।
यमुनाजलवातेन प्रतिघात वनात् द्रुतम् ।।

श्रीकृष्ण— (गोपीसवक प्रति) हे सखिसव ! यदि वृन्दावन देखिते आवल विकसित वृन्दावन देखल। अव सत्त्वरे चलह ऐ चलह।

गीत— राग श्रीगान्धार, एकताल

ए सखि चलहु वहुरि गौरी गोकुल गोवारी ।
करवि ना कामिनी कलंक हामारी नाहि परखो परनारी ।।
आकुलमति पति सुत सोदरहे चाहे चकित दिश पाशा ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

होइ कुल कामिनी यामिनी कैछे तेजलि निज पियुपाशा ।।
स्वामी जानय यब मिलब मरण तब चलह पातक मति छोड़ि ।
कृष्ण किंकर कह शंकर हरि को ऐचन वचन चातुरी ।।

सूत्रधार– कृष्णक परम विप्रिय वाणी शुनि कहों गोपी सब दुरन्त चिन्ता पावल, परम दुखभर पाइ हेठ अधर शुखावल; मुख मलिन भेल, यैचे (जैसे) शिशिर परि पद्म संकोचित भेल, हृदये मरम चड़ल।

गीत– राग बेलोवार, रूपक ताल

चिन्तित गोपिनी पेथये नैराशा । लम्बित आनन फोंकारे निश्वासा ।।
तनु मन झामरि नयने झुरे वारि । पद नख खिते लेखु देखु अन्धियारि ।।
कुच दुहु कुंकुम लेपित लोले । तापित व्रजवधू शंकरे बोले ।।

सूत्रधार– तदनन्तर कथंकथमपि शोकक तम्भाइकहु आंकोरे आखि मुछल। आशाछेद दुखे दीर्घ निश्वास छाड़िये प्रेम-कोप वाक्य गदगद, कष्ट कटोक्ष कृष्णक निरोध ये बोलल ता देखह शुनह; निरन्तरे हरि बोल।

x x x x x x x x

श्रीराधा– (आखि मुख मुछि निश्वास तेजि कहल) सखीसब ! कि पुछह ! हामु अभागिनी स्वामी कृष्णत कोन मान नाहि साधल। कृष्णे बोके बान्धि हामाक फुरावल, से गर्व्वे अन्ध भैलो। कृष्णक कान्धे बगाइते भैलो। से अपराधे बान्धव कृष्ण हामाक छारि कोन भिति भेल, इहा नाहि जानो। ओहि बुलि क्रन्दन कवे लागल बाला।

श्लोक–निशम्य तद्वचो गोप्यो निराशाः कृष्णदर्शने ।
पुनः पुलिनमागत्य जगुर्गोविन्द चेष्टितम् ।।

सूत्रधार– ताहे शुनिये कृष्ण दर्शने निराशा भेल। गोपीसवे राधाक संगे लैया कहों यमुनाक बालि नामित्र कृष्णक प्रार्थि क्रन्दन करे जैसे हरिगुण गावल ताहे शुनह।

गीत– राग आसावरी, एकताल

गोपीनक कैछे केशव जीवन ले । अवहु बाहुरि नाथ दरशन दे ।।
तुवा पद पंकज जीवन आधारु । ताहे नाहेरि हरि रहये नपारु ।।
दरश सरस मुख कमल मधाइ । करहु करुणा कृष्ण किंकरे गाइ ।।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सखीसव— हे बन्धु माधव ! तोहारि जनम निमित्ते गोकुल अधिक सम्पूर्ण भेल। सर्व लोक सुखे रहइछे, हामाक कैछे मदनक हाते मरावत थिक। हे सखि तोहो यशोदानन्दन नह, जगत राखिते ब्रह्मा प्रार्थल, से निमित्ते तोहा सर्व्व अन्तर्य्यामी श्रीकृष्ण बेकत हुयाछ। हामरा सबक अघ बक वत्स पूतना वृष्टि वह्नि हन्ते रक्षा कराइछ; अखन कि निमित्त रजनी कहों वन मध्ये हामाक तेजाल स्वामी ? जे ईश्वर नारायण से तुमि ऐचन भकतक त्याग तोहाक उचित नहे। हे नाथ ! जे भकतक मनोरथ पूरे, से हस्तपद हामार माथे खैयोसिया स्वामी ! याहेर स्मरणे जगतक पाप हरे सोइ पद पंकज हामार माथा उपरे अर्पह नाथ। देखो देखो ताहारी किंकरी मरि जायों अधरामृते जियावा आसिया स्वामी। ओहि बुलि पुनु जैसे क्रन्दन कैये प्रार्थल ताहे देखह।

गीत— राग माउर, ज्योतिमान

ध्रुव—

करुणासिन्धु जीवन लेहु कति लाइ ।
मोहन वंशीर स्वाने, निशि विपिन आनि, कैचे तेजलि मधाइ ।।

पद—

पतिसुत सब तेजि तेरि किंकरी भैलो
हामु मुगुधी गोपनारी ।
तुहुँ कपट कय कैचे ना देखिहे
दरशन मेरि मुरारि ।।
तोहो परम धन गोपिनी जीवन
जानि करल तयु आशा ।
तोहो दयाल दीनजन बान्धव
कहतु शंकर हरिदासा ।।

x x x x x x x x

सूत्रधार— हे सभासद ! श्रीकृष्ण वाम बाहु वामकपोले थापि कोमल आंगुलिचय चालि वेणु बजावय, ता शुनि सुरसुन्दरीसब मुरुचि पड़य। धेनुसव तृण दन्ते नीर झुरे, हरिणीसब चेतन हरावत, नदीसब कामे कम्पये रह। पेथु पेथु बिरिक पशु से सवो कृष्णगीत मोहित। से प्राणबन्धु विरहे गोपीसवे कैछे जीव राखव। ऐछन व्यवहारे कृष्ण गुर गाइ विरह विलाप कय दिन सव बंचय। सन्ध्या समये पूर्व्ववते वृन्दावने गैया कहु पुनु प्राण कृष्ण सहित समस्त शरत रात्रि रासक्रीड़ा कय रह गोपीसव। श्रीकृष्ण

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

एवम्बिध नाना खेलना कय गोपीसबक मनोरथ पूरल। ओहि कामजय केलि गोपाल नाम नाटकं सम्पूर्ण भेल। आहे लोकाइ ! ओहि भारतवरिखे नरतनु कोटि कलप अन्तरो जीवे नाहि पाइ। विशेषत कलियुगे कृष्ण गुण नाम श्रवण कीर्तन बिने गति नाहि नाहि। इहा जानि निरन्तरे हरि बोल हरि। तन्दतर चपय छन्दे मंगल बोल।

मंगल भटिमा

मीनरूपे प्रलय पयसि सत्यव्रत यो तारिले ।
कूरुमरूपे खीर सागर माथने यो धरिले ।।
शूकररूपे हिरण्य बिदारि देवभय कय त्राण ।
सोहि हरि तेरि करतु नित्य मुकुति मंगल विधान ।।
श्रीरामराय हरिको परमा भकति रसिक सुजान ।
केलि गोपाल करावत नाटक कृष्ण किंकर ओहि भान ।।
शुनह बुधजन नाहि निन्दर मोहि नाहि दोष बखान ।
जोहि सोहि बाणी हरि गुण मिश्रित मुकुति मिलावत जान ।।
देवक दुर्ल्लभ भारते नरतनु हरि बिने विफलहि जाइ ।
ओहि जनम चिन्तामणि कैचे बेचहु काँचकु लाइ ।।
एहि संसार सार नाहि हेरब हरिको बिने गुण नाम ।
निस्तर निस्तर लोक निरन्तरे डाकि बोलह राम राम ।।

केलि गोपाल नाम नाटकं समाप्तम् ।

शंकरदेव ने अपने साहित्य में कहीं भी 'राधा' का नाम नहीं लिया, परन्तु 'केलि गोपाल' नाटक में 'राधा' नाम्नी गोपी का उल्लेख है। वैसे पूरे भागवत पुराण में भी राधा का नाम कहीं नहीं है।

इसकी नाट्य-प्रस्तुति में शंकरदेव ने 'गीत-गोविन्द' की भाँति रास-वर्णन की पदावलियाँ प्रयुक्त कीं। नाटक में सर्वाधिक रास-वर्णन ही है। भटिमा में वे नाटक लिखने के लिए प्रेरक रहे रामराय (जगतानन्द) का नाम लेना भी नहीं भूले।

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

'रुक्मिणी-हरण' नाटक

'रुक्मिणी-हरण' में नाटकीयता को ध्यान में रखकर शंकरदेव ने काव्य के कई प्रसंगों को छोड़कर 'सुरभि' और 'हरिदास' नामक भाटों के नये पुरुष पात्रों और नृत्य की दृष्टि से लीलावती तथा मदनमंजरी नामक नारी पात्रों को नाटक में समाहित करने की कल्पना की। उन्होंने उद्धव को मंच पर रखा परन्तु उनके मुँह से एक भी शब्द नहीं कहलवाया। डॉ. धर्मदेव तिवारी लिखते हैं, "इस नाटक में रुक्मिणी का श्रीकृष्ण के प्रति पूर्व राग, भीष्मक का उसका विवाह श्रीकृष्ण से करने के लिए उद्यत होना, रुक्मिणी का श्रीकृष्ण के पास वेदनिधि के हाथों पत्र भेजना, रुक्मिणी का पत्र पा श्रीकृष्ण का यथासमय कुण्डिनपुर पहुँचकर उसे हर ले जाना, रुक्मि, शिशुपाल तथा अन्य राजाओं के साथ युद्ध करना करना तथा परास्त करना, रुक्मिणी श्रीकृष्ण विवाह आदि घटनाओं को नाटकीय रूप में उपस्थित किया गया है। .... इसके अतिरिक्त धर्म-प्रचार का उद्देश्य भी माना जायेगा। यहाँ रुक्मिणी ईश्वर-मिलनोत्कण्ठा से विह्वल भक्त का श्रीकृष्ण शरणागत की रक्षा करने वाले परम ब्रह्म का प्रतीक हैं। इस प्रकार श्रीकृष्ण-रुक्मिणी का मिलन आत्मा-परमात्मा का मिलन बन गया है। यही नाटककार का मुख्य उद्देश्य भी है।

"रुक्मिणी भुवनमोहन रूप निरिखिये ब्रह्मा माटि लुटि परल।' यानी रुक्मिणी के भुवन मोहिनी सौन्दर्य को देखकर ब्रह्मा मुर्च्छित हो जाते हैं। यहाँ वैष्णव धर्म के महत्ता की स्थापना व्यंजित होती है। ब्रह्मा आदिशक्ति के तेजोदीप्त प्रकाश को सह नहीं पाते— यही कारण है कि वे मुर्च्छित हो जाते हैं, परन्तु कृष्ण-किंकर नारद के ऊपर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता।....

"रुक्मिणी हरणोपरान्त रुक्म, शिशुपाल आदि श्रीकृष्ण से युद्ध करते हैं और परास्त होकर रण-क्षेत्र से भाग जाते हैं, परन्तु रुक्म युद्ध करता रहता है। अन्त में वह भी परास्त होता है। जब श्रीकृष्ण उसका सिर काटने के लिए तत्पर होते हैं, तव रुक्मिणी कृष्ण से भाई का प्राण-दान माँगती है। श्रीकृष्ण उसके प्राण छोड़ देते हैं अवश्य, परन्तु 'खड्ग धरिये सव केश मुण्डन करल; दाड़ि, गुम्फ, चक्षुभ्रुव सव उपारल मुखे कालि-चून घसिये' धक्का देकर फेंक देते हैं। इस अवसर पर सूत्रधार की टिप्पणी धातव्य है— 'आहे लोक देखो (जी) हरिक द्रोह करय, हरि-गुण नाम नैते निन्दा करय, सोहि पापीक ओहि अवस्था देखह। जानि भक्तिक निन्दा छोड़।'

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इसमें निहित भक्ति-भावना नाटककार के धर्म-प्रचार की प्रयोजनीयता को स्पष्ट करती है।

"रुक्मिणी-कृष्ण विवाह के अवसर पर असम की रीति-रिवाज का वर्णन किया है, जो वैवाहिक गीतों में निहित है।"

शंकरदेव ने अपने 'रुक्मिणी-हरण' काव्य के कई पात्र और घटनाओं को छोड़कर, केवल भागवत का आधार लेकर कृष्ण के प्रति रुक्मिणी की नैष्ठिक भक्ति को प्रतिपादित करते हुए नाटक की शुरुआत में लिखा–

श्लोक– यत्पादपङ्कजरजः शिरसा सुरेश-
शर्व्वादयो दिविषदोऽतिमुदोद्वहन्ति ।
यत्कीर्तनात् कलिमयं मनुजान्त्यजन्ति
कृष्णस्य तस्य चरणं शरणं व्रजामः ॥
चैद्यादीन्नृपतीन् विजित्य तरसा येनाहृतो रुक्मिणी,
येनाजौ विनिजित्य दुर्जयरिपः रुक्मि विरूपीकृतः ।
वैदर्भ्यां विधि द्विवाहमकरोरत् यो द्वारवत्यां मुदा,
तस्मै श्रीपरमात्मने भगवते कृष्णाय कूर्म्मो नमः ॥

गीत– राग सुहाइ, मान एकताल

ध्रु– जय जय जीवन मुरारु । पावे परणाम हमारु ॥
पंचमुहे याहे तुति बुलि । शिरे हर धर पद धूलि ॥
पद– याहे सुरासुर करु सेवा । सोहि मोहि गति देव देवा ॥
रिपु नृप सब योहि जिनि । हरल हरषे रुकमिणी ॥
करल हरि विविध बिलासा । कहतु शंकर हरिदासा ॥

नान्द्यन्ते सूत्रधार– अलमिति विस्तरेण। प्रथमं माधवो माधवेत्युच्चार्य नत्वा नारायणं सभासदान् सम्बोध्याह।

श्लोक–भोः भोः सभासदाः साधु शृणुध्वं श्रद्धयाधुना ।
रुक्मिणी हरणं नाम नाटकं मुक्ति साधकम् ॥

भटिमा (स्तुति)

जय जय यादव देव ।
आदि अन्त न पावत केव ॥
याकेरि चरण सरोरुह ब्रह्मा ।
शंकर करु नित्य सेव ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जोहि भयो अवतार ।
हरलि भूमिकु भार ।।
धयलि नरसिंह मुरुति दारुण
हिरण्यक हृदय बिदार ।।

निरमिये सकल संसार ।
करत विविध विहार ।।
यो ब्रह्माण्ड भाण्ड भेदल,
पद-नख परश प्रहार ।।

कलिमल मोचन चित्र ।
जाकेरि परम चरित्र ।।
पद पंकज रज, परशिनी गंगा
सुर नर करय पवित्र ।।

अघ बक धेनुक मारि ।
कंश केशी अन्तकारी ।।
मधु मुर नरक निवारण वारण ।
कुवलय जीवनहारी ।।

इन्द्र दरप करु चूर
ब्रजजन भय भेलि दूर ।।
रास विलास हास परिरम्भल,
गोपी मनोरथ पूर ।।

मर्दिये विषधर कालि ।
यमुना हद निकालि ।।
कुवुजा काम मनोरथ पुरल,
वरद वरद बनमाली ।।

जाकेरि ए गुण नाम ।
जगजन पूरल काम ।।
पापी पाप पराभव भंजे
सोहि मुहे लेहि अविराम ।।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सोहि कृष्णक नाटक ।
पाप मूल उतपादक ॥
शुना साधुजन जाकेरि इच्छा ।
जाहिते बैकुण्ठ वाटक ॥

कृष्ण चरित आति सार ।
रुकुमणी हरण बिहार ॥
ताहे शुनिते भणिते पावत ।
पाप पयोनिधि जार ॥

भो भो साधु सभासद ।
आवे मरण महा आपद ॥
जानह कृष्ण चरित्र मृत्यु तारक ।
कारक मुकुति सम्पद ॥

धरमक राजा नाम ।
जानि नकरा विराम ॥
कृष्ण किंकर शंकर कहइ ।
डाकि बोलहु राम-राम ॥

सूत्रधार— भो भो सभासद ! साधुजन ये जगतक परम गुरु नारायण, याहेरि अंश अवतरि बारम्बार भूमिक भार हरय, सेहि भगवन्त श्रीकृष्ण साक्षाते आपुनि अवतरि ओहि सभा-मध्ये रुक्मिणी-हरण विहार नृत्य परम कौतुके करब। ताहे सावधाने देखह शुनह ! प्रथमे उद्धव सहित श्रीकृष्ण प्रवेश, तदन्तर सखी सब सहित रुक्मिणी प्रवेश। इति ज्ञात्वा सबे सावधाने थाक। (पुनः सूत्रधार आकाशे कर्ण दत्वा संगीक बोल) आहे संगी कि वाद्य शुनिये ?

संगी— आहे देव दुन्दुभि बाजत, आः से परमेश्वर श्रीकृष्ण मिलल मिलल।

श्लोक—प्रवेशमकरोत् कृष्णः स्वकान्तया काम कोटिजित् ।
जगतां जनको धाता सोद्धवः साधुवान्धवः ॥

x x x x x x x x

(रुक्मिणी द्वारिका से आये हरिदास भाट से श्रीकृष्ण का बखान सुनकर उन्हें मन ही मन अपना पति वरण कर लेती है। किन्तु भाई रुक्मि अपनी वहन का विवाह शिशुपाल से करना चाहता है। इस विपदा से बचने

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रुक्मिणी श्रीकृष्ण के नाम पत्र लिखकर अपने ब्राह्मण वेदनिधि के साथ द्वारिका भेजती है। वेदनिधि द्वारिका पहुँचकर कृष्ण को पत्र पढ़कर सुनाते हैं।)

वेदनिधि— (पत्रपाठ) स्वस्ति श्रीपरमेश्वर-सकल-सुरासुरवन्दित-पादपद्म-प्रपन्नजनतारण-नारायण श्रीश्रीकृष्णचरणसरोरुहेषु । रुक्मिण्याः सहस्र प्रणाम-लिखनम् । शिवमिह निवेदनं च ।

हे स्वामी ! भिक्षुक (हरिदास) मुखे तव गुण रूप शुनिये कायवाक्य मने विवाह निमित्त, तोहाक पति भावे बरइछि। तथि पापी शिशुपाल हामाक विवाह करिते आवाल थिक। जैसे सिंहक भाग निते शृंगाल चुम्पिये रहल थिक। ताहे देखिये भये दण्डे युग जाइ। जानि हामु दासीक सत्वरे नेव आसिया, स्वामी।

जब बोल तोहो अन्तेसपुरे रह, कोन परकारे भेट पावब, तथि उपाय कहों। हे नाथ ! ता शुनह, विवाहक पूर्व दिवस भवानीक मठ चलब। से समये हामाक हरि निये जाब।

जव तुहु हेला करि हामाक नाहि नेवब, तब तोहात बद्ध दिये हामो प्राण छाड़व। पापी शिशुपालक छायाक हामो कबहो पावि नहि परशो। ओहि जानि निज दासीक हे नाथ ! उद्धार, उद्धार। तव चरण सरोरुहे किं बहु लेख्यमिति पत्रमिदम्।

श्लोक— निरिक्ष्य करुणं पत्रं पत्न्याः परमपुरुषः ।
प्रेमाश्रु लोचनस्तस्थौ म्लाननेत्र मुखाम्बुजः ।।

x x x x x x x x

(श्रीकृष्ण के कुण्डिनपुर (नाटक में कुण्डिलपुर नहीं, यही लिखा है।) में भीष्मक की राजसभा तक पहुँचने, रुक्मिणी से भेंट होने का श्लोकों, गीतों, भटिमाओं और कथोपकथन द्वारा विस्तृत रूप देकर उन्होंने आगे लिखा)—

श्लोक— कृष्णोऽपि क्षोभितं चित्तं स्थिरं कृत्वा जहार ताम् ।
ईक्षतां द्विषतां मध्यात् मृगानां केशरी यथा ।।

सूत्रधार— तदनन्तर श्रीकृष्ण रुक्मिणीक रूप लावण्य पेखिये मोहित हुया कथं कथमपि चित्त शान्त कयल। रुक्मिणी सखी सब सहित लीलागति चलिते कृष्णक देखल। भाटक मुखे जैसन रूप गुण शुनल, ताहातो अधिक साक्षाते देखल। ओहि कृष्णक स्वामी बुलि मने परणाम कयल, सलज्ज हास्य करिये अधोमुखी हुया रहल। श्रीकृष्ण तत्काले उठिकहो राजसभा मध्य हन्ते रुक्मिणीक हरि लैया आपुन समीप कयल। येचन मृग यूथ मध्य सिंहे आपोन भाग लैया जाइ, तद्वत् कुमारीक हात धरिये आपुन रथे तुलिकहो रुक्मिणी सहित श्रीकृष्ण जैसे लिलाकय चलल, अये लोक, सा देखह शुनह, निरन्तरे हरि बोल हरि !

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

x x x x x x x x

(शिशुपाल तथा जरासन्ध जैसे राजाओं से कृष्ण को अकेले युद्ध करते देख रुक्मिणी विलाप करती है। कृष्ण सबको पराजित कर उसे धीरज बंधाते हैं। उधर द्वारिका में देवकी चिन्तित होकर नाटक में कहती है।)–

देवकी– हे बलभद्र ! हे सात्यकि ! हे गद ! देख मोर प्राण पुताइ श्रीकृष्ण कन्याक आशे एकाकी चलिया गेल। हामु लोकमुखे शुनि आछो; सिठावे दुष्ट राजासब एकत्र हैया रहइछे। नाहि जानि एकेश्वर पया कोन परमाद घटावे; ता हैले हामार समूले बुड़य। जानि तुहु सब सत्वरे गिया गोविन्दक लाग धरह।

सूत्रधार– ओहि बुलि देवकी मकमकि रोदन करिते लागल। देखि बलभद्र आश्वास करिया बोलल।

बलभद्र– हे माव ! तुहु कृष्णक निमित्ते किछु चिन्ता करबि नाहि। जे श्रीकृष्ण एकेश्वरे त्रैलोकक जिनिते पारे, ताहाक आगु राजसब कोन वस्तु थिक ? तथापि तोहाक आदेश पालिये एतिक्षण कुण्डिनक जाइबों, तुहु चिन्ता छाड़ह, चिन्ता छाड़ह।

श्लोक– निशम्य देवकीवाक्यं बलदेवो धृतायुधः ।
गद सात्यिकि संयुक्तः ससैन्यः कुण्डिनं ययौ ।।

सूत्रधार– ओहि परकारे देवकीक आश्वास वचने प्रबोध करि कहु यदुसेना सब सहित जैसे चलिते लागल, ता देखह शुनह, निरन्तरे हरि बोल हरि !

x x x x x x x x

सूत्रधार– श्रीकृष्ण शिशुपालक किरीटि काटिये राजासबक कति दूर खेदाइ परम कौतुकयुक्त हुया प्रिया रुक्मिणी सहित द्वारकापुर चलिते जैसन लीलागति कयल, हे लोक ! ता देखह शुनह, निरन्तरे हरि बोल हरि !

x x x x x x x x

सूत्रधार– से पापी रुक्मी अस्त्रे नाहि पारि कृष्णक हृदये मुष्टि मारल। श्रीकृष्ण उनिकर केशे धरिये, हिये लाठि मारिया, काटिते आनन्दे खड्ग धरले।

श्लोक– दृष्टवा भ्रातृवधोद्योगं गोविन्दस्याति दुःखिता ।
कराम्यां चरणौ स्पृष्टवा चकार करुणं सती ।।

सूत्रधार– तदनन्तर देवी रुक्मिणी ताहे देखिये भातृ मरय बुलि श्रीकृष्णक चरण पंकज धरिये कातर कय लागल।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रुक्मिणी– हे स्वामी ! तोहारि चरणे लागो, भ्राताक प्राण दान देह। तोहो परम ईश्वर। ओहि पापी तोहाक महिमा नाहि जानल, जैसे पतंग अनगिनत जास कयल। हामाक देखिते ओहि दोष मरष स्वामी।

x x x x x x x x

(तदनन्तर कृष्ण-रुक्मिणी का द्वारका-प्रवेश होता है। नाटक को पूरा करने के लिए शंकरदेव आगे सूत्रधार के माध्यम से लिखते हैं।)–

सूत्रधार– ओहि परकारे भकतक कृपालु श्रीकृष्ण-रुक्मिणीर भकतिवश्य हुया विविध विहार मदन-खेल-लीला-केलि-कौतुक कयल। राजकुमारीक पाय मनोरथ पूरल। से नृपनन्दिनीक महामहोत्सव मिलल। जगतक परम गुरु नारायण, तनिककर परशैने परम सौभागिनी भेल। नव तरुणी पद्मिनी शत सहस्र दासी पावल। इन्द्रक यत सम्पत्ति निज मन्दिरे मिलल। श्रीकृष्ण चरण पंकज परमानन्दे परिचर्या कये सर्वथा रहल।

श्लोक–

रुक्मिणीहरणनाटोऽयं सम्पूर्णो हरिणा कृतः ।
अस्मिन्निमित्तमात्रोऽहं जानन्त्विति महत्तमाः ।।

(शंकरदेव कृष्ण-रुक्मिणी विवाह में कामरूपी रीतियों का वर्णन करने में भी नहीं चूके। उन्होंने विशेष रूप से निरूपित किया, कृष्ण-रूक्मिणी का प्रेम सामान्य नर-नारी का प्रेम नहीं, वरण ईश्वर के प्रति भक्त की नैष्ठिक भक्ति है। इसकी पुष्टि करने के लिए नाटक के अन्त में वे दीर्घ भटिमा में लिखते हैं।)–

मुक्तिमंगल भटिमा

..जाहेर जाइते इच्छा वैकुण्ठ बाट । शुना सावधान कयो कृष्णक नाट ।।
परम बन्धु हरि चरण बिनाइ । नाहि नाहि गति कलित लोकाइ ।।
अवहु नाहि बुजि शास्त्रक मर्म्म । नामत शरण लेहु सब धर्म।।
कलिमल मथन परम हरि नाम । जानि सवहि नर बोलहु राम राम ।।

रुक्मिणीहरणनामनाटकम् सम्पूर्णमिति ।

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

'कालिय-दमन' नाटक

शंकरदेव ने एकशरणिया धर्म के आदर्शों के अनुकूल कृष्ण के भक्तवत्सल और लोकरक्षक रूप का चित्रण करने के उद्देश्य से कालिय-दमन लीला पर नाटक लिखते समय वनाग्नि-पान लीला को भी नाटक में समाहित किया। इसमें श्रीकृष्ण कालिय ह्रद में कूदकर कालिय नाग को बन्धनयुक्त करते हैं। काली नाग दुष्ट, दुराचारी, अत्याचारी प्रवृत्ति का प्रतीक है और श्रीकृष्ण दुष्ट-दलन और भक्त-वत्सलता के। अन्य शब्दों में काली नाग अन्धविश्वासी और दुष्ट लोगों का प्रतिनिधित्व भी करता है, जो सांसारिक कार्यकलाप से अनजान बनकर अपने दुष्कर्म करते हैं। काली नाग भी अन्य प्राणियों की चिन्ता किये बिना अपना विष वमन कर अतल जल में रहता है। किनारे उसका विष मिश्रित जल पीकर गाय-गोपबालकों के प्राण चले जाते हैं। श्रीकृष्ण उसका मद-दलन कर उसे शिक्षा देते हैं और क्षमा याचना करने पर उसके फणों पर नृत्य कर अपने चरण चिह्न देकर अभयदान देकर अन्य स्थान पर भेज देते हैं।

डॉ धर्मदेव तिवारी लिखते हैं, "श्रीकृष्ण काली नाग को शिक्षा देते है कि गुरुसेवा से ही परमगति मिल सकती है। इस दुःखमय यन्त्रणापूर्ण संसार में छुटकारा पाने का एकमात्र उपाय गुरुशरण ही है। गुरुसेवा वैष्णवधर्म की अमूल्य निधि है। नाटक में यह स्वीकार किया गया है– 'ऐसन परम गुरुक आपद औषध पाई कालिक मन निर्मल भैल, नैनर निर निझूरय, कृष्णक परम ईश्वर पुरुष जानि मने सरल लेलह।' इसके साथ ही, नागपत्नियों की स्तुति दास्य भक्ति का उदाहरण है– 'घोर अपराध आचरण ओहि चण्ड .... हेन भगवन्तदेव देवतारो देव तोहारि चरणे करो लक्ष कोटि सेव।'

"कालियदमन की कथा शाक्त धर्म पर वैष्णव धर्म की विजय उद्देश्य से रखी गयी है। काली नाग के सिर पर श्रीकृष्ण का नृत्य करना तथा चरण चिह्न देकर अभयदान देना वैष्णव धर्म की श्रेष्ठता का प्रतीक है। वस्तुतः खण्डनात्मक-मण्डनात्मक पद्धति के आधार पर भी भागवत धर्म का प्रचार किया जाता था। सच तो यह है कि एकशरणिया धर्म में दूसरे देवता की परिकपना नहीं है। सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज की ध्वनि भी यही है।"

शंकरदेव ने संवादों की अल्पता और वर्णन की प्रधानता को

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ध्यान में रखकर 'कालि-दमन' (ग्रन्थों में यही नाम मिलता है, जो लिपिकार की भूल लगती है।) नाटक के प्रारम्भ में लिखा—

श्लोक—

मेघश्यामलमूर्त्तिमायतमहाबाहुमहोरस्तूलम् ।
स्वारक्तायतकञ्जलोचनयुगं पीताम्बरं सुन्दरम् ।।
मुक्ताहारकहेमहारवलयालङ्कारकान्तिद्युतिम् ।
कृष्णं शारदचन्द्रचान्द्रसदृशं हृत् पङ्कजेह हम्भजे ।।

अपि च (और भी)

येनाकारि महाहिदर्पदलनाक्रीड़ा ह्रदिन्या जले ।
येनाभाजिभुजङ्गभोगनिस्विलं पद्भ्याः मुदा मर्दयन् ।।
येनामारि महामहाशूरचमुचक्रं परं लीलया ।
तस्मै श्रीकरुणामयाय महते कृष्णाय नित्यं नमः ।।

सूत्रधार— ओहि परकारे श्रीकृष्णक परणाम कयकहु, सभासद लोकक सम्वोधि बोल।

श्लोक—

भो भो सामाजिकाः यूयं शृणुत मधुरं वचः ।
कृष्णस्य कालिदमनयात्रावार्त्तां निबोधत ।।

सूत्रधार— आहे सभासद लोक, ये जगतक परम गुरु परम पुरुष पुरुषोत्तम सनातन व्रह्मा महेश सेवित चरण पंकज नारायण श्रीश्रीकृष्ण उहि सभामध्ये कालिदमन नाम लीला यात्रा कौतुक करब, ताहे सावधाने देखह शुनह! निरन्तरे हरि बोल! (आकाशक कर्ण दिया सूत्र बोल) आहे संगी, कौन वाद्य शुनिये।

संगी— आहे देव दुन्दुभि वाजत, आः से परमेश्वर श्रीकृष्ण मिलल मिलल।

x x x x x x x x

सूत्रधार— कृष्णक अमृत निरीक्षण पाइ पुनर्व्वार प्राण आवल। वत्स वत्सपाल सब स्वप्नर जागि जैसे उठि वैथल। अन्यान्य कहैछे, आहे सखिसब, देखु उहि विपजल पाने प्राणे चारि मरल, कृष्णर प्रसादे पुनर्व्वार वर्त्तल। ओहि वुलि परम प्रीति हुया कृष्णर चरण प्रणाम कय वोलल। आहे स्वामी, तोहाक प्रसादे पुनर्व्वार उपजल। तोहारि चरण सेवाक महिमा कि कहव स्वामी। (श्रीकृष्ण सवाके आलिंगि आश्वास कयल)

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्लोक–

तत्र कालियभुजगं भगवान् भवभावनः ।
दूरीकर्त्तुं मनश्चक्रे ह्रदाद्दैत्यनिसूदनः ॥

× × × × × × × ×

श्लोक–

वीक्ष्य भक्तिन्ततस्तस्य तुष्टः कृष्णो जगादतम् ।
माभैर्भुज गतिर्न्नासि मम माया दुरत्यया ॥

श्रीकृष्ण– आहे कालि सर्पराज, तुहो भय नाहि करबि। हामाक प्रसादे ओहि माया संसार तोहों निस्तरल। साम्प्रत ओहि यमुनाक ह्रद छोड़ि तोहारि पूर्व्वस्थान रमणक द्वीप ताहेक लागि सपरियाले चलह। एइ चलह एइ चलह। गड़ुरक किछो शंका नाहि करबि। हामार चरणक चिह्न ध्वज बज्र पंकज तोहारि फणात लागि रहल। ताहे पेखि हामाक भये गड़ुरे किछो करब नाहि। विलम्व छोड़ि एइ चलह चलह।

श्लोक–

निशम्य निर्भयवार्णीं कृष्णस्य भुजगस्तदा ।
नत्वा सर्परिबारेण ययौ रमणकं मुदा ॥

सूत्रधार– श्रीकृष्णक परम निर्भय वाणी शुनिए महाहरिषे कालि सपरिवारे कृष्णक प्रणाम कयल। चरणक धूलि लेलह। हे स्वामी कृष्ण विदाय कयल बुलि प्रेमे सलोतक नयने जैसे चलल, ताहे देखह शुनह ! निरन्तरे हरि बोल हरि !

× × × × × × × ×

श्रीकृष्ण– आः हे माता, हे पिता, हे गोप-गोपीसब, आजु रात्रि व्रज जाइते पारबे नाहि। जब सबहि भल्ल देखह, तबे एखाते रजनी बंचह।

सूत्रधार– श्रीकृष्णर ऐचन वाक्य अनुमानि यत गोकुलवासी सब यमुनाक तीरे शुति रहल। क्षुधाये तृषाये हारासान्हि हुया निर्भये निद्रा गेलह।

श्लोक–

ततो लोकाः समुत्रस्थाः वेष्टिता वनवह्निना ।
चुक्रुसुः कृष्ण कृष्णेति त्राहि त्वं निजकिङ्करान् ॥

सूत्रधार– तदनन्तर निद्राते व्रजवासीक वनवह्नि बेढ़ल। ताहेक प्रचण्ड श्रवद

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शुनिये निद्राभंग भेल। विस्मयुया जागल। प्रचण्ड वह्नि पेथि शरीर काम्पे, परम त्रस्त हुया त्राहि त्राहि कृष्ण बुलि कोलाहल करिते लागल।

गोपीसव बोल— हे अनाथक नाथ, हे दीनदयाल स्वामी कृष्ण, हामाक ओहि शरीर आवश्यक परब, इहाक चिन्ता नाहि नाथ; ओहि संसार तारक, तोहारि अरुण चरण ताहे पुनु नाहि देखब, ओहि दुखानले हृदय दाह करे। ओहि बोलि जैसे आर्त्तरावे क्रन्दन कय लागल, ताहे देखह शुनह ! निरन्तरे हरि बोल हरि !

गीत— राग श्रीगान्धार, एकताल

ध्रु— आये हरि हरि गोपाल प्राण मिले मरण हामारुरे ।
अरण्य अनल दहे मधाइ उधारुरे ।।
पद— नाहि ओहि दुख मोहि जीव यव जाय ।
नाचिन्तित हामु ओहि मरणक लाइ ।।

गीत— राग भटियाली

ध्रु— त्राहि त्राहि हेर प्राण नारायण हरि ऐ बाप शरणे पशिलों ।
वन वह्नि दहे नरहे जीवन आवेशे मरिलो ।।
पद— नाहि ओहि शोक मरण मिलोक आर नाचिन्तोहो हामि ।
तोमार अरुण चरण पंकजे पुनु नेदेखब स्वामी ।।

श्लोक—

श्रीकृष्णस्याद्भूतं कर्म्म दृष्ट्वा सर्व्वोपरिस्मता ।
अन्यान्यस्योति प्रत्युचुर्न्नरोन्नदनन्दनः ।।

सूत्रधार— श्रीकृष्णक आश्चर्य्य महिमा देखिये परम विस्मय हुया अन्योअन्य सम्वुधि बोले, आहे भाईसव देखो देखो, ओहि नन्द नन्दन मानुष नोहे। प्रचण्ड वह्निक तत्तकाले मुखे पान कयल। ओहि कि मनुष्यक काम ? आः जानल जानल, ये परम पुरुप पुरुपोत्तम सनातन नारायण से भूमिक भार हरण निमित्ते अवतार हये थिक। इहात किछु शंका नाहि। आः हामाक भाग्यक महिमा कि कहव ? ओहि जगतक गुरु नारायण सहित हामाक संग भेल। हामु निस्तरल। ओहि वोलि श्रीकृष्णक प्रशंसिये आवरि गोप गोपी सव नयन भ्रमरे मुख पंकचक प्रेमे पान करिये रहल।

श्लोक—

गोविन्दा वादयन् वेणुं गोकुलं गोपीगोपकैः ।
सार्द्ध ययो जगन्नाथो हर्पयन् सुहृदान् मुदा ।।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सूत्रधार— तदनन्तर कालि दमन, वप वह्नि पान परम ईश्वर लीला दरशिये, श्रीकृष्ण, गोप, गोपी सहित धेनुसब आगकय चलय कृष्ण गुण गाइ वंशी शंख शिंगा बजाइ गोपसब जाय। गोपी सब परम प्रेमभावे हरि गुण गाइ, कृष्ण मुख पंकज कटाक्षे निरेखि गोकुल चललि। ताहे देखह शुनह ! निरन्तरे हरि बोल हरि !

गीत— राग कल्याण, खरमान

ध्रु— गोकुल चलेबे मुरारु ।
नील शरीर रंजित पीत ज्योति, चिर हिर हेम हारु ।।
पद— बादत बेणु धेनु रेणु तनु कानु कौतुक कय याइ ।।
गोप शिशु संग अंग त्रिभंगम रूपे भुवन भुलाइ ।।
संगिनी रंगिनी गोपीन गावे भावे नीरक जुरावे ।।
कानु क़मल अमल मोह हेरि चललि लहु लहु पावे ।।
श्रीरामराया हरि रस पाया माया करु निरजान ।।
एकु कृष्णक चरण परायण शंकरे हरि गुण गान ।।

x x x x x x x x

श्लोक—

कृष्णस्य कालिदमननाम यात्रा च कारिता ।
यत् न्यूनाधिकं दोषं क्षमतां भगवन् प्रभो ।।
नमः कृष्णाय रामाय कामाय महते नमः ।
नमोहरविन्दनेत्राय सदानन्दाय शाश्वते ।।

(नाटक के अन्त में मुक्तिमंगल भटिमा में शंकरदेव ने रामराय के नाम का भी उल्लेख करते हुए लिखा—)

देवकी उदरे उदय योहि देवा
कयलि भकतक त्राण ।....
श्रीरामराय हरि विने नाइ
जाहेरि हृदये ध्यान ।.....
कोटि कलापक पातक नाशक
डाकि बालहु राम राम ।।

इति कालिय दमन नाटकं समाप्तम् ।

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

'पारिजात हरण' नाटक

शंकरदेव अपने लिखित-निर्देशित नाटकों के मंचन का जनता पर प्रभाव देखकर उत्साहित थे। अब उन्होंने 'पारिजात हरण' नाटक लिखने का मन बनाया। उन्होंने नाटक में भागवत्, विष्णु पुराण, हरिवंश पुराण से घटनाक्रम लेकर कथा को इस प्रकार पिरोया– एक दिन श्रीकृष्ण रुक्मिणी के साथ वार्तालाप कर रहे थे। उसी समय नारद पहुँच जाते हैं। वे अपने पास का इन्द्रलोक से लाया पारिजात पुष्प श्रीकृष्ण को भेंट करते हैं, जिसे वे रुक्मिणी को दे देते हैं। इस घटना का वर्णन नारद सत्यभामा से कर देते हैं। वह इस पुष्प को येनकेन प्रकार पाने के लिए श्रीकृष्ण से हठ करती है। श्रीकृष्ण सत्यभामा को साथ लेकर पारिजात लाने इन्द्रलोक के लिए प्रस्थान करते हैं। रास्ते में प्राग्ज्योतिषपुर आता है, जहाँ के राजा नरकासुर के अत्याचारों के बारे में श्रीकृष्ण ने सुन रखा था। वे उसका वध कर इन्द्रलोक जाते हैं। वहाँ इन्द्र से युद्ध होता है और उसकी पत्नी शशि भी पारिजात ले जाने का विरोध करती है। अन्ततः पारिजात लेकर श्रीकृष्ण सत्यभामा को देकर उसके मोह को तृप्त करते हैं।

मूल पारिजात हरण की कथा में शंकरदेव ने नरकासुर वध की कथा को सुसम्वद्ध और नाट्यशास्त्रानुसार गुम्फित कर दिया। (शंकरदेव के समस्त नाटकों में इसे सर्वाधिक प्रौढ़ रचना माना जाता है।) नाटक में सत्यभामा श्रीकृष्ण के बाँये हाथ की माया की माया का प्रतीक है, तो रुक्मिणी उनके दाहिने हाथ की भक्ति। सत्यभामा जहाँ मोह-लोभ-स्पृहा आदि का प्रतीक है, वहीं रुक्मिणी मोक्ष, मुक्ति और निवृत्ति का।

शंकरनेव ने नाटक की शुरुआत करते हुए लिखा–

श्लोक–

नमः कृष्ण विष्णो परान्तशक्ते । नमो राम राजीवनेत्र प्रभो मे ।
नमो व्रह्ममूर्ते मुरारे परेश । नमो विश्वास प्रसीद प्रसीद ।।

x x x x x x x x

सूत्रधार– आहे सामाजिक लोक ! ये जगतक परम गुरु, याहेरि सर्जना सकल संसार, व्रह्मा महेश बन्दित पादपद्म, परम पुरुप पुरुषोत्तम, श्रीकृष्ण ओहि रुकिमणी सत्यभामा सहित सभामध्ये प्रवेशकयो नरकासुर वध पारिजात

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हरण लीला जात्रा कौतुक करब, ताहे सावधान देखह शुनह ! आतपरे पुण्य कलित नाहि जानि निरन्तरे हरिबोल !

x x x x x x x x

नारद— हे कृष्ण ! ओहि पारिजातक गन्ध तिनि प्रहरक पथ जाइ। ओहि पारिजात जाहेर गृहे रहे, धन जन विभव ताहेक छाड़ये नाहि। ओहि देव दुर्ल्लभ पारिजात जो नारी परिधान करे से पुष्पक महिमाये परम सौभागिनी हय। ताहाक छाड़ि स्वामी कथाव ज़ाइते नाहि। अ ओहि कुसुमक महिमा कि कहब ! (ओहि बुलि नारद चोवरि बैठि मौने रहल।)

श्लोक—

श्रुत्वा कुसुम-माहात्म्यं रुक्मिणी केशवप्रिया ।
प्रणम्य स्वामी चरणं पारिजातयाचत ।।

x x x x x x x x

नारद— अ हे देबि सत्यभामा ! तोहारी स्वामी श्रीकृष्णक बरि विषम चेष्टा देखल। हा हा माव ! तोहा दुर्भागा भेलि। हामु आजु से जानल।

सत्यभामा— हे मुनिराज ! तुहु कि कहइछे। हामु किछु बुझये नाहि।

नारद— हा हा तोहाक विधि बंचल। हे माव ! कि कहब; कहिते बर दुख लागे। (एहि बुलि हेट माथ बैस कय रहल मुनि।)

श्लोक—

सत्यभामा भयाद्भीता निशम्य मुनिभाषितम् ।
दृष्टं कथय किं कुत्र तं पृच्छति पुनः पुनः ।।

सत्यभामा— (भीत हुया की जोरि) हे मुनिराज ! हामो जानो मोहि सम सौभागिनी आवरि नाहि। से स्वामी कृष्ण हामाक छाड़ि कतिहो जावे नाहि। तुहु आजु कोन ठामे कि देखल, कि शुनल, हामाक शपथ सत्वरे स्वरूप बाट कह। चित्त बरि उद्वेग करय।

श्लोक—

पृष्टौ देव्या सनिर्ब्बन्धं कथयामास सादरम् ।
कृष्णस्य चरितं सर्व्वं रोरुद्यमान नारदः ।।

सूत्रधार— देबीक निर्ब्बन्ध देखि बोलल।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नारद— हा हा हे माव ! कि कहिब। एसब कथा कहिते दोष। हामु देवदुर्ल्लभ पारिजात स्वर्ग हन्ते आनि कृष्णक हाते देलो। से पारिजात जे नारी परिधान करे से पुष्पक महिमाये परम सौभागिनी हय। इहा जानि हामु बोलल, ओहि पारिजातक योग्य देबी सत्यभामा। तथि कृष्णे कयलि कि, तोहाक कटाक्ष करिये आपुन हते प्रिया रुक्मिणीक माथे परम सादरे से दिव्य पारिजात पिन्धावल। अ तोहार जीवन धिक धिक ! सतिनीक अभ्युदय देखि कि निमित्त प्राण धरये माव ! तुहु जीवन्ते मरल ! हा हा विस्तर कि कहब !

x x x x x x x x

श्लोक—

ततो देवी सत्यभामा कृष्णवाक्यामृतेन सा ।
प्रीता प्रसन्नवदना प्रेणम्याह प्रियं हरिम् ।।

सूत्रधार— देवी स्वामीत, महामान लाभिये आति प्रसन्नमुखी हुया, श्रीकृष्णक प्रणामि बोलल।

सत्यभामा— हे स्वामी हामाक पारिजात तरु तुहु दिते सत्य कय बोल।

श्रीकृष्ण— हे प्रिये ! पापी नरकासुरे देवतासबक जिनिये सर्ब्बस्य आनल। आगु ताहेक मारि देवकार्य्या साधो। पाचु पारिजात आनो।

x x x x x x x x

श्रीकृष्ण— हे मुनिराज ! कि करब। पारिजातक निमित्त सत्यभामा प्राण छाड़य। उनिकर निर्ब्बन्ध कत सहब ?

नारद— हे कृष्ण ! कामातुर पुरुषक ऐचन अवस्था। स्त्री जे आज्ञा करे, से अवश्ये करिते लागे। होक, से कामरूप नरकासुरक पाट, ओहि द्वारिका हन्ते स्वभावे मास चारिकेर पथ। स्त्री लैया जाइते वत्सर दुइ चारि पारब। आ देवकार्य्य भल्ल सत्वर साधन। एक कर्म्म करह। तोहार वाहन गरुड़ पखीराज ताहेक आज्ञा करह। ताहेर कन्धे चड़िये सत्वर गिया नरकासुरक मारह।

x x x x x x x x

श्लोक—

प्राग्ज्योतिपं सोहति-यवेन जायया । सुपर्णमारुह्य जयो जनार्द्दनः ।।
क्षणेन सम्प्राप्य पुरं परेशो । महोत्सवं शङ्खरवं चकार ।।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सूत्रधार— श्रीकृष्ण गरुड़ वाहने वायुवेगे कामरूप पाइ पाञ्चजन्य ध्वनि कयल। ताहे शुनि नरकासुर खेदि आवल। श्रीकृष्ण ताहे जैचे बध कयल ताहे देखह शुनह ! निरन्तरे हरि वोल हरि !

x x x x x x x x

नारद— हे कृष्ण ! पारिजातक निमित्त तुहु पठावल, हामो बरि लाजो भेलो सत्यभामाक बहुत गालि परावल मात्र। पारिजातक नाम शुनि शची क्रोधे बोलल, अ कथाक मानुषी सत्यभामा शचीक पारिजात पिन्धिते इच्छा कयल। अभाग्य कपाल यव तप जप आचेरि जन्मान्तरे अम्रावतीक अधिकारिणी हय तब पारिजात पावब बोल गिया। हे कृष्ण ! देवीक धिकार शुनये हृदय दहे, हा हा कि भेलि !

x x x x x x x x

श्लोक—

पारिजातस्य हरणं निशम्य कुपिता शची ।
पतिं पुरन्दरं प्राह धिग् जन्म तव वज्रिणः ॥

शची— (पारिजात शुनि शची कोपे पुरन्दरक बोलल।) हे स्वामी ! तुहु विद्यमान थाकिते हामाक पारिजात मानुषी निया जाय। अ तोहाक धिक्कार थिक। बज्रको धिकार रहोक। (ओहि बुलि इन्द्रक आगे बहुत विलाप कयल।)

इन्द्र— हे प्रिये दुख छोरह, आमाकु आगु कृष्ण कोन हय ? ताहेक जिनि पारिजात एखने आनब। चिन्ता नाहि करबि।

सूत्रधार— ओहि बुलि इन्द्र परम प्रारम्भे साजि धनुषर धरिकहो देवसब सहित समन्विते ऐरावत कन्धे खेदि आवल।

x x x x x x x x

सत्यभामा— आहे पुरन्दर, तुहु कि निमित्ते पलावल। देवक राजा हुया मानुष कृष्णक भये भंग देलह उचित नाहे। तोहारि आगु पारिजातक मंजरि परिधान कये शची लाश वेश करि वेरावे। तुहु बज्रधर वीर। अब कैचे पलाव, लाजक पिठि देलह। अये पामरी शची, ओहि इन्द्रक देखाइ अतये दरप कयलि। अव तोहारि भतारक कैचे नाहि पालटाव। हामु मानुषी हुया तोहारि पारिजात निया जाओ, ओहि तापे मरिते नाजाव।

x x x x x x x x

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सूत्रधार— इन्द्रक सन्मान शुनि श्रीकृष्ण भार्य्या सहिते हरिषे पुरन्दरत अनुमति पाइ जैसे पारिजात लैया कौतुके केशव चललि, आहे लोक ताहे देखह शुनह; निरन्तरे हरि बोल हरि !

x x x x x x x x

रुक्मिणी— (सत्यभामाक गर्व्वभाव शुनि हासि बोलल।) अये भगिनी सत्यभामा, कि कहैछ, जगतक परम गुरु स्वामी श्रीकृष्ण, उनिकर चरण सेवा करिते ब्रह्माण्ड भितरे कोन दुर्ल्लभ थिक। धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारि पदारथ हाते मिलावे। तोहारि पारिजात कोन कथा ?

x x x x x x x x

सूत्रधार— ऐचन केलि कला कौतुक कय श्रीकृष्ण भकत रमणी सबक मनोरथ पूरि द्वारकापुर प्रवेशि रहल। ओहि पारिजात हरण हरिक परम लीला चरित्र श्रद्धाये जे सबे शुने भणे कृष्ण चरणे ताहेरि परम भकति बढ़ावय। इहा जानि हरि बोल हरि !

श्लोक—

कृष्णपादप्रसादेन शङ्करः कृष्णकिङ्करः ।
चकार श्रीपारिजातहरणं नामनाटकम् ।।

मुक्तिमंगल चपय छन्दे भटिमा ।

जय जय जगजन जीवन मुरारि । कंश केशी बक अघ अन्तकारी ।।
सेवे जाक विभु ब्रह्मा अधिकारी । भुकुति मुकुति नित्य करतु तोहारि ।।
. . . .
मल मति लोक अवहु नाहि जानि । नाहि नाहि गति बिने शारंगपाणि ।।
भजहु हरि चरणे छोरहु सव आश । हरि नामे करु सुदृढ़ विश्वास ।।
धरमक उपरि राजा नाम । कृष्ण किंकर कह बोल राम ।।

पारिजातहरण नाम नाटकं सम्पूर्णमिति ।

□□

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्रीमन्त शंकरदेव की पारिवारिक वंशावली

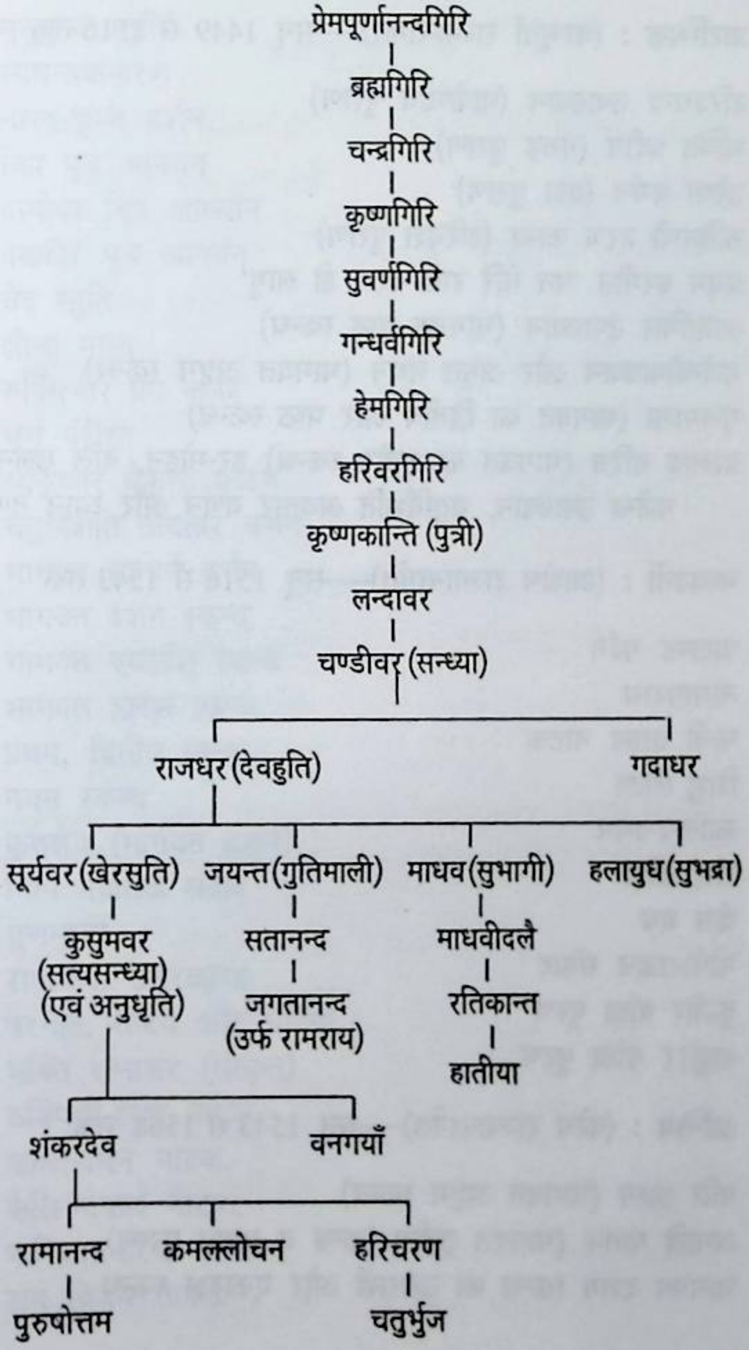

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्रीमन्त शंकरदेव का रचना-संसार

प्रारम्भिक : (बरभूयाँ राज्यान्तर्गत)—सन् 1449 से 1516 तक

1 हरिश्चन्द्र उपाख्यान (मार्कण्डेय पुराण)
2 भक्ति प्रदीप (गरुड़ पुराण)
3 उरेषा वर्णन (ब्रह्म पुराण)
4 रुक्मिणी हरण काव्य (हरिवंश पुराण)
5 प्रथम बरगीत 'मन मेरि राम चरण ही लागु'
6 अजामिल उपाख्यान (भागवत षष्ठ स्कन्ध)
7 गजेन्द्रोपाख्यान और अमृत मंथन (भागवत अष्टम स्कन्ध)
8 गुणमाला (भागवत का द्वितीय और षष्ठ स्कन्ध)
9 प्रह्लाद चरित्र (भागवत का तृतीय स्कन्ध) हर-मोहन, बलि छलन, गजेन्द्र उपाख्यान, चतुर्विंशति अवतार वर्णन और ध्यान वर्णन

मध्यवर्ती : (आहोम राज्यान्तर्गत)—सन् 1516 से 1543 तक

1 पाखण्ड मर्दन
2 नामापराध
3 पत्नी प्रसाद नाटक
4 शिशु लीला
5 कालिय-दमन
6 रास क्रीड़ा
7 कंस वध
8 गोपी-उद्धव संवाद
9 कुजीर वांछा पूरण
10 अक्रूरर वांछा पूरण

अन्तिम : (कोच राज्यान्तर्गत)—सन् 1543 से 1568 तक

1 बलि छलन (भागवत अष्टम स्कन्ध)
2 अनादि पातन (भागवत तृतीय स्कन्ध व वामन पुराण)
3 भागवत दशम स्कन्ध का उत्तरार्द्ध और एकादश स्कन्ध

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

4 जरासंध-युद्ध
5 कालयवन-वध
6 मुचुकुन्द स्तुति
7 स्यमन्तक-हरण
8 नारद-कृष्ण दर्शन
9 विप्र पुत्र आनयन
10 दामोदर विप्र आख्यान
11 देवकीर पुत्र आनयन
12 वेद स्तुति
13 लीला माला
14 रुक्मिणीर प्रेम कलह
15 भृगु परीक्षा
16 श्रीकृष्णर बैकुण्ठ प्रयाण
17 चतुर्विंशति अवतार वर्णन
18 भागवत तात्पर्य वर्णन
19 भागवत दशम स्कन्ध
20 भागवत एकादश स्कन्ध
21 भागवत द्वादश स्कन्ध
22 प्रथम, द्वितीय स्कन्ध
23 नवम स्कन्ध
24 कुरुक्षेत्र (भागवत दशम)
25 निमि नवसिद्ध संवाद
26 गुणमाला
27 रामायण, उत्तरकाण्ड
28 बरगीत, तोटय और भटिमा
29 भक्ति रत्नाकर (संस्कृत)
30 रुक्मिणी-हरण नाटक
31 कालि-दमन नाटक,
32 केलि-गोपाल नाटक,
33 पारिजात-हरण नाटक
34 राम विजय नाटक

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

असमीया पुस्तकें

1 श्रीश्री शङ्करदेव — स्व. लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा

2 श्रीश्री शङ्करदेव — स्व. महेश्वर नेओग

3 जाकेरि नाहिके उपाम — श्री लक्ष्मीनन्दन बोरा

4 सर्वगुणाकर — डॉ. निरुपमा महन्त

5 धन्य नर तनु भाल — स्व. सैयद आब्दुल मलिक

6 सेहि गुणनिधि — श्री लक्ष्मीनन्दन बोरा

7 श्रीशङ्कर वाक्याभृत — सम्पादक : हरिनारायण दत्तबरुवा

8 कथा-गुरु चरित — अज्ञात (सम्पादक : उपेन्द्रचन्द्र लेखारु)

9 बेजबरुवा ग्रन्थावली — स्व. लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा

10 सत्रीया नृत्यर रूप दर्शन — श्री करुणा बोरा

11 सत्रीया नृत्य आरु नृत्यर ताल — स्व. महेश्वर नेओग

हिन्दी पुस्तकें

12 शंकरदेव : साहित्यकार और विचारक — डॉ. कृष्ण नारायण प्रसाद 'मागध'

13 भारत की सन्त परम्परा और सामाजिक समरसता — डॉ. कृष्ण गोपाल

14 महापुरुप श्रीमन्त शंकरदेव — श्री चित्र महन्त

15 महापुरुप श्रीमन्त शंकरदेव की जीवन गाथा — स्व. धूर्ज्जुटि प्रसाद खाओन्द

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

16	महापुरुष श्रीमन्त शंकरदेव	स्व. नवारुण वर्मा
17	मानवतावादी और राष्ट्रवादी महापुरुष शंकरदेव (अप्रकाशित)	डॉ. देवेन चन्द्र दास 'सुदामा'
18	असमा सुषमा कामरूपा	डॉ. देवेन चन्द्र दास 'सुदामा'
19	शंकरदेव के नाटक और रंगमंचियता	डॉ. धर्मदेव तिवारी 'शास्त्री'
20	महापुरुष श्री सन्त शंकरदेव और अन्य कथाएँ	श्री मधुकर लिमये
21	तीर्थांक (इकतीसवाँ विशेषांक)	गीताप्रेस, गोरखपुर
22	मार्कण्डेय पुराण (संक्षिप्त)	गीताप्रेस, गोरखपुर
23	थोड़ी यात्रा थोड़े कागज	श्री सांवरमल सांगानेरिया
24	ब्रह्मपुत्र के किनारे किनारे	श्री सांवरमल सांगानेरिया

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सत्र में स्थापित काष्ठ निर्मित गरुड़

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सत्र का पुरुष नर्तक

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सत्रिया नृत्य की एक मुद्रा

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

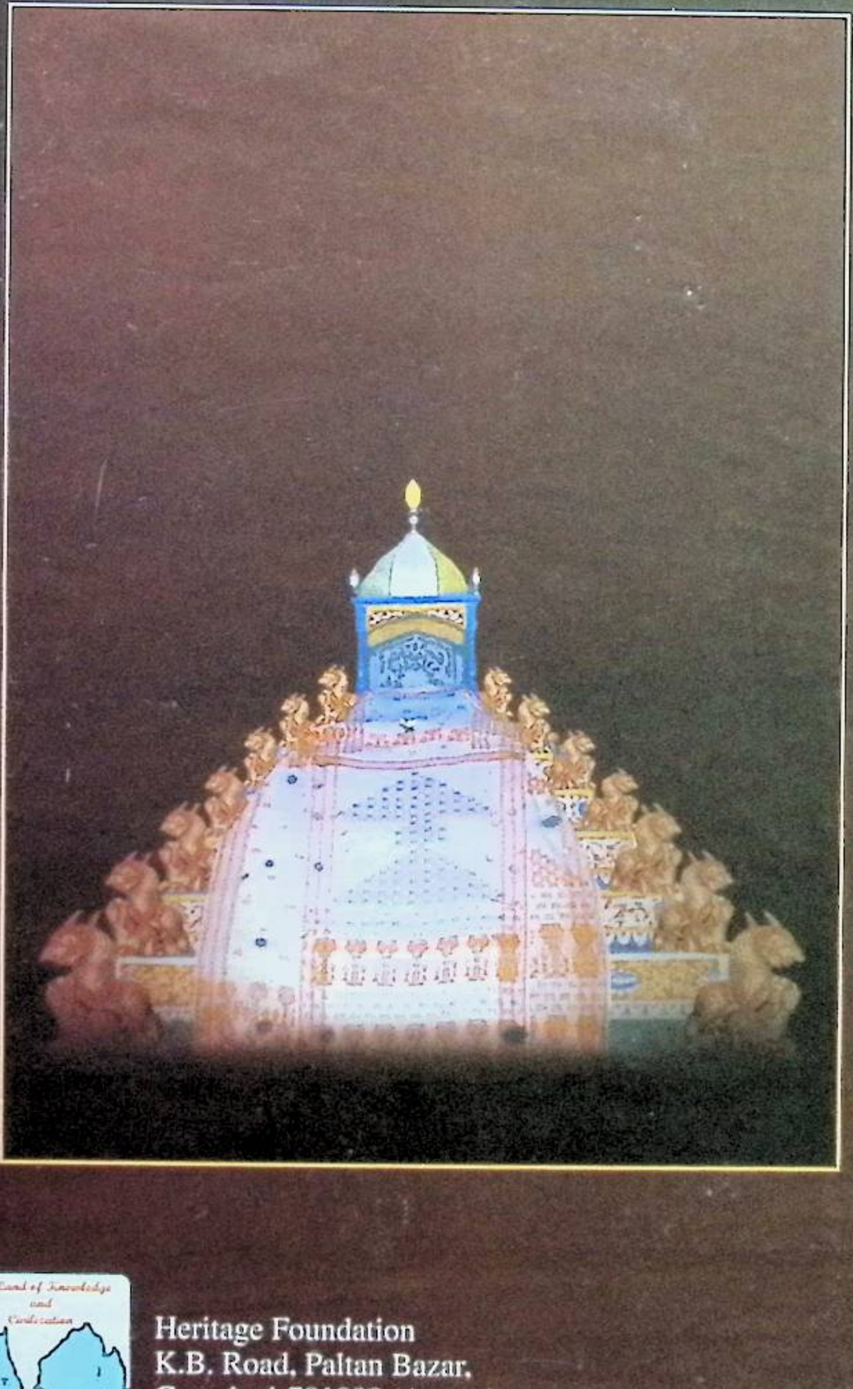

Heritage Foundation
K.B. Road, Paltan Bazar,
Guwahati-781008 (Assam)

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh